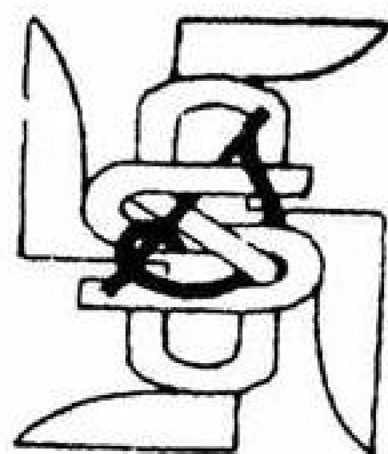
गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि



स्वस्तिक साहित्य सदन
५००/६ ए/ २, पांडव रोड, विश्वास नगर,
दिल्ली-११००३२

गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि

(कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

भारत भूषण चौधरी

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज, कुरुक्षेत्र

प्रकाशक : स्वस्तिक साहित्य सदन, पाडव रोड, दिल्ली-११००३२, प्रथम संस्करण १९७९ / © डॉ० भारत भूषण चौधरी/मूल्य : पचास रुपये/तारा कंपोजिंग एजेंसी द्वारा गोपाल प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली ११००३२ में मुद्रित ।

Guru Govind Singh Ke Darbari Kavi
By : Dr. Bharat Bhushan Chaudhry

समर्पण

भक्ति और शक्ति के प्रखर प्रतीक,
मन्त्र-द्रष्टा, राष्ट्र-निर्माता, महाकवि,
एवं
सब युगों के महामानव
दशम गुरु गोविन्द सिंह जी
को
सादर समर्पित

—भारतभूषण

प्रारम्भिकी

शोध तथ्यानुसंधान के साथ ही तथ्याख्यान भी है। हिन्दी में जिस प्रकार का शोध-कार्य हो रहा है, उसमें से अधिकांश में या तो निर्जीव तथ्यों की उद्धरिणी प्रस्तुत की जाती है, या तथ्याख्यान के नाम पर व्यक्तिगत व्याख्याओं की भरमार रहती है। वस्तुतः सच्चे शोध-कार्य में तथ्यों और उनके आधार पर किए गए तत्त्वान्वेषण या निर्वचन का सही सामंजस्य अपेक्षित है। यह अपेक्षा सही विषय-चयन पर आधारित रहती है। शोध की उपर्युक्त अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए मैंने विषय-चयन को शोध की प्राथमिक शर्त के रूप में अंगीकार किया और उपयुक्त विषय की खोज में अनेक विद्वानों से विमर्श किया। 'गुरु गोविन्द सिंह के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवि' विषय मुझे शोध की दोनों शर्तों—तथ्यानुसंधान और तत्त्वान्वेषण की पूर्ति करता प्रतीत हुआ।

किसी जाति, देश या राष्ट्र का उत्थान परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न होकर नहीं हो सकता। इस तथ्य को दशम गुरु ने पहचाना और उन्होंने अपनी परम्परागत थाती को जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर भारतीय जनमानस में आत्मगौरव उत्पन्न करने का प्रयत्न भी किया। साहित्य ही सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति का प्रमुख स्रोत बन सकता था। दशम गुरु ने इसीलिए एक ऐसे महान् साहित्यिक-यज्ञ का समारम्भ किया जिसके माध्यम से प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की यश-सुरभि जन-जन के मानस में उल्लास और गौरव की भावना भर सके। इस यज्ञ के पुरोहित वे स्वयं बने।

दशम गुरु गोविन्द सिंह एक युग-पुरुष के रूप में इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। उनके तृतीय जन्म-शताब्दी समारोह की आयोजना के समय कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के तत्कालीन आचार्य और अध्यक्ष ऋषिकल्प डॉ० विनयमोहन शर्मा जी ने मुझे दशम गुरु के प्रमुख हिन्दी दरबरी कवियों के अध्ययन के लिए प्रेरित किया और 'आदि-ग्रन्थ' के विशेषज्ञ डॉ० मनमोहन सहगल को मेरे शोध-प्रबन्ध के निर्देशन का भार सौंपा। जैसे-जैसे अनुसन्धान-कार्य की गति बढ़ती गयी वैसे-वैसे यह अनुभव होने लगा कि यह कार्य न केवल श्रम-साध्य है, अपितु इसके लिए प्रचुर धनराशि भी अपेक्षित है। इन दरबारी कवियों से सम्बद्ध साहित्य अभी तक पूरी तरह प्रकाश में नहीं आ पाया है, अतः इन कवियों की रचनाओं के अन्वेषण के लिए मुझे अनेक प्राचीन पुस्तकालयों की यात्रा करनी पड़ी। किसी प्रकार इस शोध-कार्य के लिए मुझे अहिन्दी भाषी छात्र होने के कारण केन्द्रीय सरकार की एक छात्रवृत्ति प्राप्त हो गई, जिमने मेरी आर्थिक कठिनाइयों को थोड़ा सरल बना दिया।

दशम गुरु के दरबारी कवियों की संख्या निश्चित् नहीं थी। भाई संतोख सिंह ने जिन कवियों का उल्लेख किया है उनकी रचनाओं का वहाँ कोई विवरण नहीं मिलता। कवियों की संख्या के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। केवल दो रचनाएँ ही ऐसी उपलब्ध होती हैं, जिनमें कुछ कवियों का नामोल्लेख-मात्र और कुछ कवियों की गिनती की रचनाओं का विवरण उपलब्ध होता है। इनमें पहली रचना डॉ० हरिभजन सिंह का शोध-प्रबन्ध 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य' तथा दूसरी रचना श्री चन्द्रकांत बाली की 'पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास' है। इनके अतिरिक्त कुछ पत्र-पत्रिकाओं में दशम गुरु के दरबारी कवियों की सांकेतिक चर्चा उपलब्ध होती है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध-कार्य का महत्त्व तो निर्विवाद है, किन्तु साथ ही इसमें निहित कठिनाइयाँ भी सहज अनुमेय हैं। एक ओर तो मुझे दशम गुरु के दरबारी कवियों की प्रचलित सूची की प्रामाणिकता पर कार्य करना था और दूसरी ओर प्रामाणिक कवियो की अज्ञात एवं अप्रकाशित रचनाओं की खोज भी करनी थी। इस प्रसंग में मुझे पटियाला, अमृतसर, चण्डीगढ़, बनारस तथा रामनगर की कई बार यात्रा करनी पड़ी और उन कवियों की अप्रकाशित रचनाओं की प्रतिलिपियाँ या तो स्वयं तैयार करनी पड़ीं अथवा पारिश्रमिक देकर कुछ रचनाओं की प्रतिलिपियाँ प्राप्त करनी पड़ीं। अप्रकाशित एवं हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में मुझे कई ऐसे व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा, जो बिना 'भेंट' लिए अपनी अधिकृत हस्तलिखित प्रति से कुछ भी लिखने की अनुमति एवं सुविधा देने के लिए तैयार नहीं होते थे। इस क्रम में मेरे दो वर्ष निकल गए और यह जानते हुए भी कि थोड़ा-सा धन व्यय करके अमुक-अमुक स्थानों से रचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं, आर्थिक कठिनाइयों की भीषणता के कारण उन्हें प्राप्त करने में मैं असफल रहा। मैंने अपनी कठिनाइयाँ अपने गुरुजनों एवं आचार्य(डॉ०) विनयमोहन जी शर्मा के समक्ष रखीं, जिनके सद्प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मुझे विश्वविद्यालय से शोध-छात्रवृत्ति प्राप्त हो सकी। इस आर्थिक सहायता से मैं उन रचनाओं की प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने में सफल हो गया जो मेरे लिए दुष्प्राप्य बनी हुई थीं, और इस प्रकार मेरे शोध-कार्य की गति आगे बढ़ी।

प्रस्तुत प्रबन्ध में अध्ययन के लिए गृहीत विभिन्न कवियों की लगभग सभी काव्य-कृतियों की हस्तलिखित प्रतियाँ गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हैं। हिन्दी के विद्वानों ने इन्हें पंजाबी भाषा की रचनाएँ समझ कर इनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो दूसरी ओर पंजाबी के विद्वानों ने इनकी भाषा ब्रज होने के कारण इन्हें पंजाबी भाषा की रचनाएँ स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप ये समस्त कृतियाँ अन्धकार में पड़ी रहीं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का मूल उद्देश्य इन्ही अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाश में लाना है।

(अ) विषय का विभाजन— प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में दस अध्याय हैं। अध्याय-क्रम की दृष्टि से इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

प्रथम अध्याय में दशम गुरु गोविन्द सिंह के युग, उनके जीवन और व्यक्तित्व का विस्तृत परिचय देते हुए सिक्ख गुरु-परम्परा और उनके समसामयिक मुस्लिम शासकों

के साथ उनके सम्बन्धों पर ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। इसी अध्याय में पंजाब के तत्कालीन साहित्यिक परिवेश का तथ्यपूर्ण परिचय दिया गया है तथा यह स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है कि एक वीरयोद्धा, भक्त, सन्त, समाज-सुधारक एवं राष्ट्र-निर्माता महामानव गुरु गोविन्द सिह ने किस प्रकार अपनी रचनाओं से हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया तथा किस प्रकार उन्होंने कवियों के अनन्य आश्रयदाता के रूप में अपनी सहृदयता का परिचय देते हुए उत्कृष्ट साहित्य की सृष्टि में अपूर्व योग दिया।

द्वितीय अध्याय में दरबारी कवियों की परम्परा का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और दशम गुरु के दरबारी कवियों की संख्या और नामावली का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है। इस सम्बन्ध में अब तक प्रकाश मे आयी हुई अनेक सूचियों को कसौटी पर कसा गया है और तथ्यों की प्रामाणिकता तथा रचनाओं की उपलब्धि के आधार पर इन सूचियों में से पच्चीस कवियों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। इनमें से ग्यारह कवि ऐसे हैं जिनकी एक-एक या दो-दो फुटकर रचनाएँ ही मिलती है। इन कवियों का उपलब्ध परिचय संक्षेप में इसी अध्याय में दे दिया गया है।

तृतीय अध्याय में अणीराय, अमृतराय, आलम, सुखदेव, सेनापति, हंसराम, कुवरेश, गुरुदास, गोपाल, टहकन, मंगल, लक्खण, काशीराम तथा हीर कवि का अन्त: और बहि:साक्ष्य के आधारपर उपलब्ध परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में उनकी रचनाओ की सूची, उपलब्धि-स्थान तथा उनका संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। उक्त चौदह कवियों में हीर ही ऐसे विशुद्ध मुक्तककार है जिनके कई मुक्तक कवित्त उपलब्ध होते हैं। अत: इन्हें मुक्तककारों के प्रतिनिधि कवि के रूप मे अध्ययन के लिए ग्रहण किया गया है। अन्य तेरह कवियों की रचनाएँ ग्रन्थरूप में भी उपलब्ध होती हैं और उनमें से कुछ की ग्रन्थों के अतिरिक्त मुक्तक रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। योजना-सूत्र की दृष्टि से प्रस्तुत अध्याय स्वयं में सर्वथा परिपूर्ण है, क्योंकि एक ओर तो इसमें प्रथम बार इन कवियों का इतना विस्तृत परिचय दिया गया है और दूसरी ओर उन तथ्यों के संचयन का प्रयत्न किया गया है, जिनके आधार पर इनको दशम गुरु के दरबार से सम्बद्ध माना जाता है। इस सम्बन्ध में हमने वहि:साक्ष्य की अपेक्षा अन्त:साक्ष्य पर अधिक बल दिया है और उसे ही अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना है।

चतुर्थ अध्याय में गुरु गोविन्द सिंह के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों की उपलब्ध कृतियों का वर्गीकरण किया गया है। इन कवियों की कुल अट्ठाइस रचनाएँ प्राप्त है, जिनमें से केवल तेरह रचनाएँ प्रकाशित हैं और शेष सभी रचनाएँ अप्रकाशित रूप मे विभिन्न पुस्तकालयों में पड़ी हैं। इन अप्रकाशित रचनाओं का विवरण एवं परिचय प्रथम बार इस शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी-जगत् को उक्त अज्ञात एवं अप्रकाशित रचनाओं से प्रथम बार अवगत कराने की दृष्टि से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का महत्त्व निर्विवाद रूप से मान्य होगा।

चतुर्थ अध्याय में ही काव्य-विधा एवं वर्ण्य-विषय के साम्य-वैषम्य के आधार पर इन रचनाओं का वर्गीकरण किया गया है और इसी आधार को आगे के अध्यायों में अध्ययनक्रम के लिए ग्रहण किया गया है ।

पंचम अध्याय में दशम गुरु के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों की कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। आलोचनात्मक दृष्टि का प्रश्रय लेते हुए प्रयत्न यह किया गया है कि प्रत्येक रचना के वर्ण्य-विषय, उसके भाव एवं कला-सौन्दर्य पर इस ढंग से प्रकाश डाला जाए कि रचना का समग्र सौन्दर्य और महत्त्व शोध-प्रबन्ध के पाठक के सामने अंकित हो जाए। इस अध्याय में निम्नलिखित रचनाओं का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है—

(क) ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य : (१) जंगनामा, (२) गुरु शोभा।
(ख) पौराणिक प्रबन्ध-काव्य : (१) श्याम-सनेही, (२) सुदामा चरित।
(ग) प्रेमकथा प्रबन्ध-काव्य : (१) कथा हीर-राँझन की, (२) माधवानल-कामकन्दला, (३) कनक मंजरी।
(घ) काल्पनिक लघु प्रबन्ध : (१) साखी हीरा घाट की।

इस अध्याय में जिन प्रबन्ध-काव्यों का विवेचन किया गया है उनमें से कुछ के सम्बन्ध मे अत्यन्त भ्रामक धारणाएँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए 'माधवानल कामकन्दला' को सूफी प्रेमाख्यान माना जाता रहा है, जबकि स्थिति इससे भिन्न है। यह एक असूफी प्रेमाख्यान है। 'कथा हीर-राँझन की' सामाजिक जीवन को संस्पर्श करती हुई प्रेम-कथा है। 'जंगनामा' और 'गुरु शोभा' में से 'गुरु शोभा' सोद्देश्य रचना है, जिसमें खालसा-स्थापना के महत्त्व एवं गुरु-महिमा पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। 'जंगनामा' एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य है जो पूर्णतः यथार्थ घटनाओं पर आश्रित है। 'जंगनामा' और 'गुरु-शोभा' में वीर-काव्य-परम्परा की जो छाप दिखाई पड़ती है उसका उद्घाटन करते हुए नवीन छन्दों के प्रयोग की ओर निर्देश किया गया है। इस अध्याय में कृतियों के तटस्थ एवं सूक्ष्म समीक्षात्मक अध्ययन के माध्यम से कतिपय ऐसे नवीन तथ्यों और निष्कर्षों को प्रकाश में लाया गया है जिनकी ओर आलोचकों का ध्यान अभी तक नहीं गया था।

षष्ट अध्याय में दशम गुरु के हिन्दी दरबारी कवियों की मुक्तक रचनाओं का वर्ण्य-विषय के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। ये मुक्तक दशम गुरु के शौर्य, मृगया, अस्त्र-शस्त्र, दान, यश तथा अवतार रूप में उनकी महिमा का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। इनमें से कुछ वीर रसात्मक मुक्तक हैं और कुछ शृंगारिक मुक्तक। वीर रसात्मक मुक्तक रचनाएँ भूषण के वीर रसात्मक कवित्तों की तुलना में रखी जा सकती हैं। इनमें नायिका-भेद, प्रेम-व्यंजना, संयोग तथा वियोग, प्रकृति-चित्रण एवं कुछ अन्य विषय समाविष्ट हैं। इन मुक्तक रचनाओं में प्रयुक्त अलंकार, छन्द और भाषा आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।

सप्तम अध्याय में भाषा-रूपांतरित कृतियों का विवेचन किया गया है। इसमें

महाभारत के सभा पर्व, द्रोण पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व तथा अश्वमेध पर्व का परिचय प्रस्तुत किया गया है और महाभारत के कुछ मूल श्लोकों को उद्धृत करते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है कि भाषा-रूपांतर के समय कवियो ने कितना मूल का अनुसरण किया है और किस अंश तक उनके वर्णन में मौलिकता तथा कल्पनाशक्ति का उपयोग हुआ है। 'चाणक्य नीति' और 'हितोपदेश भाषा' भी भाषा-रूपांतरित रचनाएँ है, इनका भी मूल से साम्य-वैषम्य प्रदर्शित किया गया है। इन भाषा-रूपांतरित कृतियों में साहित्यिक सौष्ठव कम है। 'महाभारत' के पर्वो का रूपांतर मूलानुसरित वर्णनात्मक है तथा नीतिपरक रचनाएँ श्लोकानुसारी हैं। हमने इस अध्याय में साहित्यिक दृष्टि से कम महत्त्व की इन रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन की अपेक्षा उनके मूल से साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डालना अधिक उचित समझा है, क्योंकि इस तथ्य का उद्घाटन अधिक महत्त्वपूर्ण था।

अष्टम अध्याय के दो भाग हैं—प्रथम भाग में अध्यात्मपरक कृतियों 'अध्यात्म-प्रकाश', 'ज्ञान प्रकाश', गुरुमहिमा' तथा 'अनुभव उल्लास' का परिचय दिया गया है। ये कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से अधिक मूल्यवान न होते हुए भी सन्त-परम्परा के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

इस अध्याय के दूसरे भाग में दो ऐसी कृतियों की विवेचना प्रस्तुत की गई है जो हिन्दी-जगत् के लिए सर्वथा नवीन हैं। इनमें से 'रतन दाम' को हमने कोश-काव्य कहा है, क्योंकि इसमें कहीं 'अमरकोष' की श्लोकानुसरित शैली के दर्शन होते हैं तो कहीं कवि की स्वतन्त्र वर्णन-शैली के। कवि ने मुख्य रूप से रस, उसके अंग-उपांग तथा नायक-नायिका-भेद वाले अंशों को ही वर्णन का मुख्य विषय बनाया है। इससे स्पष्ट होता है कि उसका उद्देश्य 'रतन दाम' को कोश पर आश्रित रीतिग्रन्थ बनाना रहा है।

'चित्र-बिलास' चित्र-काव्य के विविध रूपों का स्पष्टीकरण करने वाला ग्रन्थ है। इसमें एकाक्षर कोश भी है और विविध प्रकार के विधानों का वर्णन भी। वस्तुतः चित्र-काव्य के लिए रीतिकाल में वर्णन की जितनी भी दिशाएँ प्रचलित थीं उन सब में कवि ने स्वरचित उदाहरण दिए हैं। बीच-बीच में कहीं-कही लक्षण-निर्देश भी मिलते हैं। इसलिए यह चित्र-काव्य सम्बन्धी रीतिग्रन्थ है। इसमें कूट, संख्या और अवतार-वर्णन भी हैं। अवतार-वर्णन का सम्बन्ध चित्र-काव्य से कम और कवि की भावना से अधिक है।

'रतन दाम' और 'चित्र-बिलास' का खोजपूर्ण विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने के कारण यह अध्याय भी शोध की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

नवम अध्याय में दशम गुरु के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों की देन पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। साहित्यिक महत्त्व की रचनाओं के रूप में तो इन कवियों की देन है ही, इन रचनाओं के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के कारण भी इनकी देन विशेष उल्लेखनीय है। अपनी वर्णन-शैली, वर्ण्य-विषय, छन्द-प्रयोग और कला-संयोजन की दृष्टि से इन हिन्दी कवियों ने वीरगाथा काल और रीतिकाल में समन्वय स्थापित करने का

प्रयत्न किया है। सिक्ख गुरुओं का दरबार ब्रजभाषा के लिए ऐसा शाद्वल रहा है जिसके चारों ओर पंजाबी भाषी एवं ब्रजभाषी प्रदेश फैला हुआ था। निश्चय ही ब्रजभाषा पर पंजाबी छन्द-शैली का प्रभाव पड़ा, परन्तु उच्चारण सम्बन्धी कतिपय प्रभावों के अतिरिक्त सारी रचनाएँ ब्रजभाषा में ही प्रस्तुत की गयीं। उच्चारण सम्बन्धी जो थोड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है, वह प्रायः गुरु-दरबार के सभी कवियों की भाषा में समान रूप में उपलब्ध होता है और उसे सामान्य बोलचाल की ब्रजभाषा का नाम दिया जा सकता है। कतिपय पंजाबी शब्दों का समावेश स्थानीय प्रभाव को सूचित करता है। इस प्रकार दशम गुरु गोविन्द सिंह के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों का हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में प्रचुर योगदान रहा है।

अन्तिम अध्याय में शोधपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें कतिपय नवीन एवं महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। इन हिन्दी कवियों की रचनाओं का जो रूप हमारे सामने आता है वह दो तथ्यों की ओर निर्देश करता है—इनमें से कुछ रचनाएँ तो दशम गुरु के साहित्यिक यज्ञ और उत्तम समायोजन के कारण कवियों द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं और कुछ रचनाएँ कवियों की स्वतन्त्र निजी प्रेरणा और काव्य-सृजन की प्रतिभा के कारण प्रकाश में आई हैं। ऐसा मुक्त एवं साहित्य-सृजन के लिए सर्वथा अनुकूल वातावरण तत्कालीन किसी भी सामन्ती दरबार में विद्यमान नहीं था। कुछ रचनाएँ तो स्वयं दशम गुरु के जीवन से सम्बद्ध हैं और उनका ऐतिहासिक मूल्य इसलिए बढ़ जाता है कि उन्हें उन कवियों ने रचा था जो स्वयं दशम गुरु के साथ रहे। उनकी देन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

विषय की मौलिकता—शोध-प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायों के संक्षिप्त परिचय के उपरान्त संक्षेप में कतिपय उन महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करना भी आवश्यक है, जिनके कारण यह शोध-प्रबन्ध मौलिक एवं हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग देने योग्य बन सका है। वे तथ्य निम्नलिखित हैं—

(१) दशम गुरु गोविन्द सिंह के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों पर लिखा गया यह सर्वप्रथम शोध-प्रबन्ध है।

(२) इसमें दशम गुरु के दरबारी कवियों की प्रचलित सूचियों का प्रथम बार वैज्ञानिक एवं तथ्याश्रित परीक्षण किया गया है जो पुस्तकालयों में से खोजी गयी रचनाओं पर आधृत है।

(३) इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से पुष्ट अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर दशम गुरु के हिन्दी दरबारी कवियों का प्रामाणिक जीवन-वृत्त एवं परिचय प्रथम बार हिन्दी-शोधकों एवं समालोचकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

(४) पहली बार गुरुमुखी लिपि में प्राप्त ब्रजभाषा की अनेक अप्रकाशित रचनाओं को हिन्दी जगत् के लिए सुपरिचित बनाया गया है।

(५) कतिपय रचनाओं के सम्बन्ध में फैली भ्रांत धारणाओं का प्रामाणिकता के साथ निराकरण करते हुए वास्तविक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है।

(६) दशम गुरु के हिन्दी दरबारी कवियों की रचनाओं का पहली बार इतना विस्तृत एवं तटस्थ आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्षतः दशम गुरु का दरबार, गुरु-दरबारों की आध्यात्मिक परम्परा का प्रतिनिधि था। वह तत्कालीन परिस्थितियो और वातावरण के साथ संघर्षरत था और जनजीवन मे एक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना उद्दीप्त करने का कार्य कर रहा था। दशम गुरु का दरबारी साहित्य इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किए गए प्रयत्नों की सरस अभिव्यक्ति है। इसी परिप्रेक्ष्य में दशम गुरु के प्रमुख हिन्दी-दरबारी कवियों की रचनाओं का मूल्यांकन वास्तविक एवं यथार्थ माना जाना चाहिए।

आभार-प्रदर्शन––इस कार्य में हिन्दी-विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष एवं आचार्य डॉ० विनयमोहन शर्मा की देन अविस्मरणीय है। उनके कृपापूर्ण पथ-निर्देश, सहायता और आशीर्वाद के बिना इस शोध-प्रबन्ध की पूर्ति किसी भी प्रकार सम्भव नहीं थी। उनके सात्विक प्रयत्नों से ही मुझे यथासमय छात्रवृत्ति प्राप्त हो सकी, जिससे मैं निरापद रूप से अध्ययन कार्य में प्रवृत्त हो सका। मेरे लिए आचार्य जी की यह कृपा आजीवन अनुभूति का विषय रहेगी। उनके आशीर्वाद और सहज-सुलभ वात्सल्य को औपचारिक आभार-प्रदर्शन या धन्यवाद की तुला पर रखकर मैं अपनी अमूल्य निधि को हल्का करना नहीं चाहता।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के निर्देशक गुरुवर डॉ० मनमोहन सहगल (सम्प्रति हिन्दी-विभागाध्यक्ष, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला) के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिनके समुचित सहयोग, सुयोग्य पथ-निर्देशन और सतत प्रेरणा के अभाव में इस शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में मैं असमर्थ ही रह जाता। अपने डी० लिट् के शोध-कार्य में व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने जिस सद्भावना, उदारता, आत्मीयता एवं स्नेह से मेरा मार्ग-दर्शन किया है, उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य, परम श्रद्धेय डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल जी ने मुझे समय-समय पर अनेक सुझाव देकर उपकृत किया है, एतदर्थ मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के रीडर डॉ० छविनाथ त्रिपाठी के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने मेरे सम्पूर्ण अध्ययन-काल से लेकर इस शोध-प्रबन्ध की समाप्ति तक निरन्तर सहायता प्रदान की है। गुरुमुखी लिपि में प्राप्त रचनाओं के सम्बन्ध में जब-जब मैंने किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव किया, उन्होंने अत्यन्त उदारता के साथ प्रचुर समय देकर मेरी सहायता की और मेरी कठिनाइयों को दूर किया।

डॉ० जयभगवान गोयल (रीडर, हिन्दी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय), डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा (रीडर, हिन्दी-विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक) तथा

डॉ० ओमानन्द रू० सारस्वत (हिन्दी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) आदि विद्वानों ने विषय-चयन से लेकर प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रकाशन की प्रक्रिया तक मेरा जो मार्ग-दर्शन किया है, उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

इस प्रसंग में भाई डॉ० देवेन्द्र सिंह 'विद्यार्थी' (चण्डीगढ़), डॉ० बलवीर सिंह (देहरादून), सिक्ख रेफ़्रेंस पुस्तकालय, अमृतसर, रेफ़्रेंस पुस्तकालय, भाषा-विभाग (पटियाला), नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय (काशी), काशी-नरेश-पुस्तकालय (रामनगर) के अधिकारियों तथा उन मित्रों के प्रति, जिन्होंने मेरे साथ चण्डीगढ़, पटियाला, अमृतसर तथा काशी आदि अनेक स्थानों पर बार-बार जाकर सामग्री-संकलन में मेरी सहायता की है, मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

अन्ततः, कुरुक्षेत्र-निवासी सेठ सोमप्रकाश गोयल तथा उनके परिवार के प्रति भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने हर कठिन परिस्थिति में मेरी आर्थिक सहायता की है।

—भारत भूषण चौधरी

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

गुरु गोविन्द सिंह : युग, जीवन और व्यक्तित्व

कवि और युग-चेतना

काव्य का जीवन और जगत् से गहरा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ही कहीं गहरे में कवि की काव्य-चेतना को युगीन परिवेश के अनुरूप जीवन मूल्यों से सम्बद्ध करता है। कवि मानवीय चेतना का प्रतिनिधि होता है। वह अपने युग की उपलब्धियों, अभावों, आशा-निराशा और सुख-दुख की अभिव्यक्ति कर तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को वाणी देता है। वह युग की परिस्थितियों का गायक ही नहीं, वरन् उनका नियामक भी होता है। जब विविध जटिलताओं से उलझी मानव-चेतना एक दिग्भ्रांत पथिक की भाँति इतिहास के किसी मोड़ पर आकर रुक जाती है तो कवि उसे दिशा एवं गति प्रदान करता है। सामान्य से अधिक संवेदनशील एक व्यक्ति के रूप में वह भटकी हुई सामूहिक चेतना का नेतृत्व करता है, उसकी बिखरी हुई उच्छृंखल प्रवृत्तियों को विवेक की वल्गाओं से नियन्त्रित करता है। जब समाज पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों से ग्रस्त होता है और व्यक्ति की कुंठाएँ समाज को विकलांग करती हैं, तब कवि की चेतना सामाजिक यथार्थ की विकृतियों के प्रति तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए विद्रोह का स्वर फूँकती है। इस प्रकार कवि एक युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा के रूप में समाज के यथार्थ जीवन की विकृतियों और विघटनशील मूल्यों का परिहार करके, सामाजिक उन्नयन की योजना प्रस्तुत करते हुए सांस्कृतिक चेतना का द्वार उन्मुक्त करता है। वह विकृति के स्थान पर संस्कृति, ह्रास के स्थान पर विकास और जर्जर रूढियों के स्थान पर नवीन जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है।

प्रत्येक युग में जब मूल्यों का संक्रमण होता है तो जर्जर परम्परागत मूल्यों और आस्थाओं के ध्वंस से अनास्था, निराशा और असंतोष का अंधियारा समूचे परिवेश में गहराने लगता है। ऐसी स्थिति में कवि का व्यक्तित्व एक जाज्वल्यमान आलोक-पिंड की भाँति उदित होता है, जो अपनी प्रकाशवाही किरणों से चारों तरफ फैले अस्थायी अंधकार को चीरकर सही रास्तों को उजागर करता है। ऐसे समय कवि की वाणी समष्टि के कोलाहल के बीच से उभर कर सामान्यजन के आत्मविश्वास, नये मूल्यों से संपृक्ति के संकल्प और भविष्य में आस्था के स्वरों को ध्वनित करती है।

ऐसी ही युग-चेतना को वाणी देने वाले एक महान् राष्ट्रनायक, राजनीतिज्ञ, वीर

योद्धा, समाजसुधारक एवं प्रतिभा-संपन्न संत कवि के रूप में गुरु गोविन्द सिंह का अवतरण हुआ, जिन्होंने अपने कृतित्व से हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। अपने पिता के निधनोपरान्त नौ वर्ष की अल्प आयु में ही वे पंजाब प्रान्त के आनन्दपुर नामक स्थान पर गुरु-पद पर समासीन हुए और उन्होंने सिक्ख सम्प्रदाय के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पथ-प्रदर्शन का दायित्व सँभाला।

युद्ध और काव्य में उनकी रुचि एक-सी थी। वस्तुतः उन्होंने युद्ध और काव्य का प्रयोग एक ही कार्य की सिद्धि के लिए किया। उन्होंने अपना प्रथम युद्ध बीस वर्ष की आयु में लड़ा और अपनी प्रथम काव्यकृति की रचना सोलह वर्ष की आयु में की।[1] उन्होंने न केवल स्वयं काव्य-रचना की, बल्कि अनेक कवियों को अपने दरबार में आश्रय भी दिया। कई संस्कृत-ग्रन्थों[2] का भाषा-रूपान्तर उचित पारिश्रमिक देकर भी कराया। उन्होंने अपने कुछ शिष्यों को संस्कृत-ग्रन्थों के अध्ययनार्थ काशी भेजा।[3]

गुरु गोविन्द सिंह की सारी रचनाएँ 'दशम ग्रन्थ' में संकलित हैं। इसमें उनकी हिन्दी, पंजाबी और फारसी की रचनाएँ सम्मिलित हैं। उन्होंने संघर्षपूर्ण जीवन जीते हुए भी अपने द्विविध व्यक्तित्व को गम्भीर अर्थवत्ता प्रदान की। उन्होंने एक साथ ही शस्त्र और शास्त्र, भक्ति और शक्ति, अथवा तलवार की झंकार के साथ काव्य के स्वर को बनाए रखा।

उनका सम्पूर्ण साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। अनवरत युद्ध करते रहने के कारण, एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरन्तर आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार जाने के कारण, इस विशालकाय साहित्य-भण्डार को पूर्णतः सुरक्षित रख सकना सम्भव नहीं था; फिर भी दशम गुरु ने जहाँ एक ओर शस्त्र उठाकर धर्म की रक्षा का प्रयत्न किया वहाँ इस साहित्य-भण्डार को भी सुरक्षित रखने की सतत चेष्टा की।

गुरु गोविन्द सिंह के जीवन का सम्पूर्ण काल हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इनके जन्म से केवल २५-२६ वर्ष पूर्व ही रीतिकाल का आरम्भ हुआ था। साहित्यिक दृष्टि से गुरु गोविन्द सिंह के काल को रीतिकाल कहकर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। दशम गुरु की परिस्थितियाँ चाहे वे राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक हों अथवा साहित्यिक—रीतिकाल और शृंगार काल के नाम से पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं पा सकतीं। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने जिस साहित्य का विवेचन रीतिकाल में किया है उसका अधिकांश भाग उन क्षेत्रों में निर्मित हुआ था, जहाँ मुस्लिम सत्ता पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी और हिन्दू तथा राजपूत राजा भी सांस्कृतिक दृष्टि से शासकों के अनुकरण में संलग्न थे। पंजाब का गुरुमुखी लिपि का साहित्य बहुत बाद में प्रकाश में आया है और इस सम्पूर्ण साहित्य का अभी तक सम्यक् अनुशीलन नहीं हो सका है। जितना अध्ययन किया जा चुका है उससे

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपी में हिन्दी-काव्य पृ० ५६
२. महाभारत—सभापर्व, कर्णपर्व, द्रोणपर्व, शल्यपर्व, चाणक्यनीतिभाषा तथा हितोपदेश भाषा आदि।
३. बेनी प्रसाद, गुरु गोविन्द सिंह, पृ० ४२

स्पष्ट है कि रीतिकालीन साहित्य से इसकी बहुत कम समानता है।

पंजाब का हिन्दी-साहित्य अत्यधिक प्राचीन नहीं है। डॉ० रामकुमार वर्मा फरीद से इस साहित्य का आरम्भ मानते है, और उनका समय १५ वीं शताब्दी निश्चित् करते हैं। कुछ विद्वान् फरीद का समय १३ वीं शताब्दी भी मानते हैं। डॉ० हरिभजन सिंह गुरु नानक से ही पंजाब में साहित्यिक-परम्परा का सुनिश्चित् आरम्भ मानते हैं।[1] इनके मतानुसार नानक से लेकर ही गुरुओं की वाणी में हिन्दी रचना की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती गई और पाँचवें गुरु तक पहुँचते-पहुँचते संतुलन हिन्दी के पक्ष में हो गया। फारसी और पंजाबी की परम्परा पृथक हो गई। इनके कथनानुसार—"पंजाब में हिन्दी-काव्य को प्रचारित एवं हिन्दी कवियों को प्रोत्साहित करने का श्रेय, मुख्यत: सिक्ख गुरुओं को ही है। उन्होंने स्वयं ब्रजभाषा को अपनी वाणी का माध्यम बनाया, पंजाब-बाह्य पूर्वकालीन भक्त कवियों की हिन्दी-रचनाओं का प्रचार पंजाब में किया, पंजाब-बाह्य तत्कालीन हिन्दी कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया तथा अपने प्रतिभा-सम्पन्न पंजाबी शिष्य भाई गुरुदास को हिन्दी में काव्य-रचना के लिए प्रोत्साहित किया।[2]

गुरु अर्जुन देव ने 'आदि ग्रन्थ' का संकलन किया। परवर्ती गुरु-परम्परा से सम्बद्ध साहित्य के लिए यह ग्रन्थ प्रेरणा का स्रोत रहा। इसमें गेयपद भी हैं और कवित्त तथा सवैये भी। कही-कहीं चौपाई और दोहों का भी प्रयोग मिलता है। इससे यह समझना भ्रमोत्पादक होगा कि सत्रहवीं-अठारहवी शताब्दी के लेखक आदि ग्रन्थीय काव्य-परम्पराओं का अनुकरण करने से ही सन्तुष्ट हैं। वस्तुत. 'आदि ग्रन्थ' ने उनके सामने एक विकासोन्मुख धर्म एवं विकासोन्मुख काव्य का स्वरूप उपस्थित किया। इस विकास-यात्रा में त्याग, ग्रहण और समन्वय, सबके लिए स्थान है। सत्रहवीं-अठारहवीं शती 'आदि-ग्रन्थ' से प्रेरणा पाकर आगे बढ़ती है। इस युग ने अपना नया ग्रन्थ—'दशम ग्रन्थ' प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ आदि ग्रन्थीय धर्म-भावना एवं काव्यशैली को आधार के रूप में स्वीकार करता हुआ उसमें नव-विस्तृति भी करता है। न अठारहवीं शताब्दी, सोलहवीं शताब्दी की केवल प्रतिलिपि है और न अठारहवीं शताब्दी का साहित्य सोलहवीं शताब्दी के साहित्य का अनुकरण मात्र।[3]

युग-परिवेश अथवा युग की परिस्थितियाँ साहित्य के सृजन और उसकी प्रवृत्तियों को प्रभावित करती हैं। पंजाब की परिस्थितियाँ राजस्थान, उत्तरप्रदेश या बिहार की परिस्थितियाँ सरीखी न थी। वस्तुत: पठानों के शासन-काल में भी पंजाब, दिल्ली और काबुल की दो चक्कियों के पाट में पिसता रहा और मुगलों के शासन-काल में भी इस संघर्ष का अन्त नही हुआ। अत: इस क्षेत्र की परिस्थिति ने जिस संघर्षशील जन-जीवन का निर्माण किया वह सर्वथा भिन्न प्रकार का था। यही कारण है कि इसके साहित्य का स्वर भी कुछ भिन्न ही सुनाई पडता है। दशम गुरु गोविन्द सिंह के साहित्य का स्वर एक ओर

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० २
२. वही, पृ० ४
३. वही, पृ० ५

अतीत से सम्बद्ध है तो दूसरी ओर सामयिक यथार्थ से उद्‌बुद्ध। प्रस्तुत सन्दर्भ में गुरु-परम्परा के समानान्तरित चलने वाली शासकों की परम्परा के साथ भी उनके सम्बन्ध पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

गुरु-परम्परा और समसामयिक शासक तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध

सिक्ख-इतिहास को सामान्य रूप से तीन युगों में विभाजित किया जाता है— संघटन काल, जागृति काल और नवीन काल। आरम्भ में सिक्खमत को हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही नानकमत या नानकपंथ कहा जाता था। इस मत के विकास में गुरु-परम्परा का विशेष स्थान है। आरम्भ में यह गुरु-परम्परा गुरु-शिष्य के रूप में चली, किन्तु चतुर्थ नानक गुरु रामदास से गद्दी परिवार में ही बनी रही। यह गुरु-परम्परा निम्नलिखित रूप में है—

पदवी	नाम	जन्म	गुरुआई	गुरुलोक
प्रथम नानक	नानकदेव	सं० १५२६	...	सं० १५९५
द्वितीय नानक	अंगददेव	,, १५६१	१५९५	,, १६०९
तृतीय नानक	अमरदास	,, १५३६	१६०९	,, १६३१
चतुर्थ नानक	रामदास	,, १५९१	१६३१	,, १६३८
पंचम नानक	अर्जुन देव	,, १६२०	१६३८	,, १६६३
षष्ठ नानक	हरिगोविन्द	,, १६५२	१६६३	,, १७०१
सप्तम नानक	हरराय	,, १६८७	१७०१	,, १७१८
अष्टम नानक	हरकृष्ण	,, १७१३	१७१८	,, १७२१
नवम नानक	तेगबहादुर	,, १६७९	१७२१	,, १७३२
दशम नानक	गोविन्दसिंह	,, १७२३	१७३२	,, १७६५[1]

गुरु नानक का अधिकांश समय इब्राहीम लोधी के शासनकाल के अन्तर्गत आता है और उनके अन्तिम दस वर्ष बाबर के समय के अन्तर्गत। बाबर से लेकर औरंगजेब तक का सारा काल इन गुरुओं की परम्परा का काल है। इस समय तक दिल्ली-शासन अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था और सिक्ख गुरु अपना शांत और तपोमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। शासकों के साथ मित्रता अथवा शत्रुता का भाव इन गुरुओं के कारण उत्पन्न नहीं हुआ था। वे शान्ति के साथ अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहते थे, किन्तु छेड़छाड़ या उत्पीडन का कार्य शासकों की ओर से ही आरम्भ हुआ था। सिक्ख गुरु आत्मरक्षा और धर्म-रक्षा की भावना से ही संघर्षशील होते रहे। इन गुरुओं और तत्कालीन शासकों के सम्बन्धों की एक संक्षिप्त झाँकी निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की जा सकती है—

१. गुरु नानक-बाबर—गुरु नानक देव भ्रमण करते हुए जब सैयदपुर पहुँचे तो बाबर ने उन्हें बन्दी बना लिया। यह गुरु-मुगल संघर्ष का प्रथम चरण था। बाद में

1. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० १६४-६५

गुरुजी के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बाबर ने उन्हें छोड़ दिया।

२. **गुरु अंगद-हुमायूँ**—शेरशाह द्वारा विस्थापित बाबर-पुत्र हुमायूँ ने अंगद देव जी से सम्बन्ध बनाए रखे। गुरुजी की सेवा में पहुँचकर हुमायूँ ने राज्य-प्राप्ति का वर माँगा था।

३. **गुरु अमरदास-अकबर**—धार्मिक दृष्टि से उदार सम्राट् अकबर अपने पिता की तरह गुरु-गृह से सम्पर्क बनाए रहा। अकबर अमरदास जी की सेवा में आशीर्वाद लेने गया था। गुरु अमरदास के कहने पर सम्राट् ने हरिद्वार के यात्रियों पर से कर हटा लिया था। उसने गोइन्दवाल में कुछ भूमि भी गुरु-गृह के लिए भेंट की थी।

४. **गुरु रामदास-अकबर**—गुरु रामदास की प्रेरणा से अकबर ने अमृतसर के लिए ५००बीघे भूमि दी थी तथा किसानों और जमीदारो को एक वर्ष के लिए कर मुक्ति की सुविधा प्रदान की थी।

५. **गुरु अर्जुनदेव-जहाँगीर**—गुरु अर्जुनदेव के बारे में सम्राट् के विचार अच्छे नहीं थे।[1] विद्रोही खुसरो अर्जुनदेव से सहायता लेने उनके पास गया था। मुहसन फानी के अनुसार गुरुजी ने उनके लिए अरदास पढ़ी थी। भाई काह्न सिंह के अनुसार गुरुजी ने उसे काबुल जाने का खर्च दिया था। जो भी हो, उसी आरोप में गुरु जी को दो लाख रुपये का दण्ड दिया गया। दण्ड न देने पर गुरु जी को रावी के किनारे वैशाख, विक्रमी सं० १६६३ में बलिदान के लिए विवश किया गया था।[2]

६. **गुरु हरिगोविन्द-जहाँगीर**—पिता के बलिदान के अनन्तर गुरु हरिगोबिन्द ने सिक्खों के लिए सैनिक जीवन की आज्ञा दी। उन्होंने स्वयं दो तलवारें धारण कीं—एक मीरी के लिए, दूसरी पीरी के लिए। सं० १६८५ में जहाँगीर गुरु-परिवार से तटस्थ रहा, परन्तु बाद के छः वर्षों में जब सिक्खो तथा मुगलों में तीन साधारण प्रतीकात्मक युद्ध हुए तो गुरु-परिवार के प्रति उसके मन में पुनः कटुता आ गई।

७. **गुरु हरराय-औरंगज़ेब**—गुरु हरराय ने भी राज्य-प्राप्ति के हेतु युवराज दाराशिकोह की सहायता की थी। परिणामतः औरंगजेब ने गुरुजी को दिल्ली बुला भेजा, परन्तु गुरुजी ने स्वयं न जाकर अपने पुत्र रामराय को भेजा।

८. **गुरु तेग बहादुर-औरंगज़ेब**—हिन्दुओं को सुरक्षा प्रदान करने के कारण औरंगज़ेब ने गुरुजी का शीश कटवा लिया था, जिसका स्मारक 'शीशगंज', चाँदनी चौक,

---

१. गोइन्दवाल मे जो ब्यास नदी के किनारे पर हैं, पीरो और फकीरों के वेष में अर्जुन नामक हिन्दू रहता था। उसने बहुत भोले-भाले हिन्दुओं एव कुछ मूर्ख तथा बेसमझ मुसलमानो को अपना अनुयायी बनाकर अपने पीर और औलिया होने का ढोल बहुत ऊंचा बजाया हुआ था। लोग उसे गुरु कहते थे। कपटी तथा कपट के उपासक सब ओर से आ-आकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते थे। तीन-चार आत्मिक पीढ़ियों से उसकी ये दुकान गर्म थी। बहुत देर से मेरे मन में यह विचार आता था कि उस झूठ की दुकान को बन्द करना चाहिए अथवा उसे मुसलमान धर्म में लाना चाहिए।

—भारत का मुगल इतिहास में उद्धृत, पृ० ४५६

२. चन्द्रकांत बाली, पंजाब-प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५१

दिल्ली में विद्यमान है। इससे पूर्व गुरु तेगबहादुर ने औरंगज़ेब के किसी सहायक के आग्रह से किसी समर में उसे सहायता भी दी थी।

९. गुरु गोविन्द सिंह-औरंगज़ेब—गुरु गोविन्द सिंह के विरुद्ध मुगल सम्राट् को समर में उतरना पड़ा। चमकोर का समर मुगल सत्ता एवं गुरु-परिवार के संघर्ष की अंतिम घटना है।[1]

शासकों के साथ सिक्ख गुरुओं के सम्बन्धों के इस संक्षिप्त ब्यौरे से स्पष्ट है कि सम्राट अकबर की मृत्यु तक इन दोनों में किसी प्रकार की कटुता नहीं थी, अपितु ये सम्बन्ध किसी सीमा तक एक दूसरे का सम्मान करने से प्रेरित थे। पंचम गुरु अर्जुनदेव का बलिदान जहाँगीर के शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही हो गया था। शासकों के साथ संघर्ष का यह आरम्भ था। धर्मान्धप्रेरित उत्पीडन ने पंचम गुरु के बलिदान के बाद ही सिक्खों को सुरक्षार्थ गढ़-रचना, सैन्य-संगठन और सैन्य-प्रशिक्षण की ओर उन्मुख कर दिया। यद्यपि जहाँगीर के शासनकाल में मुगलों के साथ इनका कोई युद्ध तो नही हुआ, परन्तु दोनों पक्ष एक-दूसरे से आशंकित अवश्य रहने लगे। नवम गुरु के बलिदान के बाद औरंगज़ेब और उसके उत्तराधिकारियों के साथ यह संघर्ष उतरोत्तर तीव्र होता गया और इसकी चरम परिणति सिक्ख राज्य की स्थापना में हुई।

मुगल शासकों के कठोर और निर्मम अत्याचारों ने ही इन आध्यात्मिक नेताओं को प्रत्यक्ष लौकिक जीवन का भी नेतृत्व करने के लिए प्रेरित किया। फलत: वे राजनीति में अधिकाधिक उलझते गये। दशम गुरु गोविन्दसिंह को गुरु-परम्परा से जो दायित्व उपलब्ध हुआ था वह एक ओर आध्यात्मिक नेतृत्व करना था और दूसरी ओर राजनीतिक उत्पीड़नों से हिन्दू धर्म की रक्षा करना। पंचम गुरु ने 'आदि ग्रंथ' के संकलन द्वारा जिस आध्यात्मिक वाणी को अपने परवर्तियों को उत्तराधिकार रूप में सौंपा था, वह साहित्यिक निधियों को सुरक्षित रखने का भी संकेत था। अत: राजनीतिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों के उस परिवेश पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेना उचित होगा जो उत्तराधिकार रूप में दशम गुरु को प्राप्त हुआ था।

राजनीतिक परिवेश

दशम गुरु गोविन्दसिंह का सम्पूर्ण कार्य-काल औरंगज़ेब के शासन-काल के अन्तर्गत पड़ता है। औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसका प्रत्येक कार्य इस्लाम की शरीयतों के अनुसार सम्पन्न होता था।[2] उसकी दृष्टि में इस्लाम सर्वोपरि धर्म था। उसकी धार्मिक नीति अत्यन्त कठोर थी। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक की भाँति ही उसने भी इस्लाम या मृत्यु का विकल्प जनता के सामने रखा। धर्म-प्रचार के लिए उसने

१. चन्द्रकांत बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५०-५१

२. डब्ल्यू० एच० मोरलैंड, ए० सी० चटर्जी, ए शार्ट हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० २४९

निर्मम होकर कठोर तथा अमानुषिक अत्याचार किए। उसने हिन्दू-देवालयों तथा देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, उच्च पदों पर आसीन हिन्दुओं को अपदस्थ किया, उनके धार्मिक त्यौहार तथा मेले वैधानिक रूप से बन्द कर दिये तथा 'जज़िया' पुनः लागू कर दिया।[1] संक्षेप मे, हिन्दू जनता को उसके समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इसके विपरीत, इस्लाम धर्म स्वीकार करने वालों को आत्म-सुरक्षा, सम्मान तथा ऊँचे-ऊँचे पद उपहार रूप में प्राप्त हुए।[2]

हिन्दुओं पर अत्याचार का यह क्रम वैसे तो तुर्क-शासन की स्थापना के साथ ही आरम्भ हो चुका था। बाबर एक उदार शासक कहा जाता था, परन्तु 'तुज़क-ए-बाबरी' के अनुसार उसने स्वयं हिन्दू कैदियों को अपने सामने ही कत्ल करवाया था।[3] प्रथम गुरु नानक ने तत्कालीन मार्मिक स्थिति का स्वयं संकेत किया है—तत्कालीन राजा सिंह के समान और उनके कर्मचारी श्वानवत असहाय प्रजा का रक्त शोषण कर रहे थे। कलियुग 'क्षुर' वत् और राजा कसाई सदृश घातक और निर्मम हो गया था। वास्तविक धर्म ऐसा विलुप्त हो गया था मानो पंख लगाकर उड़ गया हो। असत्यरूपी गहन अमा का गहन तिमिर आच्छादित था और सत्यरूपी चन्द्र अदृश्य था अर्थात् सत्याचरण प्रायः समाप्त हो गया।[4]

हुमायूँ का शासन-काल पठानों और मुगलों के संघर्ष के कारण अस्त-व्यस्तता का रहा, किन्तु अकबर के शासन-काल में हिन्दुओं के प्रति उदारता का व्यवहार प्रारम्भ हुआ। अकबर की उदारता ने जज़िया बन्द करवा दिया और हिन्दुओं को ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। टोडरमल, बीरबल, भगवानदास और मानसिंह जैसे हिन्दू शासकों को उसने उच्च पद प्रदान किये। मानसिंह को तो उसने अफगानिस्तान का शासक भी नियुक्त किया था।[5] अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता की भावना से प्रेरित होकर ही दीन-ए-इलाही चलाया, तथा स्वयं राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये।[6]

अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर के समय से मुगल-नीति मे सीमित परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। गुरु अर्जुनदेव का बलिदान जहाँगीरी पंजाब की प्रसिद्ध घटना है। शाहज़हाँ के शासनकाल में अकबर की उदार नीति में उत्तरोत्तर परिवर्तन होता गया और परिणाम स्वरूप हिन्दुओं को अपने त्यौहारों को मनाने तथा नये मन्दिरों के निर्माण का अधिकार समाप्त प्रायः हो गया।[7]

औरंगज़ेब की कट्टरता के पीछे एक ओर तो धर्मान्धता थी और दूसरी ओर वह प्रतिक्रिया थी जो उसमें दारा के साथ युद्ध के कारण निजी अनुभवों से उत्पन्न हुई थी।

---

१. लतीफ, पंजाब का इतिहास (गुरुमुखी) अनुवादक : गुरुमुख सिंह, पृ० २०३
२. डब्ल्यू० एच० मोरलैंड, एण्ड ए० सी० चैटर जी, ए शार्ट हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० २५०
३. ठाकुर देसराज, सिक्ख इतिहास, पृ० १६
४. आदिग्रन्थ, वार माँझ की, महल्ला १, पृ० १४५
५. स० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी-साहित्य : द्वितीय खण्ड, पृ० १४
६. वही, पृ० १३
७. डब्ल्यू० एच० मोरलैंड एण्ड ए० सी० चैटर जी, ए शार्ट हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० २४०

प्राय: अधिकतर हिन्दुओं ने दारा का साथ दिया था। अत: औरंगज़ेब की नीति हिन्दुओं के प्रति अधिकाधिक कठोर बनती चली गई। वह हिन्दुओं पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं करता था और यही कारण था कि जयसिंह के माध्यम से गुरु तेगबहादुर से सहायता प्राप्त करके भी उसने उन्हें (तेगबहादुर को) मरवा डाला।

अत्याचार जब सीमा से अधिक बढ़ जाता है तो उसका सम्भाव्य परिणाम विद्रोह होता है। लगभग सम्पूर्ण भारत में औरंगज़ेब के विरुद्ध विद्रोह-ज्वाला भड़क उठी थी। मथुरा के समीप जाटों ने, नारनौल के समीप सतनामी सम्प्रदाय के अनुयायियों ने, राजस्थान में दुर्गादास राठौर ने, दक्षिण भारत में शिवाजी ने, बुंदेलखण्ड में छत्रसाल ने और पंजाब में सिक्खों ने विद्रोह का झण्डा उठाया।[1]

स्थान-स्थान पर हुए इन विद्रोहों को दबाने में औरंगज़ेब का सम्पूर्ण जीवन ही व्यतीत हो गया। गुरु तेगबहादुर के बलिदान ने औरंगजेब की कूटनीति को अनावरित कर दिया। एक ओर इस बलिदान के परिणाम स्वरूप जहाँ विशेष रूप से पंजाब के सिक्खों और हिन्दुओं मे भय, आतंक तथा आक्रोश का वातावरण छा गया, वहाँ दूसरी ओर उसने आत्म-रक्षा एवं आत्म-सम्मान के लिए एक नूतन उत्साह को भी जन्म दिया।[2]

इन्ही विषम राजनैतिक परिस्थितियों मे दशम गुरु ने गुरुगद्दी सम्भाली। इस प्रकार अल्पायु में ही मुगलों के साथ सघर्ष और गुरुओं की बलिदान-परम्परा का उत्तराधिकार उन्हे प्राप्त हुआ। गुरु तेगबहादुर के बलिदान की घटना ने तो उनके जीवन की एक निश्चित् दिशा निर्धारित करने में प्रचुर सहायता दी।

आध्यात्मिक परिवेश

धार्मिक दृष्टि से औरंगजेब का शासन-काल ह्रास का युग कहा जा सकता है। संस्कृति और सभ्यता का स्वरूप इस्लाम और हिन्दू जाति की टक्कर में अस्त-व्यस्त हो गया था। पण्डित और मुल्ला लोग इस क्षेत्र मे सर्वे-सर्वा माने जाने लगे थे और उस समय की जनता के लिए उनके कथन तथा फरमान ही वेद और शरीयत-वाक्य थे।

वल्लभाचार्य और सूरदास द्वारा प्रतिपादित परब्रह्म श्रीकृष्ण और आदि शक्ति राधिका की प्रतिमायें मलिन होकर सामान्य नायक-नायिका का आकार ग्रहण कर चुकी थी। इसकी देखा-देखी राम-भक्ति में हरि-रसिक सम्प्रदाय का उद्भव हो चुका था। निर्गुण भक्ति में उस समय तक अनेक सम्प्रदाय अस्तित्व में आ चुके थे और यद्यपि इनका आचार-व्यवहार भक्ति के सगुण सम्प्रदायों की अपेक्षा उन्नत था, किन्तु इन पर भी युग की विलासितापरक दृष्टि का प्रभाव अवश्य पड़ा। तत्कालीन सूफियों के अनेक सम्प्रदायों में भी ह्रास की प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ती है। उनकी कृतियों में भी स्थूल शृंगार, नख-शिख-वर्णन एव नायिका-भेद का समावेश होने लगा था।

औरंगज़ेब के समय तक उत्तरी भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या इस्लाम धर्म

---

१. स० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी-साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० १६
२. जी० एस० छाबड़ा, एडवांस्ड हिस्ट्री आफ दि पंजाब, पृ० २५४

स्वीकार कर चुकी थी। हिन्दू और इस्लाम धर्म के अनवरत संघर्ष के कारण इस्लामेतर भारतीयों में नवजागरण की प्रेरणा अवश्य कार्य कर रही थी। विलासिता के इस युग में कुछ कवियों का ध्यान पौराणिक धर्म-रक्षकों की ओर गया और वे अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाले अवतारी पुरुष समझे जाने लगे। शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह को धर्म-रक्षक होने के कारण ही अवतारी पुरुषों सरीखा महत्त्व प्राप्त हुआ।

पंजाब की धार्मिक परिस्थिति देश के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक संकट-ग्रस्त और संघर्षपूर्ण थी। नाथ विचारधारा के जन्म से पूर्व पंजाब में बौद्धमत, शैवमत, शाक्तमत तथा वाम मार्ग प्रभृति छोटे-मोटे अनेक मत-मतान्तर विद्यमान थे। वे समय-असमय ब्राह्मणवाद को चुनौती भी दिया करते थे। नाथमत ने इन विविध मतों के एकीकरण का प्रयास किया और इसी नींव पर स्वयं नया रूप ग्रहण किया। जालन्धर पीठ पहले बौद्धमत की वज्रयानी शाखा का बहुत बड़ा प्रचार केन्द्र था।[1] बौद्धमत (विशेषतया महायान शाखा) की अनेक तांत्रिक विशेषताओं को आत्मसात करके सिद्धमत भी प्रकट हो चुका था।[2]

नाथों और सिद्धों के कितने ही आचार्यों को एक साथ गिन लिया गया है। शैवमत तो नाथ सम्प्रदाय में ही विलीन हो गया। एक समय लगभग सारा पंजाब नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव के अन्तर्गत था। पंजाब में विक्रम की १० वीं से १२ वी शताब्दी तक नाथ सम्प्रदाय ने ब्राह्मण धर्म की समकक्षता प्राप्त कर ली थी। ठाकुर देशराज के मतानुसार मुसलमानों के आक्रमणों के प्रारम्भ होने पर और इस्लाम धर्म के प्रवेश के समय जिन लोगों ने इस्लाम धर्म को सर्व प्रथम अपनाया उनमें बुद्धमतानुयायी क्षत्रियों की संख्या सर्वाधिक थी। काश्मीर, पंजाब, सिन्ध, बिहार तथा बंगाल मे बौद्ध मतानुयायी अधिक संख्या में थे। विशेष रूप से इन्हीं भू-भागों में मुस्लिम आक्रमणों से संत्रस्त बौद्धों ने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया। शक, खोखर, खान जो कल तक आर्य थे, आर्य से बौद्ध बने और बौद्ध धर्म से गिरकर शेख, खोजा और खाँ बन गये। सियाल, टिवाना, हरियायी, मग्गु, उप्पल, सहगल आदि क्षत्रिय थे, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार किया। भट्टी क्षत्रिय भी मुसलमान बने, जो बच रहे वे जैसलमेर जा बसे। इनमें से जो पंजाब मे रह गए वे सिक्ख बन गए।[3]

मुगलकाल में इस्लाम ने विशेषरूप से आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। मुगल-आक्रमण से पूर्व पंजाब में यत्र-तत्र सूफियों की खानकाहें स्थापित हो चुकी थीं। सूफी लोग घूम-गाकर इस्लाम का प्रभाव जमा रहे थे। औरंगज़ेब के समय तक सूफियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों पर जो समान प्रभाव डाला था वह समाप्त प्रायः हो चला था। हिन्दुओं और सिक्खों के पुनर्जागरण से उनका प्रभाव घटने लगा था। सूफी संतों का प्रभाव केवल उच्च वर्ग तथा अधिकारी लोगों पर ही सीमित रह गया था। अन्य अनेक सम्प्रदायों की

१. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ-सम्प्रदाय, पृ० ७६

२. डॉ० धर्मवीर भारती, सिद्ध-साहित्य, पृ० १६

३. ठाकुर देसराज, सिक्ख-इतिहास, पृ० २८६
—चन्द्रकात बाली, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६६

भाँति वह भी चिस्ती, सुहरावर्दी, कादरिया और नक्शबन्दी सम्प्रदायों में विभाजित होकर साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर चुका था। इस प्रकार उसकी व्यापक मानवतावाद की भावना क्षीण हो गयी थी।

उपर्युक्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास के मध्यकाल में धार्मिक क्षेत्र में अनेक धार्मिक साधनाएँ, सम्प्रदाय एवं मत-मतान्तर अस्तित्व में आ चुके थे। ये सम्प्रदाय अथवा मत अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार ईश्वर और धर्म की नवीन व्याख्या प्रस्तुत कर उसके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने की बजाय और अधिक गुह्य बनाते जा रहे थे। धर्म की इन नित्य नवीन व्याख्याओं से उसका स्वरूप विकृत हो चला था। परिणामतः भारतीय जनता पुरातन रूढ़ियों एव अन्धविश्वासों की ज़ंजीरों में आबद्ध एवं अपने धर्म की सार्वभौमिक मान्यताओं से पृथक् होकर साम्प्रदायिकता की ओर अग्रसर हो चली थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में गुरुनानक का आगमन हुआ।

गुरु नानक सिक्खो के प्रथम गुरु, महान् देश-भक्त, रूढ़ि-विरोधी, अपूर्व दूरदर्शी और अद्भुत युग-पुरुष थे। अपने समय की धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए उन्होने लिखा है—लज्जा और धर्म संसार से विदा हो चुके थे, चारों ओर झूठ और दम्भ फैला हुआ था, काजियों और ब्राह्मणों ने अपने कर्त्तव्य त्याग दिये थे, स्त्रियाँ अत्याचारों से पीड़ित होकर अनेकों कष्ट सहन कर रही थी, केशर के स्थान पर रक्त पड़ रहा था, बाह्य-आडम्बरों का बोलबाला था, लोग मुसलमानों के आतंक से भयभीत होकर अपना धर्म छोड़ रहे थे। सारी धार्मिक क्रियायें दिखावामात्र थीं।[१] पाषाणों की पूजा होती थी, पाखण्ड का पूर्ण राज्य था।[२] कनिंघम के मतानुसार इस दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए ही नानक ने प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि में सभी छोटी और बड़ी जातियाँ समान धार्मिक अधिकार रखती हैं।[३] नानक का मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं के सामाजिक और धार्मिक ऊपरी विचारों का परित्याग कर समान रूप से उनके नैतिक और आध्यात्मिक जीवन को स्वस्थता प्रदान करना था।[४]

आदि नानक निर्गुण विचारधारा के उन्नायक थे। उनकी वाणी में वही लचक और वही तेज है। परन्तु बाद में आनेवाले दो गुरु स्वभावतः निर्गुणवादी न थे। अंगद देव शक्ति के उपासक थे और गुरु अमरदास वैष्णव थे जो बाद में निर्गुणवाद में दीक्षित हुए।[५] आदि नानक के समय में ही उनके पुत्र श्रीचन्द ने उदासी सम्प्रदाय की नींव डाली और यह सम्प्रदाय गुरु-परम्परा से पृथक् हो गया। गुरु-परम्परा में यद्यपि निर्गुण-उपासना प्रमुख रही; परन्तु गुरुओं के श्वसुर-परिवार में सगुण भक्ति की गंगा निरन्तर प्रवाह-मान थी। शक्ति की उपासना ने एक ओर गुरुओं को पौराणिक धर्म की ओर उन्मुख किया और दूसरी ओर निर्गुणोपासना के साथ-साथ सगुण भक्ति का प्रभाव भी स्पष्ट

---

१. आदिग्रन्थ, महला १, तिलंग, पृ० ७२२-२३
२. वही, आसा दी वार, महला १, पृ० ४७०
३. कनिंघम, हिस्ट्री आफ दि सिक्ख्स, पृ० ३४
४. गोकुलचन्द नारंग, ट्रांसफारमेशन ऑफ सिखिज्म, पृ० ४३-४४
५. चन्द्रकांत बाली, पंजाब-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० १६५

झलकने लगा। दशम गुरु के सगुण लीलापरक पद आदि ग्रन्थ में नहीं हैं। उन्हें अलग 'दशम ग्रन्थ' में समाविष्ट किया गया है। 'आदि ग्रन्थ' में सन्तों की वाणी के संग्रहीत होने पर भी सिक्ख धर्म का स्वरूप उत्तरोत्तर विशिष्ट रूप में परिवर्तित होता गया और ऐसी परम्परायें बनती गयीं जिनसे प्रभावित सिक्ख जनता सनातन धर्म से पृथक् एक जाति के रूप में सगठित होती गयी।

आदि नानक ने जिस कार्य का सूत्रपात किया था, परवर्ती गुरुओं द्वारा वह क्रम आगे बढ़ा। द्वितीय गुरु अंगद देव ने गुरु-गद्दी के प्रभाव का विस्तार किया और उस प्रदेश की एक प्राचीन भारतीय लिपि का पुनरुद्धार किया जो आगे चलकर 'गुरुमुखी' नाम से अभिहित हुई। ब्राह्मणेतर हिन्दुओं ने लण्डे और सिक्खो ने गुरुमुखी को अपनाया। गुरु अगद ने ही गुरु नानक देव जी का जीवनवृत्त और वाणी-सग्रह तैयार कराए जो सिक्ख-मत के प्रथम साहित्य के रूप में मान्य हुए। सिक्खों की सर्वाधिक लोकप्रिय संस्था 'लंगर' के जन्मदाता भी गुरु अंगद थे। तृतीय गुरु अमरदास ने सिक्ख-तीर्थों की नीव डाली, जिससे सिक्खों की संघ वृत्ति को बल मिला। इन्होंने ही विवाह की नयी रीति (आनन्द-कारज) चलाई। चतुर्थ गुरु रामदास ने मसद प्रथा डाली। पंचम गुरु अर्जुन देव ने गुरु-वाणियों का विशाल संग्रह करके 'आदि ग्रन्थ' का निर्माण किया, जिसे अन्त में गुरु-पद प्राप्त हुआ। छठे गुरु हरिगोविन्द ने सशस्त्र प्रतिरोध को जन्म दिया। उन्होंने दो तलवारें धारण कीं जो 'मीरी' (राजनैतिक शक्ति) और 'पीरी' (आध्यात्मिक शक्ति) की प्रतीक थीं। वस्तुतः सिक्ख-संघर्ष को राजनैतिक और सैनिक स्वरूप प्रदान करने वाले गुरु हरिगोविन्द ही थे। वे पहले गुरु थे, जिन्होंने यह उपदेश दिया कि धर्म की रक्षा-हेतु लड़ना और प्राण देना——भजन, पाठ और जाप की अपेक्षा कहीं उत्तम है। सबसे बड़ा धर्म यह है कि सिक्ख अपने परिवार और घरों की रक्षा के लिए शस्त्र संभाल लें।[१]

गुरु गोविन्द सिह ने सं० १७५६ में 'खालसा पंथ' की नींव रखी। उन्होंने अपने अनुयायों में सैनिक तथा भक्त के गुणों का समावेश समन्वित रूप में किया, अमृत-पान का नया संस्कार चलाया और कड़ा, कच्छा, कंघा, केश तथा कृपाण धारण करने की आज्ञा दी। गुरु गोविन्दसिंह के एक प्रमुख शिष्य वीरसिंह ने अपने सहपाठियों के साथ मिलकर निर्मल सम्प्रदाय चलाया। ऐसा कहा जाता है कि स्वयं दशम गुरु ने उन्हें गैरिक वस्त्र दिये थे।[२]

इस प्रकार सिक्ख धर्म के स्वतन्त्र रूप से अलग संगठित हो जाने पर भी जब शासकों के अत्याचारों से सिक्खों के लिए बस्तियों मे रहना असम्भव हो गया तो हिन्दुओं की सहायता और सद्भावना उनके अस्तित्व की अनिवार्य शर्त बन गई। ये हिन्दू आव-श्यकता पड़ने पर उन्हें अपने घरों में छिपा लेते थे, उनके भोजनादि का प्रबन्ध करते थे और मुसलमानों से उनकी रक्षा करते थे।[३]

---

१. धर्मवीर, पंजाब का इतिहास, पृ० ११८

२. चन्द्रकात बाली, पंजाब-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० १६५-६७

३. तेजा सिह—गडा सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री आफ दि सिक्ख्स, पृ० ११०

सिक्खों के धर्म-स्थानों की रक्षा भी अखालसा उदासी संतों एवं सहजधारी सिक्खों द्वारा हुई। सिक्खों के लिए संकट का यह समय न तो तर्क-वितर्क का था और न खालसा धर्म, हिंदू धर्म से बहुत भिन्न था। सहजधारी सिक्ख हिन्दुओं से भिन्न प्रतीत नहीं होते थे। उदासी और निर्मल संतों मे पुराण-भावना का उदय इसी समय का ही प्रभाव प्रतीत होता है।[1]

पंजाब में संतमत का स्वरूप मुसलमान फकीरों के अतिरिक्त, मुख्यत पन्द्रहवी शती से सत्रहवी शती तक, सिक्ख-गुरु-परम्परा द्वारा निर्धारित किया गया।[2]

जाति-पांति के भेद को हटाकर नामोपासना को अतीव महत्त्व गुरु-परम्परा मे भी मिला। 'अकाल-पुरुष' के नाम-जाप से मुक्ति की कल्पना की गयी। सिक्ख गुरुओं ने गुरु को परमात्मा के रूप में ही देखा था। इन्ही प्रवृत्तियो और साधना के सहज मार्ग के कारण नाथ पन्थ, संतमत और भक्ति मार्ग की कुछ-कुछ विशेषतायें सिक्ख गुरुओं की वाणी में सम्मिलित हो गयीं। सिक्खो की प्रभाव-वृद्धि के साथ-साथ निर्गुणोपासना, प्रेम और भेद-रहित मानवतावादी प्रवृत्तियाँ अधिक उभरीं। गुरु गोविन्दसिंह के समय तक पंजाब में सिक्खों का यवन शासकों से संघर्ष, जन-संघर्ष बन चुका था और गुरुओं की समन्वित और मानवतावादी उदारवाणी सांस्कृतिक संघर्ष का प्रतीक बन गई थी। धार्मिक दृष्टि से खालसा की स्थापना से सामान्य इस्लामेतर जनता के 'धर्म-रक्षक' का पद उसे प्राप्त हो गया और दशम गुरु केवल एक पथ या महज़ब के गुरु न रहकर उस सम्पूर्ण नव धार्मिक जागरण के प्रतीक गुरु और नेता बने। धार्मिक परिस्थितियों ने दशम गुरु को जहाँ सामान्य जनता का असीम आदर दिया, वहाँ उनके कन्धों पर धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन की सुरक्षा का महान् दायित्व भी डाला।

सामाजिक परिवेश

गुरु गोविन्दसिंह के काल में पंजाब बहु-जातीय समाज से सम्पन्न था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णो के लोग विद्यमान थे। यद्यपि कतिपय क्षत्रिय जातियाँ पंजाब से निकलकर उत्तरप्रदेश में जा बसी, पर पंजाब सवर्ण हिन्दुओं से खाली नहीं था। सम्पूर्ण मुगलकाल में जातियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर यह स्थानान्तरण होता रहा। सिन्ध के अरहट्ट (अरोड़े) पंजाब में आकर बसे, काबुल तथा उधर के पार्वत्य प्रदेशों से आकर क्षत्रिय जातियाँ उत्तरी और पूर्वी पंजाब में बसी।

अकबर के शासनकाल मे ब्राह्मणों के लिए यजमानवृत्ति को कानूनी रूप दे दिया गया। हिन्दू और मुसलमानों में विलुप्त समान पूजा-भाव की भी जागृति हुई। सर्प-पूजन के रूप में गूगा-पूजन और मुल्तान के बुद्धला सन्त का पूजन हिन्दू-मुसलमान समान रूप से करते थे। सभी सूफी दरगाहों की भी यही अवस्था थी। मुगलकाल में ही हिन्दू-मुस्लिम सामाजिक सभ्याचार एक वेशभूषा के रूप में पनपा। सलवार, कमीज, तहबंद, पगड़ी अथवा टोपी या दुपट्टा, यह वेश प्राय: सभी हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित था। इस

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० १०
२. डॉ० मनमोहन सहगल, संत-काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, पृ० ३९

काल के हिन्दुओं में सावन-तीज पर झूले झूलना, रक्षा-बन्धन, दशहरा, दीवाली तथा होली आदि त्यौहार प्रचलित थे, यद्यपि शासक की रुझान इस ओर न होने के कारण उनका यह आनन्द निरापद नहीं था।

मुगल शासकों ने कुछ ऐसे शिक्षा-केन्द्र भी खोले थे जहाँ हिन्दू-मुस्लमान साथ-साथ पढ़ सकते थे। यद्यपि इन शिक्षाकेन्द्रों में कभी-कभी धार्मिक तूफान खड़े हो जाते थे। हकीकतराय काण्ड को इसके निदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

मुस्लिम आक्रमण काल से लेकर मुगल-शासन के अन्त तक सनातन हिन्दू समाज अपने स्वरूप में स्थिर रहा। वह विदेशी समाज-व्यवस्था तथा भारतीय नव-विकसित (सिक्ख) समाज-व्यवस्था से संघर्ष करते हुए भी जीवित रहा।[1]

पंजाब के भीतर वर्ग की दृष्टि से जो जातियाँ निवास करती थी, वे निम्नलिखित थीं :—

एक वर्ग उनका था जो राजा थे, शासक थे, अमले, कारिन्दे या दरबारी थे। ये मुख्यतः तुर्क थे। उनके बाद एक बड़ी संख्या मुसलमानों की थी। कुछ हिन्दू भी इस वर्ग में सम्मिलित थे।

दूसरा वर्ग सामान्य जनता का था। इसमें पंजाबी मुसलमान थे जो जाति और संस्कृति की दृष्टि से प्रायः भारतीय थे और इनमें परिवार के कुछ लोग कदाचित हिन्दू ही थे। उनके विवाहादि रीति-रिवाज उस समय तक बहुत कुछ हिन्दुओं के ही समान थे।

तीसरा वर्ग पंजाबी हिन्दुओं का था, जिसमे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी थे। चौथा वर्ग सिक्खों का था, उसमें भी केशधारी और सहजधारी सिक्ख के नाम से दो उपवर्ग थे। पाँचवा वर्ग उन साधु और सन्यासियों का था जो विविध अखाड़ों में बड़ी संख्या में निवास करते थे और आवश्यकता पड़ने पर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष भी करते थे।

औरंगजेब के शासन काल में भी तुर्क और मुसलमान उत्पीड़न से बचे हुए थे, जबकि शेष जातियाँ किसी न किसी प्रकार के उत्पीड़न का शिकार बनी हुई थी।

पश्चिमी मुसलमान देशों से व्यापार का मार्ग पंजाब ही था। अतः व्यापारी वर्ग समृद्ध और सम्पन्न था। सामान्य जनता मुख्यतः खेती पर निर्भर करती थी और जब अत्याचार एवं उत्पीड़न के कारण खेती नष्ट हो जाती थी तो छोटे-मोटे अकाल भी पड़ते रहते थे। अकबर और शाहजहाँ के समय पड़े अकाल बहुत भयानक थे।[2]

सामान्य जनता अन्धविश्वासों से परे न थी, और पीरों, सन्तों तथा गुरुओं का अत्यधिक आदर करती थी। जनसाधारण में औरंगजेब के समय तक जातीय शत्रुता में तो ढील आ गयी थी, किन्तु शासकीय अत्याचारों की मात्रा बढ़ गयी थी। गुरुगोविन्दसिंह के दो पुत्रों का बलिदान जाति-विद्वेष की अपेक्षा शासकीय और राजनैतिक विद्वेष का ही परिणाम था। हिन्दू जनता में त्याग और बलिदान के साथ ही राष्ट्रीय भावना और

१. दे०, चन्द्रकांत बाली, पंजाब-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० १७२-७३
२. कृपालसिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृ० २०३

संघर्ष-चेतना का उदय हो चुका था, जिसे सिक्खों के संघर्ष के रूप में उत्तरोत्तर बल मिलता गया। निरन्तर उथल-पुथल से जनता अत्यधिक सहिष्णु, उदार और साथ ही वीर-भावना से परिपूर्ण हो गयी थी।

पंजाब का साहित्यिक परिवेश

दशम गुरु गोविन्दसिंह के समय के पंजाब के साहित्यिक परिवेश पर विचार करते समय निम्नलिखित मुख्य प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं :–

फारसी साहित्य

(क) डॉ० हरिभजन सिंह ने पंजाब के मुस्लिम वर्ग को दो उप-शाखाओं में विभाजित किया है–तुर्क और मुसलमान। तुर्क शब्द शासक वर्ग का सूचक है। यह वर्ग धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी अभारतीय था। इस वर्ग के द्वारा समकालीन इतिहास का फारसी लिपि में लेखन-कार्य सम्पन्न हुआ।[1]

(ख) मुस्लिम जनसंख्या का दूसरा वर्ग वह था जो जाति और संस्कृति की दृष्टि से प्रायः भारतीय था। इस जनवर्ग में निश्चय ही कुछ ऐसे लोग भी रहे होंगे जो ईरानादि बाह्य देशों से आकर यहाँ बस गए और यहाँ के हो रहे। विशुद्ध पंजाबी भाषा के प्रतिनिधि कवि उत्पन्न करने का श्रेय इसी वर्ग को है। ये धर्म से मुसलमान होकर भी जाति के पंजाबी हैं। इनकी भाषा पंजाबी थी और लिपि फारसी। ये प्रेम का सन्देश देते थे। ये न तो शासक वर्ग का विरोध करते थे, न नवोदित राष्ट्रीय चेतना के प्रति सजग थे। ये सूफी कवि प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाएँ करते थे। गुरु गोविन्द सिंह के समकालिक 'पेमी'[2] श्रीनगर के निवासी थे और इसी परम्परा के बुल्लेशाह, लाहौरके।[3] शाह हुसैन तथा सुल्तानबाहु आदि की रचनाएँ भी इसी वर्ग की हैं। बुल्लेशाह की रचनाओं में 'सहर्फी अठवारा' बारामासा, काफी, दोहरे आदि विशेषरूप से प्रसिद्ध हैं।[4]

(ग) तृतीय वर्ग में पंजाबी हिन्दू आते हैं। धर्म और संस्कृति का आधार लेकर शासक वर्ग के साथ संघर्ष करने वाले इस वर्ग ने साहित्य-सृजन के लिए हिन्दी भाषा और गुरुमुखी-लिपि को अपनाया। मुसलमान कवियों की पंजाबी भाषा और फारसी लिपि से इनका अन्तर विशेष रूप से द्रष्टव्य है। भाषाओं एवं लिपियों का यह ध्रुवीकरण ही तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक ध्रुवीकरण की स्पष्ट प्रतिछाया है। पंजाब के हिन्दू कवियों द्वारा भी पंजाबी भाषा में पर्याप्त रचना हुई, किन्तु आरम्भ से ही वे तीन भाषा-शैलियों—पंजाबी, हिन्दी और मिश्रित में रचना करने की रुचि रखते रहे है। प्रथम पाँच गुरुओं द्वारा इन्हीं तीन भाषा-शैलियों का प्रयोग हुआ है। गुरु नानक के पश्चात्

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, प्राक्कथन, पृ० ११
२. परशुराम, सूफी-काव्य-संग्रह, पृ० २१५
३. वही, पृ० २१७
४. वही, पृ० २१७

उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ता जाता है, पंचम गुरु तक पहुँचकर पंजाबी और मिश्रित भाषा-शैली की अपेक्षा हिन्दी भाषा-शैली का प्रयोग स्पष्टतः अधिक हो जाता है। गुरु अपने सांस्कृतिक सम्बन्ध पंजाबेतर क्षेत्र से बनाए रखने के कितने इच्छुक हैं, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने 'आदि ग्रन्थ' का सम्पादन करते समय कितने ही पंजाब-बाह्य भक्तों की वाणी को भी स्थान दिया है।

पंचम गुरु के निधनोपरांत गुरु-दरबारी कवियों, गुरु-भक्तों और उदासियों की वाणी का माध्यम केवल हिन्दी भाषा हो गया।

पंजाब में तत्कालीन जन-जागरण का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु ये पंजाबी सन्त या गुरु थे। कृपाण और काव्य दोनों प्रकार के नैपुण्य का प्रेरणा-स्रोत यही बिन्दु था। प्रबन्ध काव्यों के नायक स्वयं गुरु बनते हैं और मुक्तक रचनाएँ गुरु-परम्परा से प्राप्त भक्ति और निर्गुणोपासना को स्वर देती हैं।

गुरु-परम्परा में जिस हिन्दी भाषा का प्रयोग हो रहा था वह मुख्यतः ब्रजभाषा है और उसमें यत्र-तत्र पंजाबी का पुट भी मिलता है। भाई गुरु दास ने स्पष्टतः दो भिन्न शैलियों में काव्य-रचना की। उनकी 'वारें' ठेठ पंजाबी और 'कवित्त-सवैये' विशुद्ध ब्रज भाषा में लिखे गए।[1]

कृपालसिंह नारंग के कथनानुसार मुल्तान-निवासी भाई नन्दलाल की फारसी विद्या में अपूर्व क्षमता देखकर औरंगजेब उस पर बड़ा मुग्ध रहता था।[2] इनकी रचना 'दीवान-ए-गोया' दशम नानक गुरु गोविन्दसिंह को अत्यन्त प्रिय थी। दशम गुरु स्वयं फारसी के अच्छे ज्ञाता और लेखक थे।[3]

उस समय पंजाब में सांस्कृतिक तौर पर दो धाराएँ बह रहीं थीं। एक धारा विशुद्ध भारतीय संस्कृति को लेकर चली थी और दूसरी मुस्लिम संस्कृति को अपनाकर। भारतीय संस्कृति का प्रतिफलन भाषा-साहित्य में हुआ तथा मुस्लिम संस्कृति का प्रकाशन पंजाबी-साहित्य में।

भाई गुरुदास को पंजाबी साहित्य का पितामह कहा जाता है। इनकी रचना का ऊर्ध्ववर्ती रूप ब्रजभाषा में है और निम्नवर्ती रूप पंजाबी में। इनके द्वारा रचित 'वारों' में गुरु-परम्परा के सिद्धान्तों का विशद प्रतिपादन किया गया है। अतः उन्हें आदि ग्रन्थ की कुंजी बताया जा रहा है। शाह हुसेनशाह, दामोदर कवि, पीलू, अब्दुल्ला, सुथरे शाह, सुल्तानबाहु, दशम गुरु के पूर्व के कवि हैं और इसी परम्परा में बुल्लेशाह भी आते हैं।

दशम गुरु गोविन्दसिंह के समय तक निश्चित् रूप से फारसी, पंजाबी और ब्रज-भाषा साहित्य की त्रिविध धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। दशम गुरु स्वयं इन तीनों भाषाओं और इनकी काव्य-शैलियों से परिचित थे, परन्तु धार्मिक या सांस्कृतिक कारणों से ही उन्होंने स्वयं भाषा-साहित्य की ओर ही अधिक ध्यान दिया। इस साहित्य की दो

१. द्रष्टव्य: डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० १४-१७
२. कृपाल सिंह नारंग, पंजाब का इतिहास, पृ० २१५
३. चन्द्रकात बाली, पंजाब-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० १७३

परम्पराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। एक परम्परा तो गुरु-वाणी और 'आदिग्रन्थ' से सम्बन्ध रखती है और दूसरी ब्रज भाषा-साहित्य की वह प्रचलित परम्परा है जो पंजाब से बाहर रीतिकालीन परिवेश मे लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत की मुख्य साहित्यिक परम्परा बन चुकी थी। यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि जब गुरु-वाणी में हिन्दी या ब्रजभाषा का उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रयोग बढ़ता गया तो हिन्दी की रीतिकालीन परम्पराओं से उसका परिचय भी अवश्य रहा होगा। यद्यपि स्वयं दशम गुरु ने किसी रीतिग्रन्थ का निर्माण नही किया, किन्तु उनके दरबारी कवि उस प्रभाव से अपने आपको मुक्त न रख सके। गुरु गोविन्दसिंह और उनके दरबारी कवियों के मुख्य काव्य-स्वर से परिचय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि यहाँ 'आदि ग्रन्थ' और उसकी परम्परा तथा ब्रजभाषा की रीति कालीन परम्पराओ पर एक विहंगम दृष्टि डाल ली जाए।

गुरुवाणी और आदि ग्रन्थ

'गुरु' शब्द भारत की प्राचीन थाती है, परन्तु सिक्ख महात्माओं ने 'गुरु' को पुरातनयुगीन शास्त्रीय अर्थों से भिन्न रूप मे अपनाया है। उनके मतानुसार 'गुरु' केवल अध्यापक या मार्ग-प्रदर्शक ही नहीं होता; वह तो 'अकाल-पुरुष' के उस अंश का निमित है, जिसकी कल्पना पौराणिक विचार-पद्धति ने 'अवतार-धारण' की परिभाषा मे की है।[१] वह देह धारी दिखता हुआ भी देह नहीं होता, शब्द होता है। स्वयं 'अकाल-पुरुष' अपने जीवों की रक्षार्थ उसमें शब्द की स्थापना करता है और उसी शब्द का रहस्योद्घाटन वह त्रस्त जनता के सम्मुख कर, उसे शांति पहुँचाता है। वही अकाल-पुरुष समूची गुरु-परम्परा में परिव्याप्त माना गया है। यही कारण है कि सभी गुरु, आदि गुरु नानक के ही रूपान्तर माने गये हैं। शब्द परम सत्य का प्रतीक है। गुरु नानक में वह स्थापित किया गया था,[२] और वही सत्य शब्द क्रमशः दसों गुरुओं की आत्मा का प्रकाश बना। इसीलिए ये सब

---

१. (क) यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। भगवद्गीता (४, ७)

(ख) जब जब होइ धरम की हानी।
बाढहि असुर अधम अभिमानी॥
... ...
तब-तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥ रामचरितमानस (१,१२० छ, ३-४)

इसी स्वरूप को भाई गुरुदास ने अपनी पहली वार में यों प्रस्तुत किया है :—
भई ग्लानि जगत् बिच, चार बरण आश्रम उपाय
चरण धोई दासनाम सन्यासियां, जोगी बारह पन्थ चलाय।
... ...
सुनी पुकार दातार प्रभु, जिस लग भवजल पार उतारा।
सतिगुर बांझ न बुझीऐ, जिच्चर धरै न गुरु अवतारा॥

२. सतिगुर विचि आपु रखिओनु, करि परगट आखि सुनाइआ।
—पद ६, वार आसा श्लोक

अपने को 'नानक' कहते हैं और एक ही शब्द का रूप लिए सत्योद्घाटन करते रहे हैं। अभिप्राय: यह है कि प्रस्तुत विचारधारा के अनुसार गुरु का वास्तविक रूप 'शब्द रूप' है और वह स्वयं 'अकाल-पुरुष' का तत्त्व है।[१]

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दीं के उत्तरार्द्ध में दो महान् ग्रन्थ लिखे गये–'रामचरितमानस' और 'आदि-ग्रन्थ'। 'आदि-ग्रंथ' का महत्त्व केवल सिक्खों के लिए ही नही है। इसमें सात सिक्ख गुरुओं के साथ १६ अन्य सन्तों की वाणियाँ भी संकलित हैं।[२] सन्तों की यह वाणी हिन्दी-साहित्य की दृष्टि से अन्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सामान्यत: 'आदिग्रन्थ' रागमय रचना है। इस का मुख्य प्रतिपाद्य विषय निर्गुण-भक्ति है। इसमें संकलित सात गुरुओं की वाणी का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'आदि नानक' से लेकर 'नवम नानक' तक की रचनाओं में मुल्तानी भाषा (पंजाबी) उत्तरोत्तर लुप्त होती गई है लौर हिन्दी भाषा उत्तरोत्तर उभरती और निखरती गई है।

सिक्ख विद्वान् केवल गुरुओं की वाणी को ही गुरु-वाणी के रूप में स्वीकार करते हैं। यद्यपि 'आदिग्रन्थ' का प्रथम संपादन गुरु अर्जुन द्वारा हुआ, तथापि उसे अन्तिम रूप देने का श्रेय गुरु गोविन्द सिंह को ही है। नवम गुरुकी वाणी उन्हीं के द्वारा आदिग्रन्थ में सम्मिलित की गई है।[३]

गुरु-वाणी में केवल आध्यात्मिक विषय ही वर्णित नहीं है, बल्कि तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया गया है। इसमें मुगल,[४] लोधी,[५] एवं बाबर[६] आदि के कार्यों की आलोचना तो है ही, अपितु सामान्य राजन्य कर्मचारी वर्ग की भी आलोचना की गई है।[७]

---

१. बाइबिल भी इस विचार से सहमत है—

The world was made of flesh and dwelt among us full of grace and Truth.

२. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८५-८६

३. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ३४

४. खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तानु डराइआ।
अपि दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ ॥१॥
—आदिग्रन्थ, आसा महला १, पृ० ३६०

५. रतन विगाड़ि बिगोए कुती मुइआ सार न काई।
—आदिग्रन्थ, आसा, महला १, रहाउ पृ० ३६०

६. पाप की जज लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो।
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ फिरे परधानु वे लालो।
काजीआ बामणा की गल थकी अगदु पड़े सैतानु वे लालो ॥१॥
—आदिग्रन्थ, तिलंग, महला १, पृ० ७२२

७. द्रष्टव्य : आदि ग्रन्थ, पृ० १४५, ५२५, १२८८ आदि।

राजाओं और भ्रष्ट राज्य-कर्मचारियों के विरुद्ध गुरु नानक देव का रोष इतना स्थायी रूप ग्रहण कर चुका था कि आध्यात्मिक क्षेत्र में लोभ, पाप, मिथ्याचार आदि की व्याख्या करने के लिए उन्होंने राजा, राज-मन्त्री, एवं राज्य-कर्मचारियों को उपमान रूप में ग्रहण किया है[1]। गुरु-वाणी आध्यात्मिक और भौतिक सत्य का समन्वय प्रस्तुत करती है।

गुरु-वाणी का सिद्धान्त-निरूपण एवं इसकी अभिव्यंजना-शैली उपनिषदों एवं पुराणों की परम्परा से सम्बद्ध है। नानक एक ब्रह्म के विश्वासी थे। देववाद अथवा अवतारवाद में उनका विश्वास नहीं था, मूर्ति-पूजा का उन्होंने खण्डन किया। इस पर भी वैदिक और पौराणिक युग के देवताओं और उनसे सम्बन्धित कथाओं का उन्होंने प्रचूर मात्रा में दृष्टान्त के रूप में प्रयोग किया। गुरु नानक की वाणी के लोकप्रिय और प्रभावशाली होने में इन उल्लेखों का प्रचुर योग है। इसका मूल कारण था अपनी संस्कृति का गर्व।[2]

प्राचीन का यथावत् पुनरावर्तन न चाहते हुए भी गुरु-वाणी प्राचीन का सर्वथा निराकरण नहीं करती। वस्तुतः वह उसका सविवेक प्रयोग करती है, जिसके कारण इसका सम्बन्ध भारत की प्राचीन आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा से टूटता नहीं है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि गुरु नानक एवं उनके उत्तराधिकारी धर्म को एक गतिशील एवं विकासोन्मुख प्रवाह के रूप में ग्रहण करते हैं।[3]

गुरु नानक से लेकर नवम गुरु तेगबहादुर तक दृष्टिकोण की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आयी है, जिसका दर्शन 'आदिग्रन्थ' में होता है। नवम गुरु का अधिकांश समय हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र मे व्यतीत हुआ और उनकी वाणी का क्षेत्र आध्यात्मिक विषयों तक ही सीमित रहा। सांसारिक विषयों की नश्वरता, मानवीय सम्बन्धों का मिथ्यत्व, उदासीनता, वेद-पुराण, तीर्थों के उल्लेख और पौराणिक प्रसंगों का अवतरण भी इनमें दिखाई पड़ता है। नवम गुरु की रचनाओं में न तो खण्डन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है और न उनमें मिश्रित भाषा का प्रयोग ही हुआ है।

नवम गुरु तेगबहादुर की भाषा में न तो पंजाबीपन का आग्रह है और न देशज और फारसी शब्दो का पूर्ण बहिष्कार। परन्तु उसमें तत्समता की ओर अधिक झुकाव दिखाई पड़ता है और शब्दों की रूप-विकृति अपवाद रूप में ही उपलब्ध होती है।

'आदि नानक' से 'नवम नानक' तक की इस गुरु-वाणी का उत्तराधिकार 'दशम नानक' (गुरुगोविन्द सिंह) को प्राप्त हुआ था और उन्होंने अपनी कृतियों में इन प्रवृत्तियों

१. लबु पापु दुइ राजा महता कूडु होआ सिकदारू
कामु नेबु सदि पुछिऐ बहि बहि करे बीचारु

—आदि ग्रन्थ, पृ० ४६६।६

२. डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ६५

३. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ४२

को सुरक्षित रखते हुए भी एक नया मोड़ दिया है, जिसका उल्लेख हम दशम गुरु के साहित्यिक व्यक्तित्व के विवेचन में करेंगे।

कच्चो वाणो

गुरु नानक से लेकर 'आदि ग्रन्थ' के सम्पादक गुरु अर्जुनदेव तक सभी गुरु-वाणी के महत्त्व पर बल देते है और उसे ही गुरु-रूप में स्वीकार करने का उपदेश देते हैं। गुरु-परम्परा के अतिरिक्त दो वर्ग ऐसे और भी थे जो प्रत्येक गुरु के समय अपनी कुछ-न-कुछ रचनाएँ प्रस्तुत करते रहते थे। इनमें से एक वर्ग तो वह था जो अपने को गुरु-गद्दी का अधिकारी समझता था, किन्तु जिन्हे गुरु-गद्दी प्राप्त नही हुई। दूसरा वर्ग गुरुओं के श्वसुर-परिवार का था जो गुरु-परम्परा से प्रभावित होकर भी सगुण भक्ति में विश्वास रखता था। डॉ० हरिभजन सिंह का मत है कि नानक-नाम से सम्बन्धित कुछ वाणी स्पष्ट रूप से अप्रामाणिक गुरुओं अथवा उनके सेवकों की रचना है। कुछ वाणी ऐसी भी है जो 'आदिग्रन्थ' मे संगृहीत न होने के कारण प्रामाणिक नही मानी जाती। ऐसी सभी रचनाएँ 'कच्ची वाणी' के नाम से अभिहित है। कुछ 'कच्ची वाणी' ऐसी भी है जो 'नानक-वाणी' के अनुकरण का प्रयास करती है।

कुछ ऐसी भी रचनाएँ मिलती है, जिन्हे रचयिता ने श्रद्धा-प्रेरित होकर अन्य भक्तों के नाम से जोड़ दिया है। गुरु अर्जुनदेव ने अपना एक पद भक्तवर सूरदास से सम्बन्धित किया है। सहजराम कृत 'आसावरियाँ' नामक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रन्थ मे ऐसे बहुत-से पद मिलते हैं जो कबीर, सूर और तुलसी आदि से सम्बन्धित कर दिये गये है। सहजराम के दीक्षा-गुरु श्री सेवाराम ने कुछ पद नवम गुरु तेगबहादुर को समर्पित किये हैं। इन पदों में नानक नाम का प्रयोग किया गया है। ऐसी वाणी 'समर्पित वाणी' कही जाती है।[1]

'कच्ची वाणी' 'गुरु वाणी' की प्रत्यक्ष विरोधी न होकर भी उससे भिन्न है। ऐसी वाणी पौराणिक परम्परा से अधिक सम्बद्ध है, जिसमें अवतारवाद, वर्णाश्रम-धर्म और चमत्कार का समर्थन है। अप्रामाणिक गुरुओं ने नानक की जन्म साखियाँ भी लिखी हैं। इनमें अवतारवाद का संस्पर्श होने के कारण नानक का चरित भी अवतारी पुरुषों के सदृश हो गया है।

दशम गुरु गोविन्द सिंह पर भी इस प्रवृत्ति का प्रचुर प्रभाव पड़ा। अवतारों में आस्था न रखने पर भी उन्होंने चौबीस अवतारों का वर्णन बड़ी तन्मयता से किया। 'जिस प्रकार हिन्दी-भाषी क्षेत्र मे ज्ञान-मार्गी शाखा के लगभग समकालीन राम-मार्गी और कृष्ण-मार्गी शाखाओं का प्रचलन हुआ, वैसे ही पंजाब में प्रामाणिक गुरुओं द्वारा प्रचारित निर्गुण-भक्ति के साथ अप्रामाणिक गुरुओं द्वारा प्रचारित सगुण-भक्ति का प्रणयन हुआ। पंजाब मे सिक्ख गुरुओं द्वारा प्रवाहित भक्ति-धारा इतनी सबल थी कि उसके प्रत्यक्ष विरोध में किसी अन्य भक्ति-मत का स्थापन सर्वथा असम्भव प्रतीत होता था। अत:

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० १०७-८।

मेहनबानु आदि महात्माओं ने गुरु-मार्ग का विरोध न करते हुए, उसे अपनाते हुए तथा आश्रय ग्रहण करते हुए पौराणिक प्रवृत्ति का प्रचार किया।[1]

ब्रज-साहित्य की तत्कालीन परम्पराएँ और पंजाब में उसका परिवेश

हिन्दी साहित्य के आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चन्द का कार्य-क्षेत्र राजस्थान से लेकर लाहौर तक रहा है। किन्तु इसकी भाषा कुछ विद्वानों के मतानुसार मूलरूप से अपभ्रंश थी और कुछ विद्वानों के अनुसार राजस्थानी। निस्सन्देह इसमें अरबी, फारसी के भी कुछ शब्द है, किन्तु विशुद्ध ब्रजभाषा की दृष्टि से यह नही कहा जा सकता कि उसका प्रभाव गुरुओं की वाणी पर पड़ा है। बाबा फरीद और फरीदसानी की रचनाओं के सम्बन्ध मे भी प्रचुर मत-भेद है। 'आदिग्रन्थ' में शेख फरीद के नाम से संकलित रचनाएँ बाबा फरीद शकरगंज या फरीद सानी की हैं, इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। ये रचनाएँ विवादग्रस्त होते हुए भी संतों की वाणी के अनुरूप हैं। चर्पटनाथ की भी रचनाएँ पंजाब में मिलती हैं, किन्तु उन पर खड़ी बोली का प्रभाव प्रतीत होता है। यही स्थिति बालानाथ की रचनाओं की भी है। बूअली शाह कलन्दर की रचनाएँ भी विशुद्ध हिन्दी में है। रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सजन सकारे जाएंगे, नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी रैन कर, भोर कधी न होय॥[2]

इन कवियों की रचनाओं के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि पंजाब में ऐसी रचनाएँ हो रही थी जिनमें खड़ी बोली का पूर्ववर्ती रूप उपलब्ध होता है। श्री चन्द्रकांत बाली ने सात गुरुओं की रचनाओं से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि 'आदि नानक' की रचना में मुल्तानी (पंजाबी) भाषा के शब्द अधिक हैं और हिन्दी-ब्रज के शब्द कम। किन्तु इनकी कृतियों पर उत्तरोत्तर ब्रज-भाषा की शब्दावली छाती गयी है और पंचम गुरु अर्जुनदेव की रचना में तो केवल सीमित शब्द ही पंजाबी के रह गए हैं तथा ब्रजभाषा की शब्दावली की प्रचुरता हो गयी है। इससे स्पष्ट है कि 'आदि नानक' के बाद ही ब्रजभाषा के कवियों से गुरुओं का सम्पर्क उत्तोत्तर बढता गया और वे भी ब्रजभाषा में ही रचनाएँ करने लगे, क्योंकि उस समय यही साहित्य की प्रमुख भाषा थी। 'आदि गुरु' इब्राहीम लोधी और बाबर के समय विद्यमान थे और पंचम गुरु अर्जुनदेव अकबर की मृत्यु के समय तक गुरुगद्दी पर विराजमान रहे। यह सर्व विदित है कि स्वयं अकबर के दरबार में ब्रजभाषा के कितने ही सुप्रसिद्ध कवि विद्यमान थे और उनका सम्पर्क पंजाब से भी था। ऐसे कवियों में रहीम और बीरबल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री चन्द्रकांत बाली ने पंजाब के बाहर से आने वाले अनेक कवियों के नाम गिनायें है, जिनमें

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ११४
२. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी, पृ० ११

बीरबल, हंसराम, चंदन और कुवरेश के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से बाद के तीन कवि तो दशम गुरु के दरबारी कवियों में परिगणित है। अतः पंजाब के हिन्दी कवियों का झुकाव आरम्भ से ही ब्रजभाषा की ओर था। इसकी पुष्टि के लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देना आवश्यक है—

१. फरीद

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ।
बावलि होई सौ सह,[1] लोरउ।[2]

२. गुरु नानक

पिरु घरि नही आवै धन किउ सुख पावै बिरहि विरोध तनु छीजै।
कोकिल अंबि सुहावो बोलै किउ दुख अंकि सहीजै ॥[3]

३. गुरु अंगद देव

सावणु आया हे सखी कत चिति करेहु।
नानक झूरि मरहि दोहागणी जिन्ह अवरी लगा नेहु।[4]

४. गुरु अमरदास

सुणि सुणि काम गहेलीए किआ चलहि बाह डुलाइ।
आपणा पिरु न पछाणही किआ मुहु देसहि जाइ।
जिन सखी कंतु पछाणिआ हउ तिनकै लागउ पाइ ॥[5]

५. गुरु रामदास

मेरो सुन्दरु कहहु मिले कितु गली
हरि के संत बतावहु मारगु हम पीछै लागि चली

....

प्रिय के बचन सुखाने हीअरै इह चाल बनी है भली।
लटुरी मधुरी ठाकुर भाई ओह सुन्दरि हरि ढुलि मिली ॥[6]

---

१. सह फारसी शौः पति
२. आदि ग्रन्थ, पृ० ७९४
३. वही, पृ० ११०८
४. वही, पृ० १२८०
५. वही, पृ० ३७
६. वही, पृ० ५२७ (फारसी शौः)—पति

६. गुरु अर्जुन देव

कवण गुन प्रानपति मिलउ मेरी माई।
रूपहीन बुधि बलि हीनी मोहि परदेसनि दूरते आई ॥[१]

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गुरुओं की वाणी में उत्तरोत्तर ब्रजभाषा ने प्रबलता प्राप्त की। अकबर और जहाँगीर का शासन-काल ब्रजभाषा का स्वर्ण-युग कहलाता है। सूरदास सहित अष्टछाप के अन्य कवियों की रचनाएँ इसी युग की देन हैं। समर्पित वाणी के सन्दर्भ मे यह सकेत किया जा चुका है कि स्वयं गुरु अर्जुनदेव ने एक पद लिखकर सूरदास के नाम से समर्पित किया है। इससे यह स्पष्ट है कि पंचम गुरु ब्रजभाषा की शब्दावली से पूर्णतः सुपरिचित थे और ब्रजभाषा के भक्त कवियों की रचनाओं से भी निकट सम्पर्क बनाए हुए थे।

गुरु अर्जुनदेव के बलिदान के बाद सिक्ख गुरुओं का ध्यान सुरक्षा की ओर अधिक चला गया। उधर ब्रजभाषा-साहित्य में केशव से रीतिकाल का प्रवर्तन हो चुका था और रीतिकालीन ब्रजभाषा की काव्य-धारा एक नया मोड ले चुकी थी। दशम गुरु का समय भी रीतिकाल में ही पड़ता हैं। उन्होने स्वयं भले ही कोई रीतिबद्ध रचना न की हो, लेकिन उनके दरबारी कवियो में से कुछ ने रीति-काव्य-परम्परा का अनुसरण अवश्य किया है। अतः इस संदर्भ में रीतिकालीन काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

रीतिकाल का आरम्भ शाहजहाँ के शासन-काल के उत्तरार्द्ध से होता है। उस समय देश पूर्ण रूप से समृद्ध था। स्वयं शाहजहाँ साहित्य और कला में गहरी रुचि रखता था और उसके दरबार में कसीदे (प्रशस्ति गान) खूब पढ़े जाते थे। तत्कालीन नवाबों, सामन्तों और छोटे-छोटे नरेशों में भी यह प्रवृत्ति जोरो पर थी। हिन्दी-कवि को उस समय के दरबारी फारसी के कवियों से होड़ लेनी पड़ती थी, क्योंकि वे भी शाहजहाँ के दरबार में आश्रय प्राप्त करना चाहते थे। औरंगज़ेब के शासन-काल से हिन्दी कविता दिल्ली-दरबार से बहिष्कृत कर दी गयी और वह सामन्तों की छत्र-छाया में पलने लगी। राजस्थान के राजाओं ने अनेक हिन्दी कवियों को प्रश्रय दिया और उनके दरबारों में भी मुगल दरबारों जैसी रंगीनी एवं कला-प्रियता को बढ़ावा मिला।

दरबारों का रसिकतापूर्ण परिवेश ही रीतिकालीन प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी नही है, अपितु प्राचीन साहित्य की शृंगारिक परम्परायें भी प्रेरक तत्त्व के रूप में कार्य करती रही। डॉ० सावित्री सिन्हा के शब्दों में—'स्वार्थ-परायण राजनीतिक व्यवस्था, सामन्तीय वातावरण, राजनीतिक विकेन्द्रीकरण और सामाजिक अव्यवस्था तथा विलास-मूलक वैभव-जन्य प्रदर्शनप्रधान अलंकरण प्रवृत्ति का तत्कालीन साहित्य एवं विविध ललित कलाओं की गति-विधि पर बड़ा प्रभाव रहा है। तद्युगीन कलाकार की आत्मा

---

१. आदि ग्रन्थ, पृ० २०४

पर ये बाह्य परिस्थितियाँ एक प्रकार से हावी हो गयी थीं। चेतना के सूक्ष्म, सार्वभौम और नित्य तत्त्व बाह्य जीवन की स्थूल साधना में लुप्त हो गये थे। स्थूल की सूक्ष्म पर विजय के कारण ही इस युग में रीति-काव्य लिखा गया।'[1]

दरबारी प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण 'स्वातः सुखाय' रचना तो उस युग में सम्भव थी ही नहीं। विलासितापूर्ण वातावरण में नारी-शरीर और उसके सौन्दर्य-चित्रण तथा नायक-नायिकाओ के हाव-भाव की अभिव्यजना में ही कवि का मानस सलग्न हो गया था। श्रृंगारिकता उस युग की मुख्य प्रवृत्ति है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दो में—"साँचा चाहे जैसा भी रहा हो उसमें ढली श्रृंगारिकता ही है। इसकी अभिव्यक्ति में उन्होने किसी प्रकार से संकोच नही किया। इसलिए उनकी श्रृंगारिकता में अप्राकृतिक गोपन अथवा दमन से उत्पन्न ग्रंथियाँ नही है, न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने का उचित-अनुचित प्रयत्न ही है। जीवन की वृत्तियाँ उच्चतर सामाजिक अभिव्यक्ति से चाहे वंचित रही हों, परन्तु श्रृंगारिक कुण्ठाओं से ये मुक्त थीं। इसी कारण इस युग की श्रृंगारिकता में घुमड़न अथवा मानसिक छलना नहीं हैं।[2] यह श्रृंगारिकता सभोग और वियोग दोनों ही पक्षों को सफल अभिव्यक्ति देती है।

रीतिकाल की दूसरी प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति आलंकारिकता है। दरबारी कवि को अपना काव्य कृत्रिम और भड़कीले रंगों से रंगना पड़ा, काव्य-रचनाएँ अलंकारो के साँचे में ढलने लगीं। यद्यपि काव्य मे प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत का विधान भाव-प्रेषणीयता, गहनता तथा तरलता लाने के लिए आवश्यक है, किन्तु रीतिकालीन कवि का यह विधान रूढ़ियों तक ही सीमित दिखाई पड़ता है। बिहारी और केशव ने चमत्कार की अति स्पृहा से अनुप्रेरित होकर ऊहात्मक प्रयोगों पर बल दिया है। 'देव' और 'घनानन्द' में अवश्य धर्म-सादृश्य मूलक विधान अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक है। अलंकार की यह चमत्कृति रीतिबद्ध कवियों में अधिक है।

रीतिकाल में, यद्यपि, भक्ति-भावना का वह स्वरूप उपलब्ध नहीं होता जो भक्ति-काल में दिखाई पड़ता है, तथापि भक्ति काव्य की धारा रीतिकाल में सर्वथा शुष्क नहीं हो गयी थी। डॉ० नगेन्द्र के विचार से तो रीतिकालीन कवियों की भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का अंग थी। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति-भावना से हीन नहीं है, हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। इसलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य मे भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक-नायिका के लिए बार-बार 'हरि-हरि' और 'राधिका' शब्दों का प्रयोग किया गया हैं।

रीतिकाल की एक काव्य-धारा नीति और सूक्तियों की है। बृन्द की सतसई तो गुरु गोविन्द सिंह के ही काल में रची गयी थी। नीतिपरक ग्रन्थों के अनुवाद की परम्परा भी प्रचलित थी और कवियों का मुख्य लक्ष्य महाभारत की कथाओं को भाषा-बद्ध करना था।

---

१. डॉ० शिव कुमार, हिन्दी-साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ मे उद्धृत, पृ० २८६-८७

२. डॉ० नगेन्द्र, रीति-काव्य की भूमिका, पृ० १७३

औरंगजेब के अत्याचारों और अनुदार नीतियों की प्रतिक्रियास्वरूप चिरकाल से प्रसुप्त वीरता-प्रधान प्रवृत्तियाँ पुनः जागृत होने लगी। दक्षिण में महाराज शिवाजी, राजस्थान मे दुर्गादास राठौर और मध्य प्रदेश में छत्रसाल ने स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए नेतृत्व प्रदान किये। यही कार्य पंजाब में गुरु गोविन्द सिह ने किया। इन सभी धर्म-रक्षकों के दरबार में कवियो के अन्तःकरण से ऐसी ओजस्वी और वीरतापूर्ण वाणी प्रवाहित हो रही थी जो सम्पूर्ण रीतिकालीन वातावरण मे अपनी दीप्ति-छटा बिखेर रही थी। भूषण ने 'शिवराज भूषण' और 'शिवा बावनी' के रूप में वीर-रसात्मक काव्यों की सृष्टि की। सं० १७६७ के आस-पास ही श्रीधर या मुरलीधर ने 'जगनामा' प्रस्तुत किया। गुरु गोविन्द सिह के समय में ही छत्र सिह कायस्थ ने 'विजय मुक्तावली' के नाम से महाभारत की कथा प्रस्तुत की और सबल सिंह चौहान ने महाभारत का दोहा-चौपाइयों मे रूपान्तर किया।

जिन कवियों ने रीति-पद्धति का अनुसरण करते हुए रीति-बद्ध काव्यों का सृजन किया है उनकी भी अनेक रचनाएँ ऐसी है, जिनमें अन्य प्रकार की काव्य-प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। आचार्यो मे चिन्तामणि त्रिपाठी ने रामायण लिखी। मंडन ने 'जनक-पच्चीसी' और 'जानकी जू को ब्याह' की रचना की। भूषण का 'शिवराज भूषण' तो लक्षण-ग्रन्थ होते हुए भी वीररस की धारा प्रवाहित करता है। कुलपति मिश्र ने सं० १७३७ में 'द्रोण पर्व,' सं० १७४३ मे 'मुक्ति-तरंगिणी' तथा 'सग्राम सार' की रचना की। सुखदेव मिश्र ने 'फाजिल अली प्रकाश' और 'अध्यात्मक प्रकाश' लिखा। नेवाज ने 'शकुन्तला नाटक' का आख्यान दोहा-चौपाई में प्रस्तुत किया। देव ने 'ब्रह्म-दर्शन पच्चीसी,' 'तत्त्व-दर्शन पच्चीसी,' 'आत्म-दर्शन पच्चीसी' तथा 'नीति शतक' की रचना की। रीवां-नरेश महाराज विश्वनाथ सिह, जिन्होंने राम-भक्तिपरक अनेक रचनाएँ प्रस्तुत कीं, दशम गुरु के ही समकालीन थे।

इससे स्पष्ट है कि यद्यपि, दशम गुरु के समय तक रीतिकालीन काव्यों की प्रमुख प्रवृत्ति या तो रीति-ग्रन्थों के माध्यम से व्यक्त हुई है या रीति-बद्ध काव्यों के माध्यम से, तथापि भक्ति, नीति आदि की अन्य प्रवृत्तियाँ भी समाप्त नही हो गयी थीं।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि प्रबन्ध-काव्य का विकास इस काल में कुछ विशेष न हो पाया। लिखे तो अनेक कथा-प्रबन्ध गये, पर उनमे से दो-चार ही में कवित्व का यथेष्ट आकर्षण पाया जाता है। कथात्मक प्रबन्धों से भिन्न वर्णनात्मक प्रबन्ध भी उपलब्ध होते हैं।[1] नीति के फुटकल पद्य भी इस युग में कहे गए। ऐसे पद्यकारों को आचार्य शुक्ल ने कवि न कहकर सूक्तिकार कहा है। इसी युग के ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की बातों को पद्य में कहने वाले ज्ञानोपदेशकों को उन्होंने पद्यकार कहा है। भक्त कवियों ने भक्ति और प्रेम से पूर्ण विनय के पद पुराने भक्तों की पद्धति पर प्रस्तुत किये है। आश्रयदाताओं की प्रशंसा में वीर रस की फुटकल कविताएँ भी बराबर रची जाती रही है, जिनमें युद्धवीरता और दानवीरता की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी।[2]

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५२-५३
२. वही, पृ० ३५५

इस युग मे ज्ञान-सग्रह की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। ज्योतिष, सामुद्रिक-शास्त्र, रमल, शालिहोत्र शास्त्र, काम-शात्र, राजनीति और संगीत-शास्त्र आदि के भी अनेक ग्रन्थ मिलते हैं।

रीति-काव्य में अधिकांशत: कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छन्दो का प्रयोग किया गया। बीच-बीच में छप्पय, बरवै, हरिपद आदि के भी दर्शन होते है। महाभारत के रूपान्तरो मे दोहा और चौपाई मुख्य छन्द रहे हैं।

इस काल की मुख्य काव्य-भाषा ब्रजभाषा रही है, जिसे रीति कवियों ने सजाया, संवारा तथा निखारा है। इस काल के कवि की भाषा के सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—"भाषा के प्रयोगों में इन कवियों ने एक खास नाजुक मिजाजी बरती है। उनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजायश नही जिसमें माधुर्य नहीं है, जो माधुर्य गुण के अनुकूल न हो। अक्षरों के गुंफन में उन्होंने कभी भी त्रुटि नहीं की, संगीत के रेशमी तारो में इनके शब्द माणिक्य-मोती की तरह गुँथे हुए हैं। नागरिकता और मसृणता इस काल की भाषा के मुख्य तत्त्व हैं। ऐसी रंगोज्ज्वल रंगावली अन्यत्र दुर्लभ है।"[1]

औरंगज़ेब के शासनकाल में ही नवम गुरु तेगबहादुर ने हिन्दी भाषी प्रदेशो की यात्रा की। निश्चय ही जब औरंगज़ेब के दरबार से हिन्दी कवियों का बहिष्कार हुआ होगा तो कुछ अन्य हिन्दी कवि गुरु-दरबार मे भी आश्रय पाने के लिए आये होगे। दिल्ली-दरबार से हिन्दी कवियो के इस अलगाव का एक सुपरिणाम यह हुआ कि गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में ब्रजभाषा के अनेक उत्तम कवि एकत्र हो गये।

रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों पर इस विहंगम दृष्टिपात से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाब में भी प्रथम गुरु नानक के समय से ही ब्रजभाषा ने संतों की वाणी के माध्यम से अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया था, और वह दशम गुरु के दरबार में उनके तथा उनके प्रतिभा-सम्पन्न दरबारी कवियों के कारण उच्च सिंहासन पर आसीन होने में समर्थ हुई।

एक ओर पंजाब की फारसी और उर्दू की साहित्यिक धारा तथा दूसरी ओर ब्रजभाषा की विविध काव्य-धाराओं ने जो परिवेश प्रदान किया उसी में दशम गुरु गोविन्द सिंह और उनके दरबारी कवियों ने काव्य-सृजन किया। इस परिवेश में प्रबन्ध और मुक्तक, रीतिग्रन्थ, रीतिबद्ध-काव्य, वीर-काव्य, भक्ति-काव्य, नीति-काव्य लिखने और संस्कृत-ग्रन्थों के पद्यबद्ध रूपान्तर करने की विशेष प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। इन समकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव निश्चय ही दशम गुरु और उनके दरबारी कवियों पर पड़ा होगा। दशम गुरु के दरबारी परिवेश का शिवाजी तथा छत्रसाल के दरबारी वातावरण से पर्याप्त साम्य था। इसलिए उक्त दरबारों में रचित काव्यों में प्रवृत्तिगत साम्य होना भी सर्वथा स्वाभाविक था।

---

१. डॉ० नगेन्द्र, रीति-काव्य की भूमिका, पृ० १८३

गुरु गोविन्द सिंह का जीवन और व्यक्तित्व

दशम गुरु गोविन्द सिंह का जन्म बिहार प्रान्त के पटना नामक स्थान पर वि० सं०१७२३ की पौष सुदी सप्तमी को हुआ था।[1] ई० सन् के अनुसार यह तिथि २६ दिसम्बर १६६६ को पड़ती है। गुरुजी के पिता गुरु तेगबहादुर अपनी पत्नी गूजरी तथा कुछ शिष्यों सहित उन दिनों पूर्वी भारत की यात्रा कर रहे थे। अपनी गर्भवती पत्नी और कुछ शिष्यो को पटना छोड़ कर गुरु तेगबहादुर असम की ओर चले गये। वही उन्हें पुत्र-प्राप्ति का शुभ समाचार प्राप्त हुआ। गुरु गोविन्द सिंह ने अपने जन्म का वर्णन 'विचित्र नाटक' के सप्तम अध्याय में किया है।[2] पूर्वी भारत में भी उस समय सिक्ख गुरुओं का व्यापक प्रभाव था। इस प्रसंग में अलमस्त और नाथे साहब नामक दो प्रचारकों का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है।[3]

सिक्ख इतिहासकारों ने लिखा है कि गुरु तेगबहादुर के आशीर्वाद से असम के निस्सन्तान राजा को पुत्र प्राप्त हुआ था। यही पुत्र रत्न राय १२ वर्ष की आयु में बहुमूल्य सामग्री भेंट-स्वरूप लेकर अपनी माता सहित गुरु गोविन्द सिंह के दर्शनार्थ आनन्दपुर आया था। गुरु तेगबहादुर ने औरंगजेब के प्रतिनिधि राजा राम सिंह और असम के शासक के मध्य एक शान्तिपूर्ण समझौता भी करा दिया था।[4]

मुगलों के साथ संघर्ष की प्रक्रिया का आरम्भ तो गुरु अर्जुनदेव के बलिदान से ही हो गया था, किन्तु पंजाब लौटने पर जब गुरु तेगबहादुर काश्मीरी ब्राह्मणों की प्रेरणा से दिल्ली गये और धर्म-परिवर्तन अस्वीकार कर दिया तो ११ नवम्बर, सन् १६७५ ई० को गुरु तेगबहादुर का, चाँदनी चौक, दिल्ली में बध कर दिया गया। नवम गुरु ने शासक वर्ग के अत्याचारों से प्रपीड़ित जनता के स्वत्त्वों की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया। गुरु गोविन्द सिंह ने 'दशम ग्रन्थ' के अन्तर्गत 'विचित्रनाटक' मे अपने पिता के इस बलिदान का वर्णन किया है।[5]

---

१. सम्वत् सत्रह सहस भनीजैं। बीस तीन संग बरख गनीजैं।
मंहि पोख पुन अधिक सुबीनै। जगत प्रवेस कृपानिधि कीनै।
—सुक्खा सिंह, गुरु विलास, पृ० ४६

२. मुर पित पूरब कियसि पयाना,
भाँति-भाँति के तीरथ नाना।
जब ही जात त्रिवेणी भये।
पुन्न दान दिन करत वितये। १:७॥
तहीं प्रकाश हमारा भयो।
पटना शहर बिखे भव लयो।
—विचित्र नाटक, पृ० ४५

३. ढाका रिव्यू, १९२५ में प्रकाशित

४. ज्ञानी प्रताप सिंह, गुरुमत लैक्चर, पृ० ३०१
—प्रो० सतबीर सिंह, साडा इतिहास, पृ० २९८

५. गुरु गोविन्द सिंह, दशमग्रन्थ, पृ० ५४

अपने पिता के बलिदान के समय गुरु गोविन्द सिंह की आयु केवल ९ वर्ष की थी। इस अल्पायु में ही गुरु-पद का गुरुतापूर्ण उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर आ गया। नवम गुरु के बलिदान के कारण लगभग सारे उत्तरी भारत में रोष की लहर व्याप्त हो गयी और दशम गुरु को अल्पवय में ही जनता का असीम स्नेह और आदर प्राप्त हो गया।[1]

प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा——दशम गुरु के जीवन के प्रारम्भिक ६ वर्ष पटना में ही व्यतीत हुए। यहाँ उनकी प्रारम्भिक शिक्षा माता गूजरी की देख-रेख में हुई। पंजाब आने पर केवल दो-ढ़ाई वर्ष ही उन्हें पिता का आश्रय मिला और इस अवधि में गुरु तेगबहादुर ने उनकी सभी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबन्ध कर दिया था। गुरु गोविन्द सिंह ने 'विचित्र नाटक' में इसका उल्लेख किया है।[2]

पिता के बलिदान के पश्चात् गुरु गोविन्द सिंह लगभग आठ वर्ष तक आनन्दपुर में रहे। इन आठ वर्षों का उनके भावी जीवन के निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।[3] इस अवधि में उन्होंने शास्त्र और शस्त्र, दोनों प्रकार की शिक्षा से अपने को सुयोग्य बनाया। शस्त्र और युद्ध-नीति की शिक्षा में आखेट का एक प्रमुख स्थान है। 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविन्द सिंह ने इसका उल्लेख किया है——

भाँति-भाँति बन खेल शिकारा।
मारे रीछ रोझ झँखारा।[4]

गुरुमुखी को तो उन्होंने पटना में ही अपनी माता से सीख लिया था और इस प्रकार गुरु-परम्परा से प्राप्त साहित्य को पढ़ने में सुविधा हुई। आनन्दपुर आने के बाद उन्हें फारसी और संस्कृत की शिक्षा भी दी गयी। फारसी की शिक्षा काज़ी पीर मुहम्मद और संस्कृत तथा हिन्दी (ब्रज) की शिक्षा उन्हें साहब चन्द ग्रन्थी से मिली।[5]

प्रतिभाशाली दशम गुरु ने इस प्रकार गुरुमुखी के साथ फारसी, संस्कृत और हिन्दी (ब्रज) पर भी विशेष अधिकार प्राप्त कर लिया। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में इन आठ वर्षों की शिक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। शस्त्र-शिक्षा और आखेट ने उन्हें एक महान योद्धा के रूप में विकसित किया। दैनिक कार्य-क्रम में उनके पिता नवम गुरु तेगबहादुर सर्वदा उन्हें अपने साथ रखते थे। प्रातःकालीन ध्यान-पाठ से लेकर रात्रि तक चलने वाले राजनीतिक विचार-विमर्श में भी उन्हें सम्मिलित कर लेते थे। नवम गुरु के साथ यद्यपि यह प्रक्रिया ढ़ाई वर्ष ही चली, तथापि वे धर्म-गुरु के उत्तर-दायित्वों और कर्त्तव्यों से पूर्णतः परिचित हो चुके थे। यही कारण है कि अल्पवय में ही उन्होंने सिक्ख-समुदाय का प्रभावशाली नेतृत्व किया।

---

१. गोकल चन्द नारंग, ट्रांसफार्मेशन आफ सिखिज्म, पृ० ११६
२. गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ, पृ० ५३
३. दि टैंथ मास्टर——ट्रिब्यूट्स ऑन टर्-सेन्टिनरि, पृ० ४१
४. गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ, पृ० ६०
५. हरबंस सिंह, गुरु गोविन्द सिंह, पृ० १९-२०

गुरु तेगबहादुर ने सिक्खों को बड़ी विचित्र अवस्था में छोड़ा था। निस्संदेह उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र गोविन्द सिंह को, दिल्ली प्रस्थान के पूर्व, गुरु-पद पर आसीन कर दिया था, परन्तु नये गुरु मात्र नौ वर्ष के बालक थे और उन्हें अभूतपूर्व कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। आन्तरिक विभेद और बाह्य सकटो ने समान रूप से सिक्खों को खतरे मे डाल रखा था और ऐसा लग रहा था कि यह शिशु-सम्प्रदाय उस स्थिति में पहुँच गया है जहाँ से उसके बचाव का कोई मार्ग नही है।[1]

इस अवस्था में बाल-गुरु ने अपनी शक्तियो का केन्द्रीकरण किया और अपनी शिक्षा के साथ ही साथ अपने शिष्यों की भी शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। सुदूर प्रदेशो में फैले हुए सिक्ख-समुदाय को 'हुक्मनामे' भेजकर उनसे धन और अस्त्र-शस्त्र का संग्रह किया। एक छोटी-सी सेना एकत्र की और उसे युद्ध-नीति में कुशल बनाया।[2]

वीर योद्धा—दशम गुरु गोविन्द सिंह को अपना प्रथम युद्ध अप्रैल, सन् १६८६ ई० तदनुसार वैशाख सवत् १७४६ वि० में भंगानी के स्थान पर लड़ना पड़ा।[3] इसके बाद उनका सम्पूर्ण जीवन शत्रुओं से संघर्ष करते ही बीता। इस बीच में उन्हे छोटे-बड़े अनेक युद्ध लड़ने पड़े। इन युद्धों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि वे न केवल वीर योद्धा थे, अपितु युद्धनीति में अत्यन्त निपुण भी थे। खालसा की स्थापना उनके सैनिक नेतृत्व और संगठन-शक्ति की परिचायक है। जब तक मुगलों की विशाल शक्ति उनके प्रतिरोध के लिए परिचालित नही हुई, तब तक वे निरन्तर विजय प्राप्त करते रहे। पराजय और संकट के दिनों में भी न तो उन्होने कभी साहस छोड़ा और न धर्म-रक्षा और संघर्ष का ही परित्याग किया। नौ गुरुओं की सम्पूर्ण परम्परा को उन्होंने ऐसे साँचे में ढाला, जिसमें अकाल-पुरुष का भरोसा लेकर प्रत्येक सिक्ख सर्वस्व-समर्पण और त्याग-वृत्ति के साथ धर्म-रक्षा के लिए तत्पर हो गया। डॉ० नारंग ने लिखा है कि—"वे मनुष्य जिन्होंने कृपाण को छुआ तक नहीं था और न बन्दूक को ही अपने कन्धे पर रखा था, सशक्त वीर बन गए। उन्होंने धीवरों, धोबियों और चमारों को भी ऐसा सेनापति बना दिया, जिनके आतंक से बड़े-बड़े राजा भी भयभीत होने लगे।"[4]

दशम गुरु द्वारा किए गए ये युद्ध किसी जाति विशेष अथवा सम्प्रदाय विशेष के विरुद्ध न थे, उनका उद्देश्य केवल अत्याचारियों का दमन करना ही था। उनकी सेना में अनेक ऐसे मुसलमान पठान भी थे जो अपनी ही जाति और धर्म के विरुद्ध युद्ध करते रहे। बुद्धू शाह जैसे वीर ने तो उनकी ओर से लड़ते हुए अपने दो पुत्रों की आहुति भी रणभूमि में दे दी। वस्तुतः उनकी युद्ध-नीति सत्य और पवित्रता पर आधारित थी।

एक वीर योद्धा के रूप में दशम गुरु का दृष्टिकोण सर्वथा स्पष्ट है। वे स्वयं लिखते हैं—

---

१. डॉ० इन्दु भूषण बैनर्जी, एवोल्यूशन आफ खालसा, पृ० ६४
२. डॉ० महीप सिंह, गुरु गोविन्द सिंह एक युग व्यक्तित्व, पृ० ५४
३. भाई काह्न सिंह · महान् कोश, पृ० २७७४
४. डॉ० गोकुल चन्द नारंग, ट्रांसफारमेशन आफ सिखिज्म, पृ० १३८

या कलि मैं सभ काल कृपान के,
भारी भुजान को भारी भरोसो ।[1]

गुरु गोविन्द सिंह का युद्ध केवल युद्ध नहीं था, वह धर्म-युद्ध था और उनके जीवन के सारे युद्ध इसी दृष्टिकोण से लड़े गए। अतः उनका योद्धा रूप धर्म-योद्धा का रूप ग्रहण कर लेता है।

योद्धा-भक्त––दशम गुरु का व्यक्तित्व इतना बहुमुखी है कि उनका प्रत्येक रूप उनकी अलौकिक प्रतिभा और नेतृत्व-शक्ति का परिचय देता है। पौराणिक परम्परा में ईश्वर के विविध कृत्यो का वर्णन है। वह एक ओर उत्तम पक्ष का समर्थक और सहायक है तो दूसरी ओर विकृत पक्ष का विनाशक भी। सूर, तुलसी, कबीर और नानक सभी भक्त हैं और भक्तों का युद्ध से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता। दशम गुरु भक्त तो हैं, परन्तु वे ईश्वर के विकृति विनाशक रूप को केवल वर्ण्य-विषय न बनाकर उसे क्रियात्मक रूप दे देते है। यह उनका एक ऐसा रूप है जो उन्हें अन्य भक्तो से पृथक करता है। जाति, धर्म, रंग या परिवेश के कारण उन्होंने मानव-मानव के भेद को कभी स्वीकार नहीं किया। वे मानते है कि सब कुछ परमशक्ति से उत्पन्न होता है और सभी में परमशक्ति का वास होता है। अतः अनेकता में एकता की ज्योति को प्रज्वलित रखने का वे निरन्तर प्रयत्न करते है।

गुरु गोविन्द सिंह के समय ही सिक्खो में निहगों का एक वर्ग बना। वस्तुतः 'निहंग' शब्द 'निस्संग' का विकसित रूप है। यह वर्ग अपने लक्ष्य और आराध्य के प्रति पूर्णतः समर्पित था और संसार से पूरी तरह निस्संग। आत्म-त्याग और बलिदान का परमरूप जिन सिक्ख भक्तों और सन्तों में दिखाई पड़ता था, उन्हें ही इस नाम से पुकारा जाता था। अतः गुरु गोविन्द सिह के आदर्श-सम्पन्न व्यक्तित्व की ठीक-ठीक अनुसारता का रूप इस वर्ग में लक्षित होता है।

सन्त एवं समाज-सुधारक––गुरु गोविन्द सिंह के जीवन एवं आदर्श को उनकी पूर्व गुरु-परम्परा से विच्छिन करके नहीं देखा जा सकता। गुरु नानकदेव के समय में आर्थिक और सामाजिक सम्बन्ध धर्म-व्यवस्था के द्वारा ही विचार-क्षेत्र में व्यक्त और प्रतिबिम्बित होते थे। उस समय धर्म ही मनुष्य के कार्य-व्यापारों का नियमन करता था। स्वयं गुरु नानक ने अन्याय का प्रत्यक्ष प्रतिरोध करने के लिए जनता में आत्म-बल की प्रतिष्ठा की। अधिकतर सन्त घुमक्कड़ और सुधारक वृत्ति के थे, अतः सामाजिक जीवन से उनका स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। गुरु नानक देव ने जिस दृष्टिकोण और विचार-धारा का प्रवर्त्तन किया उसके कारण स्वयं 'नानक' शब्द एक संस्था का वाचक बन गया।

यद्यपि उन्होंने पूर्वग्रह, पाखण्ड, अन्ध-विश्वास और मिथ्याडम्बर से मुक्त उपासना-

---

१. गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ, पृ० ४५
२. दे०, गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ पृ० २०

पद्धति का प्रवर्त्तन किया, गुरुपद को महत्त्व दिया तथा लोक-सेवा भावना को और अधिक उभारा, तथापि पंचम गुरु के बलिदान ने सन्त-जीवन के भीतर एक नया महामन्त्र फूंका। आत्म-रक्षा, धर्म-रक्षा एवं संस्कृति की परम्पराओं की सुरक्षा के लिए सन्तों के भीतर भी बलिदान की गहरी भावना उत्पन्न होने लगी। सिक्ख-आन्दोलन को राजनीतिक और सैनिक-स्वरूप प्रदान करने वाले गुरु हरिगोविन्द थे, किन्तु नवें गुरु के बलिदान ने सम्पूर्ण सन्त जीवन को द्विविध रूप प्रदान किया। एक ओर सन्त-जीवन की प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया और दूसरी ओर काल-कृपाण को महत्त्व दिया गया।

वस्तुतः सन्त-जीवन का वास्तविक उद्देश्य लोक-सेवा और लोक-जीवन का मार्ग दर्शन होता है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि प्रचारक के रूप में सिक्ख सन्तों ने अफगानिस्तान से बंगाल तक निरन्तर यात्रायें की और अत्याचार-पीड़ित जनता में एक नये आत्म-विश्वास को जगाने का प्रयत्न किया। सामान्यतः उस समय के सिक्खेतर सन्तों के विविध सम्प्रदाय गुरु-गद्दी की स्थापना के बाद लोक-जीवन से उदासीन और निष्क्रिय दिखाई पड़ते हैं। केवल सिक्खों की यह गुरु-गद्दी ही उत्तरोत्तर लोक-जीवन के सम्पर्क में रही और दशम गुरु तक इस गुरु-परम्परा के सन्तों में निर्मल जीवन, लोक-सेवा का अदम्य उल्लास, धर्म के प्रति सुदृढ़ आस्था, उपासना के क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टिकोण और हिन्दू-समाज के भीतर आई हुई विविध बुराइयो को दूर करने की चेष्टा के सतत दर्शन होते हैं।

दशम गुरु ने निर्गुण की उपासना और खालसा की स्थापना के द्वारा इन क्षेत्रों में पूर्व गुरुओं की परम्परा का ही अनुसरण किया है, क्योंकि निर्गुण की उपासना तथा शक्ति का अवलम्बन दशम गुरु से पूर्व ही सिक्खों के लिए स्वीकार्य हो चुके थे। जब छोटी जातियों को अमृत-पान कराकर खालसा में सम्मिलित किया जाने लगा तो अनुदार पहाड़ी राजाओं ने उनका विरोध आरम्भ किया, परन्तु दशम गुरु इन विरोधों की परवाह न करते हुए अपने मार्ग पर अडिग रहे।

उनका सामाजिक दृष्टिकोण एक नवीन सबल जाति के निर्माण की दिशा में निरन्तर प्रवृत्त रहा। यही कारण है कि उन्होंने नवम गुरु तक चली आती हुई विचार-धारा को क्रियान्वित किया। अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध केवल वाणी से सम्भव नहीं था, अतः उन्होंने कृपाण को भी महत्त्व दिया। उपासना शान्त वातावरण में ही सम्भव है, अन्यायी सिर पर खड़ा हो तो न सन्त-जीवन सुरक्षित रहता है और न सामाजिक जीवन। उनका सन्तरूप केवल विचारपरक नहीं, बल्कि कर्मपरक था। गुरु गोविन्द सिंह के कार्यों में सन्त और समाज-सुधारक के दोनों ही रूप सफल अभिव्यक्ति पा सके हैं।

राष्ट्र-निर्माता——गुरु गोविन्द सिंह सच्चे अर्थों में लोकनायक और युग-पुरुष थे। एक प्रसुप्त और दलित जाति के उत्थान के लिए जिस प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता होती है, उसके सम्पूर्ण गुण उनमें विद्यमान थे। उन्होंने पद-दलित और निष्पेषित हिन्दू जाति को अदम्य आत्म-विश्वास से भर दिया। भारत का तत्कालीन हिन्दू-समाज असंख्य

१. डॉ० महीप सिंह, गुरु गोविन्द सिंह : एक युग व्यक्तित्व, पृ० ११८-१२३।

टुकड़ों में बँटा हुआ था, जिसका उच्चवर्ग या तो धार्मिक पाखण्डों और बाह्याचारों में निमग्न था या अपने मिथ्या गौरव और जातीय अहंकार को लेकर मुगलशाही की सेवा में दत्तचित्त था। हिन्दू समाज के शताब्दियों से सर्वथा उपेक्षित वर्ग को अपना सहयोगी बनाकर दशम गुरु ने उसमें असीम शक्ति एवं अदम्य आत्म-विश्वास का संचार किया। उन्होंने पूर्ववर्ती गुरुओं की भक्ति-पद्धति में वीर रूपकों का समावेश किया। उनका अकाल-पुरुष अस्त्र-शस्त्रधारी है। ऐसा ही अकाल-पुरुष सन्तों के सुख का, दुष्टों के दलन का, संसार की स्थिति का और सृष्टि के उद्धार का प्रतीक है। वे जानते थे कि जो जाति मरना नहीं जानती वह जीवित रहना भी नहीं जानती। उन्होंने जिस मरण-यज्ञ का आह्वान किया था, वह वास्तव मे राष्ट्र के जीवन-यज्ञ का प्रतीक था।

राष्ट्रों का निर्माण मात्र युद्धभूमि में नहीं होता; उसके लिए जनता की मन: स्थिति में परिवर्तन आवश्यक होता है। गुरु गोविन्द सिंह ने इसी दृष्टि से सर्वांगीण प्रयत्न किये। उन्होंने राष्ट्र-निर्माण के लिए प्राचीन परम्परा के गौरव को पुनर्जीवित किया। उनकी कृतियों के पौराणिक रूप इसी दृष्टिकोण के परिचायक है। वस्तुत: किसी राष्ट्र के निर्माण और सबलता के लिए तीन तत्त्व परमावश्यक हैं—अपनी पूर्व परम्परा के प्रति गौरव की भावना, दर्शन और साहित्य के माध्यम से जातीय दृष्टिकोण की सबल प्रतिष्ठा और अपने समाज के भीतर मानवतावादी दृष्टि—ऐसी दृष्टि जिसमें मानव-मानव का विभेद न हो। दशम गुरु ने इन तीनो ही तत्त्वों को क्रियात्मक रूप दिया है। इसलिए वे सच्चे राष्ट्र-निर्माता के रूप में हमारे सामने आते हैं।

समन्वयवादी दृष्टि से सम्पन्न महामानव—भारत जैसे बहुजातीय समाज में समन्वयवादी दृष्टि ही सर्वग्राह्य हो सकती है। दशम गुरु ने प्रमुख हिन्दू शक्तियों का समन्वय किया। शैवों, शाक्तो और वैष्णवों द्वारा समादृत साहित्य का श्रद्धापूर्वक भाषा-नुवाद करना तथा करवाना इस समन्वय-प्रयास का सबसे बड़ा प्रमाण है।[१] उपासना के क्षेत्र में यह समन्वयवादी दृष्टि तो उन्हें गुरु-परंपरा से ही प्राप्त हुई थी, किन्तु उनके समय तक हिन्दू और मुसलमान सन्तों, सूफियों तथा फकीरों के द्वारा जाति-समन्वय की जो चेष्टा की गयी थी, वह पूर्णत: असफल हो चुकी थी। औरंगज़ेब के धर्मान्ध शासन ने इन सम्पूर्ण प्रयत्नों को व्यर्थ सिद्ध कर दिया था और उसकी कड़ियाँ इतनी दुर्बल हो गई थीं कि उन्हें फिर से जोड़ना सम्भव नही था। मुगल शासक यहाँ की हिन्दू जनता को कुचलने में पुन: विदेशी शासकों का रूप ग्रहण कर चुके थे। फलत: समर्थ गुरु रामदास द्वारा जिस नव चेतना का जागरण महाराष्ट्र मे हुआ था, ठीक वही नव चेतना दशम गुरु के द्वारा पंजाब में भी प्रदीप्त की गयी। हिन्दू-मुस्लिम-समन्वय का दृष्टिकोण फीका पड़ चुका था, अत: हिन्दू जाति के ही विविध वर्गो को समन्वित शक्ति के रूप में विकसित करने का प्रयत्न किया गया।

गुरु-परम्परा ने कभी मानव-मानव के बीच भेद को अंगीकार नहीं किया था। अनेक मुसलमान भी सिक्ख धर्म में दीक्षित हुए थे। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू जाति को सबल

---

१. डॉ० महीप सिंह, गुरु गोविन्द सिंह :-एक युग व्यक्तित्व, पृ० १३३

और संगठित करने के मूल में न तो धार्मिक संकीर्णता थी और न ही वह अनुदारता जो मुगल शासकों में उस समय दिखाई पड़ती है। दशम गुरु ने मानव-जीवन में व्याप्त अनेक विषमताओं का केवल खण्डन ही नहीं किया, वरन् नये मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। जहाँ वे युद्धरत सैनिक हैं, वहाँ वे अपने पक्ष की विजय और पर पक्ष की पराजय की कामना करते है; परन्तु उनके महामानव रूप में उनका निखरा हुआ व्यक्तित्व बड़ा महिमाशाली है। यहाँ वे शत्रु-मित्र, स्वधर्मी-परधर्मी और स्वदेशी-विदेशी किसी भी भेद को स्वीकार नही करते। मानवमात्र की समता और सभी में एक ज्योति की प्रतिष्ठा मे उनकी दृढ़ आस्था है।

इस प्रकार जहाँ गुरु गोविन्द सिह वीर-योद्धा, योद्धा-भक्त, सन्त, समाज-सुधारक, राष्ट्र-निर्माता, समन्यवादी और महामानव के रूप में हमारे सामने आते हैं, वहाँ वे एक महान् कवि और कवियों के संरक्षक के रूप मे लब्ध प्रतिष्ठ हैं। अपने सम्पूर्ण संघर्षमय जीवन के बीच भी उनकी वाणी न तो कभी मन्द हुई, न उनका विद्या-प्रेम रुका और न साहित्य-सृजन का क्रम टूटा। संघर्ष के उपरान्त काव्य-सृजन के वातावरण में पहुँच जाना एक अलौकिक व्यक्तित्व का ही निदर्शक है। उनके दरबारी कवियों पर उनके दृष्टिकोण और साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। अतः यहाँ उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर भी दृष्टिपात कर लेना वाँछनीय है।

कवि-व्यक्तित्व—युग-पुरुष गुरु गोविन्द सिंह अलौकिक प्रतिभा लिए दिव्य प्रकाश-पिण्ड के समान प्रकट हुए तथा उन्होंने एक सजग साहित्यकार की भाँति हर क्षेत्र को सुदूर कोनो तक प्रकाशित किया। उनका महान् व्यक्तित्व हिन्दी-साहित्य में वरदान के समान उदित हुआ। उन्होंने विविध जटिलताओं में उलझी मानव-चेतना को दिशा प्रदान की तथा उसकी जड़ता को गति दी। वे भारतीय सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे। यद्यपि अतीत के प्रति उन्हें कोई विशेष मोह नही था, फिर भी उनके हृदय में आर्य-संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा थी। उस अतीत संस्कृति मे ही उनको मानवता का महान् दर्शन हुआ था और उनका यह दृढ़ विश्वास था कि यह सांस्कृतिक उत्थान ही भारतीय जीवन को दिव्य बना सकता है।

गुरु गोविन्द सिंह ने अल्पवय में ही फारसी, हिन्दी (ब्रज) तथा पंजाबी पर समान अधिकार प्राप्त कर लिया था। फारसी में उनके बहुत-से 'शेर' भी प्राप्त हैं। उन्होंने औरंगज़ेब को जो पत्र लिखा था उसमें लगभग एक सौ 'शेर' थे, जो फारसी भाषा में ही हैं।[1] पंजाबी में तो उन्होंने 'चण्डी दी वार' नाम से एक काव्य ही प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं का बहुत बड़ा भाग गुरु-परम्परा के अनुसार हिन्दी (ब्रज-भाषा) में है। कवित्व की दृष्टि से इन तीनों भाषाओं में रचना कर सकना एक अलौकिक प्रतिभाशाली कवि-व्यक्तित्व का ही कार्य है। उनकी ब्रजभाषा की रचनाएँ निम्नलिखित है:—

१. 'शेरों' के लिए द्रष्टव्य, डॉ० महीप सिंह, गुरु गोविन्द सिंह : एक युग व्यक्तित्व, पृ० ६४-६७

१. **जाप साहब**—यह विष्णु सहस्रनाम के ढंग की स्तोत्र-शैली में रचित कृति है, जिसमें ईश्वर का निर्गुण रूप ही अधिक स्पष्ट हुआ है।

२. **अकाल स्तुति**—यह भी एक स्तोत्र-ग्रन्थ है, जिसमें अकाल-पुरुष की स्तुति है।

३. **विचित्र नाटक**—इसमें दशम गुरु ने अपने पूर्वजन्म की कथा बताई है और वर्तमान जीवन का उद्देश्य स्पष्ट किया है।

४. **चौबीस अवतार**—इस रचना में विष्णु के चौबीस अवतारों का निरूपण है। ब्रह्मावतार और रुद्रावतार की कथाएँ विचित्र नाटक मे संकलित हैं।

५. **चण्डी चरित्र**—यह 'दुर्गा सप्तशती' का अनुवाद है।

६. **चण्डी दी वार**—यह दुर्गा सप्तशती का वीरकाव्य के रूप में रूपान्तर है।

७. **ज्ञान-प्रबोध**—इसमें ईश्वर की व्यापकता, निराकारता, संसार की नश्वरता के साथ ही देवतावाद का उपहास तथा व्रत-तीर्थ आदि का खण्डन है।

८. **शब्द-हजारे**—इस रचना में सत्य धर्म का प्रतिपादन है।

९. **तेतीस सवैये**—इसमें वैदिक धर्म तथा इस्लाम की आलोचना है।

१०. **शस्त्रनाममाला**—इस रचना में तत्कालीन प्रचलित शस्त्रों की सूची एवं उनके पर्याय दिये गये हैं।

११. **चरित्रोपाख्यान**—इसमें ४०४ प्रेमाख्यान हे, जिनमें स्त्री-चरित्रों का विश्लेषण किया गया है और निष्कर्ष रूप में सदाचार का उपदेश है।

१२. **कुछ फुटकर कवित्त-सवैये**—इसमें विविध विषयों से सम्बन्धित कुछ कवित्त-सवैये संकलित हैं।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त इनकी "ज़फरनामा" और हिकायत नामा फारसी में लिखी गई कृतियाँ हैं। वस्तुत: ऊपर की अधिकतर हिन्दी कृतियाँ दशम ग्रन्थ के अन्तर्गत ही सम्मिलित हैं और गेय-रूपक की शैली में प्रस्तुत की गयी हैं। डॉ० धर्मपाल आष्ठा और डॉ० हरिभजन सिह आदि विद्वान् सम्पूर्ण दशम ग्रन्थ को गुरु गोविन्द सिंह की रचना मानते हैं। इतिहासकार कनिंघम, मैकालिफ और उनके अनुवर्ती विद्वानो ने 'दशमग्रन्थ' की कृतियों को गुरु गोविन्द सिह की रचना माना है और शेष को दरबारी कवियों की समर्पित रचना। यह एक विवादास्पद विषय है। वस्तुत: यह मतभेद चरितोपाख्यानो को लेकर उठा है। किन्तु इन चरित्रोपाख्यानों के उद्देश्य की ओर ध्यान दिया जाये तो निश्चय ही ये दशम गुरु की रचना सिद्ध होंगी। जैन-परम्परा में इस प्रकार के अनेक स्त्री-चरित्र मिलते हैं और उनके माध्यम से सदाचार का उपदेश दिया गया है। संस्कृत में भी 'शुक-सप्तति' इसी प्रकार की रचना है और उसका उद्देश्य भी स्त्री-चरित्र की विकृतियों का विश्लेषण करके श्रोता को उन बुराइयों से बचने का निर्देश देना है। दशम गुरु यथार्थ जीवन के सूक्ष्म द्रष्टा थे। अत: उन्होंने अपने शिष्यों और अनुयायियों को स्त्री-चरित्र का वास्तविक रूप दिखाकर उनके प्रेम-प्रपंच से बचने का अप्रत्यक्ष निर्देश किया

है। सन्त-जीवन की परम्पराएँ भी इस प्रकार के उपदेश का समर्थन करती हैं। इसलिए डॉ० अष्टा और डॉ० हरिभजन सिंह[1] के मत अधिक मान्य हैं।

श्री चन्द्रकांत बाली ने गुरु गोविन्द सिंह की सम्पूर्ण रचनाओ के रूपों का निर्धारण निम्नलिखित रूप में किया है—

१. महाकाव्य	—	चौबीस अवतार।
२. खण्ड काव्य	—	चण्डी-चरित्र, चण्डी दी वार।
३. एकार्थ काव्य	—	राधामान कथनम्।
४. प्रवन्ध काव्य	—	कृष्णावतार, रामावतार आदि।
५. मुक्तक काव्य	—	शब्द हजारे, तेतीस सवैये।
६. कोशकाव्य	—	शस्त्रनाम माला।
७. गेय नाटक	—	विचित्र नाटक।
८. वीरगाथा काव्य	—	चण्डी-चरित्र, चण्डी दी वार।
९. प्रेमाख्यान	—	पख्यान चरित्र, राधामान कथनम्।
१०. रीतिमुक्त काव्य	—	कृष्णावतार।[2]

दशम गुरु की इन सम्पूर्ण कृतियों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर उन्होंने गुरु-परम्परा से चली आती हुई निर्गुणोपासना एवं भक्ति-भावना को प्रश्रय दिया है और दूसरी ओर उन्होने जन-जीवन मे नयी चेतना के संचार के लिए उसकी पौराणिक पृष्ठभूमि का प्रचुर उपयोग किया है। इस पौराणिक पृष्ठभूमि को अपनाते हुए भी उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को ही महत्त्व दिया है। उसके सगुण रूप का चित्रण अवतारों में अवश्य हुआ है, परन्तु उनका उद्देश्य सगुण का निराकरण किए बिना निर्गुण ब्रह्म की महत्ता का प्रतिपादन था। उनकी समन्वयवादी दृष्टि केवल राष्ट्रीय एकता की प्रतिष्ठा में ही व्यक्त नहीं हुई है, अपितु अपने काव्य-जगत् में भी उन्होंने इसी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय दिया है। युद्ध का नेतृत्व तो अकाल-पुरुष ही करता है। पौराणिक अवतार उन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अनिवार्यतः ग्राह्य थे, क्योकि वे परम्परागत रूप में ईश्वरीय शक्ति का आभास दुष्टों के संहर्ता तथा अत्याचार-विरोधी के रूप में देते आ रहे थे। 'अकाल-पुरुष' निर्गुण ब्रह्म से भिन्न नही है, परन्तु युद्ध में तो वह कृपाणधारी ही बनता है। 'चण्डी' को वे एक शक्ति के ही रूप में ग्रहण करते हैं और निर्गुण ब्रह्म की शक्तियाँ तो उनके दृष्टिकोण के अनुसार सम्पूर्ण जगत् एवं मानव-सृष्टि में व्याप्त हैं। भक्त और योद्धा के विरल गुणों का सामंजस्य गुरु गोविन्द सिंह के चरित्र में सर्वत्र परिलक्षित होता है और उनकी कृतियाँ इन दोनों ही पक्षों को संतुलित रूप में अभिव्यक्ति देती हैं।

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ५६
—चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २७६-७७
२. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २७८

डॉ० हरिभजन सिंह का मत है कि 'योद्धा कवि गुरु गोविन्द सिंह का मन मुख्यत: अकाल-पुरुष के भैरव रूप के चित्रण और वंदन में रमा है। उसे उन्होंने निर्गुण और सगुण उभयात्मक रूप में अंकित किया है। दशम गुरु ने असुर-विनाशक अवतारों की पौराणिक कथाओं को सीमा से बाहर निकाल कर समसामयिक जीवन के यथार्थ पर भी लागू किया है।'[1]

गुरु गोविन्द सिंह ने ब्राह्मणों का उपहास किए बिना निम्न कही जाने वाली जातियों का सम्मान बढ़ाया है। उन्होंने नारी-चरित्र को भी केवल निम्न रूप में ही चित्रित नहीं किया है। 'चण्डी' का चित्रण भी तो नारी का ही चित्रण है, जिसे उन्होंने 'आदि शक्ति' वीरांगणा के रूप में चित्रित किया है। बाह्याचारों का खण्डन करते हुए उन्होंने प्रेम और ज्ञान पर बल दिया है। नवम गुरु की भाँति सांसारिक नश्वरता के वर्णन द्वारा उन्होंने केवल निर्वेद उत्पन्न न कर जीवन की यथार्थ साधना पर बल दिया है। वे अहंकार को बुरा समझते हैं; किन्तु जीवन के सामान्य स्वरूप के प्रति अरुचि नहीं दिखाते।

गुरु गोविन्द सिंह की कृतियों में जो काव्य-रूप उपलब्ध होते हैं, वे स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक, गेय और आख्यान के साथ-साथ कोश-काव्य का भी सृजन किया है। रीतिकाल के प्रभाव से वे सर्वथा अस्पृष्ट नहीं रह सकते थे और न ही वे गुरु-परम्परा से प्राप्त निर्गुण-भक्ति की भावना से पृथक् हो सकते थे। अत: इन दोनों से प्रभावित रचनाएँ उनके काव्य-सम्बन्धी व्यापक दृष्टिकोण की परिचायक हैं। रीतिकाल की एक प्रमुख काव्य-धारा वीर काव्यों के सृजन की भी रही है और दशम गुरु ने इसे सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

डॉ० हरिभजन सिंह ने लिखा है कि सामान्यत: 'दशम ग्रन्थ' की रचना अलंकार बहुला है। रीतिकालीन चमत्कारवादी प्रवृत्ति से गुरु गोविन्द सिंह भी प्रभावित हैं, किन्तु आश्चर्य की बात है कि उनका भक्ति-काव्य इस प्रवृत्ति से सर्वथा अस्पृष्ट रहा है। पौराणिक प्रबन्धों में भी जहाँ-कहीं ईश-वन्दना या चण्डी-स्तुति का प्रसंग आया है, उन्होंने अपनी चमत्कारवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगा दिया है। सम्भवत: वे भक्ति-काव्य के पुण्यक्षेत्र से चमत्कार को बहिष्कृत ही रखना चाहते हैं।

गुरु गोविन्द सिंह की भक्ति-भावना ही युद्ध-भावना द्वारा प्रभावित नहीं, उनकी काव्य-अभिव्यक्ति भी वीर-काव्य की परम्परा द्वारा प्रभावित है। उन्होंने अपने भक्ति-काव्य के लिए बहुत से छन्द रासो साहित्य से प्राप्त किए हैं। वस्तुत: छन्द-चयन और छन्द-वैविध्य के लिए 'दशम ग्रन्थ' की तुलना यदि किसी और ग्रन्थ से हो सकती है तो वह है 'पृथ्वीराज रासो'।[2]

छन्द की दृष्टि से 'दशम ग्रन्थ' एक कोश जैसा महत्त्व रखता है। इस में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी तथा पंजाबी के अत्यन्त लोकप्रिय छन्दों का प्रयोग हुआ है।

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ६७-६६

२. वही, पृ० ८०-८१

छन्द-प्रयोग की दृष्टि से गुरु गोविन्द सिंह अपने पूर्ववर्ती गुरु-कवियों से सर्वथा भिन्न हैं। छन्दों का इतना वैविध्य और छन्द-निर्वाह का इतना निर्दोष रूप इससे पहले देखने में नहीं आता। उन्होंने तीन मात्राओं के एकाक्षरी छंद से लेकर ४७ मात्राओं के कवित्त तक छोटे-बड़े अनेक छन्दो का प्रयोग किया है। इनमें वार्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्द हैं।[1]

अलंकार की दृष्टि से 'दशम ग्रन्थ' एक अपूर्व रचना है। ११० अलंकारों के भेदोपभेदों के सभी पुष्ट एवं सुन्दर उदाहरण इसमें उपलब्ध हैं। कही-कही तो एक-एक पद में दस-दस, बारह-बारह, अलंकारो का एक-साथ प्रयोग हुआ है।

पूरे 'दशम ग्रन्थ' में प्रसाद गुण का अखण्ड राज्य है, पर उसमें ओज तथा माधुर्यगुण के चमत्कारपूर्ण प्रयोगों की भी कमी नही है। शृंगार रस के स्थलों के अतिरिक्त अनेक संगीत-छन्दों मे माधुर्यगुण है और वीर-रस के प्रसंगों तथा अन्य संगीत-छन्दों में पर्याप्त ओजगुण विद्यमान है।

भाषा के महान् कोश 'दशम ग्रन्थ' में व्रजभाषा की विशाल पृष्ठ-भूमि पर अवधी, पंजाबी, राजस्थानी, संस्कृत और प्राकृत शब्दों के अतिरिक्त अनेक ऐसे नवीन शब्दों का चयन किया गया है जो नाद-सौंदर्य के साथ-साथ संगीत एवं रस को भी स्फुटित करते हैं।[2]

दशम गुरु का कवि-व्यक्तित्व इतना बहुमुखी और विविधतापूर्ण है कि उनकी काव्य-प्रतिभा का सहज अंकन सम्भव नहीं है। उनके इस कवि-व्यक्तित्व में भक्तिकाल और रीतिकाल का अपूर्व संगम हुआ है। रीतिकाल की रीतिमुक्त एवं वीरकाव्य की ये दो धाराएँ भी उनकी कृतियों में समाविष्ट दिखाई पड़ती हैं। सन्तों की मुक्तवाणी के साथ-साथ मर्यादा में बँधी पौराणिक वाणी के स्वर भी उनकी कृतियों में झंकृत होते हैं। अपनी प्रत्येक प्रकार की रचना को उन्होंने सम्बद्ध काव्य-शैलियों के अनुरूप ही ढाला है। कहीं वे प्रबन्ध-काव्य का रूप ग्रहण करती हैं और कहीं मुक्तक का। कहीं वे अनलंकृत हैं, कहीं अलंकारों की बहुलता से सुसज्जित, कहीं वे लोक-गीति की ध्वनि मुखरित करती हैं और कहीं काव्य-गीति की, कहीं वे उपदेशात्मक रूप ग्रहण करती हैं और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से श्रोताओं के हृदय में विविध रसों का संचार करती हैं। जिस प्रकार सन्त, योद्धा और कवि की त्रिधारा उनके व्यक्तिगत जीवन में प्रवाहित होती है उसी तरह भाव-जगत् में भी इसी त्रिधारा के कल-कल स्वर सुनाई पड़ते हैं। जिस प्रकार राष्ट्र-निर्माता और महामानव के रूप में उनके भौतिक कार्य मूल्यवान् हैं, उसी प्रकार एक महाकवि के रूप में भी उनका व्यक्तित्व सबसे पृथक् दीप्तिमान् दिखाई पडता है।

कवियों के आश्रयदाता एव सहृदय—प्रथम नानक से लेकर पंचम गुरु अर्जुनदेव तक गुरुओं का जो दरबार लगता था वह मुख्यत: सन्तों, भक्तों और शिष्यों का ही था। स्वयं प्रथम गुरु नानक ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा की थी और भारतीय विचारधारा के

१. डॉ० धर्मपाल अष्टा, दशम-ग्रन्थ का कवित्व, पृ० २६६-२७५
२. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८०

अनेक साधु-सन्तो का सत्संग किया था। 'जनम साखी' के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि वे अपनी यात्रा में सन्त-समागम के लिए मक्का-मदीना तक हो आए थे। निश्चय ही, इन सत्सगों के अवसर पर उन्हे अनेक सन्तो से सम्पर्क का सुयोग प्राप्त हुआ होगा और उनसे पारस्परिक वैचारिक आदान-प्रदान भी हुआ होगा तथा वे स्वय नये-नये भजनो का सृजन करते रहे होगे। पचम गुरु अर्जुनदेव ने गुरुओं की वाणी को विधिवत् सकलित करके उसे 'आदि ग्रन्थ' का नाम दिया। इससे पूर्व गुरुओं की वाणी सचिकाओ के रूप में विद्यमान थी। इन सचिकाओ मे गुरुओ की वाणी के अतिरिक्त अन्य सन्तो की वाणियाँ भी सकलित है। 'आदि ग्रथ' में इन गुरुओ और अनेक अन्य सन्तों की जो वाणियाँ संकलित की गई हैं, वे मूलतः निर्गुण भक्तिपरक है। इसमें गुरु-वाणी के अतिरिक्त सत्ता-बलवंड, सधना, सुंदर, सूरदास, सेना, कबीर, जयदेव, त्रिलोचन, धन्ना, नामदेव, परमानद, पीपा, फ़रीद, बेनी, भीखन, मरदाना, रविदास तथा रामानन्द के पद संकलित हैं। इन पदों की संख्या ९२५ है। इसमें कल्ह और जल्हण से लेकर भीखा तक सत्रह कवियों के पद हैं। ये पद मुख्यतः प्रथम गुरु से लेकर पचम गुरु तक से सम्बन्धित है। 'आदि ग्रन्थ' का यह संकलन स्पष्ट करता है कि सिक्ख गुरु न केवल विद्या-प्रेमी और सहृदय थे; अपितु वे साहित्य को सुरक्षित रखने का भी प्रयत्न करते थे। गुरु अर्जुनदेव तक सन्त-समागम का रूप अलग था, किन्तु जब गुरु हरिगोविन्दराय ने शस्त्र धारण कर गुरु-गद्दी को राजसी आन-बान से सम्पन्न करना आरम्भ कर दिया, तब सन्तों के सत्सग की जगह कवियों के सत्संग ने महत्त्व प्राप्त कर लिया।

दशम गुरु के समय तक गुरु-दरबार मे कवियों का जमघट-सा लग गया। इसके मूल में एक ओर सिक्ख गुरुओं का विद्या और काव्य के प्रति असीम प्रेम था और दूसरी ओर औरंगजेब के क्रूर कृत्यों की प्रतिक्रिया थी, जिसके कारण अनेक हिन्दू कवि मुगल-दरबार का परित्याग करके गुरु-दरबार मे आ गये थे। अकबर से लेकर शाहजहाँ तक मुगल दरबार भी कवियों को प्रश्रय देता रहा। दारा तो कवियों और विद्वानों का बहुत बड़ा आश्रयदाता था। जब ये कवि आश्रय की खोज में इधर-उधर जाने लगे तो उस समय अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कवियों ने आश्रयदाता का भी चयन कर लिया। वीर काव्य के प्रणेता, राजपूत राजाओं का आश्रय न लेकर शिवाजी के आश्रय में पहुँचे। वीर रस के कुछ कवि छत्रसाल के यहाँ गए और इसी प्रकार के अनेक ओजस्वी कवि गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में भी पहुँचे। स्वभावतः धर्म-रक्षक, संघर्षशील दशम गुरु के दरबार में उनको आदर और जीविकोपार्जन का साधन मिला।

दशम गुरु स्वयं महाकवि थे। एक ओर उन्होंने गुरु-परम्परा से प्रेरित होकर निर्गुणवाणी का सृजन किया, जिसकी आशा दरबारी कवियों से नहीं की जा सकती थी, और दूसरी ओर उन्होंने पौराणिक चरितों और वीर गाथाओं को मौलिक या अनूदित रूप में प्रस्तुत किया। अतः उनके दरबार में उन कवियों को, जिनमें उनके सदृश निर्गुणोपासना और वीरता की काव्य-प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं, जीविकोपार्जन का पर्याप्त साधन प्राप्त हो गया। दशम गुरु ने उनकी मौलिक प्रतिभाओं को भी संरक्षण दिया और दूसरी ओर 'महाभारत' के रूपान्तर का कार्य भी उन्हे सौंपा। वीर-काव्य के रूप में महाभारत का

स्थान सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अद्वितीय है, गीता भी उसी में समाविष्ट है। वह युद्ध, धर्म-युद्ध था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि अपने शिष्यो और नवचेतना-सम्पन्न हिन्दू जनता के लिए वे 'महाभारत' तथा अन्य उत्तम संस्कृत-साहित्य को जनता की भाषा में प्रस्तुत कर उस महान् लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रयत्न करते, जिसके लिए वे स्वयं संघर्ष कर रहे थे।

गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में ५२ और कभी-कभी उससे भी अधिक कवि आते-जाते रहते थे। उन्होंने न केवल इनको आश्रय दिया, बल्कि उनकी कृतियों को सुरक्षित भी रखा। कवियों की रचनाओं का यह वृहत् संकलन 'विद्याधर' के नाम से प्रसिद्ध है।

कवि स्वभावतः सहृदय होता है। जिस संहृदयता से उन्होंने काव्य-सृजन की प्रेरणा दी, उसी सहृदयता से उन्होंने उन कृतियों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न भी किया। कठिन संघर्ष के समय जब उन्हें आनन्दपुर छोड़ना पड़ा तब भी वे 'विद्याधर' को बचाने का प्रयत्न करते रहे। उसका कुछ अंश उन्होंने बचा भी लिया। यह तथ्य ही इस बात का साक्षी है कि विद्यानुरागी एवं सहृदय दशम गुरु इस साहित्यिक सम्पदा को अत्यधिक महत्त्व देते थे। अपने विचारों में वे इतने अधिक उदार थे कि निर्गुण-भक्ति, वीर-काव्य और पौराणिक चरितों के अतिरिक्त भी तत्कालीन ब्रजभाषा साहित्य में प्रचलित रीतिकालीन प्रवृत्तियो से सम्पन्न कृतियों का सहृदयतापूर्वक सम्मान करते थे। अपनी बहुमुखी काव्य-प्रवृत्तियों के अनुसार ही वे विविध कवियों के सहृदय संग्राहक बन गए थे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि गुरु गोविन्द सिंह का व्यक्तित्व उस युग की सम्पूर्ण आन्तरिक और बाह्य उत्तम प्रवृत्तियों का ज्वलन्त प्रतीक बन गया। योद्धा, सन्त, भक्त, कवि, राष्ट्र-निर्माता और महामानव के रूप में वे तत्कालीन उन सम्पूर्ण प्रवृत्तियों के प्रतिमान बन गए थे, जिनसे एक ओर राष्ट्रीय नेतृत्व सम्पन्न होता है और दूसरी ओर सांस्कृतिक चेतना का नवोन्मेष होता है। उस युग में हमें केवल योद्धा मिलते हैं, केवल कवि मिलते हैं, केवल सन्त और भक्त मिलते हैं, परन्तु गुरु गोविन्द सिंह के सदृश बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न किसी अन्य व्यक्तित्व के दर्शन नहीं होते।

द्वितीय अध्याय

गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि

औरंगजेब के सम्राट् बनते ही मुगल-दरबार से कवियों का पलायन आरम्भ हो गया था। इन कवियों को आश्रय की खोज थी और इनमें से कुछ गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में भी आए। दारा के दरबारी कवियों में से आश्रय ग्रहण करने के लिए जो कवि दशम गुरु के पास आए, उनमें नन्दलाल, प्रहलाद और हंसराम बाजपेयी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस कथन से यह समझ लेना भूल होगी कि उस समय पंजाब या हिमालय के पर्वतीय शासकों के दरबार में कवियों की पहुँच तभी हुई, जब वे दिल्ली दरबार से निराश्रित कर दिये गये। वस्तुतः सम्पूर्ण मध्ययुग में, राजकीय कर्त्तव्यों के अतिरिक्त, कवियों और विद्वानों को प्रश्रय देना भी राज्य का एक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य माना जाता था। शांतिकाल में दरबारों की शोभा ये कवि और विद्वान् ही थे। जिस दरबार में जितने अधिक योग्य विद्वान् और जितने अधिक उच्चकोटि के कवि होते थे, उसका आदर जन-हृदय में भी स्वाभाविक रूप से उतना ही बढ़ जाता था। यही कारण है कि मुस्लिम शासकों ने भी इस परम्परा को बनाए रखा। फिरदौसी को पुरस्कृत न करने वाले फारस के शाह की जो निन्दा हुई थी उससे भी ये शासक परिचित थे। यह एक अलग बात है कि वे विद्वान् एवं कवि फारसी के हों या अन्य भाषाओं के।

पंजाब में दरबारी कवियों की परम्परा

श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी के मतानुसार पंजाब-प्रान्तीय दरबारी हिन्दी कवियों की गणना दस वर्गों[1] के अन्तर्गत की जा सकती है—

१. पंजाब में उत्पन्न और पंजाबी अधिपतियों के आश्रय में रहने वाले कवि।

२. अन्यत्र पैदा हुए और पंजाब में आश्रय लेने वाले कवि।

३. दरबारों के अन्य सेवक जो अपनी कवि-प्रतिभा से विभिन्न दरबारी आयोजनों के समय रचनाएँ प्रस्तुत करते थे।

४. अन्य प्रदेशों से आने वाले कर्मचारी, किन्तु प्रतिभाशाली कवि जो अपने स्वामी को रचनाएँ भेंट करते थे।

५. पंजाब में उत्पन्न और इतर प्रदेशीय नृपों के आश्रय में रहने वाले कवि भी कभी-कभी अपनी रचनाएँ भेंट कर देते थे।

---

१. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी का लेख, 'गुरु गोविन्द सिंह और उनके दरबारी कवि' (१), 'सरस्वती', जनवरी १९६७, पृ० ४६-५६

६. कुछ दरबारी लोग भी साहित्यिक अभिरुचि के कारण कविताएँ प्रस्तुत करते थे।
७. सामन्तों के आश्रित वे कवि जो बड़े दरबार में अपनी रचनाएँ भेंट करते थे।
८. सामन्त या सम्पन्न वर्ग के कवि जो आदरार्थ अपनी रचनाएँ ऊपर के शासकों को समर्पित करते थे।
९. राजा या राजकुल के रचनाकार।
१०. वे जागीर प्राप्त साधु महात्मा जो दरबारी तो न थे, लेकिन समय-समय पर अपनी रचनाएँ दरबार में प्रस्तुत करते थे।

पंजाब के दरबारी हिन्दी-कवियों में 'मसऊद-सा-अद्-बिन सुलेमान' का नाम प्रथम स्थान पर आता है, जो महमूद गज़नवी के दरबार का एक प्रसिद्ध रत्न था। महमूद गज़नवी का शासन-काल १०५७-१०९८ ई० तक है। मसऊद ने फारसी, तुर्की तथा हिन्दी इन तीन भाषाओं में तीन दीवान रचे थे। उसका 'फारसी दीवान' तो प्रकाशित है, किन्तु अन्य रचनाएँ उपलब्ध नहीं है। दूसरा प्रसिद्ध नाम अमीर खुसरो का है, जिसका जन्म १२७३ ई० माना जाता है। खुसरो बलबन के पुत्र मुहम्मद के साथ आए थे, जिसे वहाँ का सूबेदार बनाकर भेजा गया था। खुसरो को राज्य-कवि का पद मिला था। इनके दो सुखुंन, मुकरियाँ, पहेलियाँ और कुछ गेयपद उपलब्ध हैं।[1]

गुरु अमरदास ने जब गुरु रामदास को गुरु-गद्दी का भार सौंपा तो कवि सुन्दरदास ने उसका विवरण अंकित किया। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में 'रामकली' राग की वाणी के अन्तर्गत यह विवरण सद् नाम से संपादित है। 'सद' नामधारी रचनाएँ पंजाबी में करुण गीतों की कोटि में आती हैं। सुन्दर का 'सद' हुलास-छन्द में लिखा गया है।

'गुरु ग्रन्थ साहब' में भी गुरु-दरबार से सम्बन्धित १६ भाटों की रचनाएँ संकलित हैं। इनमे 'कल्ह' कवि तो गुरु अर्जुनदेव के समकालिक हैं। गुरु अर्जुनदेव के प्रतिद्वन्द्वी 'मेहरबान' तथा उनके आश्रित कवियों में से 'दरबारी' कवि का नाम भी उल्लेखनीय है। भाई गुरुदास सिख सम्प्रदाय के व्यास कहे जाते है। वे किसी-न-किसी प्रकार गुरु-दरबार से सम्बन्धित रहे हैं। छठे गुरु हरिगोविन्द के दरबार में नत्थमल तथा अब्दुल्ला नाम के 'ढाढी'[2] प्रसिद्ध थे। ये 'वार'[3] संज्ञा वाली रचनाएँ बनाते और गाते थे। डॉ० हरिभजनसिंह ने 'वार-काव्य' को विशुद्ध पंजाबी-परम्परा का काव्य माना है। 'वार' में किसी युद्ध-नायक के शौर्य-कर्म का स्तवन नाटकीय शैली में प्रस्तुत किया जाता है। सत्ताबलवंड की

---

१. 'सरस्वती', जनवरी ६७, पृ० ४८-४९

२. ढाढी का शाब्दिक अर्थ ढोल बजाकर गाने वाला होता है, किन्तु गुरुवाणी में ढाढी शब्द का प्रयोग सुषुप्त जनमानस को उद्बोधन प्रदान करने वाले गुरुभक्त के लिए किया गया है।

३. सम्भवत: 'वार' संस्कृत के वारण (√ वृ + णिच् + ल्युट्) का ही रूपान्तर है जिसका अर्थ है रोक, रुकावट, अड़चन, सामना, बचाव, रक्षा आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि वारण शब्द का सम्बन्ध रक्षा या सामना करने से सम्बन्धित होने के कारण उससे व्युत्पन्न वार शब्द 'युद्ध' या 'युद्ध-वर्णन' के अर्थ में रूढ़ हो गया है।
—द्वारिका प्रसाद शर्मा, संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ

'रामकली की वार' इसी परम्परा की क्षीण प्रतिध्वनि है।[1]

पर्वतीय राजाओं में राजा राजरूप सिंह का बड़ा पुत्र मान्धाता योद्धा होने के साथ ही कवि भी था। 'गंभीर राय' द्वारा रचित गीतियों का लगभग आधा अंश इसी का लिखा हुआ है।

सैफाबाद (बहादुरगढ़) के नवाब सैफखां गुरु तेगबहादुर के परम भक्त थे। उन्होने हिन्दी में 'रागदर्पण' लिखा। 'गोरा बादल की कथा' लिखने वाले जटमल कवि का जन्म भी लाहौर में हुआ था। यह जलालपुर के नवाब शाहबाज खां का आश्रित था। लाहौर के बरदायी घराने में उत्पन्न राजा ज्वालानाथ के भी कुछ मुक्तक पद उपलब्ध है।[2]

इस विहंगम दृष्टिपात से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर पंजाब के मुस्लिम शासकों और नवाबों के दरबारों मे तथा दूसरी ओर गुरु-दरबार में अनेक कवि आते-जाते रहते थे, और उनका सम्मान होता था। 'सत्ता' और 'बलवंड' द्वारा लिखित 'रामकली की वार' में भी प्रथम पाँच गुरुओं का स्तवन हुआ है। गुरु हरिगोविन्द के बाद जब सिक्ख दरबार ने राजकीय स्वरूप ग्रहण किया तो दरबारी कवियों का समागम भी पुष्टि प्राप्त करता गया। जब दशम गुरु गोविन्द सिंह गद्दी पर बैठे तो उस समारोह में भी कवियों ने आशीर्वाद दिया था। इसका स्पष्ट उल्लेख सुखा सिंह कृत 'गुरु विलास' में मिलता है।[3]

गुरु गोविन्द सिंह का दरबार

गुरु-गद्दी सम्भालने के उपरांत गुरु गोविन्द सिंह का प्रारम्भिक समय पाँवटा और आनन्दपुर में ही व्यतीत हुआ था। मुख्य रूप से उनका दरबार आनन्दपुर का दरबार ही कहलाता है। गुरु तेगबहादुर के बलिदान के बाद दशम गुरु ने एक ओर शस्त्र को महत्त्व दिया और दूसरी ओर शास्त्र को। पाँवटा में रहते हुए ही सं० १७५१ में उन्होंने भाई वीरसिंह, रामसिंह आदि पाँच सेवकों को संस्कृत-अध्ययन के लिए काशी भेजा था। 'दशम ग्रन्थ' तो स्वयं गुरु गोविन्द सिंह की देन है। किन्तु उनके दरबारी कवियों की समन्वित देन 'विद्याधर' या 'विद्यासागर'[4] के नाम से प्रसिद्ध है। इसके हस्तलिखित पन्नों का भार

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ४७३-७४

२. सरस्वती, जनवरी १९६७, पृ० ५२

३. इम विधि सौ उपमा करी कहि कवि अनिक प्रकार। सुखी भए महाराज कह, भाँगहु सकल सुधार।
—गुरु विलास, पृ० १००

४. बावन कवि हजूर गुर रहति सदा ही पास। आवैं जाहि अनेक ही, कहि जस, ले धन रास॥
तिन कवियन बानी रची लिखि कागद तुलवाय। नौ मण होए तोल महिं सूखम लिखत लिखाय॥
विद्याधर तिस ग्रन्थ को नाम धर्‍यो करिप्रीत। नाना विधि कविता रची रखि-रखि नौ रस रीत॥
मच्यो जंग गुर संग बड रह्यो ग्रन्थ सो बीच। निकसे आनन्दपुर तज्यो लुट्‍यो पुन मिलि नीच॥
प्रथक-प्रथक पत्रे हुते लुट्‍यो सु ग्रन्थ बखेर। इक थल रह्यो न, इम गयो जिसते मिल्यो न फेर॥
बाहठ पत्रे कहूँ ते रह्यो अनन्दपुरि माहि। तिनते लिखे कवित्त इहु गुर जसु वरन्यो जाहि॥
—गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२३

नौ मन कहा जाता है और इस संकलन में भारतीय दर्शन, पुराण तथा इतिहास की विभूतियों का भाषा रूपांतर संगृहीत था। आनन्दपुर पर आक्रमण के समय इसका बहुत-सा अंश नष्ट हो गया था। अब मूल रचना तो उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसके विकीर्ण अंश यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। सिक्ख सम्प्रदाय में गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवियों की 'हजूरी कवि' संज्ञा रही है। गुरु गोविन्द सिंह के सर्वप्रथम आत्मजीवन-चरित 'गुरु-शोभा' की रचना उन्ही के एक हजूरी कवि सेनापति द्वारा हुई थी। उनका दूसरा जीवन-चरित 'गुरु विलास' उनके स्वर्गारोहण के ८९ वर्ष उपरान्त १७३९ ई० में सुखा सिह द्वारा लिखा गया। इस चरित काव्य में भी 'हजूरी कवियों' का स्पष्ट संकेत है। 'गुरु विलास' के ४६ वर्ष बाद भाई संतोखसिंह द्वारा 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' की रचना १८४३ ई० में हुई। उन्होंने भी अपने ग्रन्थ में दरबारी कवियों का उल्लेख किया है और उनकी बिखरी हुई वाणी को एकत्रित करने का प्रयत्न किया है। 'गुरुशब्द-रत्नाकर' के लेखक ने भी इन छन्दों को प्रामाणिक मानते हुए यथास्थान उद्धृत किया है।

भाई सन्तोखसिंह ने अपने 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में दो कवि गोष्ठियों की चर्चा की है। प्रथम गोष्ठी मे नन्दलाल, सेनापति, उदयराय आदि कवियों ने भाग लिया था तथा दूसरी गोष्ठी में स्वय दशम गुरु के निमंत्रण पर कुवरेश, गुणिया, सुखिया, वल्लभादि कवियों के एकत्रित होने का विवरण मिलता है।[1]

ये गोष्ठियाँ विभिन्न समस्याओं पर विचार करने और उन्हें काव्याभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए होती थीं। इसके अतिरिक्त ये गोष्ठियाँ कभी विशिष्ट समस्यापूर्ति एवं मनोरंजन के लिए और कभी आगन्तुक कवियों से काव्य प्रतिद्वन्द्विता के लिए भी होती थीं। दशम गुरु गोविन्दसिंह स्वय उच्चकोटि के कवि थे और गुरु-परम्परा के अनुसार सेनापति स्वयं अपनी रचनाओं का संशोधन उनसे कराते थे। ये कतिपय तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि दशम गुरु का दरबार गुणियों और कवियो का आकर्षण-स्थल था और कवियों की एक बड़ी संख्या गुरु साहब की योजना के अनुसार काव्य-सृजन एवं भारतीय संस्कृति की अभिव्यंजना करने वाले पौराणिक और शास्त्रीय ग्रन्थों का रूपांतर करती रहती थीं। एक और तथ्य यह है कि विद्या-प्रेमी दशम गुरु अत्यधिक ख्याति प्राप्त रचनाओं की प्रतिलिपियां करवाकर भी अन्य स्थानों से मँगवाते रहते थे। यह आवश्यक नहीं कि मुगल-दरबार में केवल वे ही रचनाएँ संकलित हों जिनके कवि उस समय मुगल-

---

१. श्री मुख ते तबि हुक्म बखाना।
गुनी कवीशर पंडित नाना।
सभिहिनि को हकारि ले आवहु।
जहिं जहिं डेरे तहाँ सिधावहु ॥५॥
सुनि कै सबि तत्काल बुलाए। तिन के देहौं नाम बताए।
केशोदास पुत्र कुवरेश। द्रोण परब जिन कीन अशेष ॥६॥
गुणिया, सुखिया, वल्लभ आयो। ध्यानसिंह गुर दरशन पायो ॥७॥

—गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५५४४

दरबार में विद्यमान रहे होंगे। मुगल-दरबार से पलायन के उपरांत जब कुछ कवि दशम गुरु के दरबार में पहुँचे होंगे तो उन्होंनें ऐसी कृतियों की चर्चा की होगी और सम्भव है कि विभिन्न माध्यमो से उन्होंने वहाँ की कुछ कृतियों की प्रतिलिपियाँ मँगवा ली होंगी। इस धारणा की पुष्टि अध्यात्म प्रकाश की उपलब्धि से होती है। इसकी जो प्रति पंजाब के विभिन्न पुस्तकालयों[1] में उपलब्ध होती है, ठीक वही प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में भी है। आचार्य शुक्ल ने उसे सुखदेव मिश्र की कृति माना है। उन्होंने इसका संकेत नही दिया है कि सुखदेव मिश्र दशम गुरु के दरबार में आए थे। इसके लिए कोई प्रमाण भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। फिर भी 'अध्यात्म प्रकाश' के रचयिता को गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवियों में परिगणित कर लिया जाता है।

यह तो निश्चित् है कि सिक्ख-परम्परा में गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में ५२ कवियों के उपस्थित रहने का उल्लेख किया जाता है। भाई सन्तोख सिंह ने 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रंथ' में हजूरी कवियो के ४३ छन्द उद्धृत किए है और उन कवियों की नामावली प्रस्तुत की है। बाद में कुछ अनुसन्धायकों ने और नाम भी खोज निकाले और इन कवियों की संख्या ५२ और बाद मे ५२ से भी अधिक हो गई। ५२ कवियों की संख्या की धारणा एक रूढ़िमात्र थी। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि गुरु गोविन्द सिह का दरबार अनेक उत्तम कोटि के कवियो का आश्रय-स्थल था।

दरबारी कवियों की संख्या

दशम गुरु के दरबारी कवियों की नामावली का मूल आधार भाई संतोख सिंह की सूची है। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ'[2] के आधार पर यह सूची निम्नलिखित रूप में है—

कवि नाम	उपलब्ध रचनाएँ
१. उदयराय	... ...
२. अणीराय	जंगनामा गुरु गोविन्द सिंह (मौलिक प्रबन्ध)
३. अमृतराय	चित्र-विलास, सभा-पर्व महाभारत (भाषा-रूपातंर) और फुटकर छन्द
४. अल्लु	... ...
५. आसासिंह	फुटकर छन्द

१. (क) रैफ़ैन्स पुस्तकालय, भाषा-विभाग पटियाला, ग्रन्थ-संख्या ३५६
(ख) सिक्ख रैफ़ैन्स पुस्तकालय, अमृतसर, ग्रन्थ-संख्या १२३६
(ग) श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध।

२. भाई सन्तोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, रुत पांच, पृ० ५५६८-५५७५

६. आलम	श्यामस्नेही, आलमकेलि, माधवानल कामकन्दला, सुदामा चरित, ग्रन्थ संजीवन, फुटकर छन्द।
७. ईश्वरदास	फुटकर छन्द
८. सुखदेव	अध्यात्म प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, गुरु महिमा, सामुद्रिक शास्त्र
९. सुखासिंह	... ...
१०. सुखिया	... ...
११. सुदामा	फुटकर छन्द
१२. सेनापति	गुरुशोभा, चाणक्यनीति भाषा, सुखसैन ग्रन्थ।
१३. श्याम	... ...
१४. हीर	फुटकर छन्द
१५. हुसैन अली	फुटकर छन्द
१६. हंसराम	कर्ण पर्व महाभारत (भाषा-रूपान्तर), फुटकर छन्द
१७. कल्लू	... ...
१८. कुवरेश	द्रोणपर्व महाभारत (भाषा-रूपान्तर)
१९. खानचन्द	... ...
२०. गुणिया	... ...
२१. गुरुदास	कथा हीर राँझन की, साखी हीरा घाट की
२२. गोपाल	अनुभव उल्लास
२३. चन्दन	फुटकर छन्द
२४. चन्दा	फुटकर छन्द
२५. जमाल	... ...
२६. टहकन	अश्वमेध पर्व महाभारत (भाषा-रूपान्तर), रतनदाम
२७. धर्मसिंह	पंचतन्त्र, कोकसार
२८. धन्नासिह	फुटकर छन्द
२९. ध्यानसिंह	फुटकर छन्द
३०. नानू	फुटकर छन्द

३६. वल्लभ	... ...
३७. बल्लू	... ...
३८. विधीचन्द	... ...
३६. बुलन्द	फुटकर छन्द
४०. बृष	... ...
४१. बृजलाल	फुटकर छन्द
४२. मथुरा	... ...
४३. मदनसिंह	... ...
४४. मदनगिरि	... ...
४५. भल्लु	... ...
४६. मल्लु	फुटकर छन्द
४७. मालासिंह	... ...
४८. मंगल	शल्यपर्व महाभारत (भाषा रूपान्तर), फुटकर छन्द
४६. राम	... ...
५०. रावल	... ...
५१. रोशनसिंह	... ...
५२. लक्खणराय	हितोपदेश भाषा।

भाई वीर सिह ने 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' की टीका करते समय उक्त ग्रन्थ में उल्लिखित ५२ कवियों मे सात नाम और जोड़े हैं।[1] वे इस प्रकार हैं—

१. सुक्खू २. सुन्दर ३. सोहन सिंह ४. दया सिंह ५. मद्धू ६. मानचन्द ७. अचलदास।

जहाँ भाई वीर सिह ने सात कवियों के नाम जोड़कर यह संख्या ५६ तक पहुँचा दी है[2] वहाँ ज्ञानी ज्ञान सिंह ने सात के स्थान पर नौ नाम जोड़कर यह संख्या ६१ तक बढ़ा दी है[3]। वे नौ नाम निम्नलिखित हैं—

१. मद्धू २. रामदास ३. सेना ४. सेखा ५. रामचन्द ६. मानी ७. सुन्दर ८. जान ६. ठाकुर।

ध्यान से देखने पर स्पष्ट होगा कि भाई वीरसिंह और ज्ञानी ज्ञानसिंह की सूची में दो नाम समान हैं। वे है—सुन्दर और मद्धू। इस प्रकार ज्ञानी ज्ञानसिंह की संख्या भी सात ही रह जाती है। अब तीनो सूचियों को मिलाकर यह सख्या ६६ तक पहुँच जाती है।

उपर्युक्त समस्त कवियों के अतिरिक्त श्री देवेन्द्रसिह 'विद्यार्थी' ने ६६ कवियों की इस सूची में ५ कवियों के नाम और जोड़कर[4] यह संख्या ७१ तक बढ़ा दी है। वे नाम

१. भाई सन्तोख सिह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पाद टिप्पणी, पृ० ५५६६
२. भाई वीर सिंह, कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ
३. ज्ञानी ज्ञानसिंह, पंथ प्रकाश—गुरु-दरबारी कवि प्रसंग
४. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी का लेख, सरस्वती, जनवरी १६६७, पृ० ५५

है—१. काशीराम, २. सुकवि, ३. सारदा, ४. भूपति और ५. प्रह्लाद।

श्री प्यारासिंह पद्म ने गुरु-दरबार के ८५ कवियों की सूची प्रस्तुत की है।[1] उन्होंने इससे पूर्व प्राप्त चार सूचियो के ७१ कवियों में से केवल ४६ कवियों को ग्रहण किया है और ३९ नये नाम अपनी ओर से जोड़े हैं, जो इस प्रकार है—

१. देवीदास २. कृपाराम ३. वृन्द ४. गिरधर चन्द ५. गिरधर लाल ६. तनसुख लाहौरी ७. कपूरचन्द त्रिखा ८. गुरदास सिंह ९. दाना १०. केशवदास ११. चौपासिंह १२. मनीसिंह १३. पण्डित नन्दलाल १४. बिहारी १५. जादोराय १६. फत्तमल १७. लाल ख्याली १८. आढ़ा १९. भगतू २०. रायसिंह २१. महासिंह २२. भोजराज २३. जगन्नाथ २४. भगवानदास निरंजनी २५. सागर २६. नंदराम गुणकारी २७. पंडित रघुनाथ २८. ब्रह्म भट्ट २९. मानदास वैरागी ३०. हरिजसराइ ३१. पंडित मिट्ठू ३२. मुशकी ढाढी ३३. छबीला ढाढी, ३४. कर्ता प्राचीन वार ३५. कर्ता प्रेम अम्बोधि ३६. कर्ता अमरनामा ३७. केसो सिंह भट्ट ३८. देसा सिंह भट्ट ३९. नर्वंद सिंह भट्ट।

उपर्युक्त विवेचन के उपरात हमारे सामने गुरु-दरबारी कवियों की निम्नलिखित पाँच सूचियाँ है—

(क) गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ के आधार पर भाई सन्तोख सिंह द्वारा प्रस्तुत गुरु-दरबारी कवियों की सूची,

(ख) भाई वीरसिंह द्वारा प्रस्तुत गुरु-दरबारी कवियों की सूची,

(ग) ज्ञानी ज्ञानसिंह द्वारा प्रस्तुत गुरु-दरबारी कवियों की सूची,

(घ) श्री देवेन्द्रसिंह विद्यार्थी द्वारा प्रस्तुत गुरु-दरबारी कवियों की सूची,

(ङ) श्री प्यारासिंह पद्म द्वारा प्रस्तुत गुरु-दरबारी कवियों की सूची।

श्री प्यारासिंह पद्म द्वारा संयुक्त नामावली में अनेक ऐसे कवियों के नाम हैं जो या तो गुरु गोविन्दसिंह से पहले हुए हैं अथवा उनके बाद। उदाहरण के लिए, आचार्य शुक्ल के अनुसार कृपाराम का समय सं० १५९८ है। इनकी 'हित तरंगिणी' अत्यन्त प्रसिद्ध है। केशवदास का समय १८८२ है। यह पटियाला दरबार के कवि हैं। वृन्द कवि गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में नहीं गए थे, किन्तु सम्भवत: वे १७६१ में कृष्णगढ़-नरेश के साथ औरंगजेब की फौज में ढाका तक गए थे।[2] केवल एकाध प्रशस्ति पद के आधार पर इन्हें दशम गुरु का दरबारी कवि नहीं माना जा सकता।

श्री चन्द्रकांत बाली ने दरबारी कवियों की इस नामावली का विश्लेषण करते हुए भाई मनीसिंह, निश्चलदास, सुखासिंह, सन्त ईश्वरदास, निहाल कवि तथा केशव दास आदि को गुरु गोविन्दसिंह के बाद का कवि माना है।[3] अत: स्पष्ट है कि किसी भी अनुसन्धानकर्ता ने इस विस्तृत सूची को प्रामाणिक नहीं माना है।[4]

१. दि टैथ मास्टर—ट्रिब्यूट्स ऑन टर्-सेन्टिनरि, पृ० १८-१९

२. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५९

३. चन्द्रकांत बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६५-३५५

४. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ४५०

नामावली के वे कवि जिनको रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं—

उपर्युक्त पाँचों सूचियों के आधार पर जिन कवियों के नाम गिनाये गये हैं उनके काल और दशम गुरु के दरबारी होने या न होने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का निर्णय नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इन पाँचों सूचियों की समन्वित नामावली के आधार पर निम्नलिखित कवियों की कोई रचना उपलब्ध नही है—

(क) १. उदय राय, २. अल्लू, ३. कल्लू, ४. गुणिया, ५. जमाल, ६. निश्चलदास, ७. पिण्डीदास, ८. वल्लभ, ६. बल्लू, १०. बिधीचन्द, ११. बुलन्द, १२. वृष, १३. भल्लू, १४. मथुरा, १५. मदनगिरी, १६. मदनसिह, १७. मल्लू, १८. मालासिह, १६. राम, २०. रावल, २१. रोशन सिंह, २२. सुक्खासिह, २३. सुखिया, २४. स्याम, २५. निहाल चन्द।

(ख) १. सुक्खू, २. सोहन, ३. दयासिह, ४. मद्धू, ५. मानचन्द, ६. अचल-दास।

(ग) १. मानी, २. रामदास, ३. जान, ४. ठाकुर, ५. सेखा।

(घ) ... ...

(ङ) १. पं० रघुनाथ, २. निहचल फकीर, ३. ब्रह्म भट्ट, ४. मदनसिंह, ५. मदनगिरी, ६. माला सिंह, ७. मानदास वैरागी, ८. हरिजसराइ, ६. कलूआ, १०. उदयराय, ११. बल्लभ, १२. मथरादास, १३. ठाकुर, १४. पिंडी दास, १५. रामदास, १६. खानचन्द, १७. मद्धू, १८. रावल, १६. सुखिया २०. ब्रिखा, २१. पं० मिट्ठू, २२. मुशकी ढाढी, २३. छबीला ढाढी २४. कर्ता प्राचीन वार, २५. कर्ता प्रेम अम्बोधि, २६. कर्ता अमरनामा, २७. केसो सिंह भट्ट, २८. देसासिंह भट्ट, २६. नर्वद सिह भट्ट।

वे कवि जिनकी रचनाएँ पँजाबी या फारसी में हैं—

(क) नन्द लाल।

वे कवि जिनकी केवल फुटकर रचनाएँ उपलब्ध हैं—

(क) १. आसासिंह, २. चन्दन, ३. चन्द अथवा चन्दा, ४. धन्नासिह, ५. नानू अथवा ननुआ, ६. सुदामा, ७. हीर अथवा हीर भट्ट।

(ख) ... ...

(ग) १. सुन्दर, २. सैना अथवा सैणा।

(घ) १. सारदा (शारदा), २. सुकवि ३. भूपति।

(ङ) १. मनी सिह, २. पं० नन्दलाल, ३. बिहारी, ४. जादा राय, ५. फत्तमल, ६. लाल ख्याली, ७. आढा, ८. भगतु, ६. रायसिह, १०. महासिंह, ११. भोजराज।

वे दरबारी कवि जिनके सम्बन्ध में सभी सूचियाँ सहमत हैं—

१. अणीराय २. अमृतराय ३. आलम ४. ईश्वरदास ५. सुखदेव ६. सुदामा ७. सेनापति ८. हीर ६. हुसैन अली १०. हंसराम ११. कुवरेश १२. गुरुदास १३. गोपाल १४. चन्दन १५. टहकन १६. धर्मसिंह १७. धन्नासिंह, १८. ध्यानसिंह १६. नन्दसिंह २०. बृजलाल २१. मल्लू (मल्ल भट्ट), २२. मंगल २३. लक्खणराय ।

अन्य नए नाम जो ख से ङ तक की सूचियो में उपलब्ध हैं—

१. रामचन्द्र २. सुन्दर ३. सैना (सैणा) ४. सारदा (शारदा) ५. सुकवि ६.भूपति ७. काशी राम ८. प्रह्लाद ।

श्री प्यारासिंह पद्म द्वारा जिन नए कवियों का नाम दरबारी कवियों की सूची में संयुक्त किया गया है उनका उल्लेख हमने पहले ही कर दिया है। उन कवियों में दशम गुरु के समकालिक निम्नलिखित कवि ठहरते हैं—

१. देवीदास   २. गिरिधारीलाल   ३. तनसुख लाहौरी ।

इन तीनों कवियों में देवीदास, गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि सेनापति के गुरु थे, ऐमा इनकी 'राजनीति प्रकाश' से स्पष्ट होता है । यह सम्भव है कि वे भी दशम गुरु के दरबार में कुछ समय तक रहे हों। दूसरे कवि गिरिधारी लाल के 'पिंगल सार' को मैंने स्वयं भाषा-विभाग, पटियाला के पुस्तकालय में देखा[1] और उसके अन्त में दशम गुरु की प्रशस्ति एक दोहे में उपलब्ध हुई। अतः सम्भव है कि ये भी कुछ समय तक दशम गुरु के दरबार में रहे हों। तनसुख लाहौरी का 'राजनीति[2] ग्रन्थ' उपलब्ध है । इसका रचना-काल सं० १७४१ है। इस ग्रन्थ में दशम गुरु के प्रशस्तिपरक कुछ पद अवश्य हैं। दशम गुरु के दरबारी कवि लक्खण के विषय में अनुसन्धान करते समय मुझे उनका जो विवरण प्राप्त हुआ[3], उसके अनुसार लक्खण ने स्वयं राजनीति ग्रंथ लिखा था और उसे तनसुख लाहौरी के पास रणथम्भौर भेजा था । उसी ग्रन्थ के आधार पर तनसुख लाहौरी ने अपना यह राजनीति ग्रन्थ प्रस्तुत किया था। इससे दो तथ्य स्पष्ट होते हैं—एक तो यह कि

---

१. हस्तलेख पिंगलसार, ग्रन्थ-संख्या १२६

२. श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध ।

३. लक्खण कविता में परवीन। हित उपदेश सुभाषा कीन ।
दोहा सोरठा कियो बखान । राजनीति अरु ब्रह्म ग्यान ॥३३१॥
तन सुख छत्री बसै लाहौर । करम रेख आयो रणथंभौर ।
सुत पुन ताके अहें जो तीन । इक नान्हो द्वै बड़े प्रवीन ।
तै भी सेवा गुरकी करहिं । निस बासुर गुरु गुण उचरहिं ।
तिन सों पोथी दई पठाई । रणथंभौर तन सुख पै आई ।
देखत ताको मन मैं आई । कीजै यह दोहा चौपाई ॥३३३॥
—हितोपदेश भाषा (सुरजीत)

तनसुख लाहौरी दशम गुरु के दरबार में नहीं था और दूसरा यह कि उसका राजनीति ग्रन्थ मौलिकता की दृष्टि से संदिग्ध है।

श्री प्यारासिंह पद्म की सूची में अन्य जिन कवियों का नामोल्लेख है उनमे से जगन्नाथ, सागर, नन्दराम गुणकारी आदि के काल के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है और शेष कृपाराम, केशवदास, भाई मनीसिंह आदि दशम गुरु के समकालिक ही नहीं हैं। अतः जब तक अज्ञात काल वाले कवियों के विषय में पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं हो जाता, उन्हें दशम गुरु का दरबारी कवि नही माना जा सकता। वस्तुतः उनकी सूची के अधिकांश कवि परवर्ती हैं एवं पटियाला दरबार से सम्बन्ध रखते है।

प्रह्लाद कवि के विषय में श्री चन्द्रकान्त बाली ने लिखा है कि जब दशम गुरु अविचल नगर गए थे तो वहाँ प्रह्लाद से उनकी भेट हुई थी और उन्होंने उसे 'रहतनामा' लिखने का आदेश दिया था। यह रचना उपलब्ध है और इसमे सिक्ख-मत के कुछ सिद्धान्तों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रह्लाद कवि ने ५० उपनिषदों का भाषारूपान्तर भी किया है, जो मुख्यतः गद्य में है। साहित्यिक दृष्टि से प्रह्लाद के इस भाषारूपान्तर का कोई मूल्य नहीं है। इसीलिए हमने इन गद्य-ग्रंथों को अपने अध्ययन का विषय नहीं बनाया है।

वे दरबारी कवि जिनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं और जिनके सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे दशम गुरु के दरबार में उपस्थित थे

१. अरणीय	जंगनामा गुरु गोविन्द सिह
२. अमृत राय	चित्र बिलास, नवरस, महाभारत भाषा-सभापर्व, फुटकर रचनाएँ
३. आलम	माधवानलकामकंदला, श्याम सनेही आलम-केलि, सुदामा चरित, ग्रंथ संजीवन तथा कुछ फुटकर छन्द।
४. ईश्वरदास	फुटकर छन्द
५. सुखदेव	अध्यात्मप्रकाश, ज्ञानप्रकाश, गुरु महिमा तथा सामुद्रिक शास्त्र।
६. सुदामा	फुटकर छन्द
७. सैंनापति	गुरु शोभा, चाणक्यनीति भाषा, सुखसैनग्रन्थ
८. हीर	फुटकर छन्द
९. हुसैन अली	फुटकर छन्द
१० हंसराम	कर्णपर्व (महाभारत), फुटकर छन्द
११. कुवरेश	द्रोणपर्व (महाभारत)
१२. गुरुदास	कथा हीर राझन की, साखी हीरा घाट की
१३. गोपाल	अनुभव उल्लास

१४. चन्दन	फुटकर छन्द
१५. चन्द अथवा चन्दा	फुटकर छन्द
१६. टहकन	अश्वमेघ भाषा (महाभारत), रतन दाम
१७. धर्मसिंह	पंचतंत्र और कोकसार
१८. धन्नासिंह	फुटकर छन्द
१९. ध्यानसिंह	फुटकर छन्द
२०. नन्दसिंह	नन्दराम पचीसी, कड़खा गुरु गोविन्दसिह
२१. बृजलाल	फुटकर छन्द
२२. मल्लू या मल्लभट्ट	फुटकर छन्द
२३. मंगल	शल्यपर्व (महाभारत), फुटकर छन्द
२४. लक्खण	हितोपदेश भाषा
२५. रामचन्द्र	कथा नल-दमयन्ती की, वैद्य-विनोद
२६. सुन्दर	फुटकर छन्द
२७. सारदा (शारदा)	फुटकर छन्द
२८. काशीराम	१. कनक मंजरी, २. परशुराम-संवाद, ३. पांडवगीता, ४. सिहरफी, ५. बारह माह और कुछ फुटकर कवित्त
२९. नानू या ननुआ	फुटकर छन्द
३०. सैंना या सैणा	,, ,,
३१. आसा सिंह	,, ,,
३२. सुकवि	,, ,,
३३. भूपति	,, ,,

दशम गुरु के दरबारी कवियों की ठीक-ठीक संख्या का उल्लेख कर सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। ऊपर जिन ३३ कवियों की सूची दी गयी है उनकी रचनाएँ निश्चित् रूप में उपलब्ध हैं। डॉ० हरिभजनसिंह ने इन्हीं ३३ में से १६ कवियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इनकी रचनाएँ उपलब्ध है। इन १६ कवियों में उन्होंने नन्दलाल की भी गणना की है जो फारसी के कवि है। इस प्रकार शेष और निम्नलिखित १८ कवियों की रचनाएँ उपलब्ध होने का विवरण मिलता है —

१. ईश्वर दास
२. सुखदेव
३. हुसैन अली
४. गुरु दास
५. गोपाल
६. धर्मसिंह

७. ध्यानसिंह
८. नन्दसिंह
९. बृजलाल
१०. मल्ल भट्ट
११. लक्खण
१२. रामचन्द्र
१३. काशी राम
१४. चन्द या चन्दा
१५. नानू
१६. सैना या सैणा
१७. सुकवि
१८. भूपति।

इन १८ कवियों में से भी हमें हुसैन अली, नन्द सिंह, मल्ल भट्ट, ईश्वरदास, ध्यान सिंह, तथा बृजलाल आदि छः कवियों की कोई भी कृति उपलब्ध नहीं हो सकी। सम्भव है यह नन्दसिंह, नन्दलाल ही हों और मल्लभट्ट मल्लू हों जिनकी कोई रचना नहीं मिलती। हुसैन अली की रचनाओं की प्राप्ति की सूचना श्री प्यारा सिंह पद्म ने दी है और उनकी फुटकर रचना के उपलब्ध होने का उल्लेख किया है।[1] मैं श्री प्यारा सिंह पद्म से कई बार मिला, परन्तु वे हुसैन अली का कोई भी फुटकर पद प्रस्तुत न कर सके। इस प्रकार केवल २५ कवि ऐसे बचते है जिनकी फुटकर या ग्रन्थरूप में कृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं और जिन्हें अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है।

विशिष्ट अध्ययन के लिए गृहीत कवि

उक्त २७ कवियों में से—१. सुदामा, २. चन्दन, ३. चन्द या चन्दा, ४. धन्ना सिंह, ५. सुन्दर, ६. शारदा, ७. आसा सिंह, ८. नानू या ननुआ, ९. सैना या सैणा, १०. सुकवि, ११. भूपति १२. हीर—ये सब फुटकर काव्य के रचयिता है।

फुटकर कविताएँ लिखने वाले इन बारह कवियों मे से केवल हीर ही ऐसे कवि हैं, जिनके कुछ मुक्तक मिलते हैं। अन्य कवियों में से किसी के एक या किसी के दो ही फुटकर पद मिलते हैं। अतः इन कवियो में से हमने 'हीर' को ही प्रतिनिधि रूप मे मानकर उनका अध्ययन प्रस्तुत किया है।

शेष १५ निम्नलिखित कवि ऐसे है, जिनकी कृतियाँ ग्रन्थ रूप में उपलब्ध हैं—

१. अणी राय
२. अमृत राय
३. आलम
४. सुखदेव

---

१. दि टैंथ मास्टर—ट्रिब्यूट्स ऑन टर्-सेन्टिनरि, पृ० १८-१९

१. सुदामा

भाई काह्न सिह के मतानुसार सुदामा नामक कवि बुन्देलखण्ड का रहने वाला एक ब्राह्मण था।[1] 'सुदामा जी की बारह खड़ी' नाम की रचना की एक हस्तलिखित प्रति देवनागरी लिपि में हमें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में देखने को प्राप्त हुई।[2] वैसे यह रचना एक बार प्रकाशित भी हो चुकी है। प्रकाशित प्रति हमारे पास विद्यमान है। रचना बहुत ही साधारण कोटि की है। इसमें पजाबी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इनका एक कवित्त जो 'गुरु-शब्द-रत्नाकर' में उपलब्ध है, वह इस प्रकार है :—

एक संग पढ़ै अवंतिका संदीपन के,
सोई सुध आई तौ बुलाइ बूझी बामां मैं ॥
पुंगीफल होत तौ असीस देत नाथ जी को,
तंदुल लै दीजै, बाँध लीजै फटे जामा मैं ॥
दीन द्वार सुनिकै दयाल दरबार मिले,
एतौ कछु दीनो पाई अगनत सामा मैं ॥
प्रीति करि जानै गुरु गोविन्द कै माने,
ताँते वहै तू गोबिन्द वहै सुदामा मैं ॥[3]

२. चन्दन

इनकी गणना भी दशम गुरु के दरबारी कवियों में की जाती है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रन्थकार इनके विषय में सर्वथा मौन ही है। भाई संतोखसिंह ने 'गुरु-प्रताप-सूर्य' ग्रन्थ में इनका एक दृष्टकूट के ढंग का छन्द उद्धृत किया है—

नवसात तिये, नवसात किये, नवसात पिये, नवसात पियाए।
नवसात रचे, नवसात बदे, नवसात पया पहि दायक पाए।
जीत कला नवसातन की, नवसातन के मुख अंचर छाए।
मानहु मेघ के मंडल मैं कवि चंदन चंद कलेवर छाए॥[4]

३. चन्द

भाई वीर सिंह के मतानुसार चन्द लाहौर के निवासी थे।[5] इनके विषय में और अधिक जानकारी नहीं मिलती। इनके दो-चार फुटकर छन्द भाटों को कण्ठस्थ हैं, जिन्हे वे लोग सेहराबन्दी के अवसरों पर सुनाया करते हैं। चन्द कवि के जो छन्द भाटों में प्रचलित हैं वे इस प्रकार हैं :—

---

१. भाई काह्न सिंह, गुरु-शब्द-रत्नाकर, पृ० १६०
२. काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सूची, ग्रन्थ-सं० ७३६।५३४
३. भाई काह्न सिंह, गुरु-शब्द-रत्नाकर, पृ० १६०
४. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५५६३
५. भाई वीर सिंह, कलगीधर चमत्कार, पृ० ४४०

कलि में भयो एक मरद नानक है नाम जाको,
ता ते भये नौ एक ज्योति सुहायो है।
बहुर गुरु गोबिन्द सिह कलगी अवतार होय,
खड्गधारी होय महल दसवाँ कहायो हैं।
तेईयन मैं आए बीच पैठे समाए गुरु,
दुनिया बसाए जाए पाँवटा बसायो है।
सत्य गुरु बचन सार मरद गुरु का विचार,
गोबिन्द सिह कृपा ते दास चन्द कहि सुनायो है।[1]

गुर नानक गुर अंगद गुर अमरदास रामदास गुर अर्जुन धारिउ।
गुर हरगोविन्द हरिराइ गुर हरि क्रिशन बिचारिउ।
गुर तेग बहादुर भइउ नाम जिन इक मन लीनो।
शब्द गुरु उपदेशदान संगत कउ दीनों!
कलाधार गुर गोविन्दसिंह भए परगट भई कल मैं सिक्खी।
जैकार भइउ त्रैलोक मैं जो बिरद पैज सतिगुरु रक्खी।[2]

४. धन्ना सिंह

यह दशम गुरु की घुड़साल के सेवादार थे। इनके जीवनवृत्त के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नही है। गुरु-सभा में पधारे चन्दन कवि का मान-मर्दन करने वाले आप ही थे। कवि चन्दन को चकित तथा निरुत्तर कर देने वाले इनके जो दो सवैये प्रसिद्ध है, वे इस प्रकार हैं :—

मीन मरे जल के परसे कबहूं न मरे पर पावक पाए।
हाथी मरे मद के परसे कबहूं न मरे तन ताप के आए।
तीय मरे पिय के परसे कबहूं न मरे परदेश सिधाए।
गूढ़ मैं बात कही दिजराज! विचार सके न बिना चित लाए॥१॥
कँवल मरे रवि के परसे कबहूं न मरे ससि की छवि पाए।
मित्र मरे मित के मिलिबे कबहूं न मरे जब दूर सिधाए।
सिंघ मरे जबि मास मिले कबहूं न मरे जबि हाथ न आए।
गूढ़ मैं बात कही दिजराज! विचार सके न बिना चित लाये[3]॥२॥

५. सुन्दर कवि

इनका नाम भी गुरु गोविन्द सिंह के हजूरी कवियों की नामावली में आता है। इनके जीवनवृत्त तथा रचनाओं के विषय मे कोई संकेत नहीं मिलता। इनके द्वारा रचे

१. भाई वीरसिंह, कलगीधर चमत्कार, पृ० ४४०
२. वही, पृ० ४४०
३. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५५६५

गए कुछ फुटकर छन्द प्राप्त होते हैं। सम्भव है, इन्होंने केवल फुटकर छन्दों की ही रचना की हो। इनके प्राप्त छन्द निम्नलिखित हैं :—

१. महाबाहु बीर गुरु गोविन्द तिहारे रोस,
बैंरिन की बधु बन-बन बिलखानी है ।
करयो न गवन भूल भवन के भीतर से,
चढ़ती पहार निधार अकुलानी है ।
सुन्दर सरोजमुखी दुखी भई भूख प्यास,
पतिन सो खीझ कहै मोतिन मैं पानी है ।
चन्द सी चकोर जानैं बिम्ब सी सुआ कै मानै,
कोलन सी काक नाग मोरनि के मानी हैं ॥[1]

साधन के सिद्ध सरणागत, समर सिन्धु,
सुधाधर सुन्दर सरस पद पायो है ।
कुल को कलस, कवि कामना को काम तरु,
कोप किए काल, कवियन गुन गायो है ।
देवन में दानव में, मानव मुनिनि हूँ मैं,
जाको जस जाहर जहान चलि आयो है ।
तेग साचो, देग साचो, सूरमा सरन साचो,
साचो पातिसाहु गुरु गोविन्द कहायो है ॥३॥[2]

३. बेदन महिं साम सुनौ, सिंधु मिरजादा मेरु,
मंडल मही मैं, गुरिआई गुन गाए हो ।
सरम के सागर, सपूतन के सिरमौर,
सुन्दर सुधाधर से 'सुन्दर' गनाए हो ।
रतन में दान बानि बानी हरि चंद की सी,
बिदत बिनय बड़े बंस चलि आए हो ।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरनि महि ऐसे गुरु गोविन्द कहाए हो ॥३१॥

६. शारदा

इनके जीवन के विषय में कोई वृत्त प्राप्त नहीं है। गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ में इनके दो छन्द अवश्य उपलब्ध है :—

१. सरस्वती, फरवरी १९६७, पृ० १३८
२. भाई वीर सिंह, कलगीधर चमत्कार, पृ० ४६०
३ वही, पृ० ४६०

१. दिस-दिस देस-देस एस दिगपाल केते,
आजैं करैं काल्ह केते गुनहु गहत हैं।
प्रबल प्रतापी पातसाह साचे सुनीयत,
तेरे सिर भार भू को सारदा कहत हैं।
ओजन के सूर महाभोजन सौ घेर मारयौ,
और न विचार कीजै दारिद दहत हैं।
हरि माँगे वर देत माँग गुरु गोविन्द को,
करतार माँगे कर तार दे रहत हैं ॥[1]

२. कुंज-कुंज अलिनि बजाई बन बांसरी जी,
उनही के संग सोई 'शारदा' कहति है।
जमना के तट बंसी बट के निकट सोई,
तट सुतद्रव आन साहिबी करत है।
देखो भूप भूपनि के, भूम के भगत लोगो,
भाग या छरी के मोसों कहिबे बनत हैं।
कान्ह ह्वै कै औतरयो तो मुख ही रहत है,
गोविन्द ह्वै औतर्यो तो हाथ ही रहत है।[2]

७. आसा सिंह

आसा सिंह गुरु जी के दरबार में मुत्सद्दी (हुण्डी आदि का हिसाब-किताब रखने वाला) का काम करते थे। इनके जीवन-वृत्त के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। ये बड़े ही द्रवणशील प्राणी थे। एक बार किसी याचक की लड़की के विवाह के लिए इन्होंने गुरु जी की आज्ञा के बिना ही पाँच सौ रुपये की हुण्डी लिख दी थी और फिर गुरु जी के कोप से डर कर घर चले गए। रहस्य खुलने पर गुरु जी ने बिना आज्ञा इस प्रकार व्यवहार करने का कारण पूछा। आसा सिंह ने उत्तर दिया कि 'आपकी आज्ञा थी कि जैसे भी हो, परोपकार में ढील नहीं करनी चाहिए। आपका सिक्ख मुझसे दीन-दुखी नहीं देखा गया और मैंने, बिना विशेष आज्ञा प्राप्त किये, हुण्डी लिख दी। इसमें कोई स्वार्थ निहित नही था। आप क्षमा करें।' यह उत्तर सुनकर गुरु जी ने उन्हें क्षमा कर दिया था। आसा सिंह रचित कुछ फुटकर छन्द मिलते हैं, जो इस प्रकार है :—

---

१. भाई सतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२३
२. वही, पृ० ५७२८

कलमौवाच--

दोहरा

मुख कारौ मेरो करै, करत न परउपकार।
ताहू को मन करत निज, कारो बदन निहार ॥६७॥
फट छाती दो टूक भइ, रुदन करत लिख जात।
पर स्वारथ उपकार-बिनु मुझे न सुपने शांत ॥६८॥

चौपाई

यौ लिखनी बच है बर ररा।
सो पकराई गुर मुर करा ॥
यौ उपकार नाथ न करों।
तदपि तुमहि ते बहु विधि डरो ॥६६॥
यो सिख तुमरी दई दुहाई।
तौं मम टोबू दयो कराई ॥
भूलन मद्ध सदा इह जंतु।
सतिगुरु है बखशंद बिअंतु ॥७०॥
मेरी खता उर नहीं जानहु।
अपनो लीजै बिरद पछानहु ॥
सरबलच्छ जग में इह तोरी।
खावत भुंच जीव करि जोरी ॥७१॥[1]

उपर्युक्त पद भाई वीर सिंह ने भाई सुक्खा सिंह के 'गुरु विलास' से अपने ग्रन्थ 'कलगीधर चमत्कार' में उद्धृत किया है।

भाई सन्तोख सिंह ने अपने 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में जो छन्द आसा सिंह के नाम से दिये हैं, वे ये हैं--

कलमौवाच--

मुख कारौ मेरौ करै करत न पर उपकार।
तिसकौ फिर मैं करौंगी पलटा इहु दरबार।
फटि छाती दो टूक भइ, रुदन करति लिखि जाति।
परस्वारथ उपकार बिन मोहि न उपजत सांत।
ऐसे कलम कहत सब साथ।
सो गुरु पकराई मुहि हाथ।
गुरु की आन जबह सिख दीनी।
सही न मैं चिट्ठी लिखदीनी।

---

१. भाई वीर सिंह, कलगीधर चमत्कार, पृ० ४५०

सर्वलक्षमी जगत तुमारी।
मुंचति है इहि सृष्टि सारी ।।[१]

८. नानू अथवा ननुआ

ये नवम गुरु तेगबहादुर के शिष्य थे।[२] गदा नारायणी नाम के लाहौर-निवासी एक सूफी सन्त की संगति में, गुरु-आज्ञा से इन्होंने अध्यात्म लाभ किया। इनकी रचना गेय पदों में मिलती है—

१. लोयण निपट लालची मेरे
भूखे धावे तृप्ति न पावे, सदा रहे गुरु मूरति घेरे।
जोड़ें हाथ अनाथ सदा यह, अपने ठाकुर केरे चेरे।
हेर ननुआ हैराना, गुरुमूरति विच हरि ही हेरे ।।[३]

२. असां साहिब दरस दिखाइआ।
खुल्ली वंदी डुल्लदे नैणी
हसदा हसदा आइआ।
प्यार आपणा भर भर बुक्कीं।
मन तन साडे पाइआ।
ननुए नू होर चित्त न काई
धा सिर चरना ते लाइआ ।।[४]

९. सैना अथवा सैणा

ये दशम गुरु के दरबार में एक लिखारी (लिपिक) का काम करते थे। भाई संतोख सिंह के अनुसार सैणा जाट थे और बहुत सुन्दर अक्षरों मे लिखते थे। कभी-कभी ये कुछ कविता भी रच लिया करते थे। एक बार कोई भूल हो जाने पर ये लज्जावश घर में जा छिपे। गुरु जी ने बुलवाया तो इन्होंने एक छन्द लिख भेजा, जो इस प्रकार है—

जब के प्रभु से बीछुरे, कीयो कृषि को ठाट।
व्रिषभन संगति हम करी भए जाट के जाट।
अब का मुख प्रभु कउ दिखराऊं।
सिमर नाम नित आनन्द पाऊं।

---

१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२२
२. सरस्वती, फरवरी १९६७, पृ० १३५
३. भाई वीर सिंह, कलगीधर चमत्कार, पृ० ४४१
४. वही, पृ० ४४१

गुरगति अगम जाण नहि जाई।
नारदादि की मति भरमाई ॥[१]

श्री देवेन्द्र सिह 'विद्यार्थी' ने अपने लेख 'गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि' के संदर्भ में सैणा का इससे भिन्न एक छन्द उद्धृत किया है। यह छन्द उन्हें कहाँ से प्राप्त हुआ, इसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया। यह छन्द इस प्रकार है—

आवत न तीर तीर मान न कमान करे
गोलिनि की गूँद दूंद बूंद मोन वार है।
छीन बरछीन लेय सैहथी को सैहथी है
कोटिक कटारन को बैठि बरदार है।
छुरी न छुवति गुरजन हूँ की गुरुजन
तब रत बरन को निवारति निहार है।
सैना अरुधाँ की एक हाँक हू सो हाँकी
गुरु गोविन्द के कर ऐसी बाँकी तरवार है।[२]

१०, सुकवि

इनका जीवनवृत्त अज्ञात है। इनका केवल एक छन्द 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में उपलब्ध है। वह छन्द निम्नलिखित है—

जौन देस जइयति नरेसन के पास तहां
ठौर-ठौर तुमरो ई जस गाईयति है।
पाइं गहे तेरे पाइं गहे पाइयति कहूँ,
और जाइ गरजाइ गरो पाइयति है।
ऐसे गुरु गोविन्द की सुकवि सरन ताको,
पूरन प्रताप जाको जग छाइयति है।
राजी हूजिइत गाजीयत जा के दरबार,
बर बाजी बांध बाजी लेन आइयति है ॥[३] २२ ॥

११. भूपति

इनका जीवनवृत्त अज्ञात है। इनका केवल एक छन्द 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में उपलब्ध होता है। वह छन्द इस प्रकार है—

---

१. बाबा सुमेर सिंह, गुरुपद प्रेम प्रकाश, पृ० २६७
२. सरस्वती, फरवरी १९६७, पृ० १३८
३. भाई संतोख सिंद, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१९

बाजति निशान के दिशान भूप भहिरति,
हालाडोल परति कुबेर हूँ के घर मैं ।
होति है अतंक शंक लंक हूँ मैं मानीयति,
रंक ह्वै बिभीखन सो डोलति डहर मैं।
भूमैं गुर गोबिन्द सों भूपति कहित ठांडे,
भू मैं हमैं राख जो तुहारे आवै घर मैं।
अरिनि की रानी बिललानी चहैं पानी ते,
बै मोतिन की माल लै निचोवति अधर मैं[1] ।। २५ ।।

जिन कवियों को अध्ययन के लिए ग्रहण किया गया है, अगले अध्याय में उनके जीवन-बृत्त पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२१

तृतीय अध्याय

दशम गुरु के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों का परिचय

जिन १४ कवियों को अध्ययन के लिए ग्रहण किया गया है उनके सम्बन्ध में अन्त: साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर अत्यन्त सीमित परिचय-सामग्री उपलब्ध है। स्वयं इन कवियों ने अपने जीवन के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी नही दी है। भारतीय कवियों की यह परम्परा रही है कि वे अपने सम्बन्ध में कुछ न कहकर अपनी कृतियों के माध्यम से ही यश अर्जित करते रहे हैं। यही कारण है कि अनेक कवियों की कृतियाँ तो उपलब्ध होती हैं; परन्तु उनके विषय में विस्तृत जानकारी नहीं मिलती। कतिपय किंवदन्तियाँ, अनुश्रुतियाँ, अन्य कवियों द्वारा किये गये उल्लेख अथवा उनकी कृतियों में आए हुए यत्र-तत्र बिखरे संकेत एवं रचनाओं के उपसंहार-वाक्य ही ऐसे माध्यम हैं जिन के आधार पर उनका परिचय प्रस्तुत किया जा सकता है। यहाँ भी इन कवियों के परिचय के लिए हम यही आधार ग्रहण करेंगे।

१. अणी राय

अणी राय गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि थे। इनकी रचना से ज्ञात होता है कि गुरु गोविन्द सिंह ने इन्हें नग, कंचन, भूषण और हुकम नामा देकर इनका सत्कार किया था—

अनीराय गुरु से मिले, दीनी ताही असीस।
आउ कह्यो मुख आपने, बहुर करी बखसीस ॥१॥
नग कंचन भूखन बहुर, दीने सतिगुर एह।
नामा हुकम लिखाय के, दीनो सरस सनेह ॥२[1]॥

इस उद्धरण के अतिरिक्त अणीराय के विषय में और कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। गुरु हरिगोविन्द राय के द्वितीय पुत्र का नाम भी अणीराय था और उसका जन्म विक्रमी संवत् १६७५ में हुआ था। जिस युद्ध को 'जंगनामा' का वर्ण्य-विषय बनाया गया है वह मुगल सरदार अजीम खाँ तथा दशम गुरु के मध्य संवत् १७५८ में

१. शमशेर सिंह अशोक, प्राचीन जंगनामे, पृ० १७

हुआ था। यदि 'जंगनामा' का लेखक अणीराय वही है तो उस समय उसकी आयु ८१ वर्ष की बैठती है। श्री शमशेर सिंह 'अशोक' का कहना है कि 'जंगनामा' में लिखित तथ्यों का ऐतिहासिक घटनाओं से मेल नहीं बैठता।[1] श्री चन्द्रकान्त बाली ने इसका रचना-काल संवत् १७६० के आस-पास अनुमानित किया है। इनका यह भी अनुमान है कि उक्त उद्धरण में अणीराय और दशम गुरु का सम्बन्ध 'आश्रित-आश्रयदाता का सम्बन्ध' प्रतीत होता है, जबकि ताऊ-भतीजे का सम्बन्ध भिन्न प्रकार का होता है।[2] 'जंगनामा' की अन्तिम उक्ति भी श्री बाली के इस कथन का समर्थ करती है।[3]

डॉ० हरिभजन सिंह का विचार है कि—"यह पंजाबी थे अथवा इन्हें पंजाब में दीर्घकाल तक रहने का अवसर मिला था। 'जंगनामा' के अमिश्रित पंजाबी में लिखे हुए नौ छन्द इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं।"[4] इन नौ छन्दों में से एक निम्नलिखित है—

खंडे धूहे म्यान ते, बैरी बिलखाने ।
जुट्टे दुहूँ मुकाबले, बिज्जू झरलाने ।
वाहण मुणसाँ घोड़यां, घायल घुम्माने ।
जुज्झन सौहे सागर दे दरगह परवाने ।
मुंड मंडकन मेदनी, एही नेसाने ।
जण माली सिट्टे बाड़ियाँ, खरबूजे काने[5] ।। ६६ ।।

रचनाएँ : इनकी केवल एक ही रचना 'जंगनामा' उपलब्ध है। यह ६६ छन्दों का एक लघु वीर-काव्य है। इसमें गुरु गोविन्द सिंह और अज़ीम खाँ के मध्य हुए एक युद्ध का वर्णन है।

२. अमृतराय

परम्परा एवं विद्वानों के व्यक्त विचारों के अनुसार अमृतराय दशम गुरु के दरबारी कवि माने गए हैं। भाई सन्तोख सिंह के 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में एक कवित्त उपलब्ध है, जिससे स्पष्ट होता है कि अमृतराय गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में भेजे गये थे—

जाही ओर जाऊँ, अति आदर तहाँ ते पाऊँ,
तेरे गुन गन को अगाऊ गने शेश जू ।
हीर चीर मुक्ता जें देति दिन प्रति दान,
तिन्है देख देख अभिलाषति धनेश जू ।

---

१. शमशेर सिंह अशोक, प्राचीन जंगना में, पृ० १७-२४
२. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६८-२६६
३, अणीराय, जगनामा, पृ०५१०
४. शमशेर सिंह अशोक, प्राचीन जंगनामे, पृ० ६२
५. अणीराय, जगनामा, पृ० २५

गुनन में गुनी कवि अम्रित पढ़या है मेरो,
जब इनै हेरो प्यार कीजे अमरेश जू।
श्री गुरु गोविन्द सिंह छीरनिधि पार भई,
कीरति तिहारी तुमैं कहि के संदेस जू ॥[1]

भाई सन्तोख सिंह कृत 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' के अनुसार गुरु गोविन्द सिंह द्वारा आयोजित कवि-गोष्ठियों में अमृतराय ने भी भाग लिया था।[2]

बाबा सुमेर सिंह ने अपने ग्रन्थ 'गुरु बिलास' मे लिखा है कि गुरु साहब ने इस कवि को सभापर्व के अनुवाद पर साठ हजार रुपया और पशमीने आदि का सिरोपा प्रदान किया था—

सभापर्व ताँते बनवायो। श्रवण जोग कविता मन भायो।
साठ सहस्र रुपया दीना। सिरोंपाउ पशम्बर भीना ॥[3]

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इनका वास्तविक नाम चतुर दास था और ये बहल क्षत्रिय थे—

तिनकी आग्या ते भयो, कवि के चित्ति हुलास।
चतुर दास छत्री बहिल, बरन्यो चित्र-बिलास[4] ॥७॥

काव्य-रचना के समय ये अपना नाम अमृत राय लिखते थे।[5] महाभारत भाषा—सभापर्व से यह ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम छैलराय था—

श्री छैलराइ गुन-गन प्रगति, बानी बखानी दरस।
तिहि पुत्र सु अमृत राइ कछु, बरन्यो कवि कुल पग परस ॥[6]

'चित्र-बिलास' से ही ज्ञात होता है कि ये लाहौर के निवासी थे। इन्होंने लाहौर का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। परम्परा के अनुसार इन्होंने तत्कालीन बादशाह औरंगजेब का उल्लेख भी किया है—

चौगता को राज, राजत आदि जुगादि जग।
है तिनके सिरताज, अवरंग साह महाबली ॥[7]

अन्तः साक्ष्य या परम्परा के आधार पर इनके जन्म-काल आदि का और कोई विवरण नहीं मिलता। इन्होंने अपनी कृतियों में उनका रचना-काल दे दिया है। इससे

---

१. भाई संतोखसिंह, गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५५६३
२. डॉ० ईशर सिंह, गुरुमखी लिपि में उपलब्ध रीति साहित्य, पृ० १५०
३. बाबा सुमेर सिंह, गरु बिलास
४. अमृतराय, चित्र-बिलास
५. डॉ० बलबीर सिंह, सबल साहित्य, पृ० २७८
६. अमृतराय, महाभारत भाषा—सभापर्व
७. अमृतराय, चित्र-बिलास

उनके जन्म-समय आदि के विषय में अनुमान किया जा सकता है। संवत् १७३६ की कार्तिक सुदी नवमी से 'चित्र-बिलास' की रचना आरम्भ हुई थी––

संवत् सतरहि सै बरष, बीते अधिक छतीस ।
कार्तिक सुदि नवमी सुतिथि, वार चारु दिन ईस[1] ।।८।।

'चित्र-बिलास' की रचना से पूर्व अमृतराय कवि के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके थे और उनके घर पर कवि-गोष्ठियों का आयोजन भी हुआ करता था।[2] उस समय काव्य-रचना का प्रमुख केन्द्र लाहौर था, जहाँ आध्यात्मिक ग्रन्थों के निर्माण, नृत्य, संगीत और राग विद्या के अतिरिक्त विनोद के अनेक साधन भी उपलब्ध थे ।[3]

'चित्र-बिलास' की रचना इन्होंने मित्रों के आग्रह पर की थी। यह रीति-परम्परा के अनुसार की गई रचना है। जब अमृतराय दशम गुरु के दरबार में पहुँचे तो उन्हें 'महाभारत' के सभापर्व के भाषा-रूपान्तर का कार्य सौंपा गया। इसमें उन्होंने दशम गुरु का उल्लेख किया है और आनन्दपुर का उसी प्रकार वर्णन किया है जैसे 'चित्र-बिलास' में लाहौर का––

धरें जोग ध्यान अवतार दस सत्त रूप नानक सो गुर ।
सोउ सत्तिसनातन पुरुष है गुरु गोविन्द आनन्दपुर ।।३।।
चन्द्र परवार जियो परकार पुर आनन्द कौ;
सांति की अथाई भाई सिध सिध पौर है ।।४।।[4]

रचनाएँ : अब तक अमृतराय की चार रचनाओं का उल्लेख मिलता है–– १. नवरस, २. चित्र-बिलास, ३. महाभारत भाषा––सभापर्व, ४. फुटकर रचनाएँ।

(१) नवरस–

श्री चन्द्रकान्त बाली ने अमृतराय की इस रचना का उल्लेख किया है। उनके कथनानुसार इसमें नवरसों का सोदाहरण निरूपण है। मैंने इस 'नवरस' ग्रन्थ के अन्वेषण का प्रयत्न किया, किन्तु किसी भी सिक्ख-पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा काशी-नरेश-पुस्तकालय, काशी में मुझे अमृतराय-रचित 'नवरस' की कोई हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं हुई और न ही यह रचना अब तक प्रकाशित हुई है। इस ग्रन्थ की एक प्रति हारवर्ड में, नागरी लिपि में उपलब्ध है। इस पर लेखक का नाम 'अज्ञात' लिखा हुआ है। बहुत सम्भव है कि यह ग्रन्थ अमृतराय का ही हो, क्योंकि ब्रिटिश-म्यूजियम में

१. अमृतराय, चित्र-बिलास, छन्द सख्या ८
२. वही, छन्द संख्या ५-७
३. वही, छन्द संख्या १३
४. अमृतराय, महाभारत भाषा––सभापर्व

अमृतराय कृत 'चित्र-विलास' की भी एक प्रति गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध है।[1]

(२) चित्र-बिलास

यह एक रीति-ग्रन्थ है। इसमें कुल १३५ छन्द हैं और अभी तक यह रचना अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भारत तथा विदेशों में अनेक स्थानो पर उपलब्ध हैं--(१) मोती बाग पुस्तकालय, पटियाला, ग्रन्थ-सख्या ६४, (२) रेफ़ेंस पुस्तकालय, भाषा-विभाग, पटियाला, ग्रन्थ-संख्या क्रमशः १५ तथा १२६, (३) सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, ग्रन्थ-संख्या २८।५१२१, (४) नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी, ग्रन्थ-संख्या २२८।२५ (खडित प्रति), (५) ब्रिटिश म्यूज़ियम, ग्रन्थ-संख्या २६५७, (६) पंजाब यूनिवर्सिटी पुस्तकालय, ग्रन्थ-संख्या ६२ (इसी जिल्द में सुन्दर दास कृत 'सुन्दर श्रृंगार' भी संकलित है)।

(३) महाभारत भाषा--सभा पर्व

यह महाभारत के मूल सभा पर्व का भाषा-रूपान्तर है। इसमें ८१ अध्याय हैं। यह रचना अप्रकाशित है और इस समय इसकी केवल एक-एक प्रति पटियाला-नरेश तथा काशी-नरेश के निजी पुस्तकालयों में सुरक्षित है। पटियाला-नरेश-पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति गुरुमुखी लिपि में है, परन्तु काशी-नरेश-पुस्तकालय में उपलब्ध प्रति नागरी लिपि में है, जिसका बस्ता नं० ४३ तथा ग्रन्थ-संख्या ४५।५४ है। इस ग्रन्थ में अमृतराय ने गुरु गोविन्द सिह के प्रशस्तिगान की विस्तृत भूमिका भी प्रस्तुत की है।[2]

(४) फुटकर रचनाएँ

अमृतराय कृत फुटकर रचनाएँ 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' तथा 'कलगीधर चमत्कार-ग्रन्थ' में संकलित एवं उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त लन्दन के इण्डिया ऑफिस में 'भवसागर नौका'[3] नाम से फुटकर रचनाओं का एक अन्य संकलन भी नागरी लिपि में उपलब्ध है। इसमें अमृतराय के भी कुछ कवित्त मिल जाते हैं। इस रचना के ऊपर लिखा हुआ है-'वैष्णव कवियों के कवित्तों का संग्रह'। संग्रहकर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इसी संग्रह में दशम गुरु के दरबारी कवि सुखदेव के गुरु चरणदास तथा सेनापति के गुरु देवीदास की फुटकर रचनाएँ भी संकलित हैं।

३. आलम

दशम गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवियों में आलम का भी उल्लेख किया गया है। यह आलम कौन था? इस सम्बन्ध में आज तक किसी निश्चित् परिणाम पर नहीं

---

१. दे०, डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त, यूरोप और अमेरिका में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ
२. महाभारत भाषा--सभा पर्व, छन्द-संख्या २६
३. दे०, डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त, यूरोप और अमेरिका में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ

पहुँचा जा सका है। हिन्दी साहित्य में 'आलम केलि' आदि कृतियों के रचयिता आलम के रचना-काल को लेकर पर्याप्त विवाद भी उठ खड़ा हुआ था। 'माधवानल कामकंदला' की उपलब्धि के बाद दो आलम मानने की परम्परा भी चली--एक भक्तिकालीन आलम और दूसरा रीतिकालीन आलम। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दो आलम की सत्ता स्वीकार की है। उनके मतानुसार प्रथम आलम अकबर के समय में एक मुसलमान कवि थे, जिन्होंने सन् ९९१ हिजरी अर्थात् संवत् १६३९-४० में 'माधवानल कामकन्दला' नाम की प्रेम-कहानी दोहा-चौपाई में लिखी।[1] द्वितीय आलम को उन्होंने जाति का ब्राह्मण और शेख नाम की रंगरेज़िन के प्रेम में फँसकर बाद में मुसलमान हो जाने वाला रीतिकालीन कवि माना है। इस आलम की उन्होंने 'आलम केलि' नाम की रचना का उल्लेख किया है।[2]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'हिन्दी साहित्य का अतीत' में सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि "आलम को एक मानने में अब कोई बाधा नही है और उनका रचनाकाल भी संवत १६४० से सवत् १६८० तक निश्चित् है।"[3]

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के इस निश्चित् निर्णय के बाद भी आलम-सम्बन्धी विवाद का अन्त नहीं हुआ और 'हिन्दी अनुशीलन' में दो लेख प्रकाशित हुए--एक मनोहर लाल गौड़ का--'शेख आलम' और दूसरा उदय शंकर शास्त्री का-'माधवानल कामकन्दला' का रचयिता आलम सूफ़ी था।[4]

श्री मनोहरलाल गौड़ के विचार के अनुसार "यही अनुमान निर्दोष लगता है कि आलम दो हैं और 'आलम केलि' तथा 'सुदामा चरित' रीतिकालीन आलम की रचनाएँ हैं, भक्तिकालीन आलम की नहीं।[5] इन्होंने शेख और आलम दोनों नाम एक ही व्यक्ति से सम्बद्ध माने हैं और कवि का पूरा नाम 'शेख आलम' माना है। रीतिकालीन आलम की शेख के साथ प्रणय-कथा को सही मानते हुए भी लिखा है कि 'उसका नाम शेख था-यह बाद में लोगों ने भूल से समझ लिया।'[6]

श्री उदय शंकर शास्त्री ने 'माधवानल कामकंदला' को मसनवी पद्धति पर लिखा हुआ विशुद्ध प्रेम-काव्य माना है तथा उसके रचयिता आलम के विषय में लिखा है कि 'इतना तो सिद्ध है कि गौसकुतुब (काहिरी) की शाखा के सैयदी मुहदी या मोहिउद्दीन का शिष्य कोई नव मुस्लिम नहीं था।'[7]

आलम के नाम पर प्राप्त रचनाएँ—खोज रिपोर्टों में आलम कवि के निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख है-(१) आलम केलि, १९०३-३३, (२) आलम कवि की कविता,

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२४
२. वही, पृ० ३६१-६२
३. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० ६२१
४. हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, ३० मई १९६० ई०, क्रमश: पृ० ३९०-९६, ४५८-४६६
५. वही, पृ० ३९३,
६. वही, पृ० ३९६
७. वही, पृ० ४६६

१९३३-९बी, (३) आलम के कवित्त, १९२३-९सी, (४) कवित्त संग्रह, १९४१, (५) संग्रह, १९२३-९डी, (६) छप्पय, १९२३-९स, (७) सुदामा चरित, १९३५-१९४३, (८) श्याम-सनेही, १९३२-६, (९) माधवानल कामकन्दला, १९०४-९।

उक्त सभी रचनाएँ साहित्यिक हैं। आलम चाँदसुत का रचा हुआ 'ग्रन्थ संजीवन' नामक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रन्थ भी खोज में मिला है, जो वैद्यक का ग्रन्थ है और किसी फारसी ग्रन्थ का भाषा-रूपान्तर है। इसका रचना-काल संवत् १७४९ वि० के कुछ बाद माना गया है, क्योंकि इसके अन्त में कालिदास कवि का एक छप्पय दिया हुआ है और यदि यह छप्पय 'हज़ारा' के रचयिता कालिदास का है तो उक्त समय ही इसका भी माना जा सकता है।[1]

'माधवानल कामकन्दला' का रचना-काल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिजरी सन् ९९१ मानकर संवत् १६३९-४० स्वीकार किया है। यद्यपि अधिकतर प्रतियों में सन् 'नौ सै इक्यावन' पाठ है, पर इसे सभी विद्वानों ने 'इक़्यानव' अर्थात् हिजरी सन् ९९१ स्वीकार कर लिया है।

'माधवानल कामकन्दला' के सम्बन्ध में इस उल्लेख को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया और इसी के आधार पर अकबर के समकालीन, 'माधवानल कामकन्दला' के रचयिता एक अन्य आलम की कल्पना की गयी। स्वयं 'माधवानल कामकन्दला' का आधार अकबर के समकालिक जोध कवि की संस्कृत रचना 'माधवानल कामकन्दला चरित' है। कवि ने अपने सम्पूर्ण 'माधवानल कामकन्दला' ग्रन्थ में इसी संस्कृत-ग्रन्थ के वर्णन-क्रम को अपनाया है। यद्यपि आलम ने भाषा-रूपान्तर करते समय अपनी रचना में अपनी कवित्व-प्रतिभा और कल्पना-प्रवणता का पूरा परिचय दिया है, परन्तु उसने कहीं भी वर्णन-क्रम का विस्तार करते हुए उस मूल आधार-ग्रन्थ के कथासूत्र को हाथ से नहीं जाने दिया है। जोध कवि ने अपने ग्रन्थ 'माधवानल कामकन्दला चरित' में निम्न-लिखित श्लोक दिया है—

समाश्रित्य जगत्पतिं, महाराजं महाबलम्॥
महातेजोयुतं नाथमेकछत्रधरं परम्॥४॥
शत्रुजातजितं दक्षं प्रजाधर्मसुरक्षकम्॥
इन्द्रप्रस्थपतिं भूपं राजराजं महावरम्॥५॥
कोटियुगसहस्राणि जीवयंतु, महीतले॥
टोडरमलसंसेव्यम् यक्षकिन्नरसेवितम्॥६॥
इन्द्राद्यनन्त रुचिमकबरं सुवरं नृपम्॥
द्विनवचन्द्रमितेऽब्दे यावने भाष्यते कथा॥७॥

आलम ने इन पंक्तियों के आधार पर निम्नलिखित वर्णन प्रस्तुत किया है :—

1. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३५-३७), पृ० २-३

चौपाई

जगपति राजकोटि जुग कीजै । साह जलाल छत्रपति कीजै ।
दिल्लीपति अकबर सुलताना । सप्तदीप महि जाकी आना ।
सिद्धिनृपति जगन्नाथ सुहेला । आपनु गुरु जगत सभ चेला ।।

दोहा

दण्ड भरहिं सेवा करे, वासुक इन्द्र कुबेर ।
गण गन्धर्व किन्नर सकल, यक्ष रहे होई चेर ।।

चौपाई

एक छत्र राज विधाता दीना । काहु दुर्जन रह्यो न चीना ।।
धर्म रूप सब देश सुहावा । हिन्दू तुरक पंथ दोई लावा ।।
आगे ठाढ़े महामति मंत्री । नृप राजा टोडरमल क्षत्री ।।
सन नौ सै इकानवे ओंही । करों कथा अब बोलों ताही ।।[1]

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि आलम ने जोधकवि के द्वारा दिये हुए यवन या हिजरी सन् ९९१ (द्विनवचन्द्रमिते) को ज्यों का त्यों संस्कृत श्लोक से भाषा-रूपान्तर कर दिया है। इसे न तो 'माधवानल कामकन्दला' का रचना-काल माना जा सकता है और न इस आधार पर उसे जोधकवि या अकबर का समकालिक ही सिद्ध किया जा सकता है। इस तथ्य के सामने न रहने के कारण ही दो आलम कवियों की कल्पना की गयी और रीतिकालीन आलम के समय को कुछ पूर्व ले जाकर दोनों कवियों को एक सिद्ध करने की भी चेष्टा की गयी।

'माधवानल कामकन्दला' अकबर के समकालिक जोधकवि की संस्कृत रचना 'माधवानल कामकन्दला चरित' पर पूर्णत: आश्रित है। यहाँ तक कि कवि ने मूल संस्कृत-ग्रन्थ का रचना-काल हिजरी सन् ९९१ भी ज्यों का त्यों रूपान्तरित कर दिया है।

'दशम ग्रन्थ' के चरित्रोपाख्यान की इक्यानवी कथा 'माधवानल कामकंदला' है, जो दोहा और चौपाई में प्रस्तुत की गयी है। सम्भवत: आलम ने इसे भी पढ़ा या सुना होगा और मूल रचना को भी उसने सुना होगा, जिसके आधार पर उसने अपनी रचना प्रस्तुत की। आलम स्वयं संस्कृतज्ञ नहीं था, अत: उसने स्वयं जोध कवि की संस्कृत-रचना का अध्ययन नहीं किया होगा। उसने पहले इस कथा को सुना होगा और तब इस कथा-काव्य की रचना की होगी। उसने ग्रन्थ के आरम्भ में स्वयं निम्नलिखित पंक्तियाँ दी हैं—

कछु अपनी कछु परकृत चोरौं ।
यथा शक्ति करि अच्छर जोरौं ।।

---

१. सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकंदला चरित, पृ० २-३
—सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह में संकलित माधवानल कामकंदला, पृ० १८४

सर्व-सिंगार विरह की रीती ।
माधौ कामकंदला प्रीती ।।
कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी।
भाषा बाँधि चौपाई जोरी ।।[१]

संस्कृत की अपनी अज्ञता का उल्लेख आलम ने 'श्याम-सनेही' में भी किया है——

पहिले सुनी भागवत रीति । दसम मांहि रुकमिनि की प्रीति ।
सुनत समीर सांति मन आई । चित्त ताल जल उतरी काई ।।
जल हित उपज तरग डुलाए । कवि कलोल तट लै परसाए ।।
बानी व्यास समझ नहीं आवै । टीकाकार कछू समझावै ।।
ऐसी आंकन की कठिनाई । तिह भाखा किउं जाइ बनाई ।।१८३।।

जोध कवि का आलम ने इतना अधिक अनुसरण किया है कि जहाँ-जहाँ सस्कृत के श्लोकों में संख्याओं का प्रयोग हुआ है, वहाँ-वहाँ आलम ने भी ठीक वही संख्याएँ ग्रहण की हैं——

तूर्यसप्तममध्यस्थं वादिनं पश्य गच्छ भो ।।
करे न दक्षिणाङ्गुष्ठः सत्यं सत्यं वदामि ते ।।४३।।[२]
... ...

द्वादश मांहि तूंवरिया दीना । दक्षिण हाथ अंगूठा हीना ।।[३]

दोहा

सात चार के मध्य है उठि कै देषहु ताहि ।।४३।।[४]
... ...

इत्थमल्पेन कालेन काम सैन्यस्य सन्निधौ ।।
दशयोजनशिष्टायां स्थिति चकार विक्रमः ।।१४८।।[५]
... ...

जोजन दस नगरी जब रही । राजा सीव आनि पुनि गही ।।[६]

इसके अतिरिक्त घटना-वर्णन-क्रम तो जोध कवि की संस्कृत-रचना का अनुसरण करता ही है।

---

१. आलम, माधवानल कामकंदला, भासौर एडीशन
——सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-सग्रह में संकलित माधवानल कामकंदला, पृ० १८५
२. स० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकंदला चरित
३. आलम, माधवानल कामकदला, भासौर ऐडीशन
——सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १९०
४. वही, पृ० १९१
५. स० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकंदला चरित
६. स० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० २१४

आलम के 'माधवानल कामकंदला' की कई पंक्तियाँ वैसी ही उपलब्ध होती हैं जैसी 'दशम ग्रन्थ' की इक्यानवीं कथा में दिखाई पड़ती हैं—

मधुर मधुर धुनि बेनु बजावै ॥[१]

मधुर मधुर धुनि बेनु बजावै ॥[२]

... ...

खड खंड के तीर्थ करि हौ,
वारि अनेक आग में बरि हौं ।
काशी विखे करवत्तहि पैं हौं,
ढूंड मीत को तौऊ लै हौं ॥[३]
खंड खंड तीर्थ करउं काशी करवत लेउं ।
मंन इच्छा करि मरि जरउं ढूंड मीत तुहि लेउ ॥१४४॥[४]

आलम के 'माधवानल कामकन्दला' में कुछ ऐसे प्रसग भी हैं जो 'दशम ग्रन्थ' का तो अनुसरण करते है, किन्तु जोध कवि ने उनका वर्णन नहीं किया है। उदाहरण के लिए, राजा ने माधवानल के वीणा बजाने की एक परीक्षा ली। इस प्रसंग का वर्णन तीनों ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रकार से है :—

(१) संश्रुत्य च समाज्ञाय स परीक्ष्य महीपतिः ॥
माधवनलविःसारमादिदेश तु तत्क्षणे ॥२३॥[५]
... ...

(२) तोर राव तब जलज मंगाए, भांति बिछौना की बिछवाए।
सकल सखी तिंह पर बैठाई, भाँति भाँति की प्रभा बनाई ॥
माधवानल को बोल पठाइस, तवन सभा भीतर बैठाइस।
रीझ विप्र तव बेनु बजाई, सभ इसतृन के चित्त लुभाई ॥[६]
... ...

(३) सब अबली मोहित भई, नाद कानव सुन पाई।
सभहिन के तन सों गए, कमल पत्र लपटाई ॥६१॥[७]

'सभहूं' के पाछे चले कवल पत्र लटकाई ॥[८]

---

१. आलम, माधवानल कामकंदला, भासौर एडीशन, पृ० १४
२. गुरु गोविन्द सिंह, 'दशम ग्रन्थ', इक्यानवी कथा (चरित्रोपाख्यान)
३. वही,
४. आलम, माधवानल कामकदला
५. सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकदला चरित
६. आलम, माधवानल कामकंदला, भासौर एडीशन
७. गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ, इक्यानवीं कथा (चरित्रोपाख्यान)
८. आलम, माधवानल कामकंदला

टहकन दशम गुरु के दरबारी कवि थे। इन्होंने विक्रमी संवत् १७२६ में 'अश्वमेध-पर्व' का भाषा-रूपान्तर किया था। 'अश्वमेध पर्व' के आरम्भ में टहकन ने जिस प्रकार मूल संस्कृत-ग्रन्थ के भावानुसरण करने का संकेत दिया है ठीक वैसी ही स्थिति आलम की भी है। दोनों ने ही मूल रचना का अनुसरण किया है तथा इस तथ्य को लगभग एक जैसी ही शब्दावली में स्वीकार किया है—

टहकन—

कछुक उक्ति बल बुधि कछुक परक्रित हर लीनी।
बीनि बीनि अच्छर प्रवीन पोथी शुभ कीनी॥
....

पृथमे सुर भाषा सुनि लीनी, दोहा सरस चउपई कीनी।
कहूं कवित्त सोरठा की गति, टहिकन वर्णन कीओ अलप मति॥१६॥[1]

आलम—

कछु आपन कछु परकृत चोरे,
यथा शक्ति के अक्षर जोरे।
....

कथा संसकृत सुनि कछु थोरी,
भाषा बांधि चौपाई जोरी
....

कथा चौपही आलम कीन्हीं।
पहिले कथा स्रवन सुनि लीनी।
कहूँ कहूँ बीच दोहरा करे।
कहूँ कहूँ बीच सोरठा धरे।[2]

इससे स्पष्ट है कि 'माधवानल कामकन्दला' की रचना 'अश्वमेध पर्व' की रचना के बाद ही हुई है। इसलिए उसका रचना-काल वि० स० १७५३ के आस-पास ही माना जा सकता है। यह स्मरणीय है कि टहकन ने तो 'महाभारत' के 'अश्वमेध पर्व' को आधार बनाया था, किन्तु आलम ने जोध कवि की संस्कृत-रचना के साथ 'दशम ग्रन्थ' को भी आधार बनाया है।

शैली की दृष्टि से भी पाँच अर्धालियों के बाद एक दोहा देने की पद्धति, टहकन की पद्धति के अनुसरण की सूचना देती है।

'दशम ग्रन्थ' में संकलित चरित्र संख्या ४०४ में इसका निर्माण-काल संवत् १७५३ दिया हुआ है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'माधवानल काम-

---

१. टहकन, महाभारत भाषा—अश्वमेध पर्व
२. आलम, माधवानल कामकंदला, मासौर एडीशन

कन्दला' की रचना इसी के आस-पास या कुछ समय उपरान्त हुई होगी, क्योकि इक्यानवी सख्यक कहानी से आलम पहले ही परिचित होंगे और उसकी पूर्ण और विस्तृत कथा लिखने का कार्य उन्होंने पहले ही आरम्भ कर दिया होगा।

आलम के 'माधवानल कामकन्दला' में एक संगीतज्ञ लछीराम का उल्लेख मिलता है—

भेरो भाल हिण्डील पीपग लछीराम वर,
मेघराग कलोल चौरासी तिय पुत्र युत ॥२७६॥
....

लछीराम सुणाई बलपूर्ण पिवहि ।
कर चित पूर्ण चाय मेघराग नागर लियो ॥२७४॥[1]

ये लछीराम 'बुध प्रकाश दर्पण'[2] के रचयिता दीवान लछीराम ही हैं, जिन्होंने दोहा-चौपाई में इस ग्रन्थ की रचना की है। इसमे राग-रागनियों का वर्णन है। इस ग्रन्थ का रचना-काल वि० संवत् १७३८ दिया हुआ है—

सम्बत दस अरु सात सै अठती संग तास।
बुध प्रकाश दर्पण सुनौ गुनी जन करो प्रकाश ॥८॥[3]

अत: 'माधवानल कामकन्दला' की रचना आलम ने इसके बाद ही वि० संवत् १७५३ में की होगी; जब 'बुध प्रकाश दर्पण' की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी होगी।

यह सम्भव है कि आलम ने जोध कवि के संस्कृत-ग्रन्थ के अनुसरण पर जिस 'माधवानल कामकन्दला' की रचना की थी, बाद में उसका विस्तार कर दिया हो। यह स्थिति आलम की वृद्धावस्था में आई होगी, जब उन्होंने स्वयं इस रचना को सूफी-पद्धति में ढालने के लिए आरम्भिक अंशों में परिवर्तन कर दिया होगा। इसके फलस्वरूप गणेश आदि की स्तुति के स्थान पर परवर्ती प्रति की प्रतिलिपियों में मुहम्मद, गुरु और मित्र आदि का उल्लेख आ गया है। ऐसे कुछ दोहे है जो विस्तृत प्रतियों में तो मिलते है, किन्तु कई प्रतियों में नहीं मिलते। ये दोहे स्वयं आलम के रचे हुए हैं। अत: ग्रन्थ के स्वरूप में परिवर्तन आलम कृत ही है, अन्य किसी कवि के द्वारा किया हुआ नहीं, जैसा कि एक सामान्य धारणा बन गई है।[4] कुछ दोहे उदाहरण के लिए प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

दिजमन नगर मन त्तिपुन ए माधव यह थान,
तव 'आलम' तज सकल जुग प्रकट कंदल जान ॥२८८॥

---

१. आलम, माधवानल कामकन्दला, आसौर एडीशन.
२. बुद्ध प्रकाश दर्पण, हस्तलेख, ग्रन्थ संख्या ८२६, पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लाहौर
३. वही,
४. उदय शंकर शास्त्री का लेख, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ४६०

२. कहा सगुन समझे विना कहा समझि बिन हेत,
कहा हेत 'आलम' सुकवि रीझ न सखस देत ॥३०६॥
३. भयो सकल संताप तन 'आलम' मति विछोह,
विरह अगनि इव परिजरे तपत गात जिमि लोह ॥४०४॥
४. 'आलम' प्रीतम कौ मिलै अँग अँग सुख होइ,
पलक ओट जुग सेल गति रही सकल सुख सोइ ॥४२६॥

'कालिदास हज़ारा' में संवत् १४८१ से लेकर संवत् १७७६ तक के २१२ कवियों के १००० पद्य संगृहीत हैं। कालिदास संवत् १७४५ में गोलकुण्डा पर औरंगज़ेब के आक्रमण के समय वहाँ थे और मुअज्ज़म के प्रश्रय में रहने वाले आलम और शेख से वहीं उनकी भेंट हुई होगी, क्योंकि 'कालिदास हज़ारा' में शेख का निम्नलिखित कवित्त कुछ हेर-फेर के साथ कालिदास के नाम से मिलता है—

रात रण विषे जो रहे हैं पति सनमुख,
तिन्हें बखसीस बकसी है मैं बिहसि कं ;
करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार,
कटि माहि-किंकनी रही है अति लसिकैं।
'शेख' कहे आनन को आदर सों दीनों पान,
नैनन से काजर बिराजै मन बसि कैं।
ए रे बैरी वार ये रहे हैं पीठ पाछे,
तांते बार बांधत हौं बार बार कसिकै।[1]

कालिदास हज़ारा में—

रति रन विषे जो रहे हैं पति सनमुख,
तन्हैं बकसीस बकसी है मैं बिहंस कै।
करनि को कंकन उरोजन को चन्द्रहार,
कटि को सु किकनी रही है कटि लासिकै।
कालीदास आनन को आदर सो दीनो है पान,
नैनन को कज्जल रह्यो है नैन बसि कै।
ए रे बैरी वार ये रहे हैं पीठ पाछे,
यांते बार बार बांधत हौं बार बार कसकै।[2]

'शेख कहे' और 'कालिदास' में समान चार-चार वर्ण हैं और मात्राएँ भी समान है। अतः साधारण-से हेर-फेर से एक का कवित्त दूसरे का बन जाता है। संग्रहकर्ता कालिदास के लिए इस प्रकार का हेर-फेर असम्भव नहीं है। सम्भवतः जिस समय

१. हिन्दी के मुसलमान कवि, पृ० ११८
२. दे०, कालिदास त्रिवेदी, कालिदास हज़ारा

औरंगज़ेब ने मुअज्जम को कैद किया तो उस समय पारिवारिक कलह का वातावरण बन गया होगा और शेख आलम तथा कालिदास आदि सभी कवि वहाँ से खिसक गये होंगे। आलम और शेख, गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में गए, जहाँ कुछ मुसलमान कवियो को भी प्रश्रय मिला हुआ था और कालिदास जम्बू-नरेश जोगजीत सिंह के यहाँ चले गए, जहाँ सं० १७४९ में उन्होंने 'वार-वधू-विनोद' लिखा, जो नायिका-भेद का ग्रन्थ है। इससे भी स्पष्ट है कि आलम और शेख, कालिदास के समकालिक रहे हैं तथा मुअज्जम के दरबार में वे रहे होंगे, यह कोई क्लिष्ट कल्पना नहीं है। 'जान्नत औलि' वाला पद आलम का भी हो सकता है और जैतसिंह महापात्र ने भी उसे अपनी रचना में संकलित कर लिया होगा, क्योंकि पर-पद-सकलन की यह पद्धति रीतिकाल में एक सामान्य प्रचलित परम्परा-मात्र थी।

समस्यापूर्ति के रूप में लिखित शेख के एक कवित्त की अन्तिम पंक्तियाँ ठीक वैसी ही हैं, जैसी 'दशम ग्रन्थ' की 'अकाल स्तुति' में है—

हाथी की पुकार पल पाछे पहुँचत तांहि।
चींटी की चिंघार पहिले ही सुनिअत है।[1]
... ...
'पैंडो सभ सूधो, बैंडो कठिन किवार द्वार,
द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है।
शेख भनि तहाँ मेरो तृभवन राय है जु,
दीनबन्धु स्वामी सुरपतिन के पति हैं।
बैरी को न बैर, बुरिआई को न परवेश,
हीने को हटक नाहीं छीने को शक्ति है।
हाथी की हुंकार पल पाछे पहुँचत पावें,
चींटी की चिंघार पहिले ही पहुँचत है।[2]

शेख ने गुरु गोविन्द सिंह की इन प्रार्थना पंक्तियों पर समस्यापूर्ति करते समय 'सबल भगति' का प्रयोग किया है। डॉ० बलवीर सिंह का अनुमान है कि इस समस्या की पूर्ति शेख ने उस समय की होगी जब गुरु गोविन्द सिंह संवत् १७४६ में होने वाले भंगानी युद्ध की तैयारी कर रहे होंगे। उस समय तक गुरु गोविन्द सिंह के पास आवश्यक किलेबन्दी भी नहीं थी। अतः आलम और शेख साथ-साथ गुरु-दरबार में संवत् १७४५ वि० में पहुँचे होंगे। आलम के प्रश्न और शेख के उक्त कवित्त को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि ये दोनों पाँवटा ही पहुँचे होंगे।[3]

गुरु गोविन्द सिंह ने सं०१७५५ में अपना कवि-दरबार विसर्जित कर दिया था; क्योंकि छोटे-मोटे युद्धों के अतिरिक्त बड़े युद्ध की सम्भावना बढ़ गयी थी। उस समय तक

१. गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ (अकाल स्तुति)
२. हिन्दी के मुसलमान कवि, पृ० ११८
३. सं० डॉ० बलवीर सिंह, माधवानल कामकंदला चरित, पृ० ४९-५१

शाहज़ादा मुअज्ज़म कैद मुक्त होकर पंजाब और सीमाप्रान्त का सूबेदार बन चुका था। आलम और शेख पुनः गुरु-दरबार से अपने पूर्व आश्रयदाता मुअज्ज़म के पास चले गए होंगे।

'श्याम-सनेही' की एक प्रति श्री भवानीशंकर याज्ञिक के पास उपलब्ध है। डॉ० बलवीर सिंह ने पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लाहौर में सुरक्षित श्याम-सनेही की एक अन्य हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया है। इसका लिपिकाल सं० १७१७ वि० है। यह उल्लेख निम्नलिखित रूप में है—

श्री शुभ सम्वत् १७१७ बरखे मिति ज्येष्ट बदि ७ सनिवार।
पोथी लिखी सिपाह् विचिम्य संत ब्राह्मण प्रगदास ॥
सतबासी फतेपुरी चतरादास ठाकुरदा साणी जी।
जंति जगा श्याम सनेही लिषी सम्वत् कल्याणु।[1]

डॉ० बलवीर सिह ने 'माधवानल कामकन्दला' के रचयिता आलम को ही 'श्याम-सनेही' का भी रचयिता माना है।[2]

'श्याम-सनेही' की सं० १७१७ वि० की एक अन्य प्रति भी उपलब्ध है। अतः यह बहुत पूर्व की रचना है। 'श्याम-सनेही' मे उपलब्ध एक दोहे से सूचित होता है कि इसकी रचना के समय ही शेख से उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ था और संभवतः वे शेख के रंग में रंग गये थे। यह दोहा निम्नलिखित है—

आप बिसारहि 'शेख' कहि जो पीय सुरत समाइ।
मानष भृंगि मूरति रच्यो दीन दिखावहि आइ ॥१६॥

'भृंगि मूरति रच्यो' से यह भी स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपना दीन (धर्म) भी परिवर्तित कर लिया था। 'श्याम-सनेही' की रचना भी दोहा और चौपाई में है, किन्तु उसमें ऐसा कोई क्रम नहीं है कि पाँच अर्धालियो के बाद एक दोहा हो, जैसा कि माधवानल कामकन्दला में उपलब्ध है। 'श्याम-सनेही' की रचना के समय भी आलम के सामने सूफियों की यही पद्धति रही, परन्तु उन्होंने उसे अपनाया नहीं। यह क्रम उन्होंने टहकन के 'अश्वमेध पर्व' को देखने के बाद अपनाया।

श्री भवानीशंकर याज्ञिक ने लिखा है 'आलम के कवित्त-सवैया छन्दों का एक संग्रह-ग्रन्थ, जिसमें ४७१ छन्द है, कांकरौली में है। इसका बन्ध नं० ७७ तथा पुस्तक-संख्या ५ है और इसमें १६८ पृष्ठ हैं। ग्रन्थ के आदि-अन्त में 'कवि शेष आलम कृत' नाम दिया है, परन्तु पुस्तकालय वालों ने उसका 'अक्षरमालिका' नाम कल्पित रूप से रख लिया है। इसका कारण यह है कि उसमें छन्दों का क्रम वर्णमाला के अक्षरों के क्रम से है। पहले व्यंजन है और अन्त में स्वर। स्वरों में क्रम उलट-पलट गया है। इस प्रति के आदि में मंगलाचरण का प्रथम दोहा इस प्रकार है—

१. दे०, सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकंदला चरित, पृ० ६३
२. वही, पृ० ६३

"नाथ निरंजन निरबिघन, करुनामय निहकाम।
निस्तारन तारन तरन, रट्यो निरन्तर नाम ॥"

यह दोहा प्रेमगाथाकार आलम द्वारा रचित 'श्याम-सनेही' के मंगलाचरण का है। इसी प्रकार 'अक्षरमालिका' का दूसरा छन्द एक छप्पय है, जिसका पाठ इस प्रकार है—

"मुख-मंडल पर लसै जोन्ह-मंडित मयंक जनु।
जटित जोति अरधंग गौरि मज्जित दरपन तनु ॥
धवल धूरि धरि अंग उच्च सोहत संकर बर।
फनि-भूषित फनपति चारु बूझिय चन्दन तर ॥
जिहि मिलत अंग 'आलम' सुमति, किय जल-थल उज्जल बरन।
नव करन जोति नव अंग कह, सुभ विभूति भव उद्धरन ॥"

यह छन्द भी 'श्याम-सनेही' के मंगलाचरण का प्रथम छन्द है। 'अक्षर मालिका' के छियासठवें छन्द का पाठ निम्नलिखित है—

"गहरु न लावौ तिय-जन कौ संताप जानि,
संकट हरन जानकी ते जान पाए हौ।
'आलम' सरूप स्याँम करुना के सिंधु स्वाँमी,
तेरे गुन तारा हूँ अहिल्या नीकें गाए हौ।
मेरी यों बिपत्ति सुनि प्यारे प्राननाथ पिय,
ऐसे पाँउ धारौं जैसे हाथी-काज धाए हौ।
पाती दीजो पंडित संदेसौ मुख ऐसौ कहि,
आवन की आसा बाढ़ी मेरे जानि आए हौ।"

यह छन्द भी 'श्याम-सनेही' का है। इस छन्द द्वारा रुक्मिणी ने श्री कृष्ण के पास ब्राह्मण द्वारा एक पत्र के अतिरिक्त मौखिक संदेश भेजा है। इन अवतरणों से पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि 'माधवानल कामकन्दला' तथा 'श्याम-सनेही' के रचयिता आलम ही मुक्तक कवित्त-सवैयों के रचनाकार हैं तथा दोनों अभिन्न व्यक्ति हैं। इनके द्वारा रचित एक ग्रन्थ के छन्द दूसरे में भी पाए जाते हैं और काल-गणना में भी अन्तर नहीं है। अतएव दो आलम मानना भयंकर भूल है'।[1]

ला० भगवान दीन के अनुसार आलम फारसी के विद्वान् थे। 'रेखता' में भी उनके कवित्त उपलब्ध होते हैं। संवत् १७५३ की जिस प्रति से उन्होंने 'आलम केलि' का सम्पादन किया है, उसके बाद भी आलम के फुटकर कवित्त बड़ी संख्या में मिल जाते हैं। इस सन्दर्भ में लाला जी के विचार अवलोकनीय हैं—"हस्तलिखित प्रति जिसके अनुसार यह पुस्तक छपी है, सं० १७५३ की लिखी हुई है। इससे यह स्पष्ट है

१. दे०, प्रधान सं० वासुदेव शरण अग्रवाल, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २९६

:: इसमें वे ही छन्द संगृहीत हैं जो उस समय तक बन चुके थे। यही कारण है कि इसमें आलम और शेख के कुछ अधिक प्रख्यात कवित्त नहीं मिलते............तात्पर्य यह कि आलम और शेख के बहुत से छन्द इसमें नहीं मिलते। इसका कारण यही जान पड़ता है कि वे छन्द इस हस्तलिपि के बाद की रचना है। यह हस्तलिपि आलम के जीवनकाल में ही उनके किसी शिष्य अथवा भक्त द्वारा लिखी गयी है। अत: अत्यन्त प्रामाणिक जंचती है।[1] इसी सन्दर्भ में वे आगे लिखते हैं—आलम ने 'रेखता' नाम से कुछ ऐसे कवित्त लिखे हैं जिनसे जान पड़ता है कि आलम फारसी भाषा और उसके साहित्य की भी अच्छी जानकारी रखते थे और खड़ी बोली में भी कविता करने के पक्षपाती थे।[2]

आलम की एक अन्य रचना 'ग्रन्थ संजीवन' भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ से दो तथ्य सामने आते हैं— एक तो यह कि यह मूल वैद्यक-ग्रन्थ फारसी में था, जिसका भाषा-रूपान्तर चाँदसुत आलम ने किया है—

वैद ग्रन्थ फारसी, समझि रच्यौ भासान (भाषान)
सहज अरथ परकट करौ, औषधि रोग समान।[3]

इससे इतना तो स्पष्ट है कि चाँदसुत आलम फारसी के विद्वान् थे। दूसरे, 'ग्रन्थ संजीवन' से ऐसा प्रतीत होता है कि आलम इस समय तक मुसलमान बन चुके थे—

ग्रन्थ संजीवन नामधरि, देषहु ग्रन्थ प्रकास।
सेहृद(?)चाँदसुत आलम भाषा कियो निवास।।[4]

आलम ने इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी गणेश की स्तुति की है जो इस तथ्य की पुष्टि करती है कि 'माधवानल कामकन्दला' की कुछ प्रतियों में प्राप्त होने वाली गणश की स्तुति, न तो प्रक्षिप्त है और न किसी हिन्दू प्रतिलिपिकार की देन, जैसा कि श्री उदय शंकर शास्त्री ने संकेत किया है[5]—

सिवसुत पद प्रनाम सदा विधि सिद्धि सरसुति मति देहु।
कुमति विनासहु, सुमति मोहि देहु, मंगल मुदित करेउ।।[6]

इस ग्रन्थ में कालिदास का एक छन्द उद्धृत है। अत: इस ग्रन्थ का रचनाकाल उस समय के बाद का ही हो सकता है जब आलम गोलकुण्डा में कालिदास से मिले होंगे।

---

१. स० ला० भगवान दीन, आलमकेलि के सम्पादकीय वक्तव्य से, पृ० २-३
२. वही, पृ० ३-४
३. हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, पृ० २
४. वही, पृ० ३
५. हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ४६१
६. हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, पृ० २

इस 'ग्रन्थ-संजीवन' का रचनाकाल भी सं० १७४६ के कुछ बाद में होना चाहिए। कालिदास का दिया हुआ छन्द निम्नलिखित है—

छप्पय

बालपन दस वर्ष वीस लौं बढ़त गनीजै।
छवी सोभा रहे तीस, बुद्धि चालीस लहीजै॥
सुन्व दिढ़ वर्ष पचास साठि पर नैन जोति रकि।
सत्तरि पै षसै काम असी पर लाल जात रमि॥
बुद्धिनास नव्वे भए सतवीसे सब ते रहित।
जेदावस्था नरन की कालिदास ऐसे कहित॥[1]

आलम के अन्य ग्रन्थ 'सुदामाचरित' की एक खण्डित प्रति श्री भवानीशंकर याज्ञिक के पास उपलब्ध है। इसकी एक प्रति द्वारिकेश पुस्तकालय, काकरौली में (बन्ध-७०, पुस्तक-संख्या ८।३) भी उपलब्ध है। यह ६० पद्यों की छोटी रचना 'रेखता' भाषा में लिखी गयी है। इसका लिपि-काल निश्चित् नहीं है। खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो के सोलहवें त्रैवार्षिक विवरण मे 'सुदामाचरित' की एक अन्य प्रति का उल्लेख मिलता है, जिसका प्राप्ति-स्थान—पं० रेवती प्रसाद जी, स्थान—गढ़ी परसोती, डा०—सुरीर, ज़िला मथुरा है। इस प्रति का लिपि-काल वि० संवत् १८७६ है।

दक्खिनी हिन्दी में साहित्यिक रचनाओं के प्रारम्भ के साथ ही हिन्दी छन्दों में 'रेखता' का प्रयोग सं० १७०० के आस-पास ही होने लगा था। अकबर के समकालीन या उसके पूर्व के कवियों ने 'रेखता' का इस रूप में प्रयोग नहीं किया। उन्होंने मणि प्रवाल शैली में यदि मिश्रित रचनाएँ प्रस्तुत भी की हैं, तो भी उनमें भाषा का मिश्रण नहीं है, वरन् प्रत्येक भाषा के चरण पृथक्-पृथक् ही हैं। रहीम के 'षेट-कौतुकम्' आदि को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। आलम के कुछ ही सयम बाद नागरी दास ने 'इश्के—चमन' में 'रेखता' सदृश भाषा का ही प्रयोग किया है। 'सुदामा चरित' की जो प्रति कांकरौली में उपलब्ध है, उसमें नागरीदास का 'इश्के-चमन' भी पृथक् से एक ही लिपिकर्ता द्वारा लिखा गया है। इससे स्पष्ट है कि आलम का प्रयोग तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचायक है और केवल इसी कारण 'सुदामा चरित' को किसी परवर्ती आलम की रचना नहीं माना जा सकता।

इन सारे तथ्यों के अतिरिक्त गुरु-दरबारी साहित्य में भी कुछ ऐसे संकेत उपलब्ध होते हैं, जिनसे आलम का दशम गुरु का दरबारी कवि होना सिद्ध होता है।

सेनापति दशम गुरु के अनन्य भक्त और ऐसे दरबारी कवि हैं जो अन्त तक उनके साथ रहे। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'गुरुशोभा' में एक दोहे में आलम का निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया है—

---

१. हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, पृ० ३

स्रवनन सुनि आलम गयो प्रभ सो कहिओ विचार।
विदा फाउज कीनी तबै अपनी क्रिपा धार॥ ३।४।१०८

ऊपर की इन पंक्तियों से आलम, दशम गुरु के निकट दरबारी ही प्रतीत होते हैं, सेना के नायक अथवा सरदार नहीं।

भाई सन्तोख सिंह ने 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में दशम गुरु के दरबारी कवियों के साथ आलम का भी एक कवित्त उद्धृत किया है—

सोभा हूँ के सागर नवलनेह नागर हैं,
बलि भीम सम, शील कहाँ लौ गिनाइए।
भूम के विभूषण, जु दूखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के, मुख देखे ते अघाइए।
हिम्मत निधान, आन दान को बखाने?
जाने आलम तमाम जाम आठो गुन गाइए
प्रबल प्रतापी पातिशाहु गुरु गोविन्द जी,
भोज की सी मौज तेरे रोज-रोज पाइए॥[1]

अतः ऊपर के इन दोनों तथ्यों से भी आलम स्पष्ट रूप से दशम गुरु के ही दरबारी कवि सिद्ध होते हैं।

निष्कर्ष : उक्त विवेचन और तथ्यों से स्पष्ट है कि 'माधवानल कामकन्दला' उसी आलम की रचना है, जिसकी 'श्याम-सनेही'। इसे दो आलम मानने वाले भी स्वीकार करते हैं।[2] 'श्याम-सनेही' और 'आलम केलि' के रचयिता आलम भी एक ही व्यक्ति हैं, इस तथ्य को भी एक आलम की सत्ता मानने वाले विद्वद्वर्ग ने स्वीकार किया है।[3] 'आलम केलि' में 'रेखता' के कवित्त हैं और 'सुदामा चरित' भी 'रेखता' में लिखा गया है तथा उसकी प्रतियों पर 'आलमकृत' लिखा होने से यह स्पष्ट है कि 'रेखता' में 'सुदामा चरित' लिखने की क्षमता उस आलम में विद्यमान थी, जिसने 'आलम केलि' की रचना की। 'रेखता' में रचनाओं का आरम्भ आलम के समय से बहुत पूर्व ही हो चुका था, इसके लिए 'दक्खिणी हिन्दी काव्य-धारा'[4] में पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं। 'रेखता' में ऐसे व्यक्तियों की रचनाओं की प्रचुर संख्या है, जो फारसी के मर्मज्ञ थे। 'आलम केलि' के कवित्तों के अतिरिक्त 'ग्रन्थ संजीवन' से इस तथ्य की स्पष्ट पुष्टि होती है कि इसका फारसी से भाषा-रूपान्तर किया गया था और चाँदसुत आलम फारसी का विद्वान् था। इसका समय भी वही है, जो 'आलम-

१. भाई सतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१९
२. दे०, मनोहर लाल गौड़ का लेख, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ३९०-९६
३. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० ६२२
४. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा, पृ० १५०-३००

केलि' के रचयिता आलम का है। अतः यह चाँदसुत आलम ही उक्त सभी रचनाओं का स्रष्टा है। उसका सम्बन्ध 'कालिदास हज़ारा' के संग्रह-कर्ता कालिदास से भी कुछ समय तक अवश्य रहा है, क्योंकि उसने उनका एक छप्पय 'ग्रन्थ संजीवन' के अन्त में उद्धृत किया है।

अन्तर्वेद-निवासी कालिदास के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह स्वीकार किया है कि वे औरंगज़ेब के द्वारा गोलकुण्डा पर चढ़ाई करने के समय वहाँ किसी हिन्दू राजा के साथ गए थे और औरंगज़ेब की प्रशस्ति में एक कवित्त लिखा था।[1] 'कालिदास-हज़ारा' में आलम के कवित्त भी संकलित हैं। जब औरंगज़ेब ने मुअज्ज़म को कैद कर लिया तो आलम वहाँ से निश्चित् रूप से अलग हो गए होंगे। आलम और कालिदास दोनों ही उत्तर की ओर आए होंगे। कालिदास ने जम्बु-नरेश का आश्रय लिया होगा और आलम ने दशम गुरु का। इससे आलम के मुअज्ज़म के दरबारी कवि होने के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुति की भी पुष्टि होती है। जिस कवित्त के आधार पर आलम और मुअज्ज़म का सम्बन्ध जोड़ा जाता था उसे पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'जैत' कवि का मान लिया है[2] और रचनाओं की उस हेराफेरी का ध्यान नहीं रखा, जिसका संकेत रीतिकाल में प्रायः मिलता है। इस सम्बन्ध में शेख तथा कालिदास के नाम से प्रचलित एक कवित्त का उदाहरण भी हमने पहले प्रस्तुत किया है। कुछ समय तक—सम्भवतः वि० सं० १७५५ तक—दशम गुरु के दरबार में रहने के उपरान्त जब मुसलमानों और सिक्खों के बीच भयंकर युद्ध की सम्भावना बढ़ गयी और दशम गुरु का दरबार विसर्जित हो गया तब कैद से मुक्त एवं पश्चिमोत्तर प्रदेश के सूबेदार और अपने पूर्व आश्रयदाता के पास आलम पुनः चले गये होंगे।

प्रायः हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने आलम को मुअज्ज़म का दरबारी कवि माना है, और आलम तथा शेख एवं शेख, जहान और आलम को लेकर मुअज्ज़म द्वारा किए हुए हास्य का उल्लेख किया है। यह घटना भी श्रुति-परम्परा पर ही आश्रित है, किन्तु इससे मुअज्ज़म और आलम का सम्बन्ध सूचित होता है।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आलम का रचना-काल संवत् १६४०-८० तक माना है। इसके मूल में 'माधवानल-कामकन्दला' में दिया हुआ हिजरी सन् ९९१ ही है। इसका उल्लेख हम कर आए हैं कि यह रचना मूल संस्कृत-ग्रन्थ का अनुसरण करने के कारण जोध कवि की रचना के काल का निर्देश करती है, न कि स्वयं आलम के रचना-काल का। अतः आलम के काल को मुअज्ज़म के काल से पूर्व ले जाने की युक्ति का आधार ही पुष्ट प्रतीत नहीं होता। संवत् १७१२ से लेकर संवत् १७५३ तक आलम की कृतियों का लिपिकाल है। इसके बाद की प्रतियाँ आलम के काल-निर्धारण में सहायक सिद्ध नहीं होतीं। इन प्रतियों की दृष्टि से यदि आलम के रचना-काल को सं०

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६१
२. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० ६२०

१७१२ से संवत् १७६० तक स्वीकार किया जाए तो इसमें किसी तरह की असम्भवता का प्रश्न नहीं उठता।

डॉ० बलवीर सिंह का अनुमान है कि अपने मुक्तक कवित्तों और 'श्याम-सनेही' की रचना के समय आलम की आयु कम-से-कम २०-२२ वर्ष की अवश्य रही होगी। इसी अनुमान के आधार पर उन्होंने एक निश्चित् सूची प्रस्तुत की है[1]——

ईस्वी सन्	विक्रमी संवत्	विवरण
१६३३	१६९०	अनुमानतः आलम का जन्म-काल
४-१०-१६४३	१७००	मुअज्जम का जन्म-काल
१६५३-५४	१७१०-११	आलम-शेख का प्रणय, विवाह, धर्म-परिवर्तन
१६५५	१७१२	श्याम-सनेही की रचना-समाप्ति का काल
१६६०	१७१७	श्याम-सनेही की प्रथम प्रतिलिपि का काल
१६८७	१७४४	गोलकुण्डा-विजय, मुअज्जम की कैद, आलम और शेख का पलायन
१६८८	१७४५	दशम गुरु के दरबार में शेख द्वारा प्रशस्ति-कवित्त की रचना
१६९५	१७५२	मंगल, आलम आदि कवियों द्वारा प्रशस्ति-कवित्त रचना, हुसेनी युद्ध की समाप्ति
,,	,,	मुअज्जम की कैद-मुक्ति और पंजाब-सिन्ध के सूबेदार-पद की प्राप्ति
१६९६	१७५३	गुरु गोबिन्दसिंह के चरित्रोपाख्यान की पूर्ति, माधवानल-कामकन्दला की रचना
१६९८	१७५५	दशम गुरुद्वारा कवियों को विदा देना
,,	,,	आलम और शेख का मुअज्ज़म के पास पुनः जाना, मुअज्ज़म की प्रशस्ति का कवित्त
१७०५	१७६२	अनुमानतः आलम का मृत्यु-काल
१७१७	१७७४	माधवानल कामकन्दला की प्रथम प्रतिलिपि का काल।

ऊपर के विश्लेषण से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आलम दशम गुरु के दरबारी कवि थे। 'माधवानल कामकन्दला' के रचना-काल के सम्बन्ध में उत्पन्न भ्रान्ति के कारण ही दो आलम का विवाद प्रस्तुत हुआ और एक आलम को अकबर का समकालिक और दूसरे को रीतिकाल में विद्यमान कहा गया है। दोनों आलम को एक सिद्ध करने के प्रयत्न में भी यही भ्रान्ति कार्य करती रही है। हिजरी सन् ९९१ से लेकर रीतिकाल में उनकी

---

१. सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकंदला चरित, पृ० ७८-७९

विद्यमानता तक के काल को एक ही आलम का काल मानने का कोई निश्चित् आधार नही है। इस तथ्य के प्रकट हो जाने से एक ही रीतिकालीन आलम माना जाना चाहिए और वह आलम भी दशम गुरु के दरबार से सम्बद्ध था, इसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

रचनाएँ : आलम की निम्नलिखित प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध हैं---

(१) माधवानल कामकन्दला---यह एक प्रेम-कथा प्रबन्ध है और इसमें माधवानल और कामकन्दला की प्रणय-कथा वर्णित है।

(२) श्याम-सनेही---यह एक पौराणिक मौलिक प्रबन्ध है और इसमें रुक्मिणी तथा कृष्ण के विवाह की कथा का वर्णन है।

(३) आलम केलि---आलम के मुक्तक कवित्तों का संग्रह है।

(४) सुदामा चरित---यह एक पौराणिक प्रबन्ध है। इसमें सुदामा और कृष्ण की कथा वर्णित है। यह रचना खण्डित है और अप्रकाशित है।

(५) ग्रन्थ संजीवन--- यह एक वैद्यक-ग्रन्थ है।

(६) अन्य मुक्तक---इसमें इनकी फुटकर रचनाएँ संकलित हैं।

४. सुखदेव

गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवियों में सुखदेव, सुक्खा ओर सुखिया नाम से तीन कवियों का उल्लेख मिलता है। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में भी भाई सन्तोख सिंह ने सुखदेव का उल्लेख किया है।[1] पंजाब के विविध पुस्तकालयों[2] में सुखदेव रचित 'फाज़िल अली प्रकाश' और 'अध्यात्मक प्रकाश' की प्रतियाँ गुरुमुखी लिपि में मिलती हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में 'अध्यात्म प्रकाश' की एक प्रति (२४६---२४४), नागरी लिपि में उपलब्ध है। 'फाज़िल अली प्रकाश' की कोई प्रति वहाँ मुझे नहीं मिली।

गार्सा द तासी से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक के हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने सुखदेव मिश्र का परिचय प्रस्तुत किया है।[3] आचार्य शुक्ल ने सुखदेव मिश्र को दौलतपुर-निवासी और पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती'[4] में उन्हें कंपिला-निवासी माना है। एक से अधिक सुखदेव की विद्यमानता की संभावना को भी

---

१. भाई संतोख सिंह, गुरु प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५५४४

२. फाजिल अली प्रकाश---भाषा-विभाग रेफ़ेंस पुस्तकालय, पटियाला, ग्रन्थ-संख्या १२९---इसकी एक प्रति अमृतसर निवासी ज्ञानी करनैलसिंह के पास भी विद्यमान है।
अध्यात्म प्रकाश की प्रतियाँ---भाषा-विभाग रेफ़ेंस पुस्तकालय, पटियाला, सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला---में उपलब्ध हैं।

३. द्रष्टव्य : तासी, पृ० ३१६, सरोज, पृ० ४९०-९१, ग्रियर्सन, पृ० ३०१, विश्वबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ४७६-८३, आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८८-८९

४. सरस्वती, भाग ५, अक्तूबर १९१४, संख्या ११७

महावीर प्रसाद द्विवेदी और मिश्रवन्धुओं ने स्वीकार किया है। किन्तु आचार्य शुक्ल ने इन सम्भावनाओं को किनारे रख कर एक ही सुखदेव माना है और उसका कविता-काल संवत् १७२०-१७६० तक ठहराया है। उन्होंने उनकी निम्नलिखित रचनाओं की सूची दी है—'वृत्त विचार' (संवत् १७२८), 'छंद विचार', 'फाज़िल अली प्रकाश', 'रसार्णव', 'शृंगार लता', 'अध्यात्म प्रकाश' (सवत् १७५५) तथा दशरथ राय।

शुक्ल जी ने इन सात रचनाओं को एक ही सुखदेव कृत मान लिया है। इनमें से 'वृत्त विचार' का रचना-काल संवत् १७८८ है और 'मर्दन रसार्णव' का रचना-काल संवत् १७६० के उपरांत है। इस प्रकार स्वयं आचार्य शुक्ल का यह निष्कर्ष संदिग्ध हो जाता है कि सुखदेव नामक एक ही कवि था और उसका रचना-काल सं० १७२० से १७६० तक है। जिस भगवंतराय खीची के दरबार में सुखदेव मिश्र रहे, उनका राज्य-काल संवत् १७७२ से १७९२ है। इसके अतिरिक्त, मर्दनसिंह और 'हिम्मत सिंह' का समय भगवंत-राय के कुछ बाद ही पड़ता है। ये सभी, सुखदेव मिश्र के आश्रयदाता थे। ऐसी परिस्थिति में एक सुखदेव की कल्पना, पुष्ट आधारों पर प्रतिष्ठित नही है, और उन सन्देहों की पुष्टि भी होती है, जिनके आधार पर एक से अधिक सुखदेव नामक कवियों के विद्यमान रहने की कुछ विद्वानों ने सम्भावना व्यक्त की है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित एवं 'सरस्वती' में प्रकाशित सुखदेव मिश्र का उक्त वृत्तान्त ही हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों का मुख्य आधार रहा है, परन्तु स्वयं द्विवेदी जी ने ही यह सन्देह व्यक्त किया है कि 'छन्दो विचार पिंगल', 'अध्यात्म प्रकाश' और 'दशरथ राय'[1]—ये तीन ग्रन्थ किसी अन्य सुखदेव की रचना हो सकते हैं। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए पं० कृष्ण विहारी मिश्र ने लिखा है—"हमारे पास 'वृत्त विचार' की जो प्रति है वह या तो दौलतपुर स्थित हिमकर के मिश्रों के पूर्वज सुखदेव मिश्र से भिन्न किन्हीं दूसरे सुखदेव मिश्र की बनाई है अथवा दौलतपुर के हिमकर वाले मिश्र सुखदेव जी के वंशज नहीं हैं या यह भी हो सकता है कि उसके भीतर और कोई रहस्यमय बात हो जिसे हम लोग कोई नही समझ पाए हैं।"[2]

डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह का सन् १९६७ में एक शोध-प्रबन्ध "भगवंतराय खीची और उनके मंडल के कवि' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें उन्होंने निम्नलिखित नवीन तथ्यों का उद्घाटन किया है :—

१. 'फाजिल अली को समर्पित किए गए अपने ग्रन्थ में कवि ने रचनाकाल संवत् १७३३ दिया है। फाजिल अली को इन (हिन्दी साहित्य के इतिहासकार) लोगों ने औरंगज़ेब का मन्त्री माना है, यह कथन इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त असंगतिपूर्ण है।[3]

२. 'वृत्त विचार' में उसका रचना-काल सं० १७२८ है–

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८८

२. हिन्दी साहित्य समालोचक, भाग ३, संख्या १, श्रावण स० १९८४

३. डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह, भगवंत राय खीची और उनके मंडल के कवि, पृ० १४९

संवत् सत्रह सै बरस अठाइस अति चारु,
जेठ सुकुल तिथि पंचमी उपज्यो वृत्त विचार ।।[1]

३. भगवंत राय का राज्य-काल संवत् १७७२ से १७९२ तक माना जाता है। यदि 'वृत्त-विचार' के रचयिता सुखदेव मिश्र ही हैं तो उसके रचना-काल में उनकी आयु ३० वर्ष मान लेने पर संवत् १७९२ तक सुखदेव की आयु ९४ वर्ष की सिद्ध होती है। कवि उसके बाद भी जीवित रहा और 'मर्दन रसार्णव' की रचना इस अन्तिम काल में ही हुई। इस प्रकार सुखदेव मिश्र ने प्राय: ७० वर्ष तक काव्य-सृजन किया और उनकी काव्य-प्रतिभा ७० वर्ष तक अर्थात् उनके जीवन के ९५ वर्ष तक वैसी ही पैनी और अशिथिल बनी रही, यह बात कुछ जँचती नहीं। इस प्रकार सुखदेव नाम के एक ही कवि मानने में सबसे पहले आयु और कविता-काल के आधार पर सन्देह जागृत होता है।[2]

४. 'वृत्त-विचार' के लेखक, कंपिला-निवासी सुखदेव ने जो अपना वंश-परिचय दिया है वह दौलतपुर वासी सुखदेव मिश्र के वंशजों से भिन्न है।[3]

५. 'वृत्त-विचार' और 'फाजिल अली प्रकाश' के कर्ता ने प्राय: 'सुखदेव सुकवि' और 'कविराज' आदि नामों का प्रयोग किया है, जबकि 'रस रत्नाकर', 'मर्दन रसार्णव' एवं 'छन्द विचार पिंगल' के कर्ता ने एक भी जगह 'कविराज' उपनाम प्रयोग नही किया। इतना ही नहीं, इन्होंने 'मिश्र सुखदेव' उपनाम का प्रयोग किया है। 'कविराज' उपनाम से अंकित दो उदाहरण यहाँ उपयुक्त होंगे—

(क) 'कविराज' कहत कट विदिता सो कहै छन्द मागधो सोई

—वृत्त-बिचार पिंगल

(ख) 'करहु कृपा, कविराज' को कामद कान्ह कुमार।[4]

—फाजिल अली प्रकाश

६. 'फाजिल अली प्रकाश' की पुष्पिका में 'मिश्र सुखदेव कविराज' लिखा हुआ है जबकि 'मर्दन रसार्णव' में केवल सुखदेव।[5]

७. सूदन के 'सुजान चरित' में कविराज और सुखदेव को पृथक्-पृथक् कवि माना गया है।[6]

इस प्रकार डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'फाजिल अली प्रकाश' और 'वृत्त-विचार' के रचयिता सुखदेव मिश्र कंपिला-निवासी भारद्वाज गोत्रीय शुक्ल थे, जो मिश्र कहलाए और ये दौलतपुर-निवासी 'मर्दन रसार्णव' के रचयिता सुखदेव मिश्र से भिन्न व्यक्ति हैं।

---

१. डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह, भगवत राय खीची और उनके मंडल के कवि, पृ० १४९
२. वही, पृ० १४९
३. वही, पृ० १५०
४. वही, पृ० १५०
५. वही, पृ० १५०
६. वही, पृ० १५०

८. 'अध्यात्म प्रकाश' का रचना-काल संवत् १७५५ हैं। इसमें कवि के नाम की छाप में 'कविराज' शब्द का एक भी स्थान पर प्रयोग नही हुआ। 'मिश्र' पद भी कही नहीं मिला। अतः इसके कर्ता दोनों सुखदेव नामधारी कवियों से अपना अस्तित्व पृथक् प्रमाणित करते हैं। इनका वर्ण्य-विषय दर्शन और अध्यात्म है। नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में 'ज्ञान प्रकाश' और 'गुरु महिमा' दो खण्डित पुस्तकें देखने को मिली है। 'ज्ञान प्रकाश' भी संवत् १७५५ की ही रचना है। इसका वर्ण्य-विषय 'अध्यात्म-प्रकाश' के समान ही है, शैली भी वही है। इन दोनों रचनाओं की विषय-वस्तु भी संवाद रूप में प्रस्तुत की गयी है। शिष्य की शंका का गुरु समाधान करता है। 'गुरु महिमा' में कुल १५-२० छन्द हैं। इसके रचयिता भी सुखदेव कवि हैं। स्मरण रहे कि इन तीनों ही ग्रन्थों में कविनाम छाप एक-सी है। केवल सुखदेव नाम का ही प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कविनाम की छाप तथा विषय-वस्तु की दृष्टि से इनका अस्तित्व दोनों सुखदेव नामधारी कवियों से अलग प्रतीत होता है।[१]

९. परन्तु ये 'अध्यात्म प्रकाश' के कर्ता सुखदेव, हिम्मत सिंह, मर्दन सिंह व भगवंत राय के यहाँ आश्रय ग्रहण करने वाले सुखदेव नहीं हो सकते। त्याग और संन्यासपूर्ण जीवन को बिताकर न कोई नायिकाभेद का ग्रन्थ लिख सकता है और न दरबारदारी वातावरण ही ग्रहण कर सकता है। यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे आलोच्य सुखदेव इन दोनों से भिन्न व्यक्ति थे।[२]

१०. इस अनुसन्धान द्वारा यह निश्चित् हो जाता है कि सुखदेव नाम के तीन कवि हिन्दी साहित्य में एक शताब्दी के भीतर ही प्रसिद्ध हुए हैं। प्रथम कविराज की उपाधि से विभूषित हुए थे, उन्होंने अपने मुख से ही अपना परिचय, विस्तार के साथ दिया है, जो 'साहित्य समालोचक'[३] में प्रकाशित हो चुका है। दूसरे महाशय कोई साधु प्रकृति के अध्ययनशील पण्डित व्यक्ति थे, इन्हें काव्य-प्रतिभा भी उच्चकोटि की मिली थी। इनका कविता-काल संवत् १७५५ के आस-पास था। सुखदेव मिश्र अन्य दोनों ही से भिन्न व्यक्ति थे। इनका कविता-काल लगभग सं० १७८० वि० के आस-पास से सं० १८०० तक मानना उचित होगा। यह समय कवि के आश्रयदाताओं एवं उनके शिष्यों के समय से पूर्ण मेल खाता है। इनके सर्वप्रथम आश्रयदाता भगवंत राय खीची थे।[४]

निष्कर्ष : डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह के उक्त विचारों से तीनों सुखदेव नामक कवियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आये है :—

प्रथम सुखदेव

ये कंपिला-निवासी और भारद्वाज गोत्रीय थे। पहले इनकी उपाधि शुक्ल थी

---

१. डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह, भगवंत राय खीची और उनके मंडल के कवि, पृ० १५१-५२
२. वही, पृ० १५२
३. हिन्दी साहित्य समालोचक, भाग ३, संख्या १, श्रावण सं० १९८४
४. डॉ० महेन्द्र प्रयाप सिंह, भगवत राय खीची और उनके मंडल के कवि, पृ० १५३

और बाद में ये मिश्र कहलाए। ये कविराज की उपाधि से विभूषित हुए और इन्होंने दो रचनाएँ प्रस्तुत की—'वृत्त-विचार' (सं० १७२८) और 'फाज़िल अली प्रकाश' (सं० १७३३)। अतः इनका काव्य-काल अठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। इन्होंने अपना परिचय स्वयं दिया है जो साहित्य-समालोचक में प्रकाशित हो चुका है।

द्वितीय सुखदेव

इनकी तीन रचनाओं—अध्यात्म प्रकाश, ज्ञान प्रकाश और गुरु महिमा का विवरण डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह ने दिया है। इनका रचना-काल सं० १७५५ एवं उसके आस-पास है। इन का जीवन-परिचय उपलब्ध नहीं है।

तृतीय सुखदेव

ये सुखदेव मिश्र, दौलतपुर-निवासी है और इन्हीं का विस्तृत विवरण आचार्य द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित किया था। ये भगवंतराय खीची, मर्दन सिंह तथा हिम्मत सिह आदि के दरबार में रहे। इनकी 'छंद विचार'[1] 'मर्दन रसार्णव' तथा 'शृंगार लता' नामक रचनाएँ हैं। इनके सगीत सम्बन्धी ध्रुपद राग के अनेक छन्द भी मिलते हैं। 'रस रत्नाकर' भी इन्ही की रचना है। शम्भुनाथ इन्हीं के शिष्य थे, जिनका समय विक्रम की अठारहवी शताब्दी का अन्तिम चरण है। सुखदेव मिश्र का काव्य-काल अठारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। इनका जीवनवृत्त ज्ञात है एवं इतिहास-ग्रन्थों में प्रकाशित है।

गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि सुखदेव

डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह के नवीनतम शोध के आधार पर इन तीन सुखदेव कवियों की सत्ता निर्विवाद रूप मे स्वीकार की जानी चाहिए। यह तो निश्चित् है कि 'अध्यात्म प्रकाश' के रचयिता विद्वान् तथा पण्डित होने के साथ ही दार्शनिक मनोवृत्ति के व्यक्ति हैं। अतः 'फाज़िल अली प्रकाश' जैसे नायिका-भेद विषयक ग्रन्थ के प्रणेता वे नहीं हो सकते। यदि इस प्रकार की सम्भावना को स्वीकार कर लिया जाए कि 'वृत्त-विचार' और 'फाज़िल अली प्रकाश' के रचयिता प्रथम सुखदेव ने ही अपनी वृद्धावस्था में 'अध्यात्म प्रकाश' की रचना की होगी और उसी समय दशम गुरु के दरबार में वे गए होंगे। 'वृत्त-विचार' की रचना के समय यदि उनकी आयु ३० वर्ष की मान ली जाए तो 'अध्यात्म-प्रकाश' की रचना के समय उनकी आयु ५७ वर्ष की होनी चाहिए। यह तो ऐतिहासिक सत्य है कि दशम गुरु का साहित्यिक यज्ञ संवत् १७५० से संवत् १७६० तक बहुत ज़ोरों पर था और काल की दृष्टि से द्वितीय सुखदेव ही दशम गुरु के दरबारी कवि प्रतीत होते हैं।

अब केवल सुखदेव का जीवन-वृत्त खोजने की समस्या ही शेष रह जाती है। कवि ने अपने 'अध्यात्म प्रकाश' में स्वयं कोई जीवन-वृत्त प्रस्तुत नहीं किया है और न ही किसी अन्य कवि ने उनके जीवन के विषय में कोई प्रामाणिक विवरण दिया है। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में भी केवल उनके नाम का ही उल्लेख है। इस सम्बन्ध में खोज करते

हुए मुझे सिक्ख-रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर में सुखदेव की एक और रचना उपलब्ध हुई, जिसका नाम है 'सामुद्रिक शास्त्र'। इसकी बन्ध-संख्या १७३ है। इस रचना में भी सुखदेव का कोई परिचय उपलब्ध नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि द्वितीय सुखदेव एक विरक्त साधु पुरुष थे। उन्होंने 'वृत्त-विचार' के रचयिता सुखदेव की तरह अपने निवास-स्थान और वंश का कोई परिचय नही दिया है। अतः 'वृत्त-विचार' और 'फाज़िल अली प्रकाश' के रचयिता से 'अध्यात्म प्रकाश' के रचयिता सुखदेव सर्वथा भिन्न व्यक्ति हैं। 'वृत्त-विचार' आदि का रचयिता लक्षण ग्रन्थकार है और 'अध्यात्म प्रकाश' का रचयिता साधु एवं दार्शनिक।

इस दिशा में अनुसन्धान करने पर एक और सुखदेव का उल्लेख मिलता है, जो साधु एवं सन्त पुरुष थे और चरणदास के गुरु थे।[1] चरणदास का समय संवत् १७६० के लगभग है। इससे स्पष्ट होता है कि चरणदास के गुरु सुखदेव और 'अध्यात्म प्रकाश' के रचयिता सुखदेव एक ही व्यक्ति है जो साधु एव सन्त प्रकृति के हैं। यही सुखदेव दशम गुरु के दरबार में गए होंगे। गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थकार ने इन्हें दशम गुरु के दरबारी कवियों में गिना है, जिससे उक्त संभावना की पुष्टि होती है। सुक्खा, सुखिया या सुक्खासिंह आदि नाम इसी विद्वान् एवं सन्त सुखदेव के हो सकते हैं, क्योंकि सन्त-प्रकृति विद्वत्ता और विनम्रता को पर्याय मानती है।

चरणदास की 'जागरण महातम,' 'कालीनाथ लीला,' 'माखनचोरी लीला' और 'निर्गुनबानी' नामक रचनाएँ खोज में मिल चुकी है।[2] इन्होंने प्रायः अपनी सभी रचनाओं में अपने गुरु का नाम सुखदेव ही लिखा है--

प्रथम सुमिरि गुरु चरन बहुरि सुमिरूं हरि चरना।
गुरु कूं करूं प्रनाम आय साधों की सरना॥
गुरु सुषदेव के चरण चित सदा सर्वदा राषियै।
कहै चरनदास अधीन हो जु दुविधा दुरमत नाषियै॥ १॥
....

श्री सत गुरु सुषदेव कूं, हित सू करूं प्रनाम।
चरनदास कूं दीजियै, चरनन में विसराम॥ ४७॥

वेद हूँ कों मानें और पूजे पुरान हूँ कूं,
गीता हूँ समझै जो गुरु ने समझाई है।
ब्राह्मण के पाय लागू मारु सुप पंडित कौं
वेद कौं छिपाय भेद और गति गाई है॥
पढ़ि पढ़ि कै अर्थ करै, हिये मांहि नाहि धरें,
करै न विचार सभ दुनिया भरमाई है।

---

१. हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १, पृ० ६३
२. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३५-३७) पृ० ९१-९४

कहै सो तो करै नाहिं पंडिश्त इकलो मांहि,
सुख जी के दास चरणदास गति पाई है ॥[1]

चरणदास ने अपने गुरु सुखदेव की विशिष्टताओं का उल्लेख किया है। उनके गुरु सुखदेव साधु थे, जिनकी शरण चरणदास आए थे। 'जागरण महातम', 'पद्म पुराण' पर आश्रित कथा है, जिसे उनके सतगुरु सुखदेव ने उन्हें सुनाया और उसके आधार पर चरणदास ने यह कथा लिखी। 'कालीनाथ लीला' और 'माखन चोरी लीला' भी भागवत पुराणाश्रित हैं। इसे भी उन्होंने अपने गुरु से सुना था। 'निर्गुन बानी' के ऊपर उद्धृत किये गये कवित्त से यह स्पष्ट होता है कि चरणदास के गुरु सुखदेव, वेद-पुराण और गीता के धुरंधर विद्वान् थे और उन्होने चरणदास को इनका रहस्य समझाया था।

'अध्यात्म प्रकाश' के रचयिता सुखदेव, संस्कृत के ज्ञाता सिद्ध होते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता और चरणदास के गुरु साधु सुखदेव एक ही व्यक्ति हैं। चरणदास का समय संवत् १७६० के आस-पास का है और 'अध्यात्म प्रकाश' का रचना-काल भी संवत् १७५५ है। अतः दोनों सुखदेव को एक व्यक्ति मानना ही युक्तिसंगत है। 'सामुद्रिक शास्त्र' की रचना से भी यह स्पष्ट होता है कि साधु सुखदेव संस्कृत के विविध प्रकार के ज्ञान से सम्पन्न थे। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रस और छन्द ग्रन्थ के रचयिता सुखदेव मिश्र से ये साधु सुखदेव सर्वथा भिन्न व्यक्ति है। चरणदास ने पुराणाश्रित सगुणलीला का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु उनकी निर्गुण-वाणी से यह स्पष्ट है कि उनके ऊपर गुरु की निर्गुणोपासना का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। दशम गुरु, निर्गुण-परम्परा में होते हुए भी वेद-पुराण और गीता के प्रति जिस प्रकार आदर-भाव रखते थे, वही दृष्टिकोण साधु सुखदेव का भी प्रतीत होता है, जिसका आभास चरणदास के उद्धृत कवित्त से मिलता है। अतः इस सारे विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये साधु सुखदेव ही दशम गुरु के दरबारी कवियों में विविध नामों से परिगणित किए गए हैं।

रचनाएँ : सुखदेव की निम्नलिखित चार रचनाएँ इस समय तक उपलब्ध हुई हैं :—

(१) अध्यात्मक प्रकाश
(२) ज्ञान प्रकाश
(३) गुरु महिमा
(४) सामुद्रिक शास्त्र।[2]

इनमें से प्रथम तीन रचनाएँ तो अध्यात्म सम्बन्धी हैं और चौथी रचना हस्त-विज्ञान से सम्बन्ध रखती है।

---

१. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, पृ० ९४
२. यह रचना असाहित्यिक है, अतः इसे हमने अध्ययन का विषय नहीं बनाया।

'अध्यात्म प्रकाश' के अतिरिक्त शेष तीनों रचनाएँ अप्रकाशित हैं। 'ज्ञान-प्रकाश' और 'गुरु-महिमा' की हस्तलिखित प्रनिताँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। इनकी ग्रन्थ-संख्या क्रमशः ५७४।४१३, ५७१।२० है। 'सामुद्रिक शास्त्र' मोती बाग पुस्तकालय, पटियाला (ग्रन्थ-संख्या १७३) में उपलब्ध है।

५. सेनापति

"राष्ट्रकवि सेनापति से हिन्दी साहित्य को एक नया मोड़ मिलता है। इससे पूर्व हमारा गुरु-परिवार स्वयं साहित्य का स्रष्टा था, पर सेनापति से लेकर चिरकाल तक हमारे गुरु, काव्य के चरित्र नायक बनकर उतरते हैं। दूसरी बात, काव्य-सृष्टि मात्र स्वान्तः सुखाय ही नहीं है, बल्कि इतिहास की प्रमाणित कड़ी भी है।"[१]

सेनापति गुरु जी के दरबारी कवियों में से थे। जब गुरु जी ने आनन्दपुर छोड़ दिया तब दरबारी कवियों का ठाठ-बाठ स्वतः ध्वस्त हो गया। पर ऐसा लगता है कि आनन्दपुर छोड़ने के उपरांत भी सेनापति गुरु जी की सेवा में डटे रहे। इससे एक तो उनकी रचनाएँ बच गई हैं; दूसरे, उन्होंने गुरु जी के उस घटना-क्रम को अंकित किया है, जो आनन्दपुर त्यागने के बाद आरम्भ होता है।[२]

गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में आने के बाद सेनापति उनके महानिर्वाण के समय तक साथ ही रहे। यह तो 'गुरु शोभा' के वर्ण्य-विषय से ही स्पष्ट है, किन्तु उनके पूर्व-वृत्त का बहुत ही थोड़ा परिचय मिलता है। उनके जन्म और मृत्यु की तिथि के सम्बन्ध में कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

श्री चन्द्रकान्त बाली ने इनकी दो रचनाओं—'गुरु शोभा' और 'चाणक्य नीति भाषा'—का उल्लेख किया है। डॉ० हरिभजन सिंह ने केवल 'गुरु शोभा' के काव्य-सौष्ठव का ही परिचय प्रस्तुत किया है।[३]

उनकी एक तीसरी कृति 'सुखसैन' ग्रन्थ भी उपलब्ध है, जिसकी हस्तलिखित प्रति श्री देवेन्द्रसिंह 'विद्यार्थी' के पास विद्यमान है। यह रचना 'राम विनोद' नामक वैद्यक-ग्रन्थ का भाषारूपान्तर है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही कवि सेनापति ने अपने वंश का संक्षिप्त-सा परिचय प्रस्तुत किया है, जिससे ज्ञात होता है कि ये मान गोत्र के जाट थे। इनके पिता का नाम बालचन्द था और ये लाहौर के निवासी थे। इनका नाम चन्द्रसेन था और गुरु गोविन्द सिंह की सभा में इन्हें अधिकार प्राप्त था। इनके विद्या-गुरु देवीदास थे। वज़ीराबाद के वैद्य जगतराय की सेनापति से मित्रता थी, उनके आग्रह पर ही सेनापति वज़ीराबाद गए और 'रामविनोद' का भाषारूपांतर किया—

---

१. चन्द्रकांत बाली, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६०

२. वही, पृ० २६१

३. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ४६३

देवीदास जैसे उच्चकोटि के कवि एवं विद्या-गुरु के पास चन्द्रसैन सेनापति की काव्य-शिक्षा निश्चय ही उच्चकोटि की हुई और उन्हें 'गुरु शोभा' जैसे उत्तम काव्य के सृजन का अवसर मिला।

इन संक्षिप्त विवरणों के अतिरिक्त सेनापति के सम्बन्ध में अन्य कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

रचनाएँ : इनकी कुल तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—

(१) **गुरु शोभा**[1]—यह एक ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य है और गुरु गोविन्दसिंह के जीवन चरित सम्बन्धी प्राचीनतम कृति है। इसमें दशम गुरु के पाँवटा-निवास से लेकर महा निर्वाण काल तक की घटनाएँ वर्णित है। इसकी गुरुमुखी और देवनागरी में प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। हमने अपने अध्ययन में प्रकाशित एवं हस्तलिखित—दोनों प्रकार की प्रतियों से सहायता ली है।

(२) **चाणक्यनीति भाषा**—यह रचना संस्कृत के इसी नाम वाले ग्रन्थ का भाषा-रूपान्तर है। इस ग्रन्थ की रचना सेनापति ने गुरु-दरबार में रहते हुए ही की है—

गुरु गोविन्द की सभा महिं लेखक परम सुजान।
चाणाकै भाषा करी कवि सेनापति नाम ॥

'चाणक्य नीति भाषा' सम्भवतः सेनापति की प्रथम रचना है। इसे उन्होंने दरबार में रहते हुए लिखा था जबकि 'गुरु शोभा' की घटनाओं का आरम्भ आनन्दपुर दरबार के बाद से होता है। यह रचना गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित है।[2] इसकी एक हस्तलिखित प्रति सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला में उपलब्ध है, जिसकी ग्रन्थ-संख्या ७३६ है। हमने इस हस्तलिखित प्रति और गुरुमुखी लिपि मे प्रकाशित प्रति, दोनों का ही उपयोग किया है।

(३) **सुखसैन ग्रन्थ**[3]—यह 'राम विनोद' नामक वैद्यक ग्रन्थ का भाषारूपान्तर है। इसमें आयुर्वेद की विविध प्रकार की औषधियों का वर्णन है। इसकी एक प्रति भाषा-विभाग पटियाला के रेफ्रेंस पुस्तकालय (ग्रन्थ संख्या २७४) तथा एक प्रति श्री देवेन्द्रसिंह 'विद्यार्थी' के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध है। यह असाहित्यिक रचना है। इसके प्रारम्भ में दिया हुआ कवि का वंश-वर्णन ही बहुमूल्य है, जिसे ऊपर उद्धृत किया जा चुका है।

हंसराम

दशम गुरु के दरबारी कवियों में हंसराम की भी गणना की गयी है। इनकी कुछ

---

१. प्रकाशित, सम्पादक डॉ० जयभगवान गोयल
२. प्रकाशक, भाई जवाहर सिंह—कृपाल सिंह, लाहौर
३. यह रचना असाहित्यिक है, अतः हमने इसे अध्ययन का विषय नहीं बनाया

मुक्तक रचनाएँ 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में उद्धृत है। इन्होंने दशम गुरु के आदेश से महाभारत के कर्ण पर्व का भाषारूपान्तर किया था। इस कर्ण पर्व की रचना संवत् १७५२ में आरम्भ हुई थी--

संवत् सत्रह सै बरस बावन बीतनहार।
माग बदि तिथि दूज को ता दिन मंगलवार।
हंसराम तां दिन कर्‌यो 'करन परब' आरम्भ।[१]

इस कार्य की समाप्ति पर गुरु गोविन्द सिंह ने इन्हें प्रचुर धन पुरस्कार रूप मे दिया था, इसका उल्लेख इन्होंने स्वयं किया है--

प्रथम कृपा करि राख कर, गुरु गोविन्द उदार
टका करे बकसीस तब, मो को साठि हजार ॥१५७८॥
ताको आयसु पाइ कै, करण परब मैं कीन।
भाषा अरथ विचित्र करि, सुनियो सुकवि प्रबीन ॥१५७९॥
जथा अरथ जैसो सुन्यो, करन परब को कानु।
गुरु गोविन्द की कृपा ते, सो हम कर्‌यो बषानु ॥१५८०॥[२]

हंसराम के एक अन्य पद से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे निश्चित् रूप से दशम गुरु के दरबार में थे। दान-प्राप्ति के उपरांत जाते हुए कवियों का एक प्रत्यक्षदर्शी की भाँति उन्होंने वर्णन किया है--

दुंदभि धंकारे बाजे, मानो जलधर गाजे,
राजत निशान भय भानु छिपे जात हैं।
हाथिन के हलका हजारन गने को हय,
जटित जवाहर जो जगमग गात है।
कोर साजे जोर कर नालन को शोर सुने,
संकत सुरेश और नरेश बिलखात है।
'हंसराम' कहत, बिराजो जिन भाजो,
गुरु गोविन्द को मांगे कविराज चले जात हैं॥[३]

कवि हंसराम के जन्म और मृत्यु संवत् तथा निवास-स्थान आदि के विषय में और कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। स्वयं उन्होंने भी अपना कोई परिचय नहीं दिया है।

श्री शमशेर सिंह अशोक ने 'पैप्सु का प्राचीन हिन्दी साहित्य' में चन्द्रशेखर कवि का विवरण दिया है और यह भी कहा है कि ये कवि हंसराम के परपौत्र थे।[४] यह तो

१. हंसराम, महाभारत भाषा--कर्ण पर्व, (पटियाला वाली प्रति)
२. वही, (काशी नरेश वाली प्रति)
३. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ पृ० ५७२८
४. शमशेर सिंह अशोक, पैप्सु का प्राचीन हिन्दी साहित्य, पृ० ८-९

निश्चित् है कि चन्द्रशेखर वाजपेयी पटियाल-नरेश महाराजा कर्मसिंह और उनके उत्तराधिकारी महाराजा नरेन्द्रसिंह के दरबार में रहे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चन्द्रशेखर वाजपेयी का जन्म-संवत् १८५५ और जन्म-स्थान मुअज्जमाबाद (जिला फतहपुर) दिया है। अपने अन्तिम वर्षों में ये पटियाला-नरेश महाराजा कर्मसिंह के यहाँ गए और जीवन भर पटियाला में ही रहे। इनका देहान्त सं० १९३२ में हुआ। अतः यह महाराजा नरेन्द्र सिंह के समय तक वर्तमान थे और उन्हीं के आदेश से इन्होंने अपना प्रसिद्ध वीरकाव्य 'हमीर हठ' रचा। आचार्य शुक्ल ने इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचे गये ग्रन्थों के निम्नलिखित नाम दिए हैं---'विवेक-विलास', 'रसिक विनोद', 'हरिभक्ति विलास', 'नखशिख' 'वृन्दावन शतक', 'राजक जोति' और 'माधवी वसंत'।[१]

डॉ० हरिभजनसिंह ने चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा 'देवी भागवत अनुवाद' का और उल्लेख किया है।[२] श्री शमशेर सिंह अशोक ने इनके कुछ कवित्तों का उल्लेख किया है, जो इन्होंने पटियाला-नरेश के दरबार में रहते हुए लिखे थे। किन्तु चन्द्रशेखर वाजपेयी के किसी भी ग्रन्थ में मुझे ऐसा उल्लेख नहीं मिला, जिसमें उन्होंने कवि हंसराम को अपना परपितामह कहा हो। श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी के पिता श्री मनीराम एक उत्तम कवि थे और यह परिवार वंशागत रूप से कवियों का परिवार था। हंसराम के 'कर्ण पर्व' के भाषा-रूपान्तर के काल सं० १७५२ और श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी के जन्म-काल सं० १८५५ में केवल १०३ वर्ष का अन्तर पडता है। अतः काल की दृष्टि से हंसराम और चन्द्रशेखर के इस सम्बन्ध में कोई बाधा नहीं पड़ती। सम्भव है अपने परपितामह के दशम गुरु के दरबार में विद्यमान रहने के सम्बन्ध को जानकर ही श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी पटियाला-नरेश के दरबार में गए हों और उन्हें भी 'देवी भागवत' के भाषा-रूपान्तर का कार्य उसी प्रकार सौंपा गया हो, जैसे कवि हंसराम को दशम गुरु ने 'कर्ण पर्व' के भाषा-रूपान्तर का कार्य सौंपा था। परन्तु प्रामाणिक सामग्री के अभाव में हंसराम के साथ चन्द्रशेखर वाजपेयी के सम्बन्ध को अनुमानपरक ही माना जा सकता है, क्योंकि इस सम्बन्ध को प्रमाणित करने के लिए स्वयं अशोक जी ने कोई विवरण नहीं दिया।

रचनाएँ : कवि हंसराम की रचनाओं में 'कर्ण पर्व' का भाषा-रूपान्तर और 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में उद्धृत कुछ मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में उद्धृत मुक्तक रचनाओं में से अधिकाँश महाभारत---'कर्ण पर्व' की ही रचनाएँ है। जैसाकि ऊपर उद्धृत दोहे से पता चलता है कि गुरु गोविन्द सिंह की कृपा से उन्होंने 'कर्ण पर्व' को पहले यथार्थ रूप में सुना और फिर उसका भाषा में वर्णन किया। कवि ने आरम्भ में गणनायक गणेश की वन्दना की

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२३-२४
२. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ५२०

है, फिर नानक के अवतार गुरु गोविन्द सिंह की प्रशस्ति है और तब नौ गुरुओं की परम्परा का उल्लेख करके 'कर्ण पर्व' का आरम्भ किया है। यह 'कर्ण पर्व' की रचना अप्रकाशित है। गुरुमुखी लिपि में इसकी एक हस्तलिखित प्रति महाराजा पटियाला के निजी पुस्तकालय में है तथा दूसरी प्रति देवनागरी लिपि में है और वह काशी-नरेश के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध है, जिसका बस्ता न० ४३, ग्रन्थ-संख्या ४५।५४ है। हमने अपने अध्ययन में इसी प्रति को आधार बनाया है। इसमें ६३ अध्याय हैं और पद्य-संख्या १५८१ है।

७. कुवरेश

दशम गुरु के दरबारी कवियों में कुवरेश भी परिगणित हैं। इनका विशिष्ट वर्णन भाई संतोख सिंह ने 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में इस प्रकार दिया है—

केशवदास हुतो कवि जोइ। भयो बुंदेल खण्ड महिं सोइ ॥५॥
तिस को पुत्त कुवर है नामू। सो भी रचित गिरा अभिरामू।
तुरक करन नवरंग चितचह्यो। गुनी अधिक हिन्दुनि महिं ल्ह्यो ॥६॥
जबहि कुवर सुध इस विधि पाइ। त्यागि देश घर गयो पलाई।
रिदे बिचार्यो बसन स्थान। नहिं प्राप्ति भा बीच जहान ॥७॥
सुनी हुती सुधि श्री गुर केरी। इकसम निबहै शक्ति घनेरी।
दुरि करि दूर-दूर नित चलि करि। पहुँच्यो आनि आनंदपुरि हितकरि ॥८॥
रुचिर कवित्त कितू के करि कै। मिल्यो गुरु सन तबहि उचरि कै।
बिना आसरे गह्यो अलंब। जगत गुरु धरहु कदंब ॥९॥
सुना निथावन के तुम थान। सदा निमानन के बड़ मान।
अहो नितानन के तुम त्रान। अस शोभा कथहिं जहान ॥१०॥
सुनि श्री प्रभु सादर बैठायो। निज प्रसंग तबि विप्र सुनायो।
तुरक तेज ते बिन बल हिन्दू। धर्म बिनासत मेलत बिन्दू ॥११॥
महा त्रास ते मैं चलि आयो। चहित अपनो धर्म बचायो।
सुनि श्री सतिगुर धीरज दीना। रोज रजत पण पंच सु कीना ॥१२॥
कह्यो तोहि पित कवि बिसाला। रची आदि कविप्रिया रसाला।
ग्रन्थ महाभारत मन भावै। कवि गन ते भाषा बनवावें ॥१३॥
इन कहि राख्यो निकट हमेशा। सुनि कवि गन आवनि लगे विशेषा।
द्रव-ब्रिंद दे राखहिं तीर। परर्खाहि तिनके संग सधीर ॥१४॥[1]

'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' के इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि कुवरेश बुन्देलखण्ड-निवासी एवं 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' के रचयिता महाकवि केशवदास के सुपुत्र

---
१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ४९१०-११।

थे। औरंगज़ेब ने इन्हें मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया। फलतः धर्म-रक्षार्थ इन्होंने अपने ग्राम और बुन्देलखण्ड का परित्याग कर दिया। किसी प्रकार ये नये निवास-स्थान की खोज में सुदूर आनन्दपुर पहुँचे। वहाँ ये दशम गुरु से मिले, उनकी धर्म-रक्षा की प्रशंसा की और आश्रय की याचना की। दशम गुरु ने इन्हें धैर्य दिया और पाँच रजतपण की दैनिक वृत्ति निश्चित् की। उसी समय वे अनेक कवियों के द्वारा महाभारत ग्रन्थ का भाषा-रूपान्तर करा रहे थे। कुवरेश को भी 'द्रोण पर्व' के भाषा-रूपान्तर का कार्य सौंपा गया। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में ही इसका भी संकेत मिलता है—

श्री मुख ते तब हुकम बखाना। गुनी कवीशर पंडित नाना।
सहिहिनी को हकार ले आवहु। जहिं-जहि तहाँ सिधावहु।
सुनिकै सबि तत्काल बुलाए। तिनको दैहौ नाम बताए।
केशोदास पुत्र कुवरेश। द्रोण पर्व जिन कीन अशेष।
गुणिया, सुखिया, बल्लभ आयो। ध्यान सिंह गुर दर्शन पायो।[1]

परिचय की इस शृंखला को आगे बढ़ाने में 'द्रोण पर्व' के भाषा-रूपान्तर से अधिक सहायता नही मिलती। इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १७५२ है—

संवत् सत्रह सै अधिक बावन बीते और
ता मैं कवि कुवरेश यह कियो ग्रन्थ को डौर।[2]

इसी पर्व में उन्होंने नौ गुरुओं का उल्लेख करते हुए दशम गुरु का परिचय दिया है और अपने गाँव का नामोल्लेख भी किया है—

गुरु गोविन्द नरिन्द हैं तेगबहादुर नन्द।
जिन ते जीवत हैं सकल भूतल कवि बुध ब्रिद।
नदी सतुद्रव तीर तहिं शुभ अनन्दपुर नाम।
गुरु गोविन्द नरिन्द के राजत सुभग सुधाम।
गंगा जमना बीच में 'बरी' ग्राम को नाम।
तहाँ सुकवि कुवरेश को, बास करै को धाम॥[3]

कुवरेश के संकेत के अनुसार उनका निवास-स्थान 'बरी' ग्राम गंगा और यमुना के दोआबे में स्थित होना चाहिए। इस सम्बन्ध में अन्य कोई परिचय उपलब्ध नहीं है, किन्तु केशवदास ने 'कविप्रिया' में यह उल्लेख किया है कि इन्द्रजीत सिंह ने उन्हें अपना गुरु बनाया और उनके चरण धोकर इक्कीस ग्राम वृत्ति के रूप में दिये थे—

१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५५४४
२. कुवरेश, महाभारत भाषा—द्रोण पर्व
३. वही,

"गुरु करि मान्यो इन्द्रजित, तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दए इकबीस तब, ताके पायं परवारि ॥[1]

"यह 'वरी' ग्राम इन्ही इक्कीस ग्रामों में से कोई हो सकता है। ये इक्कीस ग्राम तत्कालीन ओरछा राज्य के उस भाग मे विद्यमान होंगे जो गंगा और यमुना के दोआबे में पड़ता होगा। तत्कालीन ओरछा राज्य यमुना के उत्तर और गंगा के दक्षिणी भू-भाग में भी अधिकार रखता था। 'विज्ञानगीता' में केशवदास ने अपने गंगा-तट-निवास की सूचना दी है—

"सुनि सुनि केशव राइ सों, रीझि कह्यो नृपनाथ।
मांगि मनोरथ चित्त के, कीजे सबै सनाथ ॥
वृत्ति दई पुरुखानि की, देऊ बालनि आसु।
मोहि आपनो जानि के, गगातट देउ वासु ॥
वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करो दुख त्रास।
जाइ करौ सकलत्र श्री गंगा तट बस वास ॥[2]

उक्त उद्धरण की तृतीय पंक्ति से इतना तो निश्चित् है कि 'बालनि' द्वारा केशव ने संकेत दिया है कि उनके कई पुत्र थे, परन्तु उनका न तो नामोल्लेख किया है और न गंगातट पर जाकर किस गाँव में रहे इसका ही कोई विवरण दिया है। 'विज्ञानगीता' की रचना उन्होंने वृद्धावस्था में की। उद्धृत पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनकी पत्नी वृद्धावस्था तक इनके साथ रहीं। इनके कुछ बच्चे इनकी वृद्धावस्था में भी अल्प आयु के थे।

केशव ने 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' की भी रचना की है। इससे स्पष्ट है कि मुगल-दरबार से भी उनका अच्छा सम्बन्ध था। जिस प्रकार शाहजहाँ ने अकबर और जहाँगीर की परम्परा को निभाया वैसा ही औरंगज़ेब न कर सका, जिसका परिणाम मुगल-साम्राज्य के पतन के रूप में देखने को मिला। सम्भव है 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' के लिखने के बाद केशवदास का कोई पुत्र जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबार में हो, जिसे औरंगज़ेब के क्रूरतापूर्ण कृत्यों का शिकार होना पड़ा हो। यह भी सम्भव है कि ओरछा के दोआबे का वह प्रांत जिसमें केशव दास को इक्कीस ग्राम मिले थे, किसी मुगल सरदार के अधिकार में हो और औरंगजेब की नीतियों के अनुसार उसने उन पर मुसलमान बनने के लिए दबाव डाला हो। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' के उद्धरण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस दबाव के ही कारण उन्हें अपने गाँव का परित्याग करना पड़ा था।

'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' की रचना 'द्रोण पर्व' के भाषा-रूपान्तर (सं०१७५२) के एक सौ अड़तालीस वर्ष बाद (सन् १८४३ ई०) में हुई। भाई संतोख सिंह ने निश्चित् रूप से कुछ प्रामाणिक तथ्यों और परम्परागत अनुश्रुति के आधार पर ही कुवरेश का

१. केशवदास, कवि-प्रिया, द्वितीय प्रभाव, छन्द २०
२. केशवदास, विज्ञान गीता, इक्कीसवाँ प्रभाव, छन्द ५५-५७

यह विवरण प्रस्तुत किया होगा। इस विवरण को सत्य मान लेने में अधिक कठिनाई नहीं है। जो बाधक तत्व हैं, वे निम्नलिखित है—

महाकवि केशवदास के वंशजों ने उनका वंश-वृक्ष प्रकाशित किया है, जिसे डॉ० विजयपाल सिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध में ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया है।[1] इस वंश-वृक्ष में कुवरेश का नाम कहीं भी नहीं आया। केशवदास के पाँच पुत्रों के नाम यहाँ दिये गये हैं— १. बिहारीदास जी मिश्र (कविराय), २. श्री प्रसाद जु, ३. बिशेसुर दयाल जु (केसरी राम दाऊ बाबा), ४. जहदेव जु, ५. अनन्तराम जु। केशवदास के बड़े भाई बलभद्र मिश्र और उनके छोटे भाई कल्याणदास के वंश-वृक्ष में भी कुवरेश का उल्लेख नहीं है। केशवदास के किसी चौथे भाई का इस वंश-वृक्ष में उल्लेख नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि केशवदास के पूर्वजों में 'प्रसन्नराघव' के रचयिता जयदेव और वर्तमान वंशजों में श्रवण प्रसाद जी श्रवणेश, मथुरा प्रसाद जी मथुरेश, और द्वारिका प्रसाद जी द्वारिकेश आदि अच्छे कवि हुए हैं। केशव के बड़े भाई बलभद्र मिश्र ने 'नखशिख' की रचना की है। यह असम्भव-सा ही लगता है कि उनके पुत्रों में कोई विद्वान् या कवि न हुआ हो। राज-दरबारों में केशव और उनके पूर्वजों को सदा सम्मान प्राप्त रहा। इस परम्परा के अनुसरण के लिए भी केशव के पुत्रों का शिक्षित होना आवश्यक था। किन्तु उनके पुत्रों मे कुवरेश का नाम उपलब्ध न होने से इस प्रकाशित वंश-वृक्ष पर ही सन्देह उत्पन्न होता है, क्योंकि कुछ विद्वानों ने 'सतसई' के रचयिता बिहारी को केशवदास का पुत्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया[2] और फलस्वरूप उनके पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र का नाम बिहारीदास (कविराय) लिख दिया है। उनका वंश-वृक्ष भी उक्त सूची में नहीं दिया गया। इससे इस सन्देह की पुष्टि होती है कि उस साहित्यिक विवाद के समय एक ऐसा कल्पित वंश-वृक्ष प्रस्तुत कर दिया गया, जिसकी अन्तिम कुछ पीढ़ियाँ ही वास्तविक एवं ठीक थीं।

आचार्य शुक्ल ने केशवदास के जन्म और मृत्यु का काल क्रमश: सं० १६१२ और सं० १६७४ के लगभग माना है।[3] सं० १६७४ और 'द्रोण पर्व' के भाषा-रूपान्तर के काल सं० १७५२ के मध्य की अवधि ७८ वर्ष बैठती है। यदि केशवदास के अन्तिम पुत्र की आयु १२ वर्ष की भी हो तो 'द्रोण पर्व' के भाषा-रूपान्तर के समय कुवरेश की आयु ९० वर्ष की सिद्ध होती है। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' के उल्लेख पर ध्यान दिया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि दशम गुरु ने इन्हें महाकवि केशवदास के पुत्र होने के कारण ही ससम्मान अपने दरबारी कवियों में सम्मिलित नहीं किया, अपितु उनके वृद्ध और विद्वान् होने के कारण भी इन्हें आदर सहित प्रश्रय दिया। ९० वर्ष की आयु में बुन्देलखण्ड से आनन्दपुर तक की यात्रा करना और पुनः वहाँ रहकर 'द्रोण पर्व' का भाषा-रूपान्तर करना असम्भव कार्य नहीं माना जा सकता, कठिन भले ही प्रतीत हो। 'द्रोण पर्व' के अतिरिक्त इनकी अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। सम्भव है इससे पूर्व की इनकी रचनाएँ इनके

---

१. डॉ० विजयपाल सिंह, केशव और उनका साहित्य, पृ० ४०-४१

२. वही, पृ० ३८-४१

३. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३१

वंशजों के पास विद्यमान हों। यह भी सम्भव है कि वंश-वृक्ष में दिए गये सबसे छोटे पुत्र अनन्तराम का ही कवि उपनाम 'कुवरेश' हो, जैसा कि उनके वर्तमान वंशजों में श्रवणेश, मथुरेश और द्वारिकेश उपनाम धारी कवि अब भी विद्यमान हैं।

इस सम्बन्ध में जब तक कि अन्य कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता, तब तक 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में दिए गये विवरण को ही सत्य मानना होगा। केशव का प्रकाशित वंश-वृक्ष भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। कुवरेश के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' की रचना हुई और लगभग ढ़ाई सौ वर्ष बाद केशव का वंश-वृक्ष प्रकाशित किया गया। अतः प्रामाणिकता की दृष्टि से भाई संतोख सिंह द्वारा निर्दिष्ट काल कुवरेश के अधिक समीप होने के कारण ग्राह्य है।

रचनाएँ : इनकी केवल एक ही रचना उपलब्ध है—महाभारत के 'द्रोण पर्व' का भाषा-रूपान्तर। इसका रचनाकाल सं० १७५२ है। दशम गुरु के दरबार में रहते हुए कुवरेश ने इस कार्य को सम्पन्न किया था। यह रचना अप्रकाशित है और पटियाला-नरेश के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध है, जो प्रयत्न करने पर भी मुझे देखने को न मिल सकी। इसकी एक प्रति काशी-नरेश के निजी पुस्तकालय में नागरी लिपि में उपलब्ध है, जिसकी बस्ता-संख्या ४३ और ग्रन्थ-संख्या ४५।५४ है। हमने इसी प्रति का उपयोग किया है।

८. गुरुदास

दशम गुरु के दरबारी कवियों में गुरुदास का उल्लेखनीय स्थान है। बावन कवियों में इनकी गणना की गई है। पंजाबी के 'हथ लिखताँ दी सूची' में गुरुदास नाम के कुल पाँच कवियों का विवरण मिलता है। इनमें से दो तो परवर्ती हैं और एक हैं भाई गुरुदास जो पंचम गुरु अर्जुनदेव के समय विद्यमान थे। शेष दो गुरुदास मे से एक तो दशम गुरु के दरबारी कवियों में परिगणित है और दूसरे को 'हीर राँझन' की कथा का प्रणेता माना जाता है। 'कथा हीर राँझनकी' के रचयिता गुरुदास औरंगज़ेब के समय विद्यमान थे और काल की एकता के आधार पर इन दोनों गुरुदास नामक कवियों को एक ही मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस कथा के रचयिता गुरुदास ने स्वयं लिखा है—

बरनो जस पतिसाह कौ औरंगज़ोब जिह नाँउ।
चारों दिस इउ बस करि जिउ कीजै इक गाँउ ॥४॥[1]

किन्तु कवि ने इस चतुर्थ दोहे के पूर्व गणेश, अलख पुरुष और गुरु की स्तुति की है। इसके बाद उसने सरस्वती की वन्दना की है और इस वन्दना के पश्चात् ही उसने अपने पूर्ववर्ती आदर्श कवि दामोदर 'गुनी' का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

१. गुरुदास, कथा हीर राँझन की

करौं कथा जो पाछे सुनी। जिउ बरनी दामोदर गुनी।
साच प्रीत कौ उपज्यो प्रेमा। कहूँ कथा हिरदै धर नेमा।
सुनो प्रीत मो मन धरि ध्याना। सति प्रीत कउ करौं बखाना ॥[१]

इसके बाद ही कवि ने इस प्रेमकथा का वर्णन आरम्भ किया है। यदि आरम्भ के इस वर्णन पर गहराई से ध्यान दिया जाए तो यह क्रम ही स्पष्ट कर देता है कि कवि की काव्य-रचना का आदर्श लौकिक प्रेमकथा प्रस्तुत करना है। इस विषय में उसने सूफी कवियों की रचना-शैली का अनुकरण किया है। यदि इसे प्रेमकथा की शैली-मात्र समझ लिया जाए तो इस अनुमान के लिए कोई अवसर नहीं रह जाता कि गुरुदास पहले औरंगज़ेब या उसके किसी अहलकार के दरबार में थे और बाद में वे दशम गुरु के दरबार में पहुँचे, जहाँ उन्होंने अपने ग्रन्थ में औरगजेब के उल्लेख से पूर्व गुरु जी के सम्बन्ध में कुछ पक्तियाँ जोड़कर अपनी रचना दशम गुरु को समर्पित कर दी। इस सम्बन्ध मे श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने लिखा है—" 'कथा हीर रांझन की' में मंगलाचरण का पद भी जान पड़ता है कि पीछे से ग्रन्थ गुरु जी को समर्पित करते समय जोड़ा गया था। गणेश की वन्दना 'रणधीर' रूप में इस अनुमान का आधार है।"[२] गुरुदास हिन्दू थे, अतः सूफी कवियों की भाँति स्तुति का वह क्रम नहीं अपना सकते थे जो मुसलमान सूफी कवियों ने अपनाया। वे निश्चित् रूप से आदि कर्ता—अल्ला और मुहम्मद की स्तुति नहीं कर सकते थे। गणेश और सरस्वती की स्तुति ही उनके लिए सम्भव थी। तीन बातें—गुरु-वन्दना, तत्कालीन बादशाह की प्रशस्ति और पूर्ववर्ती आदर्श कवि की स्तुति—ऐसी थी जिनमें सूफी-काव्य-परम्परा का अनुकरण करने में कोई कठिनाई नहीं थी।

पंजाब के तत्कालीन वातावरण में दशम गुरु के दरबार मे रहते हुए औरंगज़ेब की वैसी प्रशस्ति करना सम्भव नहीं था, जैसी उन्होंने निम्नलिखित पंक्ति में की है—

न्याइ रीत ताकि अति अकरी। इक ठौर है बाघ अरु बकरी।[३]

डॉ० हरिभजन सिंह ने लिखा है कि—'कथा हीर राँझे की' के लेखक गुरुदास गुणी का नाम पंजाब में काफी प्रसिद्ध है। वे औरंगज़ेब के सरकारी मुन्शियों में से थे और उसी के राज्य-काल में (संवत् १७६०) उन्होंने 'कथा हीर रांझे की' लिखी—

पातसाह के सन्न पचासे। इउ आयो हिरदै गुरदासे।

कथा हीर रांझे की बरनो, निसचल चित्त लगाय।
जो चाहे सति प्रीत को, बानी कहुँ सुनाय ॥[४]

---

१. गुरुदास, कथा हीर राँझन की
२. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी का लेख, सरस्वती, फरवरी १९६७, पृ० १३३
३. गुरुदास, कथा हीर राँझन की, पृ० ३८
४. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ३६४

इस कथन में किस आधार पर गुरुदास को औरंगज़ेब के सरकारी मुन्शियों में गिना गया है, उसे प्रस्तुत नहीं किया गया। किन्तु संवत् १७६० में इसकी रचना मानने का कारण यही प्रतीत होता है कि डॉ० हरिभजन सिंह ने औरंगजेब के राज्यारोहण-काल से पचास वर्ष गिनने का प्रयत्न किया है। औरंगज़ेब ने सं० १७१५ से सं० १७६४ वि० तक कुल ४६ वर्ष राज्य किया। अतः राज्यारोहण-काल से पचास वर्ष गिनने का कोई कारण ही नहीं है। यह 'पचासा' औरंगज़ेब के जन्म-काल सं० १६७५ से ही मानना चाहिए। इस प्रकार 'कथा हीर राँझन की' का रचना-काल सं० १७२५ वि० सिद्ध होता है। यही मत श्री चन्द्रकान्त बाली का भी है।[1]

'कथा हीर राँझन की' की भूमिका में लिखा गया है कि इस ग्रन्थ की रचना ई० १७०६ अर्थात् सं० १७६७ वि० में हुई।[2] डॉ० मोहन सिंह भी इस मत से सहमत है।[3] मौलाबख्श कुश्ता के अनुसार इसका रचना-काल ११२१ हिजरी[4] है, किन्तु ये दोनों ही उल्लेख ठीक प्रतीत नहीं होते, क्योंकि प्रथम में तो उसकी गणना औरंगज़ेब के राज्या-रोहण-काल से की गई है और दूसरे का कोई आधार नहीं है।

गुरुदास ने अपने को पूर्ववर्ती कवि दामोदर दास के इसी नाम की कथा का अनुसरणकर्ता लिखा है। दामोदर ने हीर राँझा की घटना को वास्तविक माना है और लिखा है—

पंद्रह सौ अते उनत्री संवत् विक्रम राय।
हीर ते राँझा होए इकट्ठे झगड़े रब चुकाय॥

श्री बाली ने इसे शक संवत् मानकर यह तर्क प्रस्तुत किया है कि दामोदर कवि ने अकबर को स्मरण किया है। अतः स्वयं दामोदर तो अकबर के ही राज्य-काल के थे और उसने जनश्रुति के आधार पर इसे विक्रम संवत् मानकर वास्तविक घटना-काल का उल्लेख किया है। किन्तु सं० १५२६वि० और अकबर का शासन-काल एक साथ सिद्ध नहीं होते, अतः इसे श्री बाली ने शक संवत् मान लिया है। ऐसी परिस्थिति में १५२६ शक संवत् को विक्रमी संवत् में परिवर्तित करने पर सं० १६६४ होता है और इसके ठीक ६१ वर्ष बाद सं० १७२५ वि० में गुरुदास ने 'हीर राँझा की कथा' प्रस्तुत की है। १५२६ को शक संवत् मानना तो सम्भव प्रतीत होता है किन्तु इसके आधार पर श्री बाली ने जो गणना प्रस्तुत की है उसमें वे भूल कर गए हैं,[5] और उन्होंने दामोदर की रचना का संवत् १६१६ देकर १०६ वर्ष का व्यवधान प्रस्तुत कर दिया है, जबकि वास्तविक व्यवधान ६१ वर्ष का बैठता है। निश्चित् रूप से दामोदर ने इस घटना के बाद ही अपनी कृति प्रस्तुत

१. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७
२. गुरुदास, कथा हीर राँझन की भूमिका, पृ० १६
३. सं० डॉ० मोहन सिंह, हीर वारिस शाह, भूमिका, पृ० ३८
४. मौला बख्श कुश्ता, पंजाब दे हीरे, पृ० ६३
५. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८८

की होगी। अतः यह व्यवधान स्वयं ही और भी कम हो जाता है। ४०-५० वर्ष के भीतर दामोदर की रचना की हस्तलिखित प्रति गुरुदास को निश्चित् रूप से उपलब्ध हो गई होगी और उन्होंने उसको अपनी कथा का आधार बनाया होगा।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि जब सं० १७२५ वि० में गुरुदास ने इस कथा की रचना की उस समय दशम गुरु की आयु केवल दो वर्ष की थी। उस समय तक नवम गुरु श्री तेगबहादुर का बलिदान भी नहीं हुआ था और न औरंगज़ेब के प्रति पंजाब प्रदेश में उतना अधिक रोष था, जितना नवम गुरु के बलिदान के उपरांत था। इससे यह प्रतीत होता है कि गुरुदास को सामान्य सूफी-काव्य-परम्परा का अनुसरण करने एवं तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा करने में विपरीत वातावरण बाधक नहीं था। इससे इस तथ्य की भी पुष्टि हो जाती है कि इस ग्रन्थ की रचना के बाद ही गुरुदास दशम गुरु के दरबार में पहुँचे।

'कथा हीर राँझन की' में गुरु की जो स्तुति की गई है उसमें कहीं भी दशम गुरु गोविन्द सिंह का उल्लेख नहीं है। जिस तरह से सूफी कवि सामान्य रूप से गुरु की स्तुति करते थे उसी तरह गुरुदास ने भी स्तुति की है। अतः इससे स्पष्ट है कि इसे 'गुरु-स्तुति-अंश' बाद में जोड़कर, दशम गुरु को समर्पित की हुई रचना नहीं माना जा सकता।

गुरुदास की दूसरी रचना 'साखी हीरा घाट की' की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। यह रचना पूर्णतः दशम गुरु के दरबारी कवि की ही लिखी हुई प्रतीत होती है और इसमें दशम गुरु का चरित्र ही वर्णित है। यह रचना उनके चरित्र की अलौकिकता प्रस्तुत करती है। 'साखी हीरा घाट की' रचना अविचल नगर से सम्बद्ध है और एकमात्र दशम गुरु ही वहाँ गए थे। कवि उस समय भी सम्भवतः उनके साथ था, ऐसा वर्णन से प्रतीत होता है।[१] यह रचना भी उसी प्रकार चौपाई छन्दों में वर्णित है जैसे 'कथा हीर राँझन की'।

इन दोनों ही रचनाओं में कवि ने कहीं भी अपने आप को गुरुदास गुणी नही कहा है। उसने जहाँ भी अपने नाम का उल्लेख किया है वहाँ केवल गुरुदास ही लिखा है, जैसे—

पढ़ै सुनै जु को इस बानी। जाने यहि गुरदास बखानी।[१]
... ...
कहि पूरन गुरुदास निवारे। धनी नाम रिद महि संभारे।[२]

कवि गुरुदास ने अपने आदर्श कवि दामोदर के नामके आगे 'गुनी' शब्द का प्रयोग अवश्य किया है—

करौं कथा जो पाछे सुनी। जिउ बरनी दामोदर गुनी।[३]

---

१. गुरुदास, द्रष्टव्य साखी हीरा घाट की
२. गुरुदास, कथा हीर राँझन की, पृ० १४३
३. वही, पृ० ३८

दामोदर के नाम के आगे प्रयुक्त यह 'गुनी' शब्द उनकी गुण-सम्पन्नता का ही बोधक है, किसी उपाधि अथवा जाति विशेष का बोधक नहीं। अब तक के शोध-कर्ताओं ने न जाने किस प्रकार दामोदर के साथ लगे इस 'गुनी' विशेषण को गुरुदास के नाम के आगे सयुक्त कर दिया है, किन्तु स्वयं कवि ने अपने आपको कहीं भी 'गुनी' नहीं लिखा है। यह विद्वानों की अपनी-अपनी रुचि रही है कि दशम गुरु के इस दरबारी कवि को किसी ने गुरुदास 'गुणी' कह दिया और किसी ने गुरुदास सिंह। इस प्रकार दो गुरुदास मानने की जो भ्रमात्मक प्रक्रिया आरम्भ हुई उसका श्रेय इन विद्वानों की रुचि को है, स्वयं दशम गुरु के एकमात्र दरबारी कवि गुरुदास को नही, जो ऊपरि चर्चित दो रचनाओं के स्रष्टा हैं।

दशम गुरु के अन्य अनेक कवियों की भाँति गुरुदास के भी जन्म और मृत्यु-संवत् के विषय में कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है। न ही उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई विवरण मिलता है। सक्षेप में कहा जाए तो गुरुदास ने औरंगज़ेब के पचासवें वर्ष की आयु में अर्थात् १७२५ वि० में सूफी-काव्य-पद्धति एवं दामोदर कवि के उसी नाम की रचना का अनुसरण करते हुए 'कथा हीर राँझन की, की सृष्टि की। उसके बाद वे दशम गुरु के दरबार में आए और निश्चित् रूप से दशम गुरु के अविचल नगर-गमन तक साथ रहे और 'साखी हीरा घाट की' लघु रचना उनके अलौकिक चरित्र की अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत की। डॉ० सुरेन्द्र सिंह कोहली ने इन्हें सनखत्री का निवासी माना है।[1]

रचनाएँ : अब तक गुरुदास की केवल दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं——
(१) कथा हीर राँझन की, (२) साखी हीरा घाट की।

कथा हीर राँझन की[2]——यह लौकिक प्रेम-कथा काव्य है। इसमें हीर और राँझा की प्रेम-कथा वर्णित है।

साखी हीरा घाट की——इसमें दशम गुरु का चरित्र वर्णित है। यह रचना अप्रकाशित है और इसकी एक हस्तलिखित प्रति सेन्ट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला में उपलब्ध है।

६. गोपाल अथवा गोपाल राय

दशम गुरु के दरबारी कवियों में गोपाल की भी गणना की गई है। इस कवि के जीवनवृत्त अथवा जन्म और मृत्यु-संवत् के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इसकी एकमात्र रचना 'अनुभव-उल्लास' पटियाला के (४१२——सफाबादी गेट) श्री गोविन्द सिंह लाम्बा के पास उपलब्ध हैं। श्री लाम्बा के पास सात ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ एक बन्ध में विद्यमान हैं। वे ग्रन्थ इस प्रकार हैं——

१. अष्टावक्र —— दयालनेमि
२. अपरोखानुभव —— दयालनेमि

---

१. डॉ० सुरेन्द्र सिंह कोहली, पंजाबी साहित्य दा इतिहास, पृ० ३२८
२. पंजाब भाषा विभाग, पटियाला द्वारा प्रकाशित

३. कवित्त	—	वली राम
४. अनुभव उल्लास	—	गोपाल कवि
५. मात्रा	—	बाबा श्री चन्द
६. अवगत उलास	—	दयालनेमि
७. आत्म प्रकाश	—	दयालनेमि

इस वन्ध का चौथा ग्रन्थ 'अनुभव उल्लास' है। 'अनुभव उल्लास' के आरम्भ में ही निम्नलिखित पंक्तियाँ दी गई है—

१ ओकार सतिगुरुजी सहाइ।
अथ अनुभउ (अनुभव) उल्लास
नमो सचिदानन्द अपन पौ परम अनूपा,
गुरु गोविन्द गणेश सारदा सकल सरूपा।[१]

इस ग्रन्थ में कुल १६ रोला छन्द हैं। ग्रन्थ के अन्त में निम्नलिखित दोहा दिया हुआ है—

गुरु गोविन्द प्रताप ते, काटि आहि मम फास।
जन गोपाल विचारकैं, कह्यो अनुभव उल्लास ॥१॥

परम्परा गोपाल नामक कवि को दशम गुरु का दरबारी कवि मानती आ रही है। ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में स्पष्ट रूप से दशम गुरु गोविन्द सिंह की स्तुति की गई है। अतः इस 'अनुभव उल्लास' का कर्ता गोपाल ही दशम गुरु का दरबारी कवि है।

खोज विवरणों में एक अन्य गोपाल कवि (गोपाल लाहौरी) का नाम भी उपलब्ध है। श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने अपने एक लेख[२] मे इस गोपाल लाहौरी को ही दशम गुरु का दरबारी कवि मान लिया है। वे लिखते हैं— "ये लाहौर के रहने वाले थे। गुरु-दरबार में आने के पूर्व रीति-तत्त्व दर्शक एक रचना 'रस विलास' नामक कथित है। गुरु-दरबार में इनकी एक छोटी-सी रचना 'अनुभव उल्लास' मिलती है। एक और रचना कृष्ण रुक्मिणी री बेली की टीका इनकी बनाई राजस्थान में बताई गई है, जो श्री अगर चन्द नाहटा के अभय जैन ग्रन्थालय में है।"

'विद्यार्थी' जी ने भ्रांतिवश ही गोपाल लाहौरी और गोपाल कवि को एक ही व्यक्ति समझ लिया है। वस्तुतः 'रस-विलास' के कर्ता गोपाल लाहौरी और 'अनुभव उल्लास' के कर्ता गोपाल कवि दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति है। गोपाल लाहौरी के 'रस-विलास' का रचना-काल संवत् १६४४ है और मिर्ज़ाखान की आज्ञा के अनुसार उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की। 'रस-विलास' में ही उसका निश्चित् विवरण उपलब्ध हो जाता है—

१. गोपाल, अनुभव उल्लास —हस्तलिखित प्रति (बन्ध), पृ० २७३
२. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी का लेख, सरस्वती, जनवरी १९६७, पृ० १३०

संवत् सोरह सइ वरस, बीते चोतालीस ।
सोम तीज वैशाख को, करी कमध्वज ईस ।।४२।।
वरनि सेनि बैंकुंठ की, सची बेलि संसार ।
सुने सुनावइ जिन न सनु, प्रेम उचारइ पार ।।४३।।
आज्ञा मिरज़ा खान की, भई करी गोपाल ।
वंल कहे को गुन यहइ, कृष्ण करो प्रतिपाल ।।४४।।
मरु भाषा निरजल तजी, करि ब्रजभाषा चोज ।
अब गुपाल यातें लहैं, सरस अनोपम भोज ।।४५।।
कवि गुपाल यह ग्रन्थ रचि, लायो मिरज़ा पास ।
रस विलास दे नाउं उनि, कवि की पूरी आस ।।४६।।[1]

अभय जैन ग्रन्थमाला में 'रस-विलास' की जो प्रति उपलब्ध है वह भुजनगर में प्रेमराज के द्वारा संवत् १७४९ में की गई प्रतिलिपि है। ग्रन्थ के उपसहार वाक्य से यह भी ज्ञात होता है कि (श्री मान्मिरजाखान मनोविनोदार्थ पंडित लाहौरी कृत रस-विलास समाप्तं) 'रस-विलास' के कर्ता पंडित लाहौरी के नाम से ही प्रसिद्ध थे। 'रस-विलास' में कही भी गुरु गोविन्द सिह की स्तुति आदि नहीं है। 'रस-विलास' नाम दिया हुआ भी मिरजा खान का ही है। 'रस-विलास' स्वयं ही बेलिकाव्य है और रुक्मिणी तथा कृष्ण की कथा पर आश्रित है। अतः विद्यार्थी जी का यह कथन भी ठीक प्रतीत नहीं होता कि कृष्ण रुक्मिणी री बेलि की टीका इन्होंने लिखी है। इस पंडित लाहौरी के ग्रन्थ-रचना-काल और दशम गुरु गोविन्द सिह के जन्म-काल में ७९ वर्ष का अन्तर पड़ता है। इस ग्रन्थ-रचना के समय यदि उनकी आयु कम से कम बीस और पच्चीस वर्ष के मध्य की भी मान ली जाय तो यह अन्तर सौ वर्ष से ऊपर ही बैठता है। ऐसी परिस्थिति में 'रस-विलास' के कर्ता पंडित लाहौरी दशम गुरु के दरबारी कवि नहीं हो सकते।

रचनाएँ: इनकी केवल एक ही रचना उपलब्ध है--'अनुभव उल्लास'। यह १९ रोला छन्दों की एक छोटी-सी रचना है। इसका वर्ण्य-विषय आध्यात्मिक है और यह मूलतः वेदान्त-दर्शन पर आश्रित है। अन्त में केवल एक दोहा है। 'रस-विलास' का कवि श्रृंगारिक है किन्तु 'अनुभव-उल्लास' का कर्ता दशम गुरु गोविन्द सिंह का भक्त एवं दार्शनिक। इस प्रवृत्तिगत भेद के आधार पर भी दोनों ग्रन्थों का कर्ता एक ही व्यक्ति प्रतीत नहीं होता। हमारी खोज में इस 'अनुभव उल्लास' के अतिरिक्त गोपाल कवि का न तो कोई अन्य ग्रन्थ मिला है और न ही कोई मुक्तक रचना। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में भी गोपाल कवि का कोई पद्य उद्धृत नहीं किया गया। उपलब्ध 'अनुभव उल्लास' अपने पूर्णरूप में लेखक के पास विद्यमान है।

१. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २, पृ० ३०

१०. टहकन

दशम गुरु के दरबारी कवियों में टहकन की भी गणना की गई है। 'गुरु-प्रताप-सूर्यग्रन्थ' में प्रस्तुत दशम गुरु के दरबारी कवियों की सूची में टहकन का नाम सम्मिलित है। कवि ने अपनी कृति 'अश्वमेध पर्व' अथवा जैमनीय अश्वमेध (महाभारत) में रचनाकाल इस प्रकार दिया है—

संवत् सरदस सप्तसत अधिक बरस पट्बीस।
मिति त्रयोदस आषाढ़ बदि बुध वासर सुभ दीस॥

इससे स्पष्ट है कि टहकन ने 'अश्वमेध पर्व' का भाषारूपान्तर उस समय आरम्भ किया जब दशम गुरु की आयु केवल तीन वर्ष की थी। श्री चन्द्रकान्त बाली का विचार है कि—"यह कहना असंगत होगा कि गुरु जी की प्रेरणा से महाभारत का अनुवाद हुआ। यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि जब कवि टहकन दशम गुरु के दरबार में पहुँचा होगा और अपनी रचना का परिचय दिया होगा तो इसी से उत्साहित होकर गुरु जी ने मंगल, अमृत राय, सुन्दर तथा हंसराम आदि कवियों को शेष पर्वों के अनुवाद की आज्ञा दी होगी।"[१]

श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने लिखा है—"आश्चर्य की बात यह है कि जब टहकन ने 'अश्वमेध पर्व' की रचना की तब गुरु गोविन्द सिंह केवल तीन वर्ष के थे, फिर भी सिक्ख सम्प्रदाय इस रचना को हज़ूरी रचना मानता आया है—जान पड़ता है कि गुरु जी ने जब महाभारत के अनुवाद की योजना बनाई तो टहकन की रचना को उसमें स्वीकृत रचना के रूप में शामिल कर लिया गया। गुरु जी के किसी और दरबारी कवि ने 'अश्वमेध पर्व' का पुनः अनुवाद नहीं किया।"[२]

टहकन दशम गुरु के दरबारी कवि थे, इस सम्बन्ध में 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' की सूची और सिक्ख-परम्परा की मान्यता के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं है। टहकन की अब तक दो रचनाएँ उपलब्ध हैं—'अश्वमेध पर्व' का भाषा-रूपान्तर और रतनदाम। इन दोनों ही रचनाओं में कहीं भी दशम गुरु की कोई प्रशस्ति नहीं मिलती। कवि ने आरम्भ में गणेश की वन्दना की है। उसकी दोनों रचनाओं के अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि वह श्री कृष्ण का परम भक्त है। स्वयं टहकन ने 'अश्वमेध पर्व' में जिस प्रकार का वर्णन किया है उसमें युधिष्ठिर की अपेक्षा कृष्ण को ही अश्वमेध यज्ञ का सारा श्रेय दिया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

---

१. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २९२
२. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी का लेख, सरस्वती, फरवरी १९६७, पृ० १३५

अश्वमेध क्रित वीरवर क्रिसन चंद किय् आपि ।
सुजसु जुधिष्ठिर को दियो, कीनो भगत प्रतापि ॥५५॥
... ...

जग्ग जुधिष्ठिर सफल भये तबि ।
सावधान ठाढ़े गिरधारि जबि ॥

ग्रन्थ के उपसंहार वाक्य से भी यह ज्ञात होता है कि कवि का उद्देश्य धर्म-यज्ञ के बहाने कृष्ण-चरित्र को ही प्रस्तुत करना था—'इति श्री भारथ पुराणे धरम जग्गि बखिआने क्रिसन चरित्र जग्ग संपूरन सिधि कारज धरम सफल नामे तिहंत्रमों धिआई ॥७३॥ समापत चतुरदसमो परब संपूरन ॥१४॥'[1]

श्री चन्द्रकान्त बाली तथा अन्य लेखकों की धारणा है कि 'रतनदाम,' 'अमर-कोश' का भाषा–रूपान्तर है, किन्तु इस ग्रन्थ के अध्ययन के बाद ऐसा निष्कर्ष नही निकलता। इसमें 'अमरकोश' का आश्रय अवश्य लिया गया है, किन्तु कवि का उद्देश्य रस, नायिका-भेद और नख-शिख आदि का वर्णन ही है। 'रतनदाम' के अन्त में तो कवि ने श्री कृष्ण का विस्तृत नख-शिख वर्णन किया है। उसकी अन्तिम पंक्ति से भी यह सिद्ध होता है कि कवि नन्दलाल का उपासक है—

जन टहकन हिए बसौ सदा, नंद लाल आनंदघन ॥१४२६॥

यह आश्चर्य की बात है कि टहकन की जो दो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, उनसे यह संकेत नहीं मिलता कि वह दशम गुरु का भक्त या दरबारी है। वह श्री कृष्ण के पर्यायवाची 'गोविन्द' शब्द का भी प्रयोग नहीं करता। वह इसके स्थान पर नन्दलाल का ही प्रयोग करता है। इससे स्पष्ट है कि उसका 'अश्वमेध पर्व' तो कृष्ण-भक्तिपरक रचना है और 'रतनदाम' अमरकोश पर आश्रित रीति-ग्रन्थ। उसकी ऐसी कोई मुक्तक रचना भी नही मिलती, जिसमें दशम गुरु की स्तुति या वन्दना उपलब्ध हो।

सिक्ख-परम्परा द्वारा टहकन के दरबारी कवि होने की मान्यता का समर्थन 'अश्वमेध पर्व' के भाषारूपान्तर की शैली मात्र से ही होता है। यह तो उक्त उदाहरण से सिद्ध है कि टहकन के 'अश्वमेध पर्व' की रचना हजूरी कवियों की अन्य भाषारूपान्तरित रचनाओं से २६ वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। जब टहकन गुरु-दरबार में पहुँचे होंगे तो उनके 'अश्वमेध पर्व' को देख कर ही 'महाभारत' के भाषारूपान्तर की योजना बनी होगी। अन्य कवियों ने टहकन के इस भाषारूपान्तर को आदर्श मान कर ही अपने कार्य को सम्पन्न किया। यह निम्नलिखित तथ्यों से सिद्ध होता है—

१. रचना के आरम्भ में जिस प्रकार टहकन ने नन्दलाल की स्तुति की है, वैसे ही अन्य हजूरी कवियों ने दशम गुरु की वन्दना की है।

२. जिस प्रकार टहकन ने संस्कृत भाषा में पहले मूल ग्रन्थ को सुना और तब

---

१. टहकन, अश्वमेध पर्व, पृ० ५०८-५१०

उसे सरस दोहो और चौपाइयों में रूपान्तरित किया। इसी प्रकार का संकेत अन्य हज़ूरी कवियों ने भी किया है––

प्रथमे सुर भाषा सुनि लीनी।
दोहा सरस चउपई कीनी।
कहू कवित्त सोरठा की गति।
टहकन वरनन किओ अलपमति ॥६॥

३. ग्रन्थ के अन्त में टहकन ने नन्दलाल की प्रशस्ति से भाषारूपान्तर का कार्य समाप्त किता है और अन्य हज़ूरी कवियों ने दशम गुरु की प्रशस्ति से।

टहकन के जन्म और मृत्यु के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है, किन्तु 'अश्वमेध पर्व' के अन्त में उसने अपना परिचय निम्नलिखित रूप में स्वयं प्रस्तुत किया है––

टहकन कवि जलालपुर वासी।
छत्रि धरम नन्दलाल उपासी।
पिता रंगीलदास जिहि नामा।
जाति चोपरा कुल अभिरामा।
समे पाइ कवि गयो सिपाही।
है क्रिति भाषा करी तहाँ ही।
प्रिथम संसक्रिति स्रुति सुनि लीनी।
तां पाछे भाषा वर कीनी।
चौपाई दोहरा सुभ बानी।
क्रिपा करी कालिका भवानी।
अदभुत ग्रन्थ बन्यो सुविसाला।
करुणा कीनी श्री नन्दलाला ॥५८॥[1]

इन पंक्तियों के आधार पर केवल यही ज्ञात होता है कि टहकन जलालपुर निवासी, क्षत्रिय वंशीय जाति का चोपड़ा था और उसके पिता का नाम रंगीलदास था। वह श्री कृष्ण का उपासक था। समय आने पर वह सिपाही बना और 'अश्वमेध पर्व' के सस्कृत श्लोकों को सुनकर उसने इसे दौहा-चौपाई में भाषा-रूपान्तरित किया।

रचनाएँ : कवि टहकन की प्रथम रचना 'अश्वमेध पर्व' का भाषारूपान्तर है, जिसे दोहा, चौपाई और सोरठा में प्रस्तुत किया गया है। इसमें एकाध स्थान पर कवित्त भी उपलब्ध होते हैं। नाभा-दरबार ने एक बार इस रचना को गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित

१. टहकन, अश्वमेध पर्व, हस्तलिखित प्रति

करवाया था, परन्तु उसकी प्रतियाँ अब प्रायः अनुपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ निम्नलिखित पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं—

१. रेफ़ेंस पुस्तकालय, भाषा-विभाग, पटियाला, ग्रन्थ-संख्या ३२०
२. सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय; अमृतसर, ग्रन्थ-संख्या १५४।२६४
३. श्री गुरु रामदास पुस्तकालय, अमृतसर, ग्रन्थ-संख्या ११६१

हमने अपने अध्ययन में पटियाला वाली प्रति का उपयोग किया है।

टहकन की दूसरी रचना है 'रतनदाम'। यह उनकी बाद की रचना प्रतीत होती है। इस रचना का कुछ अंश तो पूर्णतः 'अमरकोश' के श्लोकों का रूपान्तर प्रतीत होता है, किन्तु जहाँ कवि ने रस, हाव, नायिका-भेद, स्त्रीभेद आदि का वर्णन किया है वहाँ वह 'अमरकोश' की परम्परा से भिन्न रीतिग्रन्थों की परम्परा का अनुसरण करता है। अतः इस रचना को 'अमरकोश' का भाषारूपान्तर नहीं कहा जा सकता।

यह रचना अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ—सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय अमृतसर, ग्रन्थ-संख्या ६३८४; रेफ़ेंस पुस्तकालय, भाषा विभाग, पटियाला, ग्रन्थ-संख्या ३९६ में उपलब्ध हैं। हमने इस शोध-प्रबन्ध में पटियाला वाली प्रति का उपयोग किया है।

११. मंगल

दशम गुरु के दरबारी कवियों में मंगल का भी उल्लेखनीय स्थान है। महाभारत के भाषा-रूपान्तर के लिए जिन कवियों को बुलाया गया था, उनमें से मंगल भी एक थे। इन्हें महाभारत के शल्य पर्व के भाषारूपान्तर का कार्य सौंपा गया था। इन्होंने इस पर्व का भाषारूपान्तर सं० १७५३ में किया[1]। इन्हें भी दशम गुरु से इस कार्य के लिए पारिश्रमिक के रूप में अपार धनराशि प्राप्त हुई थी। इस का उल्लेख कवि ने स्वयं किया है—

गुरु गोविन्द मन हरख ह्वै मंगल लियो बुलाइ।
सल्य परब आज्ञा करी लीजै तुरत बनाइ॥
संवत सत्रह सै बरख त्रैपन बीतन हार।
माधव रितु तिथि त्रोदसी ता दिन मंगलवार॥
सल्य परब भाषा भयो गुरु गोविन्द के राज।
अरब खरब बहु दरब दै करि कवि जन को काज॥

१. मंगल, महाभारत भाषा, शल्य पर्व

जौ लौं धरन अकास गिरि चंद सूर सुर इंद ।
तौ लौं चिरजीवै जगत साहिब गुरु गोबिन्द ॥

दशम गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा होने के कारण वे उन्हें अवतार-रूप मानते हैं तथा उनके दान की प्रशंसा भी करते हैं—

जाँचे ध्रू पायो है अमर पुर सुरलोक,
नाभा जू के जाचे दियो देहुश फिराय जी ।
विपदा मै लंका दीनो जाचे ते बिभीखन को,
मंगल सुकवि जाचौ मंगल सुनाय जी ।
द्रौपती नगन होति जाच्यो सभा माहि ठाढो,
अंबर लौ अंबर मही पै रहे छाय जी ।
ऐसो दान दैबो कौन कोऊ सति गुरु बिना,
और कौन जाचिये बिना गोबिन्द राय जी ।[1]

श्री चन्द्रकान्त बाली ने लिखा है कि—'चूंकि आपने ब्रजभाषा के अतिरिक्त पंजाबी तथा पहाड़ी भाषा मे भी रचना की है, अतः आपको कांगड़ा-निवासी या हिमाचल निवासी सहज में माना जा सकता है'।[2] इस सम्बन्ध में डॉ० बलबीर सिंह ने मंगल कवि द्वारा लिखित एक पत्र का विवरण दिया है; जिससे सिद्ध होता है कि ये पसरूर (सियालकोट) के निवासी एवं पंजाबी थे, कांगड़ा या हिमाचल प्रदेश के निवासी नहीं। पत्र की कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित रूप में हैं—

मंगल देत असीस नित मंगल बचन बखान ।
राज तेज दिन दिन बधै जउ लउ ससि अरु भानु ॥१॥
साहिब जीउ जुझार सिंह, जोरावर जुगबीस ।
गोविन्द अटल सुहाग सिर मात तिहारे सीस ॥२॥
तूं माता जीतो जगत करबे को पर काज ।
वर पायो गोविन्द गुर तीन भवन सिरताज ॥३॥
जो इच्छा मन मैं हुती सो पूरन भई आज ।
अब बेटी के व्याह की मात सुनो अरदास ॥४॥
मंगत हों इक दान अब कारज मोहि जरूर ।
बिदा करो माता तुरत जांहि शहिर पसरूर ॥५॥
चिंता मन निस दिन रहै कहौ सुनावैं काहि ।
आवैं फिर दरशन पुरब कर बेटी को ब्याहि ॥६॥

---

१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२६
२. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३६५

सकट मैं सुख करन को माता के पर काज।
बिदा देहु अब तुरत कहि रहो हमारी लाज ।।७।।[१]

मंगल कवि का पंजाबी होना इसलिए भी सारभूत लगता है, क्योंकि उनके पंजाबी भाषा के भी कवित्त उपलब्ध होते हैं। मंगल के ये कवित्त भाषा की दृष्टि से प्रौढ़ और भाव की दृष्टि से हिन्दी-कवित्तों के समकक्ष दिखाई पड़ते है। पंजावी भाषा के दो कवित्त द्रष्टव्य हैं—

समुंदर दे वार पार विच्च मही मंटल दे,
जैंदा जस देश देश सभे लोक गांवदे।
सेंवदे भिखारी सोई होंदे नी हजारी हुण,
बारी बारी पढ़ के कवित्त नी सुनांवदे।
चारों ही बरन षट दरशन जैंदे द्वार,
मंगल सुकवि मन इच्छा फल पांवदे।
वेखीं बल वांगू कोई छली गुर गोविन्द जी,
इक लै लै जांदे इक लेवणे नू आंवदे ।।१।।

अनंद दा बाजा बजदा अनंदपुर,
सुण सुण सुध भुलदी ए नर नाह दी।
भौ भइया भबीखणें नूं लंका गढ़ बसणे दा,
फेर असवारी आंवदि ए महांबाह दी।
बल छड बली जाइ छपिया पताल विच,
फतै दी निशानी जिहदे द्वार दरगाह दी।
सउणे न देंदी सुखी दुजणां नू रात दिन,
नौबत गुविन्द सिंह गुरु पातसाह दी ।।[३]

मंगल कवि के जन्म और मृत्यु-संवत् के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ये संभवत: अमृतराय और कुवरेश के बाद दशम गुरु के दरबार में पहुँचे। जब हंसराम को 'कर्ण पर्व' भाषा-रूपान्तर के लिए दे दिया गया तो इन्हें उसके आगे के 'शल्य पर्व' के भाषारूपान्तर का कार्य सौंपा गया। कुवरेश ने संवत् १७५२ में 'द्रोण पर्व' का अनुवाद पूर्ण कर लिया था और 'शल्य पर्व' के भाषा-रूपान्तर का कार्य संवत् १७५३ मे सम्पन्न हुआ। इससे प्रतीत होता है कि संवत् १७५३ से कुछ पूर्व ही ये दशम गुरु के दरबार में

१. डॉ० बलबीर सिंह, सबल साहित्य, पृ० ३०४
२. वही, पृ० ३०२
३. भाई कान्ह सिंह, गुरु-शब्द-रत्नाकर, पृ० ७४६

आ गए होंगे और जब ये आनन्दपुर में पहुँचे तो दशम गुरु के दोनों ही पुत्र विद्यमान थे, जिन्हें इन्होंने अपने पत्र में आशीर्वाद दिया है।

मंगल कवि ज्वाला देवी के परम भक्त प्रतीत होते हैं, क्योंकि अपने 'शल्य पर्व' के आरम्भ में इन्होंने भगवती ज्वाला देवी को ही सर्वप्रथम स्मरण किया है—

सिमर भगौती ज्वालया, सूरन को सुखदाइ।
गुर गोविन्द को सिमर मैं जहँ तहँ होइ सहाइ ॥१॥
पिंडी ज्वाला चंडका, काली कृपानिधान।
कवि मंगल वरु मंगलै, देत मंगला दान ॥२॥[1]

रचनाएँ : मंगल कवि की हिन्दी और पंजाबी की मुक्तक रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में इनकी कुछ रचनाएँ मंगल सुकवि नाम से मिलती हैं। इनके अतिरिक्त दशम गुरु के आदेशानुसार इन्होंने महाभारत के 'शल्य पर्व' का भाषारूपान्तर किया है। इस 'शल्य पर्व' की एक प्रति तो महाराजा पटियाला के निजी पुस्तकालय में विद्यमान है और इसकी नागरी लिपि में लिखित अन्य प्रति काशी-नरेश के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध है, जिसका बस्ता न० ४३, ग्रन्थ-संख्या ४५।५४ है। इसकी अध्याय संख्या २६ और छन्द संख्या ६५६ है। हमने इसी प्रति का उपयोग किया है।

१२. लक्खण राई (राय)

कवि लक्खण के जन्म और मृत्यु-सवत् ज्ञात नहीं है। तनसुख लाहौरी कृत 'हितोपदेश भाषा' में लक्खण कवि का निम्नलिखित परिचय उपलब्ध होता है—

भोजराज अरु भाई लक्खण। चातुर दोऊ बड़े विचक्खण।
बीक चन्द के दोऊ सपूत। गोत्र चचागरे शुभ रजपूत॥
लक्खण कविता में परवीन। हितउपदेश सु भाषा कीन।
दोहा सोरठा कियो बखान। राजनीति अरु ब्रह्म ग्यान॥
गुर की सेवा मांहि रहाहीं। अधिक प्रीत दोहू भजनहि मांहीं ॥३३१॥

सोरठा

पंडत दोऊ सयान, कोविद चतुर प्रबीन अति।
वारिधि बुद्धि बखान, तामें लक्खन सकल सुध ॥३३२॥
तनसुख छत्री बसे लाहौर। करम रेख आयो थभौर।
सुत पुन ताके अहैं जु तीन। इक नान्हों द्वै बड़े प्रबीन।
ते भी सेवा गुर की करहिं। निस वासुर गुर गुण उचरहिं।

---

१. मंगल, महाभारत भाषा—शल्य पर्व, पृ० १२

तिन सों पोथी दई पठाई। रणथंभौर तनसुख पै आई।
देखत ताको मन मैं आइ। कीजै यह दोहा चौपाई ।।३३३।।

दोहा

जैसे हिरदै बुद्धिहि, तैसी कहौ सुनाइ ।
अच्छर की जहँ टूट हुइ, पढ़ि यहु गुनी बनाइ ।।३३४।।[1]

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट है कि लक्खण या लक्खन और भोजराज दोनों भाई अत्यन्त चतुर और विचक्षण थे। इनके पिता का नाम बीक चन्द था और ये चचागर गोत्र के राजपूत थे। ये दोनों भाई ही दशम गुरु के दरबार मे रहकर उनकी सेवा और भगवद्-भक्ति करते थे। यद्यपि दोनों भाई ही बुद्धिमान, विद्वान् और कवि थे, परन्तु लक्खण अधिक विज्ञ थे। इन्होंने दोहा और सोरठा छन्द में 'हितोपदेश' का भाषारूपान्तर किया। लाहौर-निवासी तनसुख किसी कारण वहाँ से दूर रणथंभौर जाकर रह रहे थे। उनके भी तीन पुत्र थे, जो दशम गुरु की सेवा में रहते थे। लक्खण ने उन्हीं के द्वारा अपना 'हितोपदेश भाषा' तनसुख के पास रणथंभौर भेजा। लक्खण का यह 'हितोपदेश' दोहा और सोरठा में प्रस्तुत किया गया था। तनसुख ने उसे दोहे और चौपाई में निबद्ध किया। तनसुख लाहौरी ने दोहे तथा चौपाई में अपना यह 'हितोपदेश' सं० १७४१ में लिखा—

संवत् सत्रह सै इक्तालीस। औरंगजेबी सन् सताईस।

डॉ० बलबीर सिंह ने 'सबल साहित्य' में कवि लक्खण का उल्लेख करते हुए कहा है कि– "आज कवि तनसुख की रचना 'हितोपदेश भाषा' तो उपलब्ध है और लिखित रूप में कहीं-कहीं इसके दर्शन हो जाते हैं, परन्तु जिस पोथी से प्रेरणा लेकर यह रचना लिखी गई थी, सति गुर जी के हजूरी कवि लक्खण की वह रचना नामालूम कौन से घूंघट में अपनी आयु और भी दीर्घ कर रही है, या कि सदा सर्वदा के लिए सुख की नींद सो चुकी है।"[2]

दरबारी कवियों के ग्रन्थों की खोज करते हुए, लक्खण कवि रचित 'हितोपदेश-भाषा' की एक प्रति मुझे भाषा विभाग पटियाला के रेफ्रेंस पुस्तकालय में उपलब्ध हुई। इसकी ग्रन्थ-संख्या १०४ है। इस प्रति के अन्त के तीस पृष्ठों में से करीब १.८।२ का भाग नष्ट हो चुका है। शेष सम्पूर्ण हितोपदेश भाषा की प्रति नागरी लिपि में लेखक के पास उपलब्ध है, जो उसी प्रति के आधार पर तैयार की गई है।

इस प्रति के उपलब्ध हो जाने से कवि लक्खण के विषय में केवल एक नवीन तथ्य और मिलता है कि वे ऊना गाँव के निवासी थे—

१. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध प्रति से
२. डॉ० बलबीर सिंह, सबल साहित्य, पृ० २७६

सोरठा

नमस्कार करि लेउ, श्री गणेस को जोर कर।
सुभ सुबुद्ध तुम देउ, जाते करों गरंथ यह ॥८॥

दोहरा

बागतीर सवाइ कौ, तामहि ऊना गाउं।
राजपूत तामहि बसै, बीक चन्द्र सुभ नाउं ॥६॥

सोरठा

ताके सुत सुभ दोइ, भोजराज लष्यण कथ्यो।
जानत है सभ कोइ, सेव करत गुर देव की ॥१०॥
भोजराज आज्ञा दई, लष्यण को समुझाई।
ग्रन्थ हितो उपदेस का, भाषा देहु बनाई ॥११॥
सत्रा सै सैतीस मैं, संवत् विक्रमराई।
ग्रन्थ हितो उपदेस का, भाषा कियों बनाई ॥१२॥

कवि लक्खण का यह ऊना गाँव वर्तमान ऊना तहसील ही प्रतीत होता है। उन्होंने अपने बड़े भाई भोजराज के आदेश से संवत् १७३७ में 'हितोपदेश' का भाषा-रूपान्तर किया। इसके चार वर्ष बाद इस हितोपदेश की प्रति प्राप्त होने पर तनसुख लाहौरी ने इसका दोहा-चौपाई में रूपान्तर किया।

'गुरु-शब्द-रत्नाकर' में लक्खा सिंह का परिचय देते हुए कहा गया है कि यह दशमेश जी का पताकावाहक था और इसने दशम गुरु पर आघात करने वाले गुलखान के भाई अताउल खान का अविचल नगर में वध किया था।[1] इससे स्पष्ट है कि लक्खा सिंह और लक्खण कवि दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। लक्खण कवि थे और लक्खा सिंह दशम गुरु का एक सैनिक अथवा सेवक। इन दोनों को एक ही व्यक्ति समझना उचित प्रतीत नहीं होता। 'गुरु-शब्द-रत्नाकर' में लक्खा सिंह के कवि होने का कोई उल्लेख नहीं है।

'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में भी कवि लक्खण की कोई रचना संकलित नहीं है। किन्तु हितोपदेश के भाषा-रूपान्तर से यह तो सिद्ध ही है कि कवि लक्खण संस्कृतज्ञ और विद्वान् थे। ऐसी परिस्थिति में जब दशम गुरु ने 'महाभारत' के भाषारूपान्तर का यज्ञ सं० १७५२ के आस-पास आरम्भ किया तो कवि लक्खण को उसके किसी पर्व का कार्य क्यों नहीं सौंपा गया। इसके दो ही कारण हो सकते हैं—या तो संवत् १७५२ के कुछ वर्ष पूर्व ही कवि लक्खण का देहान्त हो चुका होगा, क्योंकि सं० १७३७ हितोपदेश के भाषा-रूपान्तर और सं० १७५२ महाभारत के भाषा-रूपान्तर के बीच का काल १५ वर्ष बनता है; या, यह भी सम्भव है कि कवि लक्खण ने भी महाभारत के किसी पर्व का भाषारूपान्तर

१. भाई कान्ह सिंह, गुरु-शब्द-रत्नाकर, पृ० ७६१

किया हो और बाद में वह रचना विनष्ट हो गई हो। इस समय महाभारत का कोई पर्व कवि लक्खण के द्वारा भाषारूपान्तरित उपलब्ध नहीं है।

रचनाएँ : कवि लक्खण की एक मात्र रचना 'हितोपदेश भाषा' उपलब्ध है। यह रचना अपने पूर्ण रूप में दोहा और सोरठा में रूपान्तरित है। भाषा विभाग, पटियाला के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की जो प्रति उपलब्ध है वह चैत्र वदी पंचमी संवत् १९२४ की लिखी हुई है। यह प्रति जिस 'हितोपदेश' की प्रति की प्रतिलिपि है वह संवत् १७८९ में प्रस्तुत की गई थी, जो मूल रचना-काल से केवल ५२ वर्ष बाद तैयार की गई थी। इस सम्बन्ध में ग्रन्थ के अन्त में निम्नलिखित पंक्तियाँ दी गई है—

सत्रा सै नवआसीया संवत् विक्रम राइ।
अगहन पहली पंचमी भृगु दिन है सुभ भाई ॥१॥
नथमल महता के कहे हर भगहि मन लाइ।
ग्रन्थ हितोपदेस का पुस्तक लिष्या बनाई ॥२॥
जैसे पुस्तक देषियो तैसे लिष्यो विचारि।
भूल चूक होई जो कहूं पंडित लेहु सुधारि ॥३॥
जगन के भगत अति राजा विजय प्रकास।
हन नगरी मै सुनिन करै है भोग लाभ ॥४॥

पोथी लिषी पटियाले मधे लिष्य मिती चेतवदी ५ साल १९२४॥

यह 'हितोपदेश-भाषा' मूल का पूर्णतः अनुसरण करती है।

१३. काशीराम

कवि काशी राम का जन्म सक्सेना कायस्थ कुल में हुआ था।[1] वे औरंगजेब के सूबेदार निजामतखाँ के आश्रित कवि थे। संरोजकार ने इनका उदयकाल संवत् १७१५ माना है।[2] 'दिग्विजय भूषण' में इनका निम्नलिखित एक कवित्त उद्धृत किया गया है जो निजामतखाँ का शौर्य-वर्णन प्रस्तुत करता है। इसी कवित्त के आधार पर इन्हें औरंगजेब का समकालिक माना गया है। 'दिग्विजय भूषण' का कवित्त इस प्रकार है—

गाढ़े गढ़ ढाहत रहत नहि ठाढ़े नेकु,
दिग्गज दुरित मद डारत सुकार कै।
कराचोली कसि झुकि निकसि निजामति खां,
दाबत रकाब जब बराजोरी पाइ कै।
धरनि के चहूँ कोन कासिराम भौन भौन,
भाजौ भाजौ ह्वै होत राना राजा राइ कै

१. सं० डॉ० भगवतीप्रसादसिंह, दिग्विजय भूषण, कवि-परिचय, पृ० १५

२. ठाकुर शिवसिंह सेंगर, शिवसिंह सरोज, पृ० ३९२

लक ते लंकेस के पताल हूँ ते सेस के,
सुमेर ते सुरेस के मिलैं वकील आइ कै।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केवल एक स्थान पर काशीराम की रचना 'कनकमंजरी' का उल्लेख किया है।[2] श्री चन्द्रकान्त बाली ने लिखा है कि काशीराम के विषय में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका।[3] 'दिग्विजय भूषण' में काशीराम का जो परिचय दिया गया है वह 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार ही है।

खोज करते हुए हमें काशीराम की जो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं उनके आधार पर भी काशीराम के जीवनवृत्त पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। ऐसी जनश्रुति है कि दशम गुरु गोविन्द सिंह 'हनुमन्नाटक भाषा' को अपने पास रखते थे, जो हृदयराम भल्ला कृत विक्रम संवत् १६८० की रचना है। 'हनुमन्नाटक' के अन्त में उसका रचनाकाल निम्नलिखित रूप में दिया हुआ है—

संवत् विक्रम नृप सहसषट शत असीह वर।
चैत्र चाँदनी दूज छत्र जहांगीर सुभट पर॥
शुभ लच्छन दच्छन सुदेश कविराम विचच्छनं।
कृष्णदास तनुकुल प्रकाश यश दीपक रच्छन॥ १४।१५८[4]

'हनुमन्नाटक भाषा' का कुछ अंश खण्डित हो गया था और दशम गुरु ने काशीराम को उसकी पूर्ति का आदेश दिया था। यह अंश 'परशुराम संवाद' से सम्बन्धित है। इसमें 'हनुमन्नाटक' भाषा के प्रथम अंक के ७३ से १०६ तक के कवित्तों में से अधिकांश काशीराम के नाम की छाप से युक्त हैं। इन कवित्तों को ही उनकी रचना 'परशुराम संवाद' कहा गया है। इन कवित्तों की संख्या १६ है, जिनमें काशीराम का नाम दृष्टिगत होता है, बीच-बीच में ऐसे भी कवित्त हैं जो हृदयराम भल्ला के लिखे हुए हैं। अतः इस कथन की पुष्टि होती है कि काशीराम ने अपने कवित्तों द्वारा उसके खंडित अंश की पूर्ति मात्र की है, सम्पूर्ण 'परशुराम संवाद' उनकी रचना नहीं है।

जिन छः रचनाओं का पहले[5] उल्लेख किया गया है उनमें अन्तिम तीन रचनाएँ पंजाबी की हैं और गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हैं। इनमें से 'पाण्डवगीता' से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि काशीराम दशम गुरु के दरबारी कवि थे और इस ग्रन्थ की रचना उन्हीं की कृपा से सम्पन्न हुई थी। इसका रचना-काल संवत् १७४७ है—

१. सं० डॉ० भगवतीप्रसादसिंह, दिग्विजय भूषण, कवि-परिचय, पृ० १५
२. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३१
३. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २५६
४. हृदयराम भल्ला, हनुमन्नाटक भाषा, चतुर्दशांक, छन्द-संख्या १५२, पृ० २६७
५. द्रष्टव्य, यही शोध-प्रबन्ध, पृ० ६६

रड छन्द

महाभारत में सांत इक परब है, तां मधे पांडव गीता जाणो।
कीआ सब्रादि नारदि भीषम तहां स्री क्रित बिआस की प्रगट मानो ॥

पउड़ी छन्द

सो जनमे पै यह करी वैसण पाइण वीचार ।
सत्रा सै सैतालीए, हाढ़ वदी करी वार ॥१॥
नमो करी भमवान नू जो साचा साई ।
नमो करी सभ देव नू सद लागा पाई।
नमो करी गुर सकल नू निति अन्तरि धिआई ।
गुरु गोविन्द की दइआ सों, कछू एहै बनाई।
कासी कथा सहंसक्रिति भाषिआ करि गाई।
महिमा नाम गुबिन्द की सा प्रगट सुनाई ॥२॥

'पाण्डवगीता' के अन्तिम छन्द से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस रचना पर दशम गुरु ने इनको कुछ द्रव्य भी दिया था—

मिठू-दिज गोविन्द राइ अरथ दस दितोही।
कांसी कही जैसी बुधि भी, दोस देहु न कोई ॥७८॥

भाषा की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि काशीराम आरम्भ में दशम गुरु के दरबार में चले गए थे और संस्कृत रचनाओं को सुनकर पहले उन्होंने 'पाण्डवगीता' आदि पंजाबी की रचनाओं को प्रस्तुत किया, बाद में काव्य प्रौढ़ता आने के बाद 'परशुराम-संवाद' 'कनकमंजरी' तथा अन्य मुक्तक कवित्तों की रचना की होगी। सं० १७५५ में दशम गुरु के कवि-दरबार विसर्जन के बाद वे सम्भवतः निज़ामतखाँ से मिले होंगे और उसकी प्रशस्ति में वह कवित्त लिखा होगा जो 'दिग्विजय भूषण' में संकलित है। इस प्रकार सरोजकार द्वारा दिया हुआ संवत् १७१५ विक्रम उनका जन्म-काल प्रतीत होता है और उनका रचना-काल संवत् १७४५ से संवत् १७६० तक माना जा सकता है। आरम्भ में उन्होंने पंजाबी में रचनाएँ प्रस्तुत कीं और दशम गुरु के दरबार में ही काव्य-कला में निष्णात होकर शेष रचनाओं का सृजन किया। इससे अधिक काशीराम के विषय में कोई तथ्य उपलब्ध नहीं हो सका।

रचनाएँ— अब तक काशीराम की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—

(१) **कनकमंजरी**[1]—यह शुक-शुकी संवाद पर आश्रित एक प्रेम-कथा काव्य है। यह रचना अप्रकाशित है और इसकी हस्तलिखित प्रति मुलेर (कांगड़ा) निवासी श्री भट्ट

१. अनेक बार प्रयत्न करने पर भी कनकमंजरी की यह हस्तलिखित प्रति मुझे देखने को नहीं मिल सकी।

दिवाकर राय के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध है।[1]

(२) **परशुराम संवाद**—यह हृदयराम भल्ला कृत 'हनुमन्नाटक भाषा' के खडित अंश की पूर्ति के रूप में लिखा गया है और इसमें कुल १६ कवित्त है।

(३) **काशीराम के कवित्त**—'काशीराम के कवित्त' नाम से कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। अपितु 'दिग्विजय भूषण' तथा 'सुधासागर' आदि सकलन ग्रन्थो में इनके कुछ कवित्त मिलते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलिखित ग्रन्थों में एक अज्ञात नामा संकलन ग्रन्थ (६१३) विद्यमान है, इसमें भी काशीराम के कुछ कवित्त संकलित हैं। काशीराम के यत्र-तत्र विखरे सभी मुक्तक कवित्त लेखक के पास उपलब्ध हैं।

शेष, 'पाण्डवगीता', 'सीहरफी' तथा 'बारहमाह' इनकी पजाबी की रचनाएँ हैं, अतः हमने इन्हे अध्ययन का विषय नहीं बनाया है।

१४. हीर

दशम गुरु के दरबारी कवियों में हीर का नाम भी उल्लेखनीय है। इनका कोई भी ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है, किन्तु भाई वीर सिंह कृत 'श्री कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ' में हमें हीर छाप के १४ और बिना हीर छाप के ९ छन्द उपलब्ध हुए हैं। हीर छाप युक्त १४ छन्दों में से १३ कवित्त और १ छप्पय छन्द हे जबकि हीर छाप रहित शेष ९ छन्दो मे ७ कवित्त, एक सवैया और १ छप्पय है। ये २३ छन्द भाई वीर सिह के 'श्री कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ' में गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित किए गए है।

'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में हीर का नाम हजूरी कवियो में परिगणित है। 'श्री कलगीधर चमत्कार ग्रंथ' में यह कहा गया है कि खालसा सजाने के बाद भी हीर आनन्दपुर दरबार में उपस्थित था और उसने दशम गुरु के अनेक युद्धों को प्रत्यक्षदर्शी की भाँति देखा था। अपने कवित्तों में उसने उनका वर्णन भी किया है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि दशम गुरु के दरबार में उपस्थित होकर हीर कवि ने कुछ नाटकीय हाव-भाव प्रदर्शित किये, जिससे लगता था कि वह अपने किसी अज्ञात शत्रु से युद्ध कर रहा है। सभा मे उपस्थित सभी लोग हँस पड़े और पूछने पर हीर ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

बोलिउ एक बीर बलवान।
देव पढ़त नहि क्रिपानिधान।
ता सन लर लर कवित्त सुनैहों।
महाराज सुख खान रिझैहों॥

यह हीर का अदृश्य शत्रु उसका दारिद्र्य था। बाद में आज्ञा प्राप्त होने पर उसने दशम गुरु की दान प्रशस्ति में निम्नलिखित दो कवित्त प्रस्तुत किए—

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम खंड, पृ० १०६

…पास ठाढ़ो झगरत, झुकत दरेरै मोहि,
बात न करन पाउं महाबली बीर सों:
अैसो अरि बिकट निकट बसै निस दिन,
निपट निसंक सठ घेरे फेर भीर सों।
'दारिद कपूत' तेरो मरन बन्यो है आज,
करकै सलाम विदा हूजै कवि 'हीर' सों।
नातुर गोविन्द सिंह विकल करेंगे ताहि,
टूक-टूक ह्वै हैं गाढे दानन के तीर सों ॥१॥
जैसे प्रह्लाद सुरपति कीनो पति दै कै,
याहू पतिकाजै नैक चित दै समारीए।
जैसे बलि बांध्यो धर बावन सरूप 'हीर'
टूक-टूक करो चाढ आँखिन पछारीए।
छाडत न संग जुरयो रहै आठो जाम मेरे,
तेरे दान नाम ते परेत मेरे झारीए।
एकै गुरु गोविन्द, गरुर जांको वाहन है,
जैसे मुर मार्‌यो तैसे मेरो अरि मारीए ॥२॥

इन कवित्तों को सुनकर दशम गुरु ने इन्हें प्रचुर दान दिया और सम्मान सहित हजूरी कवियों में सम्मिलित कर लिया। बाबा सुमेर सिंह के 'गुरु विलास' में निम्नलिखित पंक्तियों मे इस घटना का उल्लेख हुआ है—

सुन साचे सतिगुर अविनाशी।
दीनों धन अनगन गुन रासी।
कविजन 'मध्य रोज कर दीउ।
दारिद दरद दमन सुख कीउ॥
—गुरु विलास

हीर के कवित्त बीर-रस-पूर्ण हैं और भाषा-सौष्ठव, वर्ण्य-विषय तथा शब्दावली के प्रयोग आदि की दृष्टि से भूषण के कवित्तों के सदृश ही प्रतीत होते हैं। भूषण ने जिस प्रकार शिवाजी के दान और शौर्य का वर्णन किया है, ठीक वैसा ही वर्णन हीर ने दशम गुरु गोविन्द सिंह के पराक्रम का किया है। इससे इतना तो निश्चित् हो जाता है कि हीर रीतिकालीन उन कवियों की परम्परा में परिगणित किए जा सकते हैं जिनमें भूषण की गणना होती है। इनकी उपलब्ध फुटकर रचनाओं में कोई ऐसा कवित्त हमें नहीं मिलता जिसके आधार पर इनका रचना-काल निर्धारित किया जा सके। ये सभी छन्द गुरु गोविन्द सिंह के दान, अस्त्र-शस्त्र, शौर्य और युद्ध आदि से सम्बद्ध हैं।

हीर के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में हमें उतनी सामग्री भी उपलब्ध नहीं हुई, जितनी उनके अन्य दरबारी कवियों के विषय में प्राप्त हुई है। इसलिए इनका विस्तृत परिचय देना सम्भव नहीं है।

श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने अपने एक लेख में इनके राजस्थानी होने का संकेत किया है और राजस्थान में जोधपुर के पुरातत्त्व संस्थान में ज्योतिष सम्बन्धी इनकी किसी छोटी रचना के देखने का भी उल्लेख किया है। राजस्थान में शोध और पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रकाशित विवरणों में हमने हीर कवि को ढूंढने का प्रयास किया है। संवत् १६६१ में विद्यमान रागमाला के रचयिता एक हीर चन्द का हमें उल्लेख मिला है।[1] यह हीर चन्द मांडली नगर निवासी थे। किन्तु इनकी ऐसी कोई रचना हमे नहीं मिली, जिससे यह सिद्ध हो सके कि ये राजस्थानी हीर चन्द या हीर कवि ही दशम गुरु के दरबारी कवि हैं। संगृहीत ग्रन्थों में संवत् १७५८ में रचित रागमाला का उल्लेख मिलता है, और यह ग्रन्थ औरंगजेब की प्रशस्ति भी प्रस्तुत करता है।[1] इसी क्रम में लच्छीराम का 'राग विचार' भी उपलब्ध होता है। ये लच्छीराम वही संगीतज्ञ है जिनका उल्लेख आलम ने किया है। संगीतज्ञ हीर चन्द और दशम गुरु के दरबारी कवि हीर दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति है, ऐसा हीर के कवित्तों से प्रकट होता है।[2]

रचनाएँ : इनके केवल २४ मुक्तक पद्य उपलब्ध हैं। इनमें से १४ हीर छाप सहित हैं और शेष बिना हीर छाप के हैं। इनमें अधिकांश कवित्त हैं, जो दशम गुरु के शौर्य एवं प्रशस्ति से सम्बद्ध हैं। इनकी ये मुक्तक रचनाएँ भाई वीर सिंह कृत 'श्री कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ' में गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित हैं।

चतुर्थ अध्याय

गुरु गोविन्द सिंह के प्रमुख हिन्दी दरबारी कवियों की उपलब्ध कृतियों का वर्गीकरण

जिन १४ कवियों को विस्तृत अध्ययन के लिए ग्रहण किया गया है, वे सभी निश्चित् रूप से दशम गुरु गोविन्द सिंह के दरबार से सम्बन्धित रहे हैं। इन कवियो में—१. अणीराय, २. अमृतराय, ३. सेनापति, ४. हसराम, ५. गुरुदास, ६. गोपाल, ७. टहकन ८. मंगल, ९. लक्खण, १०. काशीराम, और ११. हीर कवि पर्याप्त समय तक दशम गुरु के दरबार मे उपस्थित रहे। इनमें से सेनापति और गुरुदास तो अन्तिम समय तक दशम गुरु के साथ रहे, ऐसा उनकी कृतियों से प्रकट होता है। आलम और कुवरेश दशम गुरु के दरबार में उस समय पधारे, जब वहाँ साहित्य-सृजन का कार्य योजना-बद्ध रूप से चलने लगा था। दशम गुरु के आनन्दपुर छोड़ने के उपरांत या उसके कुछ समय बाद ये दोनों कवि अन्यत्र चले गए। सुखदेव को आगन्तुक कवियों की श्रेणी में रखा जा सकता है, जिनकी रचना 'अध्यात्म प्रकाश' को दशम गुरु के साहित्य-भण्डार में सम्मिलित कर लिया गया था। इनकी अन्य रचनाएँ 'ज्ञान प्रकाश' और 'गुरु महिमा' पंजाब क्षेत्र में उपलब्ध नही हुई हैं। अतः ये उनकी बाद की रचनाएँ मानी जा सकती हैं।

दशम गुरु के दरबारी कवियों की गुरु-दरबार में आने से पूर्व की रचनाएँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी दरबार में रहते समय की रचनाएँ। यह सम्भव है कि इन कवियों ने अपनी पूर्वरचित कृतियों को दशम गुरु को भेंट कर दिया हो और उन्हें दरबार के साहित्यिक भण्डार में सम्मिलित कर लिया गया हो। इन कवियों की काव्य-प्रवृत्तियों को समझने के लिए भी उनकी सम्पूर्ण रचनाओं का अध्ययन आवश्यक है। यही कारण है कि गुरु-दरबार से सम्बद्ध इन हिन्दी कवियों की सभी रचनाओं को अध्ययन का विषय बनाया गया है।

अनुसन्धान के क्रम में हमें इन कवियों की रचनाएँ दो रूपों में मिली हैं—प्रकाशित और अप्रकाशित। प्रकाशित रचनाओं में से कुछ नागरी लिपि में और कुछ गुरुमुखी लिपि में छपी हैं। अप्रकाशित रचनाएँ विविध पुस्तकालयों की हस्तलिखित प्रतियों के संकलनों में उपलब्ध हुई हैं। ये अप्रकाशित रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं—कुछ तो नागरी लिपि में उपलब्ध होती हैं और कुछ गुरुमुखी लिपि में। अध्ययन के लिए कवि विशेष की सभी प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं को समान महत्त्व दिया गया है। इन सभी प्रकाशित व अप्रकाशित रचनाओं और उनकी लिपियों का विवरण इस प्रकार है—

रचना	कवि	प्रकाशित एवं अप्रकाशित	लिपि
१. जंगनामा	अणीराय	प्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
२. महाभारत सभा पर्व	अमृतराय	अप्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
३. चित्र-बिलास	अमृतराय	अप्रकाशित	गुरुमुखी
४. नवरस	अमृतराय	अप्रकाशित	देवनागरी
५. फुटकर रचनाएँ	अमृतराय	अप्रकाशित	गुरुमुखी
६. माधवानल कामकंदला	आलम	प्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
७. श्याम-सनेही	आलम	प्रकाशित	देवनागरी
८. सुदामा चरित	आलम	अप्रकाशित	देवनागरी
९. आलम केलि	आलम	प्रकाशित	देवनागरी
१०. अन्य मुक्तक कवित्त	आमल	अप्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
११. अध्यात्म प्रकाश	सुखदेव	प्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
१२. ज्ञान प्रकाश	सुखदेव	अप्रकाशित	देवनागरी
१३. गुरु-महिमा	सुखदेव	अप्रकाशित	देवनागरी
१४. गुरु शोभा	सेनापति	प्रकाशित	देवनागरी
१५. चाणक्यनीति भाषा	सेनापति	प्रकाशित	गुरुमुखी
१६. महाभारत कर्ण पर्व	हंसराम	अप्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
१७. मुक्तक कवित्त	हंसराम	प्रकाशित	गुरुमुखी
१८. महाभारत द्रोण पर्व	कुवरेश	अप्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
१९. कथा हीर राँझन की	गुरुदास	प्रकाशित	देवनागरी
२०. साखी हीरा घाट की	गुरुदास	अप्रकाशित	गुरुमुखी
२१. अनुभव उल्लास	गोपाल	अप्रकाशित	गुरुमुखी
२२. महाभारत अश्वमेध पर्व	टहकन	प्रकाशित	गुरुमुखी
२३. रतनदाम	टहकन	अप्रकाशित	गुरुमुखी
२४. महाभारत शल्य पर्व	मंगल	अप्रकाशित	देवनागरी, गुरुमुखी
२५. अन्य मुक्तक	मंगल	प्रकाशित	गुरुमुखी
२६. हितोपदेश भाषा	लक्खण	अप्रकाशित	देवनागरी
२७. कनकमंजरी	काशीराम	अप्रकाशित	देवनागरी
२८. परशुराम संवाद	काशीराम	प्रकाशित	देवनागरी
२९. अन्य मुक्तक कवित्त	काशीराम	अप्रकाशित	देवनागरी
३०. मुक्तक रचनाएँ	हीर	प्रकाशित	गुरुमुखी

ऊपर दिये गए विवरण में केवल १३ रचनाएँ ही प्रकाशित हैं; शेष सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में दिया जा चुका है।

मौलिक एवं भाषा-रूपान्तरित रचनाएँ

ये प्रकाशित एवं अप्रकाशित संपूर्ण रचनाएँ दो प्रकार की हैं। इनमें से कुछ रचनाएँ तो कवियों की मौलिक कृतियाँ हैं और कुछ संस्कृत कृतियों के भाषारूपान्तर। संस्कृत-काव्यों के भाषा में प्रस्तुत किये गए ये रूपान्तर विशुद्ध रूपान्तर अथवा अनुवाद की श्रेणी में परिगणित नहीं किए जा सकते। इनमें जहाँ एक ओर कुछ स्थलों पर शाब्दिक अनुवाद की पद्धति का प्रश्रय लिया गया है, वहाँ साथ ही स्वच्छन्द भावानुवाद की पद्धति भी अपनायी गयी है। स्वच्छन्द भावानुवाद की यह स्वच्छन्दता कहीं-कहीं अनावश्यक विषय-वस्तु के परित्याग और अनेक नवीन तथा उत्पाद्य विषयों के समावेश तक परि-व्याप्त दिखलाई पड़ती है। कवियों ने अनेक स्थानों पर निजी अलंकार-योजना तथा कल्पना-शक्ति से वस्तु-योजना में यथेष्ठ परिवर्तन कर लिए हैं। इन काव्यों में अनुवाद और मौलिक सृजन दोनों का ही एकत्र समावेश दृष्टिगोचर होता है। अतः मूल का आश्रय ग्रहण करते हुए भी भाषा और रूप में भिन्नता होने के कारण ही इन्हें भाषा-रूपान्तरित रचनाएँ कहा गया है। भाषारूपान्तरित रचनाओं में निम्नलिखित रचनाएँ आती हैं—

१. सभा पर्व	: मूल रचना महाभारत सभा पर्व (संस्कृत)
२. माधवानल कामकंदला	: मूल रचना जोध कवि की माधवानल कामकंदला चरित (संस्कृत)
३. चाणक्यनीति	: मूल रचना चाणक्य राजनीति-शास्त्र (संस्कृत)
४. कर्ण पर्व	: मूल रचना महाभारत कर्ण पर्व (संस्कृत)
५. द्रोण पर्व	: मूल रचना महाभारत द्रोण पर्व (संस्कृत)
६. अश्वमेध पर्व	: मूल रचना महाभारत अश्वमेध पर्व (संस्कृत)
७. शल्य पर्व	: मूल रचना महाभारत शल्य पर्व (संस्कृत)
८. हितोपदेश भाषा	: मूल रचना हितोपदेश (संस्कृत)

इन भाषारूपान्तरित रचनाओं के अतिरिक्त 'रतन दाम' का कुछ अंश संस्कृत के 'अमरकोश' का भाषारूपान्तर है और कुछ अंश कवि की अपनी मौलिक रचना है, जिसका उसमें समावेश कर दिया गया है।

भाषारूपान्तरित रचनाओं के इस स्वरूप से स्पष्ट होता है कि प्रमुख रूप से 'महाभारत' और राजनीति-शास्त्र से सम्बन्धित होने के कारण 'चाणक्यनीति' तथा 'हितोपदेश' को भाषा-रूपान्तर के लिए ग्रहण किया गया। स्वयं 'महाभारत' भी नीति-शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है। केवल आलम ने 'माधवानल काम-कंदला' की रचना के लिए प्रमुख रूप से जोध कवि की इसी नाम की संस्कृत रचना को आधार बनाया है। दशम गुरु के 'चरित्रोपाख्यान' में माधवानल कामकंदला की कथा वर्णित है, अतः प्रेम-कथात्मक संस्कृत रचना को भाषारूपान्तर के लिए ग्रहण करना दशम गुरु के दरबार की साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रतिकूल नहीं है।

शेष सभी रचनाएँ, जिनका उल्लेख प्रकाशित एवं अप्रकाशित शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है, कवियों की अपनी मौलिक कृतियाँ हैं।

काव्य-विधा की दृष्टि से वर्गीकरण

इन सम्पूर्ण मौलिक एवं भाषारूपान्तरित कृतियों का काव्य-विधा की दृष्टि से भी वर्गीकरण हो सकता है। सामान्यतः ये सभी रचनाएँ श्रव्य काव्य के अन्तर्गत आती हैं। केवल काशीराम की रचना 'परशुराम संवाद', 'हनुमन्नाटक भाषा' का एक भाग है। यह 'परशुराम संवाद' सम्पूर्ण रूप में काशीराम द्वारा रचित नहीं है, अपितु हृदयराम भल्ला के 'हनुमन्नाटक भाषा' के अन्तर्गत 'परशुराम संवाद' के नष्ट हुए अंशों की पूर्ति मात्र है। काशीराम ने टूटे हुए अशों की पूर्ति के लिए स्वरचित जिन कवित्तों आदि का उसमें समावेश किया है, उनमें उन्होंने अपने नाम की छाप डाल दी है। अतः जिन दोहों या कवित्तों में काशीराम के नाम की छाप नहीं मिलती वे हृदयराम भल्ला रचित मूल रचना के ही अंश प्रतीत होते है। यही कारण है कि काशीराम छाप के उन कवित्तों को अध्ययन के लिए हमने मुक्तक रचनाओं में ही गिना है, क्योंकि वे पृथक्-पृथक् रचे जाकर मूल रचना में रखे गए हैं।

इन सभी श्रव्य रचनाओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक-काव्य और मिश्रित-काव्य।

(क) प्रबन्ध-काव्य—

'जंगनामा' और 'गुरुशोभा' ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है जो दशम गुरु के जीवन-चरित से सम्बन्धित हैं। स्वयं दशम गुरु एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं और उनके जीवन तथा कार्य-कलापों ने भारतीय इतिहास पर प्रचुर प्रभाव डाला है। इन दोनों रचनाओं में उन्हीं से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये तथ्यपूर्ण हैं। अतः इन दोनों कृतियों को ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य कहा गया है।

'साखी हीरा घाट की' रचना एक लघु प्रबन्ध है, जो दशम गुरु से सम्बद्ध एक काल्पनिक घटना के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह रचना दशम गुरु के चमत्कार का वर्णन प्रस्तुत करती है। अतः इसे कल्पनाप्रधान प्रबन्ध की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

प्रबन्ध-काव्यों में से 'श्याम-सनेही' और 'सुदामाचरित' पौराणिक प्रबन्ध हैं, जिनकी कथावस्तु का आधार 'श्रीमद्भागवत' है।

महाभारत के सभी पर्व पौराणिक प्रबन्ध के ही अन्तर्गत आएँगे, किन्तु ये सभी भाषारूपान्तरित हैं।

'हितोपदेश' का स्वरूप मूल रचना के अनुकूल ही है, यह नीतिपरक कथासंग्रह है।

'माधवानल कामकंदला', 'कथा हीर राँझन की' और 'कनकमंजरी' प्रेम-कथा प्रबन्ध हैं। इनका आधार लोककथाएँ हैं।

(ख) मुक्तक-काव्य—

मुक्तक रचनाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं—'आलमकेलि' तो मुक्तक रचनाओं का संग्रह है और शेष मुक्तक रचनाओं में से कुछ गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित

और कुछ अप्रकाशित एवं यत्र-तत्र बिखरे मुक्तकों का संकलन करके उन्हे अध्ययन का विषय बनाया गया है।

'चाणक्यनीति' नीतिपरक मुक्तकों का संग्रह है तथा 'अध्यात्म प्रकाश' 'ज्ञान प्रकाश' और 'गुरु महिमा' संवाद रूप में आध्यात्मिक काव्य का रूप प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ हैं, तो 'अनुभव उल्लास' स्वतन्त्र रूप से रोला छन्द में रचित अध्यात्मपरक रचना।

(ग) मिश्रित-काव्य—

मिश्रित-काव्य के रूप में दो रचनाएँ उपलब्ध है—'रतन दाम' और 'चित्र-बिलास'। 'रतन दाम'—कोश, नायिका-भेद और नखशिख-वर्णन का मिश्रित रूप है जबकि 'चित्र-बिलास' एकाक्षरकोश और चित्रकाव्य के लक्षण-उदाहरण का लक्षण ग्रन्थ का मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है।

निश्चित् रूप से इन में से कुछ रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं और कुछ ज्ञानात्मक साहित्य के अन्तर्गत आती है। लक्षण-ग्रन्थ, काव्य-ग्रन्थ नहीं माने जाते, किन्तु रीतिकाल में स्वनिर्मित उदाहरण देने की जो पद्धति चली उसके कारण ऐसी रचनाएँ लक्षण और लक्ष्यग्रन्थ का मिश्रित रूप बन गईं। 'चित्र-बिलास' में भी अमृतराय ने स्वरचित उदाहरण दिये है, कुछ स्थलों पर लक्षणों का भी निर्देश किया है। अत: वह भी काव्य की श्रेणी में ही आता है। यही स्थिति 'रतन दाम' की भी है।

वर्ण्य-विषय के आधार पर वर्गीकरण

काव्य-विधा एवं वर्ण्य-विषय के साम्य और वैषम्य के आधार पर हमने निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण कर इन रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया है—

१. प्रबन्ध-काव्य

(क) ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य—

१. जंगनामा, २. गुरु शोभा

(ख) पौराणिक प्रबन्ध-काव्य—

१. श्याम-सनेही, २. सुदामा चरित

(ग) प्रेम-कथा प्रबन्ध-काव्य—

१. कथा हीर राँझन की, २. माधवानल कामकन्दला, ३. कनक-मंजरी

(घ) काल्पनिक लघु प्रबन्ध—

१. साखी हीरा घाट की

२. मुक्तक-काव्य

'आलमकेलि'; हंसराम, मंगल, काशीराम, हीर कवि के मुक्तक, तथा अन्य मुक्तक।

३. भाषारूपान्तरित रचनाएँ

(क) महाभारत से सम्बद्ध—सभा पर्व, द्रोण पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व तथा अश्व-मेध पर्व

(ख) नीतिपरक—'चाणक्यनीति' और 'हितोपदेश भाषा'

४. अध्यात्मपरक रचनाएँ

१. अध्यात्म प्रकाश, २. ज्ञान प्रकाश, ३. गुरु महिमा, ४. अनुभव उल्लास

५. मिश्रित रचनाएँ

१. रतन दाम, २. चित्र-विलास

इस वर्गीकरण में 'माधवानल कामकंदला' यद्यपि जोध कवि की संस्कृत रचना का अनुसरण करती है, किन्तु वह प्रेम-कथा प्रबन्ध है और आलम ने उसमें अपने दृष्टि-कोण और कवित्व-शक्ति का उत्तम परिचय दिया है। अतः विषय की दृष्टि से उसे प्रेम-कथा प्रबन्ध-काव्यों के साथ ही रखा गया है।

'साखी हीरा घाट की' एक कल्पना प्रसूत रचना है, जिस में दशम गुरु का अलौकिक चमत्कार वर्णित है। दशम गुरु के जीवन से सम्बद्ध होते हुए भी इसकी अलौकिक चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण ऐतिहासिकता संदिग्ध हो गई है। अतः इसे ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों से पृथक् कर दिया गया है।

'परशुराम संवाद' में दिए गए काशीराम के कवित्त एवं उनके अन्य उपलब्ध मुक्तक कवित्तों का एक साथ अध्ययन मुक्तक-काव्य के अन्तर्गत किया गया है।

'चाणक्यनीति' यद्यपि मुक्तक-संग्रह है और 'हितोपदेश' कथा-संग्रह, तब भी दोनों का वर्ण्य-विषय नीति होने के कारण इन्हें एक वर्ग में रखा गया है।

'अध्यात्म प्रकाश', 'ज्ञान प्रकाश', 'गुरु महिमा' और 'अनुभव उल्लास' वेदान्त दर्शन के आधार पर आध्यात्मिक विषयों का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। इनमें से पहली तीन रचनाएँ तो गुरु-शिष्य-संवाद-शैली में प्रस्तुत की गई हैं और 'अनुभव उल्लास' विना गुरु-शिष्य-संवाद के ही आध्यात्मिक विषयों का निरूपण करता है। शैली की दृष्टि से संवाद-शैली और वर्णन-शैली के पृथक् होते हुए भी दोनों प्रकार की रचनाओं के विषय समान है, अतः उन्हें एक ही वर्ग में अध्ययन का विषय बनाया गया है।

'चित्र-बिलास' और 'रतन दाम' मिश्रित रचनाएँ हैं और इनमें लक्षण, कोश और काव्य तीनों ही प्रकारों की अभिव्यक्ति हुई है। अतः इनके लिए 'मिश्रित-काव्य' शब्द का प्रयोग किया है।

वर्ण्य-विषय की अनुरूपता का ध्यान रखते हुए ऊपर जो वर्गीकरण दिया गया है इसी क्रम से अगले अध्यायों में इन रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय

प्रबन्ध-काव्य

ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य

(१) जंगनामा :

'जंगनामा'—जंग और नामा दो शब्दों के योग से बना है। जंग का अर्थ होता है युद्ध और नामा का अर्थ है पुस्तक[1]। ये दोनों शब्द हिन्दी को फारसी से मिले हैं। फारसी मे दसवीं शताब्दीं के अन्तिम और ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल में लिखी गई रचना 'शाहनामा' सबसे प्राचीन है। फिरदौसी की इस रचना में मुख्य रूप से बादशाहों के चरित्रों का वर्णन है। इसके बाद 'नामा' शब्द काव्य-ग्रन्थों के नामकरण के लिए प्रयुक्त होने लगा। एक ओर यह 'सिकन्दर नामा' जैसे वीर-काव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ और दूसरी ओर 'पन्दनामा' जैसे उपदेशपरक ग्रन्थों के नामकरण के लिए। भारतवर्ष में 'बाबरनामा' में 'नामा' शब्द फारसी-परम्परा के अनुसार ही पहली बार प्रयुक्त हुआ। अकबर के समय में महाभारत का फारसी अनुवाद 'रजबनामा' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उर्दू में भी नुसरत का 'अलीनामा' और नेमत अली खाँ का 'जंगनामा' प्रसिद्ध हैं। आगे चलकर श्रीधर कवि (संवत् १७६७ वि०) ने फरुखसियर का 'जंगनामा' लिखा और इसी समय में इश्क की पुस्तकों में भी 'इश्कनामा' आदि का प्रयोग होने लगा। उर्दू मे अखबार को 'खबरनामा' भी कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि यह 'नामा' शब्द वर्ण्य-विषय का संकेत करता है।[2]

डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह ने लिखा है कि हिन्दी में अभी तक केवल श्रीधर कवि का लिखा फरुखसियर का 'जंगनामा' रचना ही उपलब्ध थी···स्पष्ट है कि इसके नामकरण में मुस्लिम दरबार और भाषा के संसर्ग का प्रभाव है।[3]

अणीराय का 'जंगनामा' श्रीधर कवि के 'जंगनामा' से पहले ही लिखा जा चुका था। अतः हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम 'जंगनामा' को प्रस्तुत करने का श्रेय अणीराय को ही प्राप्त है। 'जंगनामा' और 'वार' पंजाब की लोकप्रिय काव्य-शैलियाँ रही हैं। 'दशम ग्रन्थ' के रचयिता स्वयं गुरु गोविन्द सिह ने 'चण्डी दी वार' की रचना पंजाबी भाषा में ही की है। वीरगाथा और यशोगान 'वार' काव्यों का मुख्य विषय रहा है। रासो काव्यों के समान

---

१. जदीद फिरोजुल्लुग़ात, पृ. ६७६

२. डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह, भगवंतराय खीची और उनके मंडल के कवि, पृ० १८३-८४

३. वही, पृ० १८४

ही इनकी वर्णन-पद्धति रही है। इसलिए, 'जंगनामा' एक ओर जहाँ नामकरण के लिए फारसी का ऋणी, है वहाँ शैली और छन्द आदि के लिए रासो काव्यों का ऋणी है। 'जंगनामा' युद्ध-काव्य है, क्योंकि इसका मुख्य वर्ण्य-विषय जंग या युद्ध ही है।

अणीराय कृत 'जंगनामा' में कुल ६९ पद्य हैं। इस दृष्टि से यह एक लघुकाय रचना है। इसका उद्देश्य विस्तृत कथा कहना नहीं, अपितु दशम गुरु गोविन्द सिंह और अज़ीमखां के बीच हुए युद्ध[1] का वर्णन करना है। यह युद्ध आनन्दपुर के समीप ही सतलुज नदी के तट पर हुआ था।

युद्ध का कारण यह बतलाया गया है कि दशम गुरु ने औरंगजेब को एक चुनौती-पूर्ण पत्र लिखा, जिससे औरंगज़ेब का कुपित होना स्वाभाविक ही था। पत्र की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

हुकम हुओ गोविन्द को उतरयो अवनी जाइ।
कुटल करम औरंग करै ताको देहु सजाइ ॥८॥
लिखे पठाए शाह पै छोडयो सकल समाज।
कछुक दिनन लग खालसा लहैं तखत औ ताज ॥१०॥

ऊपर उद्धृत दसवें दोहे मे खालसा द्वारा तख्त और ताज प्राप्त कर लेने का उल्लेख दर्शनीय है।

इस पत्र के प्राप्त होने पर औरंगजेब के दरवारी अब्दुल्लाखाँ ने चुगली की और सम्राट् को यह सलाह दी कि गुरु गोविन्द सिंह को देश से निकाल दिया जाए। औरंगज़ेब ने अज़ीमखाँ सरदार को आदेश भेजा कि वह मुलतान से सेना सजाकर दशम गुरु पर आक्रमण करे। सतलुज के तट पर दोनों सेनाएँ एक दूसरे के आमने-सामने डट गईं और भयंकर युद्ध हुआ। दशम गुरु की ओर से हिम्मत सिंह, दलेल सिंह, विचित्र सिह तथा मोहकम सिंह आदि सिक्ख सैनिक सरदार लड़े। कवि ने उनके शौर्य का ओजपूर्ण वर्णन किया है। अन्त में दशम गुरु और अज़ीमखाँ के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में दशम गुरु की विजय हुई—

तक तक मारन साऊआं, बहुते विचलाए।
खेत जिता स्री साहिबां, जग साके पाए।
बुरजां वांगू ढाहि कर, सभ गरद मिलए।
जन दूरों आए पाहुने, सुख नींद सुवाए ॥६८॥

---

१. इतिहास ग्रन्थ इस युद्ध की घटना के सम्बन्ध में मौन हैं। अणीराय दशम गुरु के समकालिक थे, अत: किसी काल्पनिक घटना का आश्रय लेकर 'जंगनामा' लिखने की उन्हें आवश्यकता न थी, जबकि खालसा सैनिकों की आस-पास के मुस्लिम जागीरदारों अथवा सूबेदारों से छोटी-मोटी भिड़न्त होती ही रहती थी। सम्भव है यह कोई छोटा युद्ध हो तथा मुगल बादशाह ने गुरु गोविन्द सिंह के दमन के लिए मुलतान से सेना भेजी हो। वस्तुत: 'जंगनामा' का युद्ध बड़े युद्ध का प्रारूप प्रतीत होता है

में दशम गुरु का वर्णन स्पष्ट रूप से अत्युक्तिपरक है। यह वर्णन रीतिकालीन वीररस के प्रख्यात कवि 'भूषण' के ऐसे ही वर्णनों से पर्याप्त समानता रखता है—

बान कपि ध्वज भीम भुजान, क्रिपान सु मानस को मरदाने।
मार के मीर अधीर किये, नित यौं डस्यैं कविराइ बखाने।
स्री गुरु गोबिन्द सिंह चढ़ै, अरि के सुन के हियरे घहिराने।
तेज के त्रास ते यौं तरफैं, थरके थिरिआ ज्यों पारद पाने ॥३॥

जीते जिन दच्छन बिचच्छन बनैत बांके,
नादर निपट अति आदर सिपाही को।
जाके त्रास बैरी बनवास उपहास लैत,
छाडि सुख आस उपहास जाही ताही को।
जोधा गुरु गोबिन्द उदार आयो 'राइ कवि',
गाहत न बार केई बार अवगाही को।
एक फौजैं फोर एक ओर एह जोर करैं,
तेरी तरवार है बिरंचि पादसाही को ॥४॥
पायो जैत पत्र सत्र पत्र जयौ पुराणे भए,
एक उड़ गए एक पवन उड़ात है।
चले सुख फूल सूल उठे उर अरिन के,
चाहत अरिन सों अरिन बिललात हैं।
पायो फल प्रगट प्रताप पातसाही को सु,
जोधा गुरु बिंदि रस कीरत चुचात है।
सूरन की लाज सुख पानप समाज आज,
तेरी तरवार रितुराज ज्यों बिख्यात है ॥५॥[1]

दशम गुरु का यह स्तुति एवं प्रशस्तिपरक वर्णन इस तथ्य का साक्षी है कि दशम गुरु की स्तुति ही उनके दरबारी कवियों द्वारा ईश्वर की स्तुति मान ली जाती थी। कथा-निरपेक्ष होते हुए भी इन पद्यों से दशम गुरु की चरित्र-सम्बन्धी विशेषताओं का उद्घाटन होता है।

'जंगनामा' एक लघुकाय काव्य है और इसमें नायक गुरु गोविन्द सिंह, प्रतिनायक अजीम खाँ तथा दोनों पक्षों के युद्धरत सभी सरदारों का विस्तृत चरित्र-चित्रण सम्भव नहीं था। अतः आवश्यकतानुसार अणीराय ने कुछ पंक्तियों अथवा विशिष्ट शब्दावलियों द्वारा ही उनके चरित्र का रेखांकन किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित उद्धरण देखे जा सकते हैं—

१. अणीराय, जंगनामा

१. गुरु गोविन्द सिंह

(क) चढ़ि चल्यो जु सिंह गुबिद………………॥२६॥

(ख) हिन्दूपति गुरु आप सिंह गोविन्द हैं।
जन मधवा चढ्यो गुराक सूर संग ब्रिंद हैं॥२७॥

(ग) तेग बली स्री गोविन्द सिह………………॥२६॥

(घ) गहि चडत कटक मैं भटक भट जहां गुरू बरछी बिमल॥४१॥

(ङ) रह्यो न तेह देह मैं, लुटे किते जु खेह मैं,
गुरु गोविन्द सिंह के छुटे जु तीर बीर सौं॥४७॥

(च) गुरु गोविन्द की लाज के काज, भजै न महारण मैं झुक झूमैं।
फूल के हारन मांग संधूर दै, हूर किती मिली पाइन चूमैं॥५०॥

(छ) स्री गोबिन्द सिंह जग मैं बली, सुकवि राइ पौरष प्रबल।
जहां मारि सु साहि अजीम को, तखत छत्र दिन दिन अटल॥५६॥

(ज) भारथ मच्यो तुव लोक मैं, गुरु देव खांडे सूर।
सिरताज सोढी सिंह गोविन्द, जगत साके पूर॥६०॥

(झ) कीनी फते स्री साहिबां, सतिगुरु गरीब निवाज।
सिरताज सोढी सिंह गोबिन्द, रह्यो जगमग छाज॥६१॥

(ञ) अग्गे गुरु गोबिन्द सिंह, बल भीम समान॥६५॥

(ट) तक तक मारन साऊआं, बहुते बिचलाए।
खेत जिता स्री साहिबां, जग साके पाए।
बुरजां वांगू ढाहि कर, सभ गरद मिलाए।
जन दूरों आए पाहुने, सुख नींद सुवाए॥६८॥

(ठ) मौज दरिद्र बिदारिआ………………॥६६॥

ऊपर उद्धृत पंक्तियों के आधार पर नायक गुरु गोविन्द सिंह का भव्य चित्र सामने आता है। वे भीम के समान शक्तिशाली हैं और अर्जुन के समान धनुर्धारी। कितने ही अमीरों (सरदारों) और सेना-नायकों को उन्होंने मारा है, उनके शौर्य को सुनकर शत्रुओं का हृदय दहल उठता है। उनके भय से शत्रु वनवास ले लेते हैं। वे शूरों की लाज हैं और उनकी तलवार वसंत का प्रतीक है। वे हिन्दू जाति के स्वामी और नेता हैं। अतः सच्चे अर्थों में हिन्दूपति हैं और इस धरा पर इन्द्र के समान रक्षक हैं। जब गुरु गोविन्द सिंह के तीर छूटते हैं तो शत्रु सैनिक धूल में मिल जाते हैं। वे उच्चकोटि के सेनापति भी हैं और गुरु भी। उनके प्रति असीम आदर-भाव के कारण ही उनके सैनिक महारण से न तो पलायन करते हैं और न शत्रु के आगे झुकते हैं। वे संसार में प्रबल पौरुष के धनी हैं।

वे सच्चे गुरु, गरीब-निवाज और मुकुटधारी हैं। वे जिस उत्साह से रणक्षेत्र में

साका स्थापित करते हैं उसी उत्साह से अतिथि-सत्कार भी करते हैं। शत्रु-अतिथि को वे रणभूमि में सुख की नींद सुला देते हैं तो दूरागत मित्र-अतिथि को सुख-शय्या प्रदान करते हैं। वे केवल युद्ध-वीर ही नहीं है, दान-वीर भी हैं और जब मौज में आते हैं तो याचक की दरिद्रता भी दूर कर देते हैं।

दशम गुरु का जो चरित्र ऊपर की पंक्तियों में अणीराय ने चित्रित किया है वह केवल इस कारण ही नहीं कि वे इस काव्य के नायक है, अपितु सचमुच ही उनमें उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान थे। अत: इन वर्णनों को अत्युक्तिपूर्ण मानने का कोई कारण नहीं है। अत्युक्तिपूर्ण मंगलाचरण केवल कवि की श्रद्धा-भावना की अभिव्यक्ति मात्र है। मूल काव्यांश के वर्णन में अणीराय ने कवि के उस दायित्व को पूर्णरूप से निभाया है, जिसके आधार पर कोई कवि ऐतिहासिक चरित्र को यथार्थ के सूत्रों से बाँधे रखता है।

२. अज़ीमखाँ

नायक के शौर्य में निखार लाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिनायक भी शूर-वीर हो। प्रतिनायक जितना ही वीर होता है, उस पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त नायक के गौरव में उतनी ही अधिक वृद्धि होती है। अणीराय ने अज़ीमखाँ को भी एक उच्चकोटि के प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है—

(क) कूच कियो अज़ीम, सरजै भान मैं।
डर डुले दिगपाल, चाल असमान मैं ॥२०॥
(ख) लरत अज़ीम जहाँ गुरु ललकार्यो आई ॥४४॥
(ग) तिमर बंस को ओप चढ़ावैं। जाको करता देह सु पावैं ॥५२॥
(घ) हाथी साथी छाड कै, साथ न छाड्यो टेव ॥५४॥[1]

अज़ीमखाँ औरंगजेब का एक उत्तम सेनापति था। जब उसने चतुरंगिणी सजाकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया तो सारे दिक्पाल डर से काँप उठे। अज़ीमखाँ जब आक्रमण करता था तो हाथी भी पीछे पाँव हटा लेते थे, पौरुष भी उसके सामने हार मानने लगता था। उसकी युद्ध-निपुणता को देखकर स्वयं दशम गुरु भी ललक से उसके सामने आए। वह अपने युद्ध कौशल से तैमूर वंश को आभा-सम्पन्न बना रहा था। उसके हाथी और साथी भले ही साथ छोड़ दें, वह स्वयं युद्ध से विमुख होने वाला नहीं था।

अज़ीमखाँ के इस शौर्य-वर्णन से यह स्पष्ट है कि अणीराय ने प्रतिनायक के युद्ध-कौशल का समुचित आदर किया है और दशम गुरु के उपयुक्त प्रतिनायक के रूप में उसे प्रस्तुत किया है।

३. अन्य सरदार

(क) उत खानी का सब जग जानै, लुतफुल्लाखाँ संक न मानैं ॥२८॥

---

१. अणीराय, जंगनामा

(ख) अउ……………………फजल अलीखाँ सरस सिपाही ॥२८॥
(ग) नबी कुलीखाँ नहि मुख मोड़े………………॥२८॥
(घ) ………………खां मिहरमंत सार झकोरे ॥२८॥
(ङ) कियो पैज गाढ़ी जहांदार आयो ॥५७॥

अणीराय ने अज़ीमखाँ के इन पाँच सेनानायकों का सांकेतिक चरित्र-चित्रण किया है। लुतफुल्लाखाँ युद्ध में निडर है, फज़लअलीखाँ सरस सिपाही है, नवी कुलीखाँ युद्ध से कभी मुंह नहीं मोड़ता है औरमिहरमत तो शस्त्रो के झकोरे सहने मे निपुण है तथा जहांदार विजय के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है।

इनके अतिरिक्त दशम गुरु के चार सैनिक सरदारों का भी साकेतिक चित्रण हुआ है—

(क) हिम्मत सिह, दलेल सिह, गुर आज्ञाकारी।
मारी तेग मतंग सिर, ढाही अंबारी ॥३६॥
(ख) आगे लड़त बचित्र सिंह … … … … ॥३७॥
(ग) मुहकम सिंह जू को मुख न मुरत है ॥३६॥[1]

हिम्मत सिह और दलेलसिह गुरु के आज्ञाकारी वीर सैनिक है, जो हाथियों के सिर काटकर ढेर लगा देते हैं। विचित्र सिह युद्ध में सबसे आगे बढ़ता है। मुहकम सिंह तो अनेक सैनिकों को रणक्षेत्र में सुला देता है, परन्तु स्वयं युद्ध से अपना मुख नही मोड़ता। इस छोटे-से काव्य में नायक, प्रतिनायक तथा नायक के चार सरदारों और प्रतिनायक के पाँच सरदारो का व्यापक चरित्र-चित्रण सम्भव भी नही था। यही कारण है कि कवि ने ने सक्षिप्तता या सांकेतिक-पद्धति का अवलम्बन किया है।

सैन्य-सज्जा एवं युद्ध-वर्णन

रासो काव्यों की यह विशेषता दिखाई पड़ती है कि उनमें युद्ध-वर्णन के पूर्व सैन्य-सज्जा का भी विस्तृत रूप में वर्णन किया जाता है। 'पृथ्वीराज रासो' इसका उदाहरण है।[2] अणीराय ने इस वीर-काव्य-परम्परा का ही अनुसरण किया है।

अणीराय सर्वप्रथम अजीमखाँ की सेना के प्रस्थान और दिक्पालों के विचलित होने का वर्णन करते हैं।[3] इसके पश्चात् कवि ने अजीमखाँ की चतुरंगिणी सेना के तीर, तोप, गोला, गुरज, बरछी और बरबान आदि शस्त्रों का उल्लेख किया है।[4] तदनन्तर

---

१. अणीराय, जगनामा
२. पृथ्वीराज रासो (पद्मावती समयो का युद्ध-वर्णन)
३. कूच कियो अजीम, सरजै मान मैं,
डर डुल्ले दिगपाल, चाल असमान मैं ॥२०॥
४. अणीराय, जंगनामा, छंद-संख्या २१

मुगल सेना के घटा के समान छाने वाले हाथियों[1] तथा विविध जाति के घोड़ों का बड़ी तन्मयता के साथ वर्णन किया गया है।[2] गुरु गोविन्दसिह की सेना के वर्णन मे भी अणीराय ने हाथियों और घोड़ों का विशेष तन्मयता से विवरण प्रस्तुत किया है।[3]

डॉ० हरिभजन सिह ने लिखा है कि—"हिन्दुत्व के प्रति आग्रह के कारण ही कवि ने मुगल सेना के सहकारी हिन्दू राजाओं के योग के विषय में कुछ नहीं लिखा। इतिहासकार में यह चूक अक्षम्य मानी जानी चाहिए।" अणीराय का 'जंगनामा' अत्यन्त

---

१. आप घटा अंकुश घटा बग दन्तन की पांति,
मद पानी बानी गरज्ज, घन गज एकै भांति ॥२४॥

२. तीखे तुरंग अभंग सुन्दर अग-अंग अनूप जे।
अरबी इराकी कच्छ बलखी सजे सुन्दर रूप जे।
काबली कंधारी बेस तुरकी तेज ताजी बाज ने।
खुरसान रूम फिरंग सिंधी, पीपरे दल गरजने।
नीले हरे संजाब अबरस बोझ मंगसी मन हरै।
संदली अबलक ए सीराजी, अगरबा पर दल तरैं।
नीले सुरख पीले सितासित, पछकलिआन सबे सजै।
सिरगे समुन्द चलाक चौधर, देख सुरपति के लजै।
कपूर रोझे काक हसले, फूलवारी से फुलै।
पाराबते रजते सुरगे, थाप बानन ते खुलै।
सुरमई सूरे किलक कजरे, मिसत करबुर अत बली।
खुरखुद रविरज रुंद धावत, कोप कटक चला चली।
जगमगत जीन जराउ पट्टे, पेशबंद बनाउ के।
पहरे सनाहु बनाइ पाखर, चक्रवे चक चाहु के ॥२५॥

३. चढ़ि चल्यो जु सिंह गुबिंद, सग सैना प्रबल।
जन पच्छम घनघोर उठयो पावस प्रबल।
मत मतंग उतग धुजा फरहरहिं इव।
धुरवा धावत लिए इन्द्र को धनुर सिव।
फिर धुरवा सेंधर धाए धीरज धराधर।
कोर बांध गिर जाए कीने बराबर।
बगपंत दंत दरसाए, बादल मेह के।
चुए गंड मद पानी भारी देह के।
छाए मेघ जु डंबर अंबर से सरस।
भई धुंद रज रुंद, सूर झाप्यो दरस।
... ...
कज्जल गिर से बरणों बरण बनाइ बर।
मारैं सुंड फुंकार जु पारावारि पर ॥
... ...
जीन जराउ बनाई तुरंगम कोर के।
चपल भास म्रिग मीन, भान रथ जोर के।
चचल चपल चलाक, छबीले सोहने।
देत बात को बाजी बाजी रोहने।
उठे जात नभ गौन, भीर भट कौन की।
नेक सुबागें लेहिं बागें पौन की।
सात दीप कर भौरी, फिरकी से फिरैं ॥२७॥

४. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ५११

छोटा काव्य है, अतः अज़ीमखाँ की मुख्य सेना के पराक्रम-चित्रण के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय के साथ ही वे छोटे-छोटे हिन्दू राजाओं की सहायक सेनाओं का वर्णन क्यों करते ? इसलिए यह आपत्ति करना कि उन्होंने अज़ीमखाँ की सेनाओं के साथ हिन्दू राजाओं का उल्लेख क्यों नहीं किया है, काव्य के संक्षिप्त कलेवर को देखते हुए उचित नहीं प्रतीत होता। अणीराय ने निम्नलिखित पंक्तियों में इसका स्पष्ट संकेत कर दिया है—

सयद मुगल पठान, सेख राजे लरे ।
एक एक ते सरस पलट पग ना धरे ।।३४।।

यहाँ सैयद, मुगल, पठान और शेख के साथ अज़ीम की सेना में लड़ने वाले राजे भी थे। इन पंक्तियों की ओर ध्यान न जाने के कारण ही सम्भवतः अणीराय पर भूल का आरोप लगाया गया है।

अणीराय ने सैनिकों की भिड़ंत का वर्णन विशेष तन्मयता से किया है। युद्ध में भिड़ंत का वर्णन यथार्थ तो है ही, ऐसा प्रतीत होता है कि अणीराय उसके प्रत्यक्षदर्शी भी थे। प्रमुख योद्धाओं के व्यक्तिगत शौर्य-वर्णन के साथ-साथ उन्होंने रणक्षेत्र का भी यथार्थ दृश्य प्रस्तुत किया है। दोनों सेनाओं की दुर्धर्षता, स्वामी-भक्ति, अनुशासन और शौर्य का समान रूप से वर्णन किया गया है—

फौजैं बाँधि घटा तावे, छटा चमकत असि,
गरजत गोला गाडे लागी झरी भोर तैं।
बरखत बान, अवसान भूल जात जहाँ,
बाजत निसान घनघोर चहूं ओर तैं।
मघवा धनुष धर धरै बीर रण माझ,
काइर करप्पांने तहाँ सार की झकोर तै ।
पेलैं पील बानन धंकेले दै दै गजराज,
मेरे जाने धुरवा सो छुटै चहू कोर तैं ।।४२।।
... ...
मची मार भारी दुहूं ओर ऐसी।
भई भीर कुरखेत के खेत जैसी।
छुटे तोप बंदूक घुरं नाल गोला।
परे ऊख के पूख मैं बज्र ओला।
चलैं तान कमान सों तीर तिक्खे।
मनो भूमि भारत्थ पारत्थ पिक्खे।
किते बान कुहकंत भुवकंत आवैं।
उड़ैं आग ज्यों, लाग ज्यों नाग धावै।

कई बीर रन माँहि कर खग्ग झारै।
कटैं सीस लै ईस समला सवारै।
हने हाथ नेजा गहै दीघ चौधी।
लगे सतरु के अंग ज्यों बज्र कौधी।
करै घाउ पर घाउ खपूआ कटारैं।
मिले अंक जिन संक ज्यो परे प्यारै।
गिरै लुत्थ पर लुत्थ बहु जुत्थ ऐसे।
परे ताल के पाल बहु मग्र जैसे।
किते नीर बिन मीन ज्यो तरफरावैं।
किते लोह के छोह पर मोह धावै।
कई गिरै रन माहि कई छोड़ भागैं।
कई घोर घाइल कई घूम जागैं।
कहाँ ओर ते नाम संख्या बखानौ।
लिखे जात थोरे कई नाहि जानौ ॥५८॥

युद्ध-वर्णन के लिए कवित्तों का उपयोग रीतिकाल में प्रचुर मात्रा मे होता था, किन्तु भुजंगप्रयात छंद का उपयोग पूर्ववर्ती काव्य 'पृथ्वीराज रासो' मे अधिक किया गया है।[1] चंद ने उनतीसवें समयो मे युद्ध-वर्णन के लिए कवित्त का भी प्रयोग किया है। यह कवित्त रीतिकाल का कवित्त नही, अपितु छप्पय है।[2] वास्तविक सघर्ष का वर्णन उन्होंने भी भुजंगप्रयात अथवा भुजंगी छन्द में ही किया है। अणीराय ने भी अपने युद्ध-वर्णन में रासो-परम्परा का ही अनुसरण किया है।

युद्ध-वर्णन में ध्वनि और गति उत्पन्न करने के लिए अनुप्रास और अनुरणनात्मक शब्दों का भी उपयोग अणीराय ने प्रचुर मात्रा मे किया है—

रद फुट्टे बारहि, तलातल त्रिड तुड़ग।
धौल धराधर कंपये, कूरम किड़ मुडग ॥२६॥
दारू भबूका बान छूटे, गरज गोला तोप।
धर लुट्ट टुट्ट संजोह बकतर, जुट्ट जिरहा टोप ॥६१॥
जुट्टे दुहूं मुकाबले, बिज्जू झरलाने।
वाहण मुणसां घोड़िआं, घाइल घुम्माने ॥६६॥

अलंकार-प्रयोग

अणीराय ने 'जंगनामा' में सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग किया है।

---

१. पृथ्वीराज रासो, समयो २०,८६-६३
२. वही, समयो २६,२३-३० (पृथ्वीराज रासो में छप्पय को भी कवित्त ही कहा गया है।)

सादृश्य के लिए उन्होंने कहीं तो पौराणिक पात्रों को उपमान बनाया है और कहीं प्रकृति के उपकरणों को—

लुप्तोपमा

बान कपि ध्वज भीम भुजान ॥३॥

उदाहरण

तेज के त्रास ते यौं तरफै, थरके थिरिआ ज्यों पारद पाने ॥३॥

उपमा

तेरी तरवार रितुराज ज्यों बिख्यात है ॥५॥

रूपकानुप्राणित दीपक

आप घटा अंकुश छटा, बग दतन की पांति ।
मद पानी बानी गरज्ज, घन गज एकै भांति ॥२४॥

उत्प्रेक्षा

अंकस जडत जडाउ दिपैं तह अत भला ।
जन घटा छटा आकास जु चमकैं चचला ॥२६॥
मारी तेग मतंग सिर, ढाही अंबारी ।
मानो पावस बीजली, गिरि परी करारी ॥३६॥

अणीराय के अलंकार सहज और स्वाभाविक है। न तो उन्होंने क्लिष्ट कल्पना का आश्रय लिया है, न कहीं शब्दाडम्बर की सहायता ली है। रूढ़ उपमानों की अपेक्षा इन्होंने प्राकृतिक दृश्यों से स्वानुभूत उपमानों को अधिक ग्रहण किया है। यथा-सिंदूर से रचे हुए हाथियों के सूड की समता संध्या की लालिमा से युक्त गिरिराज से की गई है (२६), तरकश से निकल कर नुकीले तीर शत्रु पर इस प्रकार पड़ते हैं मानो कपोत-शिशु मुख खोलकर चारा मांग रहे हों (४६), युद्धभूमि मे शव पर शव ऐसे पड़े हुए हैं जैसे ताल के किनारे मगर पड़े हों (५८)।

अतिशयोक्ति और अत्युक्ति का प्रयोग भी अणीराय ने किया है, किन्तु ऐसे स्थल कम हैं। चंचल तुरंगों का वर्णन करते हुए वे अतिशयोक्ति का उपयोग करते हैं—

नेक सु बागें लेहि बागें पौन की।
सात दीप कर भौरी, फिरकी से फिरैं।
बैंनतेय तरु दुरत, दौर मन ते परैं।
कच्छी स्वच्छ सुजात परेवा पौन है ॥२७॥

अत्युक्ति का प्रयोग दशम गुरु के शौर्य-वर्णन में ही किया गया है—

अचल चलत नग हलत, कमठ कलमलत सकल तन।
गुन गावत गवरेस सेस कवितेस सहस फन।

हरी अनल दलन दल तहा कहि हिलत चहूं ओरन।
मिटै मवास बिलास ताकत गिरि खोरन।

चकवै चित्र चमकत-चकितु सुकत धाइ पर भुवन बल।
गहि चडत कटक भै भटक भट जहाँ गुरू बरछी विमल ॥४१॥

छन्द-प्रयोग

'जंगनामा' मे कुल ६६ पद्य है। इनमें २२ दोहरा अथवा दोहा छन्द हैं, ८ सवैया छन्द है, इसके अतिरिक्त १ छन्द इंदव नाम से प्रयुक्त हुआ है जो सवैया ही है तथा ८ मनहर कवित्त, २ सोरठा और पाँच छप्पय है।

यद्यपि छन्द-शास्त्र के नियमानुसार चार चरणों का ही एक छन्द माना जाता है, किन्तु 'जंगनामा' मे छन्दो के चरणों की संख्या अंकित करते हुए इस बात का ध्यान नहीं रखा गया है। यह प्रतिलिपिकार की भूल नहीं है, अपितु स्वयं कवि अणीराय ने छन्दों का प्रयोग करते हुए उसके शास्त्रीय लक्षणों की अपेक्षा वर्ण्य-विषय की ओर अधिक ध्यान दिया है। जहाँ वर्ण्य-विषय पूरा हुआ है, वहीं उन्होंने छन्दों में परिवर्तन कर दिया है, भले ही उक्त छन्दो के चरण छन्दशास्त्रीय दृष्टि से पूरे हुए हों या न हुए हों। उदाहरण के लिए भुजंगप्रयात के नाम से केवल तीन ही छन्द सख्या दी हुई है, जिनमे एक दस चरण का, दूसरा चौदह का और तीसरा बाईस चरण का है। इसी प्रकार पौड़ी नाम से प्रयुक्त छन्दो में चार चरणों का एक, छः चरणों के छः, आठ चरणों के तीन, दस चरणों का एक और बारह चरणो का एक—कुल बारह छन्द प्रयुक्त हुए है।

गीआ छन्द के नाम से चौदह चरणों का एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है। यह हरिगीतिका छन्दहै। रास नाम से चौबीस चरणो का एक और सोलह चरणों का एक—कुल दो छन्द प्रयुक्त हुए है। यही स्थिति चौपई छन्द की भी है। इसके कुल दो छन्द प्रयुक्त हुए हैं; जिनमें से एक दस अर्धालियो का और दूसरा छः अर्धालियों का है। तोटक नाम से केवल एक छन्द प्रयुक्त हुआ है, जो आठ चरणों का है। अडिल नाम से दो छन्द हैं, जिनमें एक चार चरणों का और दूसरा आठ चरणों का है।

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि छन्द-प्रयोग मे कवि ने स्वतन्त्र रुचि का परिचय दिया है और वर्ण्य-विषय की अनुकूलता का अधिक ध्यान रखा है। सैन्य-सज्जा में भुजंग-प्रयात, गीतिका और रास छन्द का उपयोग हुआ है, जबकि युद्ध-वर्णन में चौपई, कवित्त अडिल (अरिल्ल), पौड़ी और सवैया का उपयोग किया गया है। छप्पय का उपयोग केवल अत्युक्तिपरक वर्णनों ही मे किया गया है। इससे छन्दों के प्रयोग पर कवि का स्पष्ट अधिकार प्रतीत होता है।

तोटक और भुजंगप्रयात वार्णिक छन्द है, जबकि दोहा, सोरठा, मनहर आदि मात्रिक। छप्पय, रोला और उल्लाला के योग से मिश्र छन्द माना जाता है। इस प्रकार अणीराय त्रिविध छन्द-प्रयोग में निपुण दिखाई पड़ते हैं।

पौड़ी छन्द सामान्यत: पंजाबी मे 'वार' और 'जंगनामा' के लिखने में अधिक प्रयुक्त हुआ है। शमशेर सिंह 'अशोक' का कहना है कि "जब कभी वार के प्रसिद्ध छन्द—वार छन्द, पौड़ी छन्द अथवा निशानी छन्द का प्रयोग इन कवियों द्वारा हुआ, भाषा पंजाबी हो गई।"[1] यद्यपि अणीराय अपने 'जंगनामा' में पौड़ी छन्द का प्रयोग करते हुए अत्यन्त सतर्क रहे हैं फिर भी पजाबी प्रभाव कुछ पौड़ी छन्दो में आ ही गया है। निम्नलिखित उद्धरण पौड़ी छन्द के इन पंजाबी से प्रभावित तथा अप्रभावित रूपों का स्पष्ट निदर्शन प्रस्तुत करते हैं—

(क) हिम्मत सिह दलेल सिह, गुर आग्याकारी।
मारी तेग मतंग सिर, ढाही अंबारी।
मानो पावस बीजली, गिरि परी करारी।
लंकावास जु पौन पूत, डारी अट्टारी ॥३६॥

(ख) खोहन बाल चुडैलीआं, महिलीं कुरलाण।
ढूडे हत्थ न आंउदे, रण रुडे पठान ॥६५॥

(ग) मुंड मुंडकन मेदनी, एही नेसाने।
जण माली सिटे बाड़ीआं, खरबूजे काने ॥६६॥

(घ) पैगामां ते काणीआ, सोहन सूफाले।
लग्गण मुवसां पाखरां, छड जाहि निरोले॥६७॥

पौड़ी छन्द हिन्दी के लिए सर्वथा अपरिचित छन्द नहीं है। यह एक ही प्रकार का छन्द भी नहीं है। अणीराय के 'जंगनामा' में पौड़ी नाम से चार प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। १०+१० मात्राओं का छन्द भी इसमे प्रयुक्त हुआ है जो प्लवगम और चंद्रायण छन्दों के योग से बना है। छन्दशास्त्र में इसे तिलोकी छन्द कहा गया है।[2] १३+६ मात्राओं का छन्द राधिका है।[3] १३+१० मात्राओं का छन्द उपमान है[4] और १६+१० मात्राओं का छन्द कामरूप है।[5] इस प्रकार पौड़ी छन्द में बीस से लेकर छब्बीस तक की मात्राएँ दो चरणों में प्रयुक्त हुई हैं और यह अर्धसम छन्द है। वर्णन के प्रवाह के साथ जिस छन्द का प्रयोग कवि को उपयुक्त जँचा उसने उसे अपना लिया और इन छन्दों का एक ही नाम 'पौड़ी' दे दिया।

---

१. शमशेरसिंह अशोक, प्राचीन जंगनामे, पृ० २४
२. जगन्नाथ प्रसाद भानु, छन्द प्रभाकर, पृ० ५५-५६
३. वही, पृ० ५८
४. वही, पृ० ५६
५. वही, पृ० ६५

इस प्रकार कवि ने दोहरा, सवैया, कवित्त, सोरठा, छप्पय, भुजंगप्रयात, पौड़ी, गीआ, रास, चौपई, तोटक तथा अडिल नाम से ६६ पद्यों के इस लघुकाय काव्य में बारह[1] प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है, जो वर्णिक, मात्रिक, सम, अर्धसम एवं मिश्रित छन्दों के रूप में सामने आते हैं।

रस-प्रयोग

'जंगनामा' एकार्थ काव्य है और उसका मुख्य उद्देश्य युद्ध-वर्णन है। अतः यह स्वाभाविक है कि इसमें एकमात्र रस वीर ही हो। वीर रस के सहायक रस—भयानक, रौद्र और वीभत्स होते हैं, किन्तु कवि ने वीर रस के परिपाक के लिए इनकी व्यंजना अधिक नहीं की है। काव्य के नायक दशम गुरु गोविन्द सिंह हैं और प्रतिनायक अज़ीमखाँ। युद्ध का कारण औरंगज़ेब की अनीति है जिसने दशम गुरु को बाध्य किया कि वे औरंगज़ेब को पत्र लिखें। औरंगज़ेब ने अजीमखाँ को आक्रमण करने के लिए भेजा। सैन्य-सज्जा के वर्णन (छन्द २३—२७) में वीरों का उत्साह दिखाई पड़ता है। दशम गुरु के उत्साह का वर्णन उनतीसवें छन्द में किया गया है—

'तेगबली स्री गोविन्द सिह, चढ़े रण को मन को जु हुलासा ॥ २६ ॥

अजीमखाँ के क्रोध का वर्णन (छन्द ३१), कायरों के काँपने और भागने का वर्णन (छन्द ४२, ४५) तथा जोगिनियों के प्रस्तुत होने आदि का वर्णन (छन्द ६१) में हुआ है। युद्ध के वास्तविक दृश्य-वर्णन और वीर रस को पूर्ण परिपाक की अवस्था तक पहुँचाने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है—

दारू भबूका बान छूटे, गरज गोला तोप।
धर लुट्ट टुट्ट संजोह बकतर, जुट्ट जिरहा टोप।
इक घाइ घूमैं देखि झूमैं, इक छोडैं प्रान।
जिह बीर नच्चै, रुधर रचैं, मचो कीचक खान।
सर सिल सुहल खिलार खिले इक्क मल्लैं खग्ग।
गावत मंगल जोगणी जस रह्यो जगमग जग।
बरसंत केसर क्रुसम सुन्दर, बरत हैं बर हूर।
गौरी गनेश महेश आए, डवर सबद अपूर।
कीनी फते स्री साहिबां, सतिगुरु गरीब निवाज।
सिरताज सोढी सिह गोविन्द, रह्यो जगमग छाज ॥६१॥

घटना-वर्णन की प्रमुखता के कारण अनुभावों और संचारी भावों की प्रचुर अभिव्यक्ति नहीं हो पाई है। आलम्बन, उद्दीपन और स्थायी भाव ही वर्णन के मुख्य आधार रहे है। युद्ध के कारणों का निर्देश करके कवि ने रस परिपाक को एक क्रमबद्धता प्रदान की है।

---

१. उदाहरणार्थ द्रष्टव्यः क्रमशः दोहरा से अडिल—पद्य-सख्या २,३,४,११,१८,२०,२३,२५,२६ २८,३२,३३

पौड़ी छन्द में प्रयुक्त अन्तिम छः छन्दों को छोड़कर सर्वत्र अत्यन्त सरल और परिमार्जित प्रसाद-गुण-सम्पन्न ब्रजभाषा का उपयोग किया गया है। ऊपर उद्धृत किए गये ६१ वें और पंजाबी से प्रभावित पौड़ी छन्दों के अतिरिक्त संयुक्ताक्षरों का प्रयोग नहीं हुआ। इससे 'जंगनामा' की ब्रजभाषा के स्वरूप के अमिश्रित रहने में सहायता मिली है। क्लिष्ट भाषा, शब्दाडम्बर और शब्द-चित्रों के प्रयोग से कवि ने बचने का प्रयास किया है। यही कारण है कि अनुप्रासमयी भाषा होते हुए भी यमक और श्लेष का प्रयोग नही हुआ है। अणीराय का 'जंगनामा' हिन्दी-साहित्य की वह प्रथम रचना है जिसमे फारसी के नाम और रासो-परम्परा की वर्णन-शैली का सफल एवं मंजुल समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

(२) गुरु शोभा

कवि सेनापति, दशम गुरु गोविन्द सिह के ऐसे भक्त और दरबारी कवि थे, जिन्होने सर्वप्रथम उनके जीवन की अनेक घटनाओं का यथार्थ, क्रमिक एव ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया है। 'गुरु शोभा' की रचना का आरम्भ संवत् १७५८[१] वि० में हुआ था और दशम गुरु की निर्वाण-तिथि संवत् १७६५[२] कार्तिक सुदी पंचमी के उपरान्त किसी समय इसकी समाप्ति हुई थी। यह रचना बीस अध्यायों में विभक्त है और अनेक घटनाओं के वर्णन के कारण अपने आकार-प्रकार में महाकाव्यवत् प्रतीत होती है। किन्तु इसे महाकाव्य न कहकर प्रवन्ध-काव्य कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें न तो महाकाव्य के लिए अपेक्षित वर्णन-विस्तार है, न उसके लिए शास्त्रीय ग्रन्थों में निर्दिष्ट वर्णन-वैविध्य। इसका उद्देश्य मुख्य रूप से दशम गुरु की प्रशस्ति प्रस्तुत करना ही रहा है। किन्तु तथ्य यह है कि दशम गुरु के महान् व्यक्तित्व में सन्त और योद्धा के विरल गुणों के सामंजस्य के कारण 'गुरु शोभा' में प्रस्तुत उनकी प्रशस्ति अतिशयोक्तिपूर्ण न होकर वास्तविकता पर आधारित है।

सामान्यतः कवि का उद्देश्य इस रचना द्वारा गुरु की शोभा या शौर्य-श्री प्रस्तुत करना ही रहा है। अतः उसने उन ऐतिहासिक घटनाओं की उपेक्षा की है, जिनसे उसके नायक के शोभा-सम्पन्न व्यक्तित्व के फीका पड़ने की सम्भावना थी। यदि इस तथ्य को ध्यान में रखा जाए तो उसने 'गुरु शोभा' में उन्हीं घटनाओं को प्रश्रय दिया है जो ऐतिहासिक होने के साथ-साथ चरित नायक के शौर्य की अभिव्यंजना करती हैं। इसमें दी हुई घटनाएँ और काल-निर्देश पूर्णतः इतिहास-सिद्ध हैं और केवल चरितनायक की पराजयों के वर्णनों को छोड़ देने से इसका ऐतिहासिक मूल्य कम नहीं होता।

कथावस्तु

जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है कि 'गुरु शोभा' बीस अध्यायों में विभक्त

---

१. संवत् सत्रह सौ भए बरख अठावन बीत।
भादव सुद पंद्रस भई रचि कथा करि प्रीत ।१६

—गुरुशोभा।

२. संवत् सत्रह सै भए पैंसठ बरख प्रमान।
कातक सुद भई पंचमी निसकारन करि जान ।१८।३७।८०४

—गुरुशोभा।

एक चरितात्मक प्रबन्ध काव्य है। कवि सेनापति ने प्रत्येक अध्याय की घटना को विशिष्ट संकेतों द्वारा जोड़ने का प्रयास किया है।

कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में '१ ओंकार श्री वाहिगुरु जी की फते' देकर मंगलाचरण की पूर्ति कर ली है। प्रथम अध्याय में उसने ग्रन्थ-रचना के कारण का निर्देश करते हुए यह स्पष्ट किया है कि उसका उद्देश्य गुरु-कथा[1] प्रस्तुत करना है। उसने स्वयं ग्रन्थ का नामकरण 'गुरुशोभा' किया है। गुरु का विशेष स्तवन करते हुए सन्त-परम्परा के अनुसार ही उसने कहा है—'अब सतिगुर के नाम बखानो। परम पुरुष तिह ते पहचानो'। (१।१२) इसके वाद उसने नौ गुरुओं का विवरण प्रस्तुत किया है और दशम गुरु गोविन्द सिंह का उल्लेख करते हुए, उन्हें 'दुसट बिडारण सन्त उबारण। सब जग तारण भव हरणं' (१७) कहा है। उसने यह भी निर्देश किया है कि विधाता ने दशम गुरु को जन-समुदाय को सुमति देने के लिए एक पन्थ चलाने का आदेश दिया। गर्वीले लोगों के विनाश के लिए विष्णु ने कितने ही अवतार धारण किए। इस संसार में अनेक पक्ष हैं, अनेक वेश हैं, विधाता ने स्वयं दशम गुरु से कहा—

तुझै जो बनाइआ। सु एही उपाइआ।
करउ पंथ मेरा। धरम काज केरा।१।३०
कीए बाक भारे। भए जुध सारे।१।३२

कितने ही प्राणी दशम गुरु की शरण में आए और उनके खालसा पंथ के अनुयायी बने।

द्वितीय अध्याय के आरम्भ में कवि ने 'प्रभ-पुरुषो' के चरित्रों की महत्ता पर विचार किया है तथा इन अगम पुरुषो की कथा को अगम बतलाया है। तदनन्तर दशम गुरु को ही गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादर तक का अवतार कहा है और उन्हें ससार का उद्धारक माना है—

दसवाँ पातसाहि तुही गुरु गोविन्द सिह।
जगत के उधारिबे को आयो प्रभ तुही है।२।५।४६[2]

इसके वाद कथा का आरम्भ पाँवटे में फतहशाह के साथ हुए भंगाणी युद्ध से होता है। इस युद्ध में दशम गुरु ने स्वयं भाग लिया था। अतः कवि ने दशम गुरु और उनके सैनिकों—जयमल, माहुरीचन्द, गंगाराम, लालचन्द, दयाराम, नन्दचन्द, साहिबचन्द तथा हरिचन्द आदि के पराक्रम का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है। फतहशाह के युद्ध-भूमि से भागने तथा खान हयात, निजाबतखाँ एवं भीषमखाँ तथा अन्य अनेक शत्रु

१. रचो ग्रन्थ तुमरी कथा।१।४
२. यहाँ प्रथम संख्या २ द्वितीय अध्याय की बोधक है, संख्या ५ द्वितीय अध्याय की छंद संख्या है तथा सख्या ४६ आरम्भ से लेकर इस छंद तक की संख्या।

सैनिकों के मारे जाने का भी विवरण कवि ने दिया है। इस युद्ध में दशम गुरु का वीर सेनापति संगोशाह, जिसे उन्होंने 'शाह संग्राम' नाम से सबोधित किया है, वीर गति को प्राप्त हुआ। विजय प्राप्त करने के उपरान्त दशम गुरु ने आनन्दपुर मे आकर विश्राम किया।

तृतीय अध्याय में भीमचन्द कहलूरिया तथा उनके सहयोगी पहाड़ी राजाओं की सहायतार्थ अलफखाँ के साथ हुए नादौन (नन्दवण) युद्ध की घटना वर्णित है।

चतुर्थ अध्याय में खान दिलावर के फौज सजाकर आने का और बखा गाँव को उजाड़ कर गुरु के भय से भाग जाने का तथा खानजादे हुसैनी के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में शत्रु सेना का मार्ग अवरुद्ध करने वाले हरि सिंह और संगत सिह आदि खालसा सैनिकों के वीरगति प्राप्त करने का उल्लेख है।

पंचम अध्याय में गुरु गोविन्द सिंह द्वारा बैसाखी पर्व के अवसर पर आनन्दपुर में अपने शिष्यों का एक विशाल सम्मेलन बुलाने और खालसा की स्थापना तथा मसन्द-प्रथा को समाप्त करने का विवरण प्रस्तुत किया गया है। सेनापति ने खालसा के लक्ष्य का यहाँ मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है—

कल मै करनहार निरंकार कला धार,
जगत के उधारबे गोविन्द सिंह आयो है।
असुर सिंहारबे को दुरजन के मारबे को,
संकट निवारबे को खालसा बनायो है।
निंदक को निद दई सिख दई सिखन को,
ताके महातम ते रैन दिवस धिआयो है।
खालसे के सिखन की निंदकु जो निंद करै,
जानि बूझि नरक परै ऐसो बतायो है ।।५।१४।१३०

इसी अध्याय में खालसा के कुछ आवश्यक कर्त्तव्यों, जैसे—हुक्के का त्याग, इच्छा-भोजन तथा भदर (सिर-मुण्डन) का त्याग, गुरु की भेंट के लिए दशांश का पृथक् करना और उसे स्वयं जाकर गुरु की भेंट करना, मसंदों को दूर रखना, खड़ग-धारण, सत्संगति, सद् गुरु का हुकुम मानना, संसार की नश्वरता, मोह-माया से मुक्ति, गुरु को परब्रह्म परमेश्वर समझना, नाम-महिमा, अहंकार का त्याग, सन्तों और खालसा की अरदास तथा परब्रह्म की व्यापकता—आदि का वर्णन किया गया है।

छठे और सातवें अध्याय में उस सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया का वर्णन है जो सिक्खों के नए आचार को अपनाने से उत्पन्न हुई थी।

आठवें अध्याय में राव कहलूर द्वारा दशम गुरु को यह सन्देश भेजने का वर्णन है कि या तो उनकी भूमि छोड़ दें या उसके लिए दाम दें।[1] दशम गुरु ने इसे स्वीकार नहीं

१. भेज दीओ लिखकै ओहि ने अब छाडो गुरु जी भूम हमारी।
कै कछु दाम दया कर देव कै जुध करो यह बाति बिचारि ।।८।८।३०४।

किया और तब राव कहलूर और राव हण्डूर दोनों ने मिलकर आनन्दपुर पर आक्रमण किया। जीत सिह के नेतृत्व में पहाड़ी राजाओ से भयंकर युद्ध के बाद खालसा को प्रबलता मिली। अन्त मे राव, गाय साथ लेकर दशम गुरु की शरण मे आया और गाँव छोड़ने के लिए प्रार्थना की (८।३९।३३५।) दशम गुरु वह स्थान छोड़कर निर्मोह चले गए।

नवम अध्याय में निर्मोह में विश्राम, राव कहलूर के सारे गाँवों को लूटने का आदेश तथा निर्मोह-युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे चारो ओर से उमड़ती हुई सेना के बीच घिरे दशम गुरु की शोभा का वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। ताराओं से घिरे चंद, अंगूठी मे जड़े रत्न और बादलों में बिजली जैसे उपमान कवि ने उनकी शोभा में जुटाए हैं (९।२०।३५६–५७)। इसी युद्ध-वर्णन मे कवि ने फाग और रास के साथ युद्ध-रचना की समता की है। इस युद्ध में दशम गुरु की विजय हुई। इसी समय वैशाली का राव, दशम गुरु से मिलने आया।

दसवें अध्याय में वैशाली मे ठहरे हुए गुरु गोविन्द सिंह की सेना पर कहलूर की सेना द्वारा पुनः आक्रमण का वर्णन किया गया है। इस संघर्ष के बाद कलमोट विजय तथा राव कहलूर के दशम गुरु की शरण में आने का वर्णन है। इस विजय से खालसा-शक्ति अत्यन्त प्रबल हो गई। कहलूर की पराजय के बाद दशम गुरु फिर आनन्दपुर आ गए।

ग्यारहवें अध्याय में आनन्दगढ़ की रचना, विस्तार तथा बाहर से आए खालसा सिक्खों द्वारा भेंट आदि का वर्णन है। थोड़े समय में ही खालसा सैनिकों ने आस-पास के गाँवों को जीत लिया और दशम गुरु के एक छोटे राज्य की आनन्दगढ़ के आस-पास स्थापना हो गई। इसी अध्याय में पहाड़ी राजाओं और तुर्कों की सम्मिलित सेनाओं द्वारा आनन्दपुर पर आक्रमण करने, उसके घेरे जाने तथा अन्त में नगर निवासियो के अनुरोध पर दशम गुरु द्वारा सब खजाना सिक्खो में बाँट देने, सब को पाँच-पाँच हथियार बँधवा देने और शेष सब वस्तुओं को जलाकर नगर के परित्याग करने का वर्णन किया गया है।

बारहवें अध्याय में चमकौर-युद्ध का वर्णन कवि ने बड़े विस्तार से किया है। इसी अध्याय में दो गुरु-पुत्रों के युद्ध में वीरगति प्राप्त करने का उल्लेख भी कवि ने किया है। यहाँ कवि ने युद्ध की समता होली खेलने से की है (१२।४७।५१७-१८)। रास का यहाँ पुनः उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है कि मतवाले वीर युद्धभूमि में इस प्रकार झूमते थे जैसे रास देखते हुए उनींदे हो गए हों।

तेरहवें अध्याय मे दशम गुरु द्वारा चमकौर छोड़कर एक सरोवर के किनारे छावनी डालने का उल्लेख है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियों से पता चलता है कि इस विश्राम के समय में संग्राम-सम्बन्धी छन्दों का पाठ कविगण किया करते थे—

कथै मुखि पाठ कव छन्द संग्राम के सुनत आनन्द सो सबै सूरा ॥१३।१०।५५५॥

इसके अतिरिक्त तुर्क सेना द्वारा इस स्थान पर आक्रमण किए जाने, किन्तु हार जाने और दशम गुरु द्वारा दयासिंह के हाथ औरंगजेब को जफरनामा भेजने का भी वर्णन कवि ने किया है।

चौदहवें अध्याय में दशम गुरु की दक्षिण-यात्रा, औरंगजेब की मृत्यु के समाचार की प्राप्ति, खालसा सैनिकों द्वारा कुछ शत्रु-गाँवों के लूटने और बाघौर युद्ध का वर्णन किया गया है। यहाँ कवि ने दशम गुरु के राजसी ठाठ-बाठ का वर्णन किया है—सिर पर ताज, सोने की कलगी—जिसमें लाल, हीरे, पन्ना, मोती आदि जड़े थे, वे धारण किए हुए थे। इसी अध्याय में दशम गुरु के जहानाबाद-प्रस्थान का भी उल्लेख किया गया है।

पन्द्रहवें अध्याय में अहमदनगर की स्थिति, बहादुरशाह द्वारा दशम गुरु से सहायता की याचना[1] तथा आजम और बहादुरशाह के युद्ध का वर्णन है।

सोलहवें अध्याय में दशम गुरु की आगरा-यात्रा तथा बहादुरशाह से भेंट का वर्णन है। बादशाह ने दशम गुरु को खिल्लअत प्रदान की।[2] इसी अध्याय में कवि ने दशम गुरु की कौतुक-प्रियता का भी उल्लेख किया है।

सत्रहवें अध्याय में कवि ने बहादुरशाह की सहायतार्थ दशम गुरु के राजस्थान-अभियान का वर्णन किया है। इसी अध्याय में चित्तौड़ में घास के लिए होने वाले एक छोटे-से युद्ध का वर्णन भी है।

अठारहवें अध्याय में दशम गुरु द्वारा नर्वदा, बुरहानपुर से होते हुए नांदेड़ पहुँचने तथा यहीं पर एक पठान द्वारा उनकी हत्या किए जाने का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसी सन्दर्भ गें दशम गुरु के शब्द-रूप बनने तथा अन्तिम बार अपने खालसा सैनिकों एवं संगतों को 'वाहि गुरु जी की फतह' बुलाने का वर्णन भी है।[3] संवत् १७६५ कार्तिक सुदी पंचमी को गुरु की आत्म-ज्योति परम-ज्योति में लीन हो गई। सिक्खों ने रात को ही उनका संस्कार कर दिया। इसके बाद ही कवि ने यह वर्णन किया है कि सिक्खों ने प्रभु के रूप पर विचार करना आरम्भ किया और यह निर्णय किया कि वे शब्द-रूप बन गए हैं और हमें उन्हीं की शरण लेनी चाहिए—

खालस खास कहावे सोई, जाके हिरदे भरम न होई।
भरम भेख ते रहै निआरा, सो खालस सतिगुरु हमारा।
सतिगुरु हमारा अपर अपारा, सबदि बिचारा अजर जरं।
हिरदे धरि धिआनी उचरी बानी परि निरबानी अपर परं।
गति मति आपारं बहु विसथारं वार न पारं किआ कथनं।
तव ज्योति प्रगासी स्रब निवासी सरब उदासी तव सरनं ।१८।४३।८१०।

---

१. करि जोरे ऐसे कहिओ निमख विलम नही लाई।
इह सुलतानी जग मैं तुम प्रभ होहु सहाइ ॥१५।८।६८०।

२. कलगी अउर धुग धुगी आनी। खिलअत एक साह मनमानी।
साह प्रभू को भेट चडाई। खुसी करो तुम सो बन आई ॥१३।३५।७२५

३. भए सबद रूपी करि बात अउरे। १८।३३।८००।

...   .

टेर करी ताहि समे जागे सिंह अपार।
वाहि गुरु जी की फतह कही अंत की बार।१८।३४।८०१।

इसके बाद कवि ने भक्ति-भावना से अभिभूत होकर 'महानाम गोविन्द' 'गोविन्द' की महिमा का विस्तृत वर्णन किया है।

उन्नीसवें अध्याय में कवि ने भविष्य में खालसा का क्या लक्ष्य होना चाहिए, इसका अपनी वाणी में उल्लेख किया है। सात सवैयों में कवि ने प्रत्येक के अन्तिम चरण में एक ही बात की पुनरावृत्ति की है––

भल भाग भया तुम ताहि कहो गढ़ आनन्द फेरि बसावहिगे। १६।१२।८३८।

इन्हीं सवैयों में उसने दुष्ट-दलन, सन्त-काज, गुरु का कीर्तिगान और प्रजा के जप-जाप, तथा उसके आनन्द और सद्गति की प्राप्ति की भी कामना की है।

बीसवें और अन्तिम अध्याय में सेनापति ने एक भक्त और सच्चे खालसा की भाँति गुरु का महाज्योति के रूप में विस्तृत वर्णन किया है। निर्गुण सन्तों ने जिस प्रकार परब्रह्म का वर्णन किया है उसी प्रकार सेनापति ने भी गुरु एवं गुरु-नाम का वर्णन किया है। उसकी दृष्टि में सच्चे गुरु से प्रेम, नाम-जाप और उसके उपदेशों पर आचरण करने से ही यमदूतों के त्रास से छुटकारा मिल सकता है और उसी के नाम-प्रताप से ही मुक्ति उपलब्ध हो सकती है। उसने गुरु-वाणी को ही प्रकाशपूर्ण वचन कहा है। इस प्रकार पूरा बीसवाँ अध्याय स्तुतिपरक है और इसे यही नाम कवि ने भी दिया है।

वस्तु-संगठन

'गुरु शोभा' चरित्र-प्रधान प्रबन्ध-काव्य है। इस चरितात्मकता के कारण ही दशम गुरु से सम्बन्धित घटनाओं को ऐतिहासिक क्रम से पिरो दिया गया है। आधिकारिक कथा ही आरम्भ से अन्त तक मुख्य वर्ण्य रही है। खालसा की स्थापना के उपरांत होने वाली प्रतिक्रिया के वर्णन में अवश्य एक प्रासंगिक घटना का वर्णन हुआ है, जिसका सम्बन्ध सीधे दशम गुरु से न होकर खालसा सिक्खों और क्षत्रिय-ब्राह्मणों के पारस्परिक संघर्ष से है।[1]

इस आधिकारिक कथा में भी दशम गुरु के प्रारम्भिक जीवन को छोड़ दिया गया है। केवल संकेत रूप में गुरु-परम्परा का उल्लेख मात्र हुआ है। इससे स्पष्ट है कि सेनापति के सामने दशम गुरु के जीवन चरित को प्रस्तुत करने वाली रचना—'विचित्र-नाटक' विद्यमान थी। 'विचित्रनाटक' के तीन मुख्य भाग हैं—वंदना-स्तुति, वंश-वर्णन और युद्ध-वर्णन। दशम गुरु के पूर्वजन्म एवं इहलौकिक जीवन की कुछ घटनाएँ उसमें पहले ही आ गई थीं। भंगाणी, नादौन, खानज़ादा, हुसैनी और जुझार सिंह के युद्धों का वर्णन 'विचित्र नाटक' में ही आ चुका था।[2] दशम गुरु की यह रचना सेनापति के लिए आदर्श बनी। दशम गुरु ने पौराणिक वृत्तों के साथ अपने जीवन का सम्बन्ध स्थापित करते हुए अकाल-पुरुष के द्वारा धर्मरक्षार्थ अपने भेजे जाने का उल्लेख किया है। इसकी प्रतिध्वनि 'गुरुशोभा' में स्थान-स्थान पर गुंजित होती है।

---

१. सेनापति, गुरुशोभा, अध्याय ६

२. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० २५३-५४

'विचित्र नाटक' की तरह ही 'गुरु शोभा' भी अध्यायों में विभक्त है। संस्कृत महाकाव्यों की भाँति न तो इसमें वर्णन-विस्तार है, न प्रासंगिक कथाओं का समावेश। केवल युद्ध-वर्णन के अवसर पर विविध योद्धाओं के युद्ध-कौशल और वीरता का वर्णन मात्र है। अतः इसे रासो-परम्परा का प्रबन्ध-काव्य ही कहना उचित है।

फतहशाह के साथ युद्ध से आरम्भ करके दशम गुरु के अवसान तक वक्रतारहित सीधी कथा प्रस्तुत की गई है। प्रासगिक कथाओं के अभाव में इसकी सरल कथा वस्तु अत्यन्त ही सुगठित प्रतीत होती है। वस्तु-संगठन की दृष्टि से उन्नीसवें अध्याय के सेंतीसवें पद्य तक ही मूल कथा समाप्त हो जाती है, किन्तु कवि का उद्देश्य सम्भवतः इतने से पूरा नहीं होता। यही कारण है कि शेष उन्नीसवें और बीसवें अध्याय में उसने गुरु-महिमा का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। स्वयं कवि के शब्दों में—

अति अगाध अचरज कथा तिहका कवन सुमार।
जुग कितंक गनपत लिखहि तऊ न पावत पार ।।२०।६४।६३१।।

'गुरु शोभा' के सम्पूर्ण वर्ण्य-विषय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—१. युद्ध-वर्णन २. खालसा की स्थापना ३. गुरु-महिमा।

युद्ध-वर्णन

सेनापति कवि होने के साथ-साथ एक वीर खालसा सैनिक भी हैं। सैनिक एवं वीर कवि के लिए अपने वीर-नायक की शोभा-श्री-गायन का उपयुक्त साधन उसके युद्धों का वर्णन ही हो सकता है। यही कारण है कि युद्ध-वर्णन कवि का मूल उद्देश्य न होते हुए भी 'गुरु शोभा' के २० अध्यायों में से ६ अध्याय पूर्णतः युद्ध-वर्णन के लिए सुरक्षित रखे गए है।

'गुरुशोभा' के युद्धों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—१. पहाड़ी राजाओं के साथ युद्ध २. मुगल सेना से युद्ध ३. सुलतानी युद्ध और ४. लूटमार। इन युद्ध-वर्णनों के भी दो रूप मिलते हैं—दशम गुरु के युद्ध-कौशल का वर्णन और उनके वीर सैनिकों का युद्ध-वर्णन। चरित नायक के अतिरिक्त अन्य सामन्तों का युद्ध-वर्णन 'पृथ्वीराज रासो' में भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। यही स्थिति 'गुरुशोभा' की भी है। सेनापति ने भी जिस युद्ध में जिस खालसा वीर ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया है, उसी को उसने महत्त्व दिया है। गंगाराम, लालचन्द, हरिचन्द, जीतसिंह, साहिबचन्द, उदयसिंह और जुझार सिंह, जोरावर सिंह, तथा सन्त सिंह आदि खालसा वीरों के युद्ध-वर्णन-प्रसंग को कथासूत्र में अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से सुग्रथित किया है।

डॉ० हरिभजन सिंह ने लिखा है कि—"गुरु गोविन्द सिंह जी एक पहाड़ी राजा की सहायतार्थ एक युद्ध में भाग लेकर आनन्दपुर लौट रहे हैं, मार्ग में 'अलसून' नामक नगर पड़ता था। वहाँ पहुँचकर गुरु जी आज्ञा देते हैं कि इस ग्राम को लूट लिया जाए .... लूटमार के लिए खालसा को सदा गुरु-आज्ञा की अपेक्षा न रहती थी .... 'गुरु शोभा' के अध्ययन में हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, यह प्रभाव और भी गहरा हो जाता है कि

लूटमार शस्त्रधारी सिक्ख साहसिकों का सार्वकालिक धन्धा है।"[1] उन्होंने यह भी संकेत किया है कि इससे 'गुरु शोभा' का कवि उस महान् उद्देश्य के वर्णन और प्रभाव-स्थापन में विफल रहा है जिसके कारण दशम गुरु को अवतारी पुरुष माना गया है और खालसा की स्थापना की गई थी।

'गुरु शोभा' ऐतिहासिक और यथार्थ घटनाओं पर आश्रित काव्य है। तत्कालीन परिस्थितियों में ये घटनाएँ अत्यन्त सामान्य थीं। युद्ध के उपरान्त विजयी सैनिकों द्वारा शत्रु के विजित गाँव या नगरों को लूट लेने की एक सामान्य प्रथा प्रचलित थी। मुगल सैनिक भी यही कार्य करते थे। बाहर के जो आक्रमणकारी मुगल शासन-काल में आए उन्होंने भी लूटमार की, इतिहास इसकी साक्षी देता है। अतः खालसा सैनिकों द्वारा प्रतिरोधी गाँवों को लूट लेना तत्कालीन सैनिक-परम्परा का अनुपालन मात्र था। मसंद-प्रथा की समाप्ति के बाद युद्ध के विशाल खर्च को वहन करने के लिए भी धन-संचय की आवश्यकता विद्यमान थी। राज्य-विस्तार के लिए भी प्रतिरोधी गाँवों को सजा दी जाती थी। इन घटनाओं के वर्णन द्वारा सेनापति ने 'गुरु शोभा' को एक यथार्थ ऐतिहासिक रूप दिया है। इसे तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाना चाहिए। जो गाँव या राजा अधीनता स्वीकार कर लेते थे उनके राज्य में लूट-मार नहीं होती थी।[2]

कभी-कभी सैनिकों को अपने घोड़ों के लिए घास की व्यवस्था करने के लिए भी युद्ध करना पड़ता था, क्योंकि अनेक घोड़ों के लिए घास की व्यवस्था करना संभव नहीं हो पाता था। सैनिकों में आपस में भी इसके लिए संघर्ष हो जाया करता था। उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

तबै भेद सिंहान ऐसो उचारो।
लीओ घास तिह ठउर कै जुद्ध भारो।।

यदि उक्त ऐतिहासिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाए तो लूट-मार की घटनाओं को भी युद्ध-काल की अनिवार्य देन स्वीकार कर लेना चाहिए।

वर्णन-सौंदर्य की दृष्टि से सेनापति के युद्ध-वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण और मनोरम हैं—

रण मैं धसि कै इम लोह कीउ न कीओ तिह मोह महा मन को।
जिम सारंग माहि पतंग परै न डरै करि लोभ कछू तन को।२।१७।५८

युद्ध का मोहक एवं चित्ताकर्षक रूप में वर्णन करने के लिए सेनापति ने कई स्थलों पर वर्षा, फाग और रासलीला के रूपकों का आश्रय लिया है। ये स्थल उनकी कल्पनाशीलता के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

---

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ५०४-५०५
२. जौ राजा करि जोरि के मिलत प्रभू सो धाय
बसहै देश अनंद सो ता ढिग कोइ न जाय ॥१७।२२।७६०

युद्ध वर्षा के रूप में

सियाम घटा उमडै चहूं ओर ते यो उमडै दल दूत के आही।
दामन जो दमकै तरवार लीए करवार फिरावत ताही।
सूर की सुआबी ते धार परै घन मै मानो तास कमान की निआही।
छूटत तीर मनो रन मधि जु सावन की बरखा बरखाही।।६।२६।३६२

युद्ध फाग के रूप में

खेलत सूर महा रन मै बन मै मनो सिआम जी फाग रचाइओ।
दउरत सूर लिए कर मै पिचकारन जो सु बंदूक चलाइयो।
स्रोनत धारि चली तिनके तन ते मानहु लाल गुलाल लगाइयो।
बागे बने तिन के तन लाल मनो रंगरेज रंगे रंग लिआइयो ।।६।३।३६६

अथवा

देख तबै विधि ऐसी भई रुति फागन जो मानो खेलन आयो।
लागति सांगन तेगनि तीर तुफंगन स्रोन चलिओ भभकायो।
ताहि समै छवि ऐसी भई मानो लाल गुलाल को रंग बनायो।
बागो बनो जिह के गल लाल मानो रंगरेज अबै रंग लिआयो।१२।४७।५१७

... ...

तन झारी कर सूरमा स्रोन रंग भरि लीन।
छिरक छिरक तन रंगिओ फागन की रुत कीन।।१२।४८।५१८

युद्ध रास के रूप में

रास रचै बन मै हरि जी छवि ता दिन ताही कीयौ रण पायो।
बाजत सार सो सार अपार करै छुनकार सु यौ धुन लायो।
सूर सबै मिलि खेलत फागन देरवत रास उनीदे ही आयो।
लाल निहाली की सेज कीए धर सोवत सूर पलंघ बिछायो।१२।५२।५२२[1]

सेनापति रीतिकालीन कवि अवश्य थे, किन्तु भूषण जैसा वीरकाव्य-प्रणेता जितने अधिक रीतिकाल से प्रभावित हुआ या सेनापति उतने प्रभावित भी दिखाई नहीं पड़ते। भूषण ने तो अपना 'शिवराज भूषण' अलंकार ग्रन्थ के रूप में ही प्रस्तुत किया, किन्तु सेनापति ने इसकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि अपने वर्णन में उन्होंने कुछ ऐसे सांकेतिक चित्र अवश्य दिए हैं, जिनमें वीर और शृंगार जैसे परस्पर विरोधी रस भी, एक साथ खड़े दृष्टिगोचर होते हैं—

१. अन्य स्थल द्रष्टव्य, १०।४।३८१।

(१) लरै सिंह इह भाँति अपारे।
चड़ी खुमार भए मतवारे ॥१२।२५।४६५॥

(२) लग्यो वार ऐसे बह्यो स्रोन भारी।
भयो लाल बागा भिजो देह सारी।
कहुँ रेन जागा किधौं प्रेम माता।
चढ़ी है खुमारी चलै डगमगाता ॥५०६८॥

(३) वसुधा सम कीनो पलंग रक्त निहाली डार।
महा उनीदे रैन के, सोवत पाइ पसार ॥८।३३।३६६

सेनापति का यह वर्णन रीतिकालीन परम्परा से कम और रासो परम्परा से अधिक प्रभावित है—"वीर और शृंगार को एक स्तर पर रख कर एक के अनुकूल अवसर पर दूसरे की उपस्थिति दिखलाकर चन्द ने परम्परागत रस-विरोध की उपेक्षा कर दी है। जिसका जीवन में विरोध नहीं, उसका काव्य में पालन चन्द ने अनिवार्य नहीं माना—

सार सार मच्ची कहर दोउ दलनि सिर मंधि
प्रौढ़ा नायक छयलरमि प्रात न वंछै संधि ॥२५।३८[1]

'पृथ्वीराज रासो' में ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमें कई-कई रसों से सम्बद्ध वर्णन एक साथ प्रस्तुत किए गए हैं।[2] 'गुरु शोभा' के ये वर्णन रीतिकालीन परम्परा की अपेक्षा रासो-परम्परा के अधिक समीप हैं, जहाँ वीर और शृंगार को परस्पर विरोधी न मानकर एक की रेखाओं को दूसरे के चित्र में समाविष्ट कर दिया गया है।

'जंगनामा' में जिस प्रकार सैन्य-सज्जा का वर्णन किया गया है उस तरह का वर्णन 'गुरु शोभा' में नहीं मिलता। सैन्य-सज्जा-वर्णन की अपेक्षा यहाँ कवि ने मार-काट के वर्णन में अधिक रुचि प्रदर्शित की है। कहीं-कहीं उसने सैनिक व्यूह का भी संकेत कर दिया है।[3]

युद्ध का वर्णन करते समय भी सेनापति ने 'रासो' की तरह ही सानुनासिक वर्णों का प्रयोग किया है—

भिरे बीर बीरं। परो भार भीरं।
बगे बान तीरं। अधीरं बिदारे।२।३२।७३
बजै सार सारं। झड़ै चनिगिआरं।
कड़के कमाणं। ना बानं समारे।।२।३३।७४

---

१. डॉ० छविनाथ त्रिपाठी, मध्यकालीन हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त : मूल शोध-प्रबन्ध, पृ० ३०७

२. वही, पृ० ३०४—३०७

३. प्रथम मार बन्दूक को पाछे तीर कमान।
फिर पाछे समसेर लै करत सूर संग्राम ॥७।२५।३२१

छुटैं कोप तोपं । भई सूर सोखं ।
मिलैं ताहि मोखं । सु कोखं उजारे ।२।३४।७५
सोई काम आयो । तिनैं सूर घायो ।
सुरगे सिधायं । कीए लोह भारे ।२।३५।७६

डॉ० मनमोहन सहगल ने लिखा है कि--" 'गुरु शोभा' में दिये गये युद्ध-वर्णन प्रायः अपूर्ण हैं । युद्ध-वर्णन में जहाँ कवि को उसकी गहराइयों तक जाकर उसके महत्त्व, प्रभाव एवं परिणाम को देखना वांछित होता है, वहाँ सेनापति केवल सामान्य बात कहकर ही अध्याय समाप्त कर देता है। इसका सबसे बड़ा कारण तो सम्भवतः कवि की वातावरण से अत्यन्त घनिष्ठता है। वह युग के इतिहास का निर्पेक्ष मूल्यांकन नहीं कर पाया। उसके लिए गुरु गोविन्द सिंह के रण-भूमि में दिखाए जौहर ही सब कुछ हैं।"[1]

युद्ध-वर्णन कवि का मुख्य उद्देश्य है और उसमें भी उन युद्धों का, जिनसे दशर गुरु की शोभा-वृद्धि हुई है। ऐसी परिस्थिति में वह न तो उन युद्धों का वर्णन कर सकता था जिनसे गुरु की शोभा घटती हो और न ही उनकी पराजयों का उल्लेख कर सकता था। यही कारण है कि उसने गुरु-पुत्रों के युद्ध में घिर जाने के बाद उनके बलिदान का संकेत करके ही चमकौर-युद्ध की समाप्ति कर दी है। इससे स्पष्ट है कि दशम गुरु के अतिरिक्त किसी के महत्त्व का अंकन वह अपने काव्य का लक्ष्य नहीं मानता। जीत सिंह और जुझार सिंह के युद्धों का वर्णन बेशक उसने बड़े मनोयोग से किया है। रणजीत सिंह के युद्ध-वर्णन में उसने अतिशयोक्ति का भी प्रचुर आश्रय लिया है। छप्पय में प्रस्तुत रणजीत सिंह का यह युद्ध-वर्णन पृथ्वीराज के वीर सामन्तों के युद्ध-वर्णन जैसा ही है।[2]

खालसा-स्थापना के बाद प्रायः सारे ही युद्ध खालसा सैनिकों और सरदारों द्वारा लड़े गए, किन्तु आरम्भ के दो युद्धों में स्वयं दशम गुरु भी सैनिक की भाँति लड़े थे। बाघौर युद्ध में उन्होंने अवश्य एक राव को तीर से मारा। ऐसे युद्धों में विजय-प्राप्ति के वर्णन के उपरान्त कवि ने उनकी जय-जय कार की है।

सेनापति का युद्ध-वर्णन प्रायः पुनरावृत्तियों से भरा हुआ है। वस्तुतः सारे ही युद्ध एक ही प्रकार के शस्त्रों से लड़े गए, एक ही ढंग से लड़े गए और और लड़ने वाले खालसा सैनिक भी एक ही प्रकार की युद्ध-कला में निष्णात थे। यही कारण है कि युद्ध का यथार्थ वर्णन करते समय प्रायः एक ही प्रकार के भाव आवृत हुए हैं। उदाहरण के लिए आठवें अध्याय में वर्णित आनन्दपुर-युद्ध की निम्नलिखित पंक्तियाँ एव बारहवें अध्याय के चमकौर-युद्ध की पंक्तियाँ तुलना के लिए ली जा सकती हैं--

---

१. सम्मेलन पत्रिका, भाग ५२, संख्या ३-४, पृ० ११२
२. ता दिन गड्डु रण खंड सिंह रणजीत धरत पर ।
   बरस तंरज उठी धूर भान छिप गयो आप घर ।
   पवन मद हुइ रही रैनि भई दिवस छपानो ।
   लरजे सकल अकास तोप छूटी परमानो ।
   बजिओ निसान तिहु लोक मैं सुनि देवन यउ भयो ।
   चढि चढि बिवान देखन चले सु संकर समेति नही को रहिओ ।१२।३१।५०१

एक लरे एक भाज लुकाने । इक काइर देखि बहुत डरपाने ।
इक घाइल हुए विहाल । इक उधरे सीस फिरे बिकराल ।८।३२।३२८
इक सनमुख हुई जुध मचावै । इक भाजै फिर निकटि न आवै ।
इक पिआसे पानी बिनु मरई । इक देखे तेग धीर नहीं धरही ।८।३३।३२९
अधक अधीर ससत्र तजि डारे । गिर गिर परे परपरीआ सारे ।
एक सूर सनमुख होइ लरई । वे मरने ते बिलम न करई ।।८।३४।३३०
... ...

पड पडाक धरती पर परही । जूझे सूर बहुत तह मरही ।
इक घाइल है गिरे बिहाला । एकन आप तजे ततकाला ।१२।२४।४६४
इक भाजे फिरि निकटि न आवै । इक सनमुखि है जुध मचावै ।।
लरै सिंह इह भाँति अपारे । चड़ी खमार भए मतवारे ।१२।२५।४६५

युद्ध में बन्दूक, तलवार, तीर, तोप चलते हैं, सैनिक एक दूसरे से भिड़ते हैं, कायर भागते हैं, कुछ विजयी होते हैं और लूटमार होती है । इन घटनाओं के यथार्थ वर्णन के अतिरिक्त न तो वीरों की उत्साहपूर्ण ललकार है, न रस-परिपाक की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है । अनुभावों के चित्रण की दृष्टि से ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ ही महत्त्वपूर्ण हैं । जोगनियों के रक्तपात्र भरने और नारद के तुंबा बजाने का उल्लेख अवश्य है ।[1] परन्तु वीर रस के पोषक---रौद्र, भयानक और बीभत्स-रसों का इसमें वर्णन नहीं मिलता । युद्ध-घटनाओं का यथातथ्य अंकन कवि का उद्देश्य प्रतीत होता है, जो बिम्ब ग्रहण कराने में भी पूरी तरह सक्षम नहीं है । 'जंगनामा' के एक ही युद्ध-वर्णन में जो तारतम्य उपलब्ध होता है वैसी क्रमिकता भी यहाँ नहीं मिलता । इसका कारण सम्भवतः यही है कि एक युद्ध की समाप्ति के बाद बिना अवकाश के ही दूसरे युद्ध का आरम्भ हो जाता था । इससे युद्ध-घटनाओं के त्वरित घटने का संकेत तो मिलता है, किन्तु वर्णन-कौशल की दृष्टि से या रस-परिपाक की दृष्टि से इन युद्ध-वर्णनों में सांगोपांगता नहीं आ पाती ।

खालसा-स्थापना

'गुरु शोभा' में युद्ध-वर्णन के अतिरिक्त खालसा की स्थापना और उसकी सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया का भी विस्तृत वर्णन हुआ है । कवि की दृष्टि में 'खालसा' विशद्ध ब्रह्म का प्रतीक है और उसका जय-जयकार करने वाला ही खालसा है । प्रथम खालसा स्वयं 'सतिगुरु' गोविन्द सिंह हैं---

जहाँ दूतन को त्रास परत जम जारसा ।
साचा नाम पुनीत ओटि भई ढालसा ।
बिनसै सगल कलेस गयो जंजालसा ।
चूकिओ आवन जान मिटी सब लालसा ।
जी ! खालसा जपि गोबिन्द भयो है खालसा ।।५।७२।१८८

१. द्रष्टव्यः १२।४६।५१६

जो दैत्यों के लिए भयदायक यम है—पवित्र सच्चे नाम की ओट लेता है—सांसारिक जंजाल से मुक्त होकर अपने भौतिक क्लेशों को समाप्त कर देता है—इच्छाओं की समाप्ति के उपरान्त जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है—और विशद्ध ब्रह्म का जाप करके जो खालसा कहलाता है, ऐसे ही खालसा स्वयं दशम गुरु गोविन्द सिंह हैं। यही कारण है कि गुरु गोविन्द सिंह और खालसा एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं। गुरु की शरण खालसा की शरण है। खालसा कभी भी कपटी नहीं होता और उसकी शरण में आने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है—

(क) जी ! खालसा सरनि दुआर करो निसतारिंआ । ५।५०।१६६

(ख) जी ओइ कपटी होइ न खालसा केता समझाइआ । ५।५८।१७४।

निर्गुण-परम्परा के अनुसार गुरु गोविन्द सिंह को परब्रह्म परमेश्वर माना गया है[1] तथा सन्त-परम्परा के अनुसार ही नाम-जाप, सत्संगति और अहंकार-त्याग को खालसा का परम धर्म स्वीकार किया गया है—

जो करता सब स्रिसटी को ताहि सदा मनि जाप ।
दुरमत मिटै हउमै छुटै सन्त जना परताप ।।५।५१।१६७।।

सेनापति ने भी परब्रह्म के लिए निर्गुणोपासकों का 'खसम' शब्द प्रयुक्त किया है—

हुकमु न मानहि खसम का जिनि राहु बताइआ ।।५।५८।१७४

यह निर्गुण, निराकार ब्रह्म, अनादि, अनन्त और सर्व व्यापक है—

नाहुन अंत बिअंत प्रभ उपमा अपर अपार ।
रमि रहिओ सब स्रिसटि महि कहत बिचारि बिचार ।५।६६।१८५

विश्वास और प्रेम को खालसा का महत्त्वपूर्ण अंग बतलाया गया है—

प्रभ तिह निकटि बखानीए जिनि अन्तरि प्रतीति ।
प्रीति बिना किव पाईए जाहि कोटि जुग बीत ।६।१०।२०६

उक्त कतिपय संकेत आध्यात्मिक एवं भावपरक हैं, जो खालसा के परम सन्त बनने के महत्त्व को अंकित करते हैं। किन्तु अपने बाह्याचार में खालसा विशुद्ध आचरण वाला सच्चा सैनिक है। वह लौकिक बाह्याचारों को अधिक महत्त्व नहीं देता, वह तो एकमात्र दशम गुरु को ही अपना माता-पिता समझता है। यही कारण है कि माता-पिता की मृत्यु पर भी वह सिर-मुंडन नहीं कराता, हुक्का नहीं पीता और हरि-रस में मग्न

१. (क) पारब्रह्म परमेसर गुर गोबिन्द है ५।४६।१६२
(ख) द्रष्टव्यः ५।५३।१६६

रहता है।[1] खालसा के सिद्धान्तों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया उच्चवर्ग के लोगों पर हुई। इस प्रतिक्रिया का वर्णन भी 'गुरु शोभा' के छठे अध्याय में किया गया है। जिस प्रकार खालसा के सामाजिक बहिष्कार का प्रयत्न हुआ उसी तरह खालसा 'संगति' ने अन्यों का बहिष्कार किया। सातवें अध्याय में इस संघर्ष का चरम रूप वर्णित है, जहाँ खालसा की एक विशिष्ट व्याख्या की गई है। इसके अनुसार मसन्द-प्रथा को समाप्त करके सारे सिक्खों को खालसा बना दिया गया।[2] इस प्रकार 'खलसा', 'खालस', 'खसम' का रूप गुरु में मानता है और उसके लिए पूर्ण प्रीति और विश्वास के साथ सम्पूर्ण सांसारिक आसक्तियों और आचारों का त्याग करते हुए सर्वस्व-त्याग द्वारा ही मुक्ति की कामना करता है। यह मसन्द-प्रथा के आर्थिक लोभों से मुक्त है। वह अत्याचार का विरोधी और संतजनों का रक्षक है। वह एक ऐसा सैनिक है जिसकी अपनी वेश-भूषा है और जो शस्त्र ग्रहण कर गुरु-चरणों में सर्वदा बलिदान के लिए तत्पर रहता है। वह एक ऐसा सैन्य-संगठन है, जिसका मुख्य उद्देश्य धर्म की रक्षा करना है। उसकी वीरता अद्वितीय है—

सतिगुर के परताप ते लरत खालसा सोइ।
सूरा सब तिहू लोक मैं तिह समान नहीं कोइ।८।२७।३२३।

पांचवें, छठे और सातवें अध्याय में खालसा के उच्चतम सिद्धान्तों और आदर्शों का जो रूप सेनापति ने प्रस्तुत किया है उसकी रक्षा वे युद्ध-वर्णन के अवसरों पर नहीं कर सके हैं। वहाँ खलसा का युद्ध-निपुण वीर सैनिक रूप ही उभरा है, धर्म-रक्षक या संत का स्वरूप नहीं। वे एक विशिष्ट संगठन के ऐसे सैनिक प्रतीत होते हैं जो युद्ध करने, गांवों को लूटने आदि के कार्य उसी प्रकार सम्पन्न करते हैं जिस प्रकार तत्कालीन मुगल शासकों या राजाओं के सैनिक किया करते थे।

निर्गुणोपासक परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण सिक्खों में जाति या वर्गगत भेद नही था। डॉ० हरिभजन सिह ने लिखा है कि वस्तुतः गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में मुगल शासन के विरुद्ध जो सशस्त्र विद्रोह हुआ उसमें भाग लेने वालों की बहुत संख्या तथाकथित निम्न जातियों की ही थी। कवि सेनापति सदा अपने विशिष्ट श्रोतावर्ग से तादात्म्य स्थापित किए रखते हैं। इन जातियों में से लोहार, धोबी, रंगरेज और माली उन्हें अधिक पसन्द है—लोहार और धोबी की अपेक्षा भी उन्होंने रंगरेज और माली का

---

१. (क) हुका तिआगै हरिगुन गावै। इछा भोजन हरि रसु पावै ४।२१।१३७
(ख) माता पिता मरे जे कोई। तउ भी कहत न भदर होई।
माता पिता गोविन्द हमारा। ऐ संसारी झूठ पसारा ४।२२।१३८

२. (क) तब सिखन यह बात बताई। सतिगुर पुरख महा सुखदाइ।
आगे जिनकै नाइब होते। नाव मसंद सगल थे जेते।७।२५।२८४
(ख) सो सतिगुर कीए दूरि सब परम जोति निज धारि।
सगल सिख भए खालसा सुनीए साच विचारि॥७।२६।२८५

प्रयोग अधिक चाव से किया है। कदाचित् रंगरेज़ और माली का काम अधिक सौंदर्यमय है।[१]

खालसा की स्थापना के बाद निश्चित् रूप से निम्न वर्ग के लोगों में उच्चता का एक भाव आया, क्योंकि 'संगति' में प्रत्येक खालसा बराबर समझा जाता था। आध्यात्मिक शिक्षा ने उन्हें सांसारिक इच्छाओं से निर्लिप्त बनया, जिससे वे निर्लोभ बने। दशम गुरु गोविन्द सिंह के प्रति अन्यतम प्रीति और विश्वास के जमने से उनके लिए सर्वस्व-बलिदान की भावना प्रत्येक खालसा के मन में जगी। इन त्रिविध मनः स्थितियों ने खालसा के रूप में दशम गुरु को अजेय शक्ति प्रदान की। खालसा के महत्त्वांकन में कठिनाइयों और पराजय का अधिक मूल्य नहीं था, यही कारण है कि सेनापति इन घटनाओं को सहज उपेक्षाभाव से टाल गए हैं। सातवें अध्याय के बाद के सभी अध्यायों में जितने भी युद्धों का वर्णन है वे सब खालसा सैनिकों की वीरता का ही प्रदर्शन करते हैं।

गुरु-महिमा

'गुरुशोभा' का उद्देश्य ही खालसा रूप में गुरु की महिमा प्रतिष्ठित करना है। यही कारण है कि एक युद्ध के बाद ही कवि ने खालसा की स्थापना का वर्णन कर दिया है और आगे गुरु के आदेश और उनके वचन ही महत्त्वपूर्ण बन गए है। कवि ने दशम गुरु को 'तारन-तरन', 'दुष्ट बिदारन', सन्त उबारन (१।१७) आदि विशेषणों से विभूषित किया है तथा गुरु नानक से गुरु तेग बहादुर तक सभी नवों गुरुओं की ज्योति को उनमें (दशम गुरु) ही समाहित माना है (२।५।४६)। प्रत्येक युद्ध में विजय के उपरांत कवि ने दशम गुरु की जय-जयकार की है (२।४८।८६)। सेनापति दशम गुरु के परम भक्त हैं, यही कारण है कि उन्होंने उन्हें कर्ता और संसार का उद्धारक कहकर उनकी प्रशस्ति प्रस्तुत की है—

गुर गोबिन्द गोबिन्द गुर करनहार करतार।
जगत उधारन आइओ जानहु सब संसार।१४।१३।१२६

खालसा के सिद्धान्तों का वर्णन करते समय हम बतला आए हैं कि दशम गुरु स्वयं खालस स्वरूप हैं और परब्रह्म के प्रतीक भी हैं। गुरु-महिमा के वर्णन में सेनापति उन्हें 'वाहगुरु' और 'सतिगुरु' के र ‍ में ही प्रस्तुत करते हैं—

कहो सिखो वाहगुरू वाहगुरु वाहगुरु,
सतिगुरु सतगुरु सतिगुरु गोबिन्द है।५।२६।१४४

वे परब्रह्म के स्थान पर 'सतिगुर' के ध्यान को ही मुक्तिदायक मानते हैं—

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, पृ० ४६७-६८

मन बच करम सतिगुर को धिआवै।
तिह प्रताप जोनि नही आवैं।६।५६।२५२

सेनापति ने एक ओर जहाँ गुरु की शोभा का वर्णन सच्चा गुरु, परब्रह्म और खालसा स्वरूप मानकर किया है वहाँ दूसरी ओर उनकी राजसी शोभा को भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किया है—

राख तबै हजूर प्रभ कर चाकर दरबार।
मुजरे लीने तिनन के पहिराए हथिआर।६।१५।३५१

इस राजसी वर्णन में वैशाली के राव और कहलूर के राजा के शरण में आने के उल्लेख से गुरु की महिमा और भी बढ़ जाती है (६।४१।३७७), (१०।२५।४०३)। युद्ध के लिए वे खालसा सैनिकों—रणजीत सिंह अथवा जीत सिंह और जुझार सिंह आदि को आदेश ही देते हैं।

सेनापति ने दशम गुरु के राजसी ठाठ-बाट से सम्पन्न रूप का चित्रण भी किया है—

सीस पै ताज लै सोन कलगी धरी लाल हीरे जरी जगमगावै।
हीर पना खरे और मोती जरे झलक छब सोभ ताकी सुहावै।
झोक ऐसे लसै जोत कुंदन दिसै सोभ आपार नहीं बरनि आवै।
प्रगटि प्रचंडि त्रईलोक सोभा करै पेखे तिह संत सुख सब पावै।१४।१०।६०६

यद्यपि सेनापति ने दशम गुरु की प्रशंसा की है और उन्हें अवतार सिद्ध किया है, परन्तु उनकी प्रशस्ति में उसने अपना दैन्य और श्रद्धा-भाव भी प्रकट किया है। उसने अत्युक्तिपूर्ण कलाबाजियों का प्रश्रय नही लिया। वह सांसारिक सुख-सुविधा की अपेक्षा उनसे पारलौकिक शांति की ही अभ्यर्थना करता है। उसे तो स्वयं गोविन्द की ही टेक प्रिय है—

होहु दयाल दया करि कै प्रभ गोबिन्द जी मुहि टेक तिहारी है।१८।४५।८१२

बहादुरशाह से मिलते हुए भी कवि ने बादशाह द्वारा ही गुरु को उपहार प्रदान करने का वर्णन किया है। बादशाह स्वयं उनका कृतज्ञ है—

चडी कमान ससत्र सब सारे। कलगी छब है अपर अपारे।
लटकत चलत तरा चलि आए। साह पास बैठे इम जाइ।१३।३२।७२२
धन धन प्रभू अलख अपारा। निहचल कीनो राज हमारा।१६।३४।७२४

महाप्रयाण के समय दशम गुरु ने जो कुछ उपदेश दिया था उसे ही खालसा ने गुरु-रूप में अपना लिया। स्वयं दशम गुरु ने कहा था—

खालस मेरो रूप है, हौं खालस के पास,
आदि अंत हीं होत है खालस मै प्रगास।१८।४२।८०९

दशम गुरु के निर्वाण के उपरांत गुरु देव के बचन ही खालसा के लिए गुरु-रूप में विद्यमान रहे। इसलिए वे स्वयं शब्द-रूप हो गए—

बचन गुरदेव के गिआन ऐसो कीउ मुकति की जुगति ऐसे बिचारी।
... ...
भयो जैकार तरई लोक चौदहि भवन अचल परताप गुरु के सधारी।१८।५६।८२६

सेनापति ने एक भक्त की तरह ही उनकी महिमा को अनन्त और गोविन्द नाम को महानाम कहा है—

टेर है संत-वे-अंत महिमा महानाम गोबिन्द गोबिन्द कहु रे।१८।५६।८२३

सेनापति ने दशम गुरु की महाज्योति को उसी तरह अन्तर्व्याप्त माना है जैसे पुष्प में सुगन्धि, दीपक में दीप्ति, जल में सुदूरवर्ती आकाश स्थित सूर्य का प्रतिबिम्ब, गोरस में घृत और मृग में कस्तूरी (२०।६।८४७)। उसने पूरे १६वें और २०वें अध्याय में एक भक्त की भाँति ही प्रभु के गुणों का गान किया है और सच्चे गुरु की सेवा में सर्वसुख उत्पन्न होने की बात कही है (२०।७४।६११) वह एक भक्त की तरह ही गुरु-महिमा के वर्णन में अपने आपको असमर्थ समझता है। जब स्वयं गणेश भी अनेक युग तक लिखते हुए उनकी महिमा का पार नहीं पा सकते तो सेनापति उसके वर्णन में किस प्रकार समर्थ महिमा का क्या वर्णन करते—

अति अगाध अचरज कथा तिह का कवन सुमार। ...
जुग कितंक गनपत लिखहि तऊ न पावत पार॥२०।६४।६३१

चरित्र-चित्रण

सेनापति दशम गुरु के केवल दरबारी कवि ही नहीं, वरन् वे उनके भक्त, उपासक और मुक्तिकामी सेवक भी प्रतीत होते है। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने जहाँ अपने काव्य-नायक दशम गुरु को अवतार और परब्रह्म का प्रतीक माना है वहाँ उन्हें इहलोक के भौतिक त्रासों से रक्षा करने वाला परित्राता भी कहा है। 'गुरुशोभा' में दशम गुरु के चार रूप हमारे सामने आते हैं—उनका प्रथम रूप अवतारी पुरुष का है—जो भक्तों के लिए आराध्य है, उनका दूसरा रूप सच्चे गुरु का है जो दीन, पतित और पथ-भ्रष्ट लोगों का पथ-प्रदर्शन करता है, उनका तीसरा रूप योद्धा का है जो पराक्रम, शौर्य-प्रदर्शन, युद्ध-कौशल, धैर्य, दृढ़ता और उदारता में अनुपमेय है और उनका चौथा रूप एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं समाज-सुधारक का है।

'गुरुशोभा' में दशम गुरु का वीर योद्धा के रूप में चित्रण केवल प्रथम दो युद्धों में ही हुआ है। उनकी मार से भागे हुए शत्रु-दल को फिर लौटने का साहस नहीं होता था—

गोबिन्द सिंह महाबलधार बिदार दए दल तुरकन केरे।
ऐसी भई प्रभ की रचना सभि भाजि गए फिर आए न नेरे।
राव बिसाली को आनि मिलिउ करि जोरि कहिओ हम सेवक तेरे।

बिनो करे घघिआइकै इह बिधि करै करार।
फेर न आवै जुध मै जो छुटै इह बार ॥११।३३।४३८

दशम गुरु के सैन्य-कौशल और धैर्य की परीक्षा उस समय होती है जब वे भंगाणी के युद्ध में शत्रु सैनिकों से चारों ओर से घिर जाते हैं। आनन्दपुर के घेरे जाने के बाद वे बड़ी कुशलता से चमकौर पहुँच जाते हैं। चमकौर का गुरु इतिहास में विशेष स्थान है। चमकौर के युद्ध में दशम गुरु के दो पुत्र-रत्न काम आए थे। पुत्रों के इस बलिदान को उन्होंने उसी धैर्य के साथ सहन किया जिस धैर्य के साथ अपने पिता तेग बहादुर के बलिदान को उन्होंने सहा था।१२।७४।५४४।

दशम गुरु एक महान् राजनीतिज्ञ के रूप में भी चित्रित किए गए हैं। अलिफखाँ के विरुद्ध अपने शत्रु भीमचन्द की सहायता करते हैं और अजीमखाँ के विरुद्ध बहादुरशाह को विजय का आशीर्वाद देते हैं। अनेक संघर्षों से श्रान्त और क्लान्त पंजाब की हिन्दू जनता को उन्होंने बहादुरशाह से मैत्री स्थापित करके शांति प्रदान की। वे शरणागत-रक्षक भी हैं, कहलूर के राजा के शरण में आने पर उससे सन्धि कर लेते हैं। आनन्दपुर में रहते हुए राजाओं द्वारा 'कर' मांगे जाने पर वे क्रुद्ध हो कर युद्ध के लिए तत्पर हो जाते हैं, जो उनके युद्धप्रिय स्वभाव और शौर्य का परिचायक है—

कोप भयो जु कहिओ गुरु गोविन्द सिंह सु या विधि दाम न दीजै।८।१०।३०६

दशम गुरु द्वारा औरंगजेब को भेजा गया पत्र (जफरनामा) एक ओर उनकी शांति प्रियता का प्रतीक है और दूसरी ओर उनकी राजनीतिज्ञता का—

"कौल बिकौल सब लोग तेरे भए, जंग को भेद ऐसे बतायो"।१३।३३।५७९

—लिखकर उन्होंने एक ओर तो औरंगजेब को यह जतला दिया कि स्वयं उसके राव-राजे उसके विरुद्ध हो रहे हैं और दूसरी ओर सिक्खों के साथ मुगलों के समझौते का द्वार उन्मुक्त कर दिया। सेनापति ने दशम गुरु को पारस माना है जिनके सम्पर्क से दुष्टरूपी लोहा भी सज्जन रूपी कंचन बन जाता है—

लोहा कंचन किउ थीए भावै जिउ जारो।
जी ! सतिगुर पारस जे मिलै छिन मै बिसतारो।१३।४८।५९३

दशम गुरु ऐतिहासिक घटनाओं के निर्माता हैं। खालसा की स्थापना ने जहाँ निम्नवर्ग के लोगों को वीर और सन्त बना दिया वहाँ उसने एक सामाजिक क्रांति भी उपस्थित कर दी। 'संगति' में भेद-भाव पूर्णतः समाप्त हो गया।

सेनापति ने दशम गुरु की गुरुता का इतना गरिमामय चित्रण किया है कि उनके व्यक्तित्व की महानता से अभिभूत होकर सभी राव-राजे उनकी शरण में आ जाते हैं, जो नहीं आते हैं वे युद्ध में मारे जाते हैं। अखिल भारत का छत्रधारी सम्राट् बहादुर शाह उन्हें आदर और मैत्री भाव से ग्रहण करता है। वे राजसी ठाठ-बाट से ही उससे मिलते हैं।

सेनापति ने दशम गुरु के चरित्र को सन्त, समाज-सुधारक, योद्धा एवं शौर्य-प्रिय, शरणागतवत्सल खालसा एवं शब्द-रूप, अवतारी पुरुष, कौतुकी, आराध्य, शाहों के शाह एवं राजकीय गौरव से सम्पन्न राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया है। एक काव्य-नायक की भाँति, जिस प्रकार नायक के चरित्र का विकास होता है, उस तरह का चरित्र-विकास 'गुरु शोभा' में नहीं दिखाई पड़ता। उनकी युद्ध प्रियता और शौर्य का चित्रण आरम्भ में हुआ है, समाज-सुधारक का रूप खालसा-स्थापन में और शेष १३ अध्यायों में उनका आदेश दाता, राजा, राजनीतिज्ञ और शरणागतवत्सल का रूप ही व्यक्त हुआ है। किन्तु इन सबके अन्तराल में दशम गुरु का व्यक्तित्व और उनका प्रभाव समान रूप से प्रवाहित होता हुआ दिखाई पड़ता है। फतह सिंह और रंजीत या अजीत सिंह आदि, कवि के युद्ध-वर्णन में स्वयं गुरु के आज्ञाकारी खालसा के रूप में ही सामने आते हैं। शौर्य-प्रदर्शन और युद्ध-कुशलता के द्वारा उनके चरित्र का एक ही अंग उभारा गया है––वह है उनके वीरत्व का। वस्तुतः वर्णन की अव्यापकता और सीमित दृष्टि के कारण इन सहायक पात्रों का भी बहुविधि चरित्र अंकित नहीं हो पाया है। सेनापति ने इन वीरों को खालसा रूप गुरु गोविन्द की महिमा का सहायक मानकर ही प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से इन सहायक पात्रों का चरित्र भी एकांगी बन गया है––

दल मैं जु घसिओ बलवंत बली इह भांत सो तीर चलावत है।
जिह के उर मारत देत गिराइ परे रन में बिललावत है।
गिरी लोथ पै लोथ अपार तहा खरी जोगन पत्र पूरावत है।
इह भांति जुझार करै रनमार सुयों रण में रण पावत है।१८।५६।४२६

प्रतिद्वन्द्वी योद्धाओं के भी शौर्य-वर्णन को ही सेनापति ने प्रमुखता दी है। उनके चरित्र के भी अन्य किसी रूप की अभिव्यक्ति नहीं हुई। इससे सेनापति की उदारता और निष्पक्षता ही अभिव्यक्त होती है। अन्य वीरों की अपेक्षा बहादुरशाह के प्रतिद्वन्द्वी आजम शाह के लिए लिखी गई उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके उदार दृष्टिकोण की परिचायक हैं––

सानी आजम साह की अवर नहीं सुलतान।
लोह लाज जिन रण बिखै ऐसी करी निदान।१५।१३।६८५

प्रतिपक्षियों की वीरता के ऐसे वर्णन-स्थल कम हैं। उनके घमासान युद्ध करने का उल्लेख तो मिलता है किन्तु उन्हें बार-बार दैत्य ही कहा गया है। 'गुरु शोभा' में दैत्यों की महत्ता प्रस्तुत करने या उनके चरित्र का विस्तृत रूप में वर्णन करने के लिए सेनापति के पास अवकाश ही कहाँ था, जबकि उन्होंने खालसा के वीर सहायक पात्रों के एक ही अंग, वीरत्व को उभारा है।

अलंकार-प्रयोग

'गुरु शोभा' में सेनापति ने सादृश्यमूलक अलंकारों का ही उपयोग किया है।

वर्णन-क्रम में अलंकारों के प्रदर्शन की रुचि कवि की नहीं रही। फाग, वर्षा और रास-लीला के सांगरूपकों के प्रयोग युद्ध-वर्णन में अवश्य दिखाई पड़ते हैं, परन्तु मूलतः युद्ध को क्रीड़ा-रूप में प्रस्तुत करना ही कवि का उद्देश्य रहा है। उन्होंने जिन कतिपय अलंकारों का प्रयोग किया है वे स्वाभाविक और अयत्नज हैं। कवि ने मालोपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, अनन्वय, रूपक और अनुप्रासों का ही सहज प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं---

मालोपमा

जैसा नगीना अंगूठी में होत सु, होत है चंद जु तारिअन माही।
जो घन में बिजरी चमकै, दमकै तहा खालसा फौजन माही।
सिंह इकै अरु लछ पसू सब, भाजत देखत ही बन माही।
ऐसे मनो तहा खालसा सिंह है, और नहीं समता जग माही।९।२१।३५७

उत्प्रेक्षा

भाजी फौज कैहलूर की, हुई करि सकल अधीर।
मानो गुन ते छुटक कै, भजिओ जाति है तीर।१०।८।३८४

उदाहरण

चहू ओर सब दल खरे, बीच सिंह गोविन्द।
ताहि समे छवि यौ कहो, जिउ तारन मैं चन्द।१२।१८।४८८

अनन्वय

करत अनंद केल प्रभ घनी। प्रभ की उपमा प्रभ को बनी १६।३७।७२७

रूपक

मूंदबे को हार झार-झार डारी घनसार।
पौन परवाह बह्यो ऐसो जाइयति है।९।६९।३७५

अनुप्रास

कई भरम भूले, भरम मै भुलाने।१।३७

घटनाओं के वर्णन की उत्सुकता में कवि ने काव्य को अलंकृत करने की ओर ध्यान ही नहीं दिया। सेनापति की यह विशेषता है कि उन्होंने रूढ़ उपमानों की अपेक्षा स्वानुभूत और सामान्य जीवन में बहुधा द्रष्टव्य उपमानों को ही ग्रहण किया है। इसलिए उनका काव्य सामान्य पाठकों के लिए भी सरल एवं प्रसाद-गुण-सम्पन्न बन गया है। प्रकृति के रूढ़ उपमानों की अपेक्षा उन्होंने सामान्य मनोरम उपमानों को ही अपनाया है। बादलों से घिरा हुआ सूर्य (९।१९।३५५) अंगूठी में नगीना, घन में बिजली, लाखों

पशुओं में सिंह (६।२१।३५७) सावन की वर्षा (६।२६।२६२), रंगरेज द्वारा मिलाया गया रंग (६।३।२६६), फागुन की ऋतु (६।३१।३६७) आदि अप्रस्तुतों का ही कई बार उन्होंने प्रयोग किया है। गुरु-महिमा और नाम-महिमा के वर्णन में कवि ने उल्लेख अलंकार का उपयोग किया है, जो अत्यन्त स्वाभाविक है। ऐसे स्थलों पर कहीं-कहीं कारणमाला का भी अपने आप प्रयोग हो गया है—

कुदरत के करनहार उपमा अपार तेरी कितहू न अंत कहू ऐसो बिअंत है।
निहचै कै गावत है भावत है तोही कोऊ पूरि रहिओ सब ही मै पूरन भजवंत है।
सेवा ते मुकति होति अंतरि प्रगास जोत दुरमति सबै खोत निरमल सोमंत है।
एक ही बतायो गुन ताको तब गायो जन जौन मै न आयो सो सिमरत एक संत है।
२०।१५।८५३

छन्द-प्रयोग

सेनापति ने रासो-परम्परा का अनुकरण करते हुए ६३६ पद्यों के इस काव्य में दोहरा (३४३), सवैया (१५४), चौपाइ (१६६), भुजंगप्रयात (८३), रसावल (२३), कवित्त (१८), निराज चामर (१०), छप्पय (१४), अडिल (२५), पौड़ी (१४), मधुभार छवि (३५), चालोटन चौपाई (१), त्रिभंगी (४), सोरठा (६), तोटक (१), झूलना सवैया (१), रुआमल-तोमर १२ १२ (१), लोटन-चौपाई (४) का प्रयोग किया है। चौपाई, चौलोटन और लोटन छन्द चौपाई ही हैं, जिनको उन्होंने तीन विभिन्न नामों से प्रयुक्त किया है। 'छन्द प्रभाकर' में उल्लिखित छन्दों के जो नाम लक्षण के अनुसार उपलब्ध होते हैं उनका संकेत कोष्ठक में कर दिया गया है।

सेनापति छन्द-प्रयोग में अत्यन्त निपुण हैं। वर्ण्य-विषय के अनुसार ही उन्होंने छन्दों का प्रयोग किया है। जहाँ वर्णन में गतिशीलता उत्पन्न करने की आवश्यकता अनुभव हुई है, वहाँ रसावल और मधुभार छन्दों का प्रयोग किया गया है। सिद्धान्त-निरूपण अथवा गुरु-महिमा-वर्णन प्रसंग में मुख्य रूप से इन्हीं छन्दों का उपयोग हुआ है। त्वरा के कारण ही रसावल छन्द का उपयोग युद्ध-वर्णन में भी किया गया है, जैसे—

भिरे बीर बीरं। परो भार भीरं।
बगे बान तीरं। अधीरं विदारे।।२।३२।७३।

युद्ध-वर्णन के लिए सवैया, निराज और भुजंगप्रयात का उपयोग भी हुआ है। सैन्य-सज्जा में छप्पय का तथा युद्ध के दृश्य-वर्णन में और कथा-सूत्र को आगे बढ़ाने में चौपाई तथा दोहरा का उपयोग किया गया है।

छन्द-शास्त्र के नियामानुसार चार चरणों के बाद ही छन्द की संख्या दी गई है। कवित्त तथा रोला और उल्लाला से बना मिश्रित छन्द छप्पय भी छन्द-शास्त्र के नियमानुकूल है। किन्तु अडिल नामधारी कुछ छन्द ऐसे हैं जिन में चार के स्थान पर पाँच चरण दिये गए हैं। अडिल के ये पाँचवें चरण कवि के निजी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द द्रष्टव्य है—

जो भूले गुरदुआर थाउ न पाइआ।
माया मोह बिकार मूड लपटाइआ।
करि विखयन सौ प्रीत जनम गवाइआ।
है दुनिआ खिन एक बिरख की छाइआ।
जी ! मूरख मनि अगिआन नजरि न आइआ।५।४४।१६०

अडिल के ये पाँचवें चरण शेष चार चरणों के उपदेशात्मक निष्कर्ष हैं। ये सर्वथा कवि के नवीन प्रयोग हैं—

बिसअर दुध दीआईए ओहु बिख नहीं छोरै
गरधब सुगंध लगाईए भुइ सुता लोहै।
तुमा होइ न मिठडा जे खंड पगोरै।
सुआन पूछ टेढी रहै कछ होत न होरै।
जी ! तिउ कपटी होइ खालसा सतिसंग न लोरै।५।५६।१७२

... ...
... ...

तूं एको नाम अनेक अंत न पाईए।
कर संतन सौ प्रीत भरम चुकाईए।
ताको नाम बिसार अउर कित जाईए।
बहु बिअंत करितार रैन दिन गाईए।
जी ! खालस की अरदास चरनी लाईए॥५।६२।१७८

सेनापति के छन्द-प्रयोग को देखकर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि वे उस समय प्रचलित एवं लोकप्रिय वार्णिक और मात्रिक, सम, अर्धसम तथा मिश्रित छन्दों का अधिकारपूर्ण प्रयोग करने में सफल हुए है।

भाषा

'गुरु शोभा' की भाषा सरल एवं प्रसादगुण-सम्पन्न ब्रजभाषा है। डॉ० हरिभजन सिंह ने लिखा है कि—सेनापति ने ब्रज और खड़ी बोली का प्रयोग बड़े कौशल से किया है। खड़ी बोली ब्रज को सरल करती हुई और ब्रज खड़ी बोली को मुलायम करती हुई प्रतीत होती है। परिणामतः भाषा सर्वत्र सेनापति के उद्देश्य—युद्ध को सुन्दर, सुखद रूप में चित्रित करना—की पूर्ति में सहायक हुई है।[1]

डॉ० मनमोहन सहगल का विचार है कि—ह्रस्व 'इ' और ह्रस्व 'उ' की अनावश्यक मात्राएँ गुरुवाणी-परम्परा के अनुसार दी गई हैं। अर्धाक्षरों का पूर्णाक्षर हो जाना तो मामूली बात समझी जानी चाहिए। मजे की बात यह है कि जहाँ ब्रजभाषानुसार

१. डॉ० हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य पृ०५०८

देवनागरी या गुरुमुखी लिपियों में पूर्णाक्षर की अपेक्षा रहती है, वहाँ कवि ने अर्धाक्षर या विशेषकर 'र' वर्ण का प्रयोग अन्याक्षरों के पाँव में किया है। यथा-सरब के स्थान पर 'स्रब', सरणी के स्थान पर 'स्रणी', गरबकारी की जगह 'ग्रबकारी' आदि।

पंजाबी बोली के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु ये शब्द ऐसे हैं जो बरबस ब्रजभाषा में घुस आए हैं। पंजाबी बोली के वातावरण में रहने वाला कोई भी कवि अनचाहे उनका आकस्मिक प्रयोग कर सकता है, यथा—हती इकबार कद की परी 'या ऐडे-ऐडे वीर धाय' वाक्यों में 'कद' और 'ऐडे-ऐडे' शब्दों का आ जाना परिवेशगत प्रभाव ही कहा जायगा, भाषा का विशिष्ट प्रयोग नहीं। युद्ध-वर्णनों में ध्वनि और टंकार का जादू जगाने के लिए कवि ने कतिपय प्रयोगों में शब्द के अन्तिम अक्षर के संग अनुनासिक भी लगाया है। 'उपायं, खपायं' आदि प्रकार के शब्दों की लड़ियाँ इसी बात का प्रमाण है।[1]

सेनापति के 'गुरु शोभा' की भाषा का सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य प्रादेशिकता का प्रभाव ही है। वे पंजाब क्षेत्र के निवासी थे और पंजाबी के वातावरण में ही उन्होंने अपने इस काव्य का सृजन किया। यह प्रभाव तीन रूपों में अभिव्यक्त हुआ है—शब्दों की विकृति के रूप में, पंजाबी शब्दों के प्रयोग के रूप में और तत्कालीन प्रचलित फारसी शब्दों के प्रयोग के रूप में। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों के बृहदाकार शब्द देखे जा सकते हैं—

(क) रमि रहिओ सब **स्रिसटि** महि।५।३६।१८५।
(ख) **बबेकं** बिचार। **तनखाहदार**।५।७८।१६४।
(ग) गिरद आइ सब दल **खरे**।१२।१६।४८६।
(घ) **साहिबजादे** लीए गहिकै १२।७३।५४३।
(ङ) **गुरजदार फुरमान** लै।१३।३६।५८४।
(च) मुख **चत्र** ब्रह्मे कथे वेद चारं।२०।६५।६३२।
(छ) एक पए असगाह **कूड़ कमाइग्रा**।
इनकी **दित्तो** नामु हुकमु मनाइआ।
एक रहे दरबार जा **तुध** भाइआ।५।६६।१८२।

सेनापति ने केवल सयुक्ताक्षरों का रूप ही भिन्न नहीं लिखा है, अपितु विवेक जैसे असंयुक्ताक्षर-सम्पन्न शब्द को 'बबेक' लिखा है। चार के अर्थ में चतुर का संस्कृत रूपांतर चत्र हो गया है। तसलीम, हुकुम (१३।१३।५५८), तनखाहदार, गुरजदार आदि तत्कालीन प्रचलित फारसी के शब्द भी 'गुरु शोभा' में पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। पंजाबी के उक्त उद्धृत बृहदाकार शब्द ही प्रयुक्त नहीं हुए हैं अपितु क्रिया और पंजाबी की विभक्तियाँ भी स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती हैं—

१. सम्मेलन पत्रिका, भाग ५२, संख्या ३-४, पृ० २१३

जो जन करसी कार हुकमु इओ लिखिआ।
तिसदी पूरन घाल पूरी दीखिआ। १३।४३।५८९

यद्यपि खड़ी बोली की झाँकी कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाती है किन्तु ऐसे स्थल बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं। ब्रजभाषा के साथ ही प्रादेशिक प्रयोग हुए हैं—

(क) लिखा है तुझे जान ईमान सगे।१३।३४।५७९।
(ख) करोगे जरुरी नहीं ढील दीजै। १३।३५।५८०।

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 'गुरु शोभा' की भाषा तत्कालीन पंजाब में प्रचलित और गुरु-दरबार में प्रयुक्त हो रही सरल एवं मिश्रित ब्रजभाषा है। अडिल और पौड़ी छन्दों में ही पंजाबी के प्रयोग उपलब्ध होते हैं जबकि शब्दों की रूप-विकृति सभी प्रकार के छन्दों में उपलब्ध हो जाती है। फारसी के अधिकतर शब्दों का प्रयोग औरंगज़ेब और बहादुरशाह के प्रसंगों से सम्बद्ध है। शेष स्थानों पर वे ही फारसी के प्रचलित शब्द आए हैं जो तत्कालीन पंजाब में मुस्लिम सम्पर्क के कारण प्रचलित हो गए थे। 'जंगनामा' में प्रादेशिकता की छाप पौड़ी छन्दों में दिखाई पड़ती है जबकि 'गुरु शोभा' के पौड़ी छन्द इस प्रभाव से प्रायः मुक्त हैं। इनके स्थान पर अडिल, दोहरा और चौपाई में ये प्रभाव लक्षित होते हैं। अतः 'गुरुशोभा' की भाषा को चलती ब्रजभाषा ही कहा जा सकता है।

सोद्देश्य रचना

वर्णन की दृष्टि से 'गुरु शोभा' में युद्धों के वर्णन अधिक हैं, किन्तु वे न तो उल्लेख की सीमा से आगे बढ़े हैं और न ही वीररस के स्थायी और संचारी भावों की उद्भावना की ओर कवि ने अधिक ध्यान दिया है। शस्त्र-संचालन के लिए आवश्यक अनुभाव ही दृष्टिगत होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कोई भी युद्ध-वर्णन रस-परिपाक की दृष्टि से समर्थ नहीं हो पाया है।

युद्ध-वर्णन की तुलना में खालसा के महत्त्व का अंकन अधिक प्रभावशाली बन पड़ा है। खालसा की परिभाषा, दृष्टिकोण, सिद्धान्त, वेश-भूषा, आचार और उनके जयकारों तथा दशम गुरु के प्रति अगाध विश्वास और प्रेम की जो अभव्यक्ति कवि द्वारा की गई है वह युद्ध-वर्णन से कहीं अधिक प्रभावशाली है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वीर-काव्य का सृजन सेनापति का उद्देश्य नहीं था। वे युद्ध को गुरु की लीला या क्रीड़ा कहकर उसे एक कौतुक का रूप प्रदान कर देते हैं। यही कारण है कि दशम गुरु के दो पुत्रों के युद्ध में काम आने पर भी तथा इस प्रकार एक करुण एवं मार्मिक प्रसंग की अभिव्यंजना का अवसर प्राप्त होने पर भी कवि ने उसकी उपेक्षा कर दी है। इससे स्पष्ट है कि वह अपनी रचना को वीर-काव्य के आवश्यक गुणों से सम्पन्न करने की ओर उन्मुख नहीं है। सेनापति ने यह सब कुछ जान-बूझकर किया है, क्योंकि एक भक्त कवि की तरह उसने अवतारी पुरुष दशम गुरु के चरित्रांकन को ही मुख्य लक्ष्य माना है। खालसा को दशम गुरु का स्वरूप बतलाकर उसके द्वारा किए गए युद्धों को दशम गुरु का कौतुक मात्र मान लिया गया है।

चरितकाव्य के सृजन के साथ कवि की रचना का स्पष्ट उद्देश्य अंतिम दो अध्यायों में प्रकट होता है, जहाँ वह कथा-सूत्र को दशम गुरु के निर्वाण के उपरांत ही न छोड़ कर आगे बढ़ाता है और गुरु-महिमा एवं गुरुनाम-महिमा, परब्रह्म के रूप में उनकी स्तुति तथा उनके शब्दमय-रूप पर बल देते हुए आनंदगढ़ के पुनः एक बार बसने की सम्भावना प्रकट करता है। उसने भविष्य में खालसा के महत्त्व के और भी उज्ज्वलतर होने की कामना की है। उक्त तीनों तथ्यों को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि यह वीर-काव्य नहीं है, अपितु दशम गुरु का चरित-काव्य है। उनके जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना कवि की दृष्टि में खालसा की स्थापना है और सारा काव्य दशम गुरु के इसी शोभाजनक कार्य के प्रभाव से अनुप्राणित है। यह काव्य वीरता और भक्ति का मंजुल समन्वय तो प्रस्तुत करता ही है, खालसा के सिद्धान्तों, कार्यों और भविष्य की सम्भावनाओं को अभिव्यक्ति देने के कारण सोद्देश्य भी सिद्ध होता है।

पौराणिक प्रबन्ध-काव्य

(१) श्याम-सनेही

रचना-क्रम की दृष्टि से 'श्याम-सनेही' आलम की प्रथम प्रबन्ध रचना मानी जाती है। यह एक मंगल काव्य है; तथा इसमें कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की पौराणिक कथा वर्णित है। आलम ने 'श्याम-सनेही' के अन्त में स्वयं ही इस तथ्य का निर्देश किया है कि उसने 'भागवत' के दशम स्कंध में से रुक्मिणी की प्रीति-कथा सुनी, जिससे उसका मन निर्मल हो गया। व्यास की वाणी (संस्कृत) समझ में नहीं आती, टीकाकार ने कुछ समझाया, जिन अक्षरों को समझने में इतनी कठिनाई हो उसे भाषा का रूप कैसे दिया जा सकता है? फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने इस पोथी की रचना की है। मैंने अपनी जीभ को उसी रस से तुष्ट किया है और नाम-स्मरण से प्राप्त होने वाले रस से संतृप्ति लाभ की है। मैंने सरस चौपाई और दोहों में इसकी रचना की है। गुण और अर्थ से सम्पन्न ये अक्षर विविध प्रकार के मोती हैं, जिन्हें ज्योतिर्मय कथा-माला में पिरोया गया है।

आलम ने पौराणिक काव्यों की भाँति इसके पाठ का फल निर्देश किया है और स्वयं अपनी रचना को 'श्याम-सनेही' नाम से अभिहित किया है—

प्रेम भगति ताही पै भावै। करै कंठ जग सोभा पावै।
पोथी अँग मैं जिउँ रही देही। नाम धर्‌यो तिह 'स्याम-सनेही ॥१८३॥
'आलम' स्याम स्नेह की, मो पै कही न जाइ।
जे को याकउँ मन धरै, मनु बांछत फलु पाइ ॥१८४॥

कथावस्तु

आलम के तीनों ही प्रबन्ध-काव्य संस्कृत रचनाओं का अनुसरण करते हैं और कथावस्तु में उन्होंने रंचमात्र भी परिवर्तन की चेष्टा नहीं की। 'श्याम-सनेही' की कथा भी 'भागवत' के दशम स्कंध में वर्णित कथा का पूर्णतः अनुसरण करती है।

'श्याम-सनेही' के आरम्भ में एक छप्यय है, जिसमें शिव की स्तुति की गई है। इसके बाद तीन भुजंगप्रयात-छन्दों में परब्रह्म की स्तुति की गई है और एक दोहे में निरंजन के नाम रटने का उल्लेख है। इसके बाद मूल कथा आरम्भ होती है। कुन्दनपुर में भीष्म नाम का प्रजापालक राजा राज्य करता था। शिव-कृपा से उसे चार पुत्र और रुक्मिणी नाम की एक पुत्री की उपलब्धि हुई। रुक्मिणी की शिक्षा घर पर ही हुई। अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण उसने समस्त विद्या और सर्वगुण अल्पवय में ही सीख लिए। वह सौन्दर्य की प्रतिमा प्रतीत होती थी और नित्य प्रति गौरी-पूजन के लिए मन्दिर में जाती थी। एक दिन उसकी सखी ने रुक्मिणी से कहा कि वह गौरी से कृष्ण को वर-रूप मे प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करे। कृष्ण परब्रह्म-स्वरूप हैं और वे मत्स्य, वराह, नृसिंह, परशुराम और राम के ही अवतार हैं, जो भू-भार के हरण के लिए द्वारिका के राजकुमार के रूप में अवतरित हुए हैं। सखी ने कृष्ण का मनोरम चरित सुनाकर रुक्मिणी के हृदय में यह प्रभाव उत्पन्न कर दिया कि वह स्वयं कमला का अवतार है। रुक्मिणी ने कृष्ण से ही विवाह करने की प्रतिज्ञा कर ली और उनकी (कृष्ण की) प्रतिमा प्रतिष्ठित कर पूजा-उपासना में लग गई। आलम ने यहाँ रुक्मिणी के पूर्वरागजन्य विरह का भी थोड़ा वर्णन किया है।

रुक्मिणी ने पुनः कृष्ण की महानता का वर्णन सुना और प्राण-पण से गौरी की पूजा में लग गई। गौरी ने उसे स्वप्न में दर्शन दिये और रुक्मिणी ने उससे कृष्ण को पति-रूप में पाने का वर माँगा। गौरी ने यह संकेत दे दिया कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं और तुम स्वयं कमला हो। तुम दोनों पूर्वजन्म के पति-पत्नी हो। अतः मेरा वरदान कोई नया नही है। रुक्मिणी ने यह भी वर माँगा कि स्वयं काम उसके पुत्र के रूप मे उत्पन्न हों। स्वप्न की इस घटना ने रुक्मिणी के मन को निश्चित् दिशा दी और दृढ़ता प्रदान की। जिस कृष्ण के प्रति सखियों के बार-बार गुणानुवाद द्वारा प्रेम जागृत हुआ था, स्वप्न की इस घटना ने उसे अपूर्व रूप में पुष्ट कर दिया। इस स्वप्न-प्रदत्त दृढ़ता से ही रुक्मिणी आगे की कठिनाइयों का धैर्य से सामना करने में समर्थ हुई। अतः यह स्वप्नदर्शन कथानक-योजना में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

रूक्मिणी के माता-पिता को जब उसकी इच्छा ज्ञात हुई तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए; किन्तु उसका भाई रुक्म उसका विवाह चंदेरी-नरेश शिशुपाल से करना चाहता था। रुक्म के निमन्त्रण पर शिशुपाल ने जरासंध और दन्तवक्र आदि सहायक राजाओं तथा सेना को लेकर कुन्दनपुर की ओर प्रस्थान किया। इधर रुक्मिणी निराशा और चिन्ता में घुलने लगी और उसने कृष्ण की अनुपलब्धि पर प्राण-त्यागने की इच्छा प्रकट की। उसकी पालिका सहायक बनी और एक ब्राह्मण को दूत के रूप में कृष्ण के पास भेजा। रुक्मिणी ने पत्र द्वारा संदेश दिया कि हे कृष्ण ! तुम्ही ने सीता और अहिल्या का उद्धार किया था, तुम ही मेरे एकमात्र हृदयेश्वर और पति हो; आकर मेरी रक्षा करो; क्योंकि रुक्म की इच्छा शिशुपाल से मेरा विवाह कर देने की है। ब्राह्मण ने पत्र को द्वारिका पहुँचाया। पत्र पढ़कर कृष्ण को पूर्वप्रणय की स्मृति हो आई और वे स्वयं विह्वल हो उठे। उन्होंने

प्रति अत्यन्त भक्ति-भावना दिखाई पड़ती है, यही कारण है कि रुक्मिणी के सौदर्य-वर्णन में उन्होंने सामान्यता नहीं आने दी है।

अपनी शुभ्रता और पवित्रता में वह दूज के चन्द्रमा से भी बढ़कर है। आलम ने उसे 'देवलोक की परी' कहा है। उसका जन्म वैसा ही है जैसे जनक के घर सीता का आगमन। उसके बालरूप की दिव्यता के वर्णन में वे लिखते हैं—

जनमत चाँद द्वैज कै जीता। जनमी जानि जनक घर सीता।
बिमल चंद संपुट सौं उतरी। जानो सुर पूजा की पुतरी ॥१०॥

वह लक्ष्मी और सरस्वती के श्रेष्ठतम गुणों से विभूषित है। उसके आगमन से पिता का भवन रात-दिन जगमगाता रहता है। सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश वहाँ अपेक्षित ही नहीं, जहाँ रुक्मिणी रहती है। शत-शत दीपक जलाने पर भी वह प्रकाश न होगा जो एक रुक्मिणी के कारण होता है। वंश के दीपक के समान वह दोनों कुलों को उजागर करने वाली है।

आगे चलकर आलम ने उसके आगत तारुण्य का वर्णन भी बड़े मनोयोग से किया है। बाल-वय की बातें समाप्त हो गई, यौवन के लक्षण और गुण, क्रम-क्रम से चन्द्रमा की कलाओ के समान बढ़ने लगे; जैसे पुतलियों में श्यामता, भौहों में वक्रता, कटि में क्षीणता, गति में मन्थरता, नेत्रों में चपलता और अंगों में आभा आदि। वयः सन्धि की अवस्था में ही वह श्याम की मूर्ति को हृदय में बसा लेती है। यथा—

मोहन मूरति हिये समाई। जोबन सन्धि जनावत आई।
दिन आगम रजनी जस टूटै। बाल वहि क्रम क्रम क्रम छूटै ॥३६॥

आलम ने रुक्मिणी और श्रीकृष्ण के सौंदर्य का वर्णन साथ-साथ ही किया है। श्याम और श्यामरंग में रंगी रुक्मिणी का सौदर्य-वर्णन कवि की अपनी विशिष्टता प्रतीत होती है— विशेष कर जहाँ नायक और नायिका का एक साथ सौंदर्य-चित्रण किया गया है—

जोबन रूपु दीपु लिय आवै। बाल वहि क्रम तिमरु नसावै ॥
नैन जु मूरति स्याम समाई। पुतरिनु चढ़त कालमा जाई ॥
जिम जिम आवहि हियें त्रिभंगी। तिम तिम होत चली भ्रू भंगी ॥
सिंध सरनि रुक्मिणी दिन जाई। पतरी देह लंक पतिराई ॥
पीत बसन आवै उर सोई। केसर कुसुम बरन तन होई ॥
कुंडल छवि मकराकृत आई। लोइन लहैं मीन चपलाई ॥
हियें स्याम-घन घटा रही बनि। पावहिं दसन दामिनी चमकनि ॥
स्याम स्नेह मलिन लरिकाई। काटतु तनु दरपन कै काई ॥
तरुनाई के संगि सुभावहि। अँगि अँगि चिहन क्रिस्न के आवहि ॥
बानी ध्यानु होइ पिकबैनी। अंबुज मुख हित अंबुज नैनी ॥
गह्यो ग्राह गजकथा चलावै। गजमोचन गुन गजगति गावै ॥३८॥

उपर्युक्त वर्णन में एक ओर तो अनन्य प्रम की उद्भावना की गई है और दूसरी ओर रुक्मिणी और श्रीकृष्ण का अपूर्व सौदर्य चित्रित हुआ है। तद्गुण की यह छटा भाव और कला दोनों दृष्टियों से अत्यन्त उत्कृष्ट है।

आलम ने विवाह के लिए श्रृंगार की हुई रुक्मिणी के रूप का वर्णन भी किया है। गौरी के मन्दिर में सखियों ने माला, लाल चुनरी, तिलक, बेसर, कज्जलरेखा, कर्णफूल, नगजटित खुटिला, हार या दाम, वेणीबन्ध पर फूलतैरया, मांग में मोती, टीकटाड, कंकण आदि से सुसज्जित करके उसे दुलहिन बना दिया और केसर के कुसुम वर्ण का वस्त्र पहन तथा लाल चुनरी ओढ़कर जब वह चली तो सौंदर्य की साकार रेखा प्रतीत होती थी। उसके दैवी सौंदर्य पर सभी मुग्ध हो गए—

निकसत कुवरि रूप की रेखा। सहस कला जनु सूरजु देखा ॥
जगमग दरसु दीठि नहि आवै। रूप की जोति लपट जनु धावै ॥
रबि ससि नखत सहित दुउ जाने। चकचउंधे सभ लोक भुलाने ॥
ससिमुख के सनमुख गिरि परहीं। देवी जानि दंडवत करहीं ॥१५१॥

आलम ने नायक के रूप-चित्रण की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण सम्भवतः यही है कि वे श्रीकृष्ण को अवतारी पुरुष समझते हैं। अतः जहाँ कहीं भी अवसर मिला है वे उनके रूप-चित्रण की अपेक्षा महत्त्व-वर्णन की ओर उन्मुख हो गए हैं, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। श्रीकृष्ण के स्वतन्त्र रूप-चित्रण की अपेक्षा उन्होंने रुक्मिणी के साथ ही उनका भी रूप-चित्रण कर दिया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित एक और दोहा देखा जा सकता है—

दंपति भूखन रथ चमक, गउर स्याम तन भेख।
कांति लीक बहु बरन भई, इन्द्रधनुष की रेख ॥१५६॥

कवि ने जहाँ श्रीकृष्ण के रूप-चित्रण का स्वतंत्र वर्णन कियां है, वहाँ भी उनके दैवी प्रभाव को ही परिलक्षित किया है। उनके इस वर्णन में भी कृष्ण में ईश्वरत्व का ही संकेत मिलता है। जो उन्हें जिस भाव से देखता है वे उसे उसी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं—

भगतनि मिलि भगवानु बखाने। कामिनी कामरूप पहिचाने ॥
म्रिदु मूरति बारिन कहि भायो। वैरिन कलह रूप दिखरायो ॥
जोगिन जोगेस्वरु करि लेख्यो। रोगनि मूरि सँजीवनि देख्यो ॥
मोर बिचार नील घन बोले। निरमल सुर सावन के खोले ॥
अप अपनी मति जिह जसि आई। तिह तस देखे कुंवर कन्हाई ॥१२६॥

आलम का उपर्युक्त वर्णन सीता स्वयंवर के अवसर पर 'मानस' में तुलसीदास

द्वारा किये गए राम के रूप-वर्णन से पर्याप्त साम्य रखता है तथा तुलसी के वर्णन से किसी भांति कम नहीं है।[1]

(ख) **रुक्मिणी का पूर्वरागजन्य विरह**— यद्यपि आलम ने सखी द्वारा श्रीकृष्ण के गुण-श्रवण से ही रुक्मिणी के हृदय में प्रेम की उद्‌भावना की है तथापि उस प्रेम की तीव्रता के लिए उमड़ी सरिता को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है—

कुल कुलिंद ते अनुसरहि, लिए अजादा जाहि।
नदी जु साइर कौ चली, ते किउ सरहि समाहि ।।५५।।

कुन्दनपुर की सीमा पर शिशुपाल के अवांछित आगमन के समाचार से रुक्मिणी को वज्र का-सा आघात पहुँचता है। विधाता का यह परिहास उसे अच्छा नहीं लगता; हरी-भरी रुक्मिणी दुःख से चिर विवर्ण हो जाती है। उसकी दशा जल के अभाव में छटपटाती हुई मछली के समान है—

हरित पीत भई स्याम सनेही। ता भइ रही मीन हुइ देही।
तलफै तनक नीर के डारे। जियै न नेह नीर ते न्यारे।।
पिउ पिउ प्रान अधार है, वार स्वात की एक।
चात्रिग और न जिय धरहि, सागर सरित अनेक ।।क[2]

सखी द्वारा प्रेरित होने पर रुक्मिणी कृष्ण को लक्ष्य करके एक मार्मिक पत्र लिखती है तथा एक ब्राह्मण सन्देशवाहक के माध्यम से उसे कृष्ण के पास भेजती है। उक्त पत्र में रुक्मिणी की विरहानुभूति सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। पत्र क्या है मानो उसकी अन्तर्व्यथा का मूर्तरूप ही है। वह अपने को श्रीकृष्ण की दासियों की दासी बतलाती है, कृष्ण के पूर्वजन्मो के गुणों का स्मरण दिलाती है, उन्हे पाने के लिए अपनी पूजा-अर्चना का उल्लेख करती है और बताती है किस प्रकार स्वयं गौरी ने कृष्ण-मिलन के विषय में उसे विश्वास दिलाया था। जिस दिन से गौरी ने उसे आशा बंधाई है उसके प्राण श्रीकृष्ण-चरणों के निकट ही रहते हैं—

डारी मन की डोरि, गाढ़े गहियहु साजना।
छोड़हु प्रीति न तोरि, तन जिमि गुड़िया डोर भइ ।।[3]

यह अनुभूति भी श्रीकृष्ण के अवतारत्व की धारणा से अत्यन्त आच्छादित हो गई है। यद्यपि भारतीय परम्परा के अनुसार आलम ने अपने दोनों ही प्रेम-कथा-काव्यों में नायिका से प्रणय-निवेदन करवाया है, परन्तु कामकन्दला का प्रणय कामप्रेरित है, जबकि रुक्मिणी का निवेदन श्रद्धाभक्ति-समन्वित माधुर्य-प्रेरित। कामकन्दला के प्रणय-निवेदन में

---

१. तुलसीदास, मानस, बाल काण्ड, पृ० २०४-२०५
२. आलम, श्याम-सनेही, याज्ञिक जी वाली प्रति से
३. वही,

कातरता नहीं, किन्तु रुक्मिणी का निवेदन एक प्रणयिनी की याचना की अपेक्षा भक्त की पुकार अधिक प्रतीत होती है। इस प्रकार की आर्द्रता में ही पूर्वरागजन्य विरह के अश्रुबिन्दुओं के दर्शन हो जाते हैं—

रोकतु स्वासु बिरह कै ताती। लोइन घूंटि लिखी मैं पाती।
उहै छूटि आसनु सौं पाई। कै छूटहि जिउँ मिलै कन्हाई ॥७८॥
सरनि सरनि कहि करउँ पुकारा। आवहु बेगि न लावहु बारा ॥
... ...

ऐसे गज कौं कउन छुड़ावै। ताते मोहि भरोसो आवै।
गउरि प्रसाद न मिथ्या मानउं। हरि अइहैं निस्चै इह जानउं ॥७८॥
कर परसत मसि औटत तए। अच्छर सुलगि स्याम ह्वै गए ॥७८

आलम ने प्रेम की एकनिष्ठता पर बहुत बल दिया है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण के दर्शनों की प्यासी है और अपने हृदय में उसने गौरी से वर प्राप्त कर श्रीकृष्ण को एकमात्र पति बनाने की धारणा दृढ़ कर रखी है। यह स्वाभाविक है कि विवाह के उद्देश्य से शिशुपाल के आगमन के समाचार से उसे गहरी ठेस लगती, जिसकी अभिव्यक्ति उसके द्वारा कृष्ण को लिखे हुए पत्र में इस प्रकार हुई है—

जो पतिव्रत आपुन व्रत राखै। ताकहुँ अनभल कोई न भाखै।
जो मालति मधुकर मन धरै। नीच कीट कैसे मनु करै ॥८२॥

रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण के माध्यम से प्रेषित पत्र में कहीं उसकी कातरता का, कही श्रीकृष्ण की महत्ता का और कहीं उसकी विरहानुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। इस विरह-भावना में न तो कामातुरता है, न मिलन की वह इच्छा जो सामान्य नायक-नायिका में दिखाई पड़ती है। वह स्वय कमला है, विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण उसके पूर्वजन्म के पति हैं, अतः उसका उद्धार राम द्वारा किए गए सीता के उद्धार के सदृश ही है।[1] दर्शन की आशा और उद्धार की कामना के अतिरिक्त विरह की अभिव्यक्ति मर्यादा में निबद्ध रही है। बड़े सरल शब्दों में कवि ने संकेत कर दिया है—

हिय पावक अखियनि में पानी। निस दिन अउरि अउरि उबरानी ॥८८॥

पूर्वरागजन्य विरह में जिन विविध दशाओं का निदर्शन किया जाता है उन दशाओं का विस्तृत चित्रण आलम ने नहीं किया है।

(ग) **कृष्ण का पूर्वरागजन्य विरह**—आलम ने रुक्मिणी द्वारा प्रेषित पत्र को ही कृष्ण के हृदय में प्रेम-जागरण का कारण माना है। पत्र पाते ही उन्हें पुरातन प्रेम की स्मृति हो आती है और वह प्रेम नये रूप में उमड़ पड़ता है। वे बार-बार पत्र पढ़ते हैं

१. आलम, श्याम-सनेही, छन्द-संख्या ८६

और उसे हृदय से लगाते हैं। स्मृति के जल से सिंचित होते ही उनके हृदय में पुरातन प्रीति की ज्वाला चूने की आग के समान धधक उठती है—

विरह बुझानी सरति जल, सींचत उठी सु लागि।
प्रीति पुरातन प्रज्वली, ज्यों चूने की आगि॥[1]
... ...

पत्री भीतरि बेगि मंगाई। बाचन लाग छोरि जदुराई।
जो जो आखर मनमहि आवहि। रोमपुलक तन प्रेम जनावहि॥
नउतन प्रेम पुरातन भयो। चीरी पठत चीरि मन गयो।
बिरह व्यापि थकि रहे अबोले। पाती पढ़त पात जिम डोले।
छोरि पढ़हि अरु बहुरि लपेटहि। पाँति पाँति हिरदे सिउँ भेटहि॥९७॥

इस सांकेतिक वर्णन में रोमांच, हृद्य की विकलता, जड़ता, कम्प और उन्माद का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है। विरह-संकेतों के लिए संचारी भावों का ही आश्रय लिया गया है। पत्र पढ़ने पर कृष्ण की प्रेम-द्रवित स्थिति का अत्यन्त मार्मिक और सजीव चित्रण करने में कवि सफल हुआ है।

(घ) **युद्ध-वर्णन**—आलम ने 'श्याम-सनेही में बलराम और रुक्म की सेना का युद्ध-वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें बलराम की वीरता का उत्तम प्रदर्शन किया गया है—

हलु उठाइ दुहवर जिहलाई। पाछिल पाइ परौ जिउ आई॥१६७॥

आलम के युद्ध-वर्णन की अपनी पद्धति है, जिसमें वे नायक की अपेक्षा उसके सहायकों और उसकी सेनाओं को ही उसमें प्रमुखता देते हैं। इनमे भी दोनों सेनाओं की भिड़न्त का वर्णन वे बड़े मनोयोग से करते हैं, परन्तु यह वर्णन, वर्णन की ही सीमा तक रहता है, रस-परिपाक की सीमा तक नही पहुँच पाता—

रथ सिउँ रथ दंतनि सिउँ दंती। सूरनि सिउँ सूरनि की पंती॥
पाइक सिउँ पाइक भल जुरई। जीवत इक सिउँ एक न मुरई॥१६७॥

सेनाओं के युद्ध-वर्णन में गज-युद्ध का वर्णन तो आलम ने एक प्रत्यक्षदर्शी की भाँति प्रस्तुत किया है—

खग्गि घाइ टूटहिं सुंडाहल। फूटहिं कुंभ झरहिं मुकताहल।
खग्ग घाइ कुंभनि तोरंती। कटि कटि चंवर चुबहि ओरंती॥
अति मदंध मुख फेरत नाहीं। घाइलु घूमि घूमि बिरझाहीं।
राबत जब गैंबर बस परहीं। धर सिउँ पटकि धूरि जस करहीं॥

---

१. आलम, श्याम-सनेही, याज्ञिक जी वाली प्रति से

झरहिं रुहिरु झरना गिरि साँचे । चलहिन हस्त अचल हुइ माँचे ।।
खग्ग घाइ हस्ती चिंघारैं । टूटहिं दंत मंत्र सिर झारैं ।।१६७ ।।

युद्ध-वर्णन में कवि ने भाषा को ओज गुणानुकूल बनाने का प्रयास भी किया है ।

(ङ) द्वारिका वासियों की प्रसन्नता तथा विवाह-वर्णन—आलम ने कृष्ण के प्रति द्वारिकावासियों का अनन्य प्रेम उसी प्रकार व्यक्त किया है जैसे सूर ने ब्रजवासियों का कृष्ण के प्रति । द्वारिकावासियों की कृष्ण-विरह की वेदना भक्ति-सम्पन्न प्रेमी-हृदय की वेदना है । वे कृष्ण के लौटने पर उनके दर्शनों से वैसे ही तृप्त होते है जैसे चन्द्र-दर्शन से चकोर, सिन्धु-लहरियों से मीन, घन से पपीहा, बसन्त से पत्र-विहीन तरु और प्राण से मूछित शरीर । द्वारिकावासियों को श्रीकृष्ण वैसे ही मिले जैसे अन्धे को नेत्र और कमल को प्रभात तथा किसी दीन को करोड़ों की निधि ।[1] इसमें एक ओर द्वारिकावासियों की कृष्ण के विरह से उत्पन्न पीड़ा अभिव्यक्त हुई है और दूसरी ओर उनकी दैन्य-भावना । आलम का यह वर्णन भक्त द्वारा परब्रह्म की उपलब्धि से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता के वर्णन सदृश ही है । आलम ने हिन्दू विवाह-पद्धति के अनुसार ही श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन प्रस्तुत किया है । मांडौ (मंडप) बनाना, मोतियों से चौक पूरना, सोने की चंवरी बांधना, दुलहन का श्रृंगार, गणेशपूजा, ब्राह्मण की वेद-ध्वनि, गाँठ जोड़ना तथा पाणिग्रहण आदि का उन्होंने विधिवत् वर्णन किया है। यहाँ तक कि हवन की समिधा को अग्नि में डालने आदि का भी उन्होने वर्णन किया है ।[2] आलम द्वारा विवाहोपरांत किए जाने वाले लोकाचार का उल्लेख भी हुआ है ।[3]

यद्यपि आलम ने एक हिन्दू कवि की भाँति ही विवाह का वर्णन किया है, किन्तु उसने श्रीकृष्ण और रुक्मिणी को सात भाँवरें दिलाने की अपेक्षा चार ही भाँवरों का उल्लेख किया है—

भांवरि तीनि पलटि बैठारे । चउथी दे सभ कारज सारे ।।१७७।।

---

१. हरखे सकल द्वारिकावासी । पीर आजु हियरे की नासी ।
देखि दरसु ससि किरन अघाए । जरे चकोर नैन सियराए ।।
... ...
जिउँ बिनु जीय देह मुरछाई । आए क्रिस्न प्रान निधि पाई ।
दरसे स्याम जगत उजियारे । लहे अन्ध जिउँ लोइन तारे ।।
... ...
नेह नैकु नहि हिए समावै । जैसे दीनु कोटि निधि पावै ।।१७३

२. पूजि विनाइकु आसिख दीनी । चहुं दिसि बिप्प बेद धुनि कीनी ।
जोरी गाँठि गरणु सुखकारी । पानि पानि महि लिए मुरारी ।
बैसंतर की सिखा जगाई । समिध पलास बोरि घृत लाई ।। १७७

३. नारी मिलि मंदिर लै गईं । मुंदरी थाल खेल कहुं दई ।।
बार बार हारे जदुराई । रुकमनि कुंवरि जीति लै जाई ।।१७७

बाह्य दृश्य-चित्रण—आलम ने प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य मे अवसर और प्रसंगानुकूल विभिन्न वस्तुओं व दृश्यों आदि का वर्णन भी किया है। उषाकाल, सूर्योदय, गौरीमंदिर तथा द्वारिकापुरी—उसके हाट, कृष्ण के महल, कृष्ण के मन्दिर-द्वार के ऐश्वर्य—आदि का वर्णन कवि ने बड़े उत्साह से किया है, क्योंकि यह पुरी रुक्मिणी की ही नहीं, अपितु आलम के परम आराध्य श्रीकृष्ण की पुरी है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ देखने योग्य हैं—

ऊँचे मंदिर कलस अभासे। तुम जाने रवि कोटि प्रगासे ॥
आगे जाइ देखि धउँ चाही। क्रिसन भवन अमरावती आही ॥
चलि आयो तहँ विप्पु हुलासा। क्रिसन मंदिर देखिसि कैलासा ॥
नगन जटित सब कनिक पनारा। मनि मानिक के जटित किवारा।
सुन्दर जानु भरे संचन के। मनि गनि कलस महल कंचन के ॥
जहँ लगु डीठ उच्च लगु धाई। मंदिर सहित उड़ मंडिल समाई ॥
जगमग मनि मानिक उजियारे। दिपहिं रैनि दीपक जनु बारे ॥
उजियारी घर घर पर छाई। सुकल स्यान पखु जानि न जाई ॥

ब्राह्मण-दूत ने श्रीकृष्ण-मंदिर के मणि-जटित द्वार पर आकर श्रीकृष्ण का जो ऐश्वर्य देखा उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

सुर नर मुनि गन गंध्रप द्वारे। निसि दिन अस्तुति करहिं पुकारे ॥
नवौ निधि जहाँ चंवर दुरावा। प्रात बेद बदी जो बुलावा ॥
सेवहिं जिमि सेवक अरु दासी। आठो सिध सिध चौरासी ॥
रतन किवार सूरज की कांती। चौखट नील मनिन की पाँती ॥
देखि द्वार दिज आगों चाइन्ह। जहाँ जगु चले सीस के पाइन्ह ॥

इसके अतिरिक्त गौरी-मंदिर का वर्णन भी कवि ने बड़े मनोयोग से किया है—गौरी का मन्दिर बहुत ऊँचा है, उस पर स्वर्ण कलश प्रतिष्ठित है तथा उसके ऊपर ऐसी ऊँची ध्वजा फहराती है कि जिसे देखते ही कुल का क्लेश मिट जाता है।

रुक्मिणी के उद्धार के लिए तत्पर कृष्ण के रथ का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—रथ, मणियों से जटित है, रथ के पहिए चन्द्राकार वज्र के समान मजबूत हैं; उसमें जुते हुए चपल सैंधव, सिंह के समान शक्तिशाली है; जिनके कंधों के घने बाल पंख के समान लगते हैं; वे घोड़े जब पूँछ उठाकर चलते है तो लगता है मानो उड़ रहे हैं। घोड़ों की चंचलता और गति की तीव्रता दर्शनीय है—

धर थराहि थिरु ना रहहिं, फरकत छाँह निहारि।
आगे जाहिं तुरंगमा, पाछे रहे बयारि ॥

ये उपर्यक्त वर्णन कवि की सूक्ष्म पर्यालोचन शक्ति तथा काल्पनाशीलता के उत्तम निदर्शक हैं।

अलंकार, छन्द और भाषा

अलंकार—अनुप्रासमयी भाषा के कारण आलम ने 'श्याम-सनेही' में सादृश्यमूलक अलंकारों का ही अधिक उपयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अलंकार द्रष्टव्य हैं—

१. छेकानुप्रास

मुख मंडल पर लसैं,
जटित जोति अरधग ॥१॥

२. वृत्यानुप्रास

नाथ निरंजन निरबिघन, करुनामय निहकाम ॥३॥

३. यमक

निसतारन तारन तरन ॥३॥

४. उत्प्रेक्षा

बिमल चंद संपुट सौं उतरी। जानो सुर पूजा की पुतरी ॥१०॥

५. प्रतीप

जिहि मंदिर संतत उजियारे। अस न होइ सौ दीपक बारे ॥४१॥

६. रूपक

रूप चढ़त मुख-चन्द्र पर ॥३७॥

७. परिवृत्ति

लोइन लहैं मीन चपलाइ ॥३८॥

८. दृष्टांत

जिउँ बिनु जीय देह मुरछाई
आए क्रिस्न प्राननिधि पाई ॥१७३॥

९. वाक्यार्थोपमा

दिनु दिनु प्रीतिकला जिमि चढ़ई। क्रिस्न भगति बल्ली हियँ बढ़ई ॥३६

१०. लुप्तोपमा

पाती पढ़त पात जिम डोले ॥६७॥

छन्द—आलम ने 'श्याम-सनेही' की रचना मुख्यरूप से दोहे और चौपाई (चौपाई) में की है। आरम्भिक छन्द छप्पय है, जो रोला के चार चरण और उल्लाला के दो चरणों से बनता है। इसके बाद उन्होंने तीन भुजंगप्रयात् छन्दों का प्रयोग किया है, जो वार्णिक है और चार यगण से बनता है।

चौपाई में १६ मात्राओं का एक चरण होता है और अन्तिम वर्ण दीर्घ होता है। 'किन्तु, 'श्याम-सनेही' के चौपाई छन्दों में सर्वत्र अन्तिम वर्ण दीर्घ नहीं है। कहीं-कहीं अन्तिम वर्ण ह्रस्व भी मिल जाता है—

ऐस नछत्र पुत्र जो होइ। तिहूं लोक बंदै सभु कोइ ।।१०।।

१५ मात्राओं का यह छन्द चौपाई न होकर चौपई ही है। 'श्याम-सनेही' में एक सोरठा (छन्द-संख्या ७५) तथा एक मनहर कवित्त (छन्द-संख्या ८६) का भी प्रयोग हुआ है। इस प्रकार 'श्याम-सनेही' में छप्पय, भुजंगप्रयात्, दोहरा (दोहा), चौपाई, अथवा चौपई, सोरठा और कवित्त का उपयोग हुआ है।

भाषा—'श्याम-सनेही' की भाषा पश्चिमी अवधी है, विशेषत: लखनऊ-कानपुर से लेकर कन्नौज तक की। आयोध्या जैसे पूर्वीक्षेत्र में बोली जाने वाली पूर्वी अवधी ब्रजभाषा के उतनी समीप नहीं है, जितनी पश्चिमी अवधी। पूर्वी अवधी के—के,जे,से, ते आदि रूप क्रमश: को, जो, सो, तो आदि में परिवर्तित हो जाते है। यही स्थिति विभक्तियों की भी है। आलम ने सम्बन्ध कारक की विभक्ति के लिए कै, कर, केरि का प्रयोग किया है जो पश्चिमी अवधी में ही उपलब्ध होते हैं। कर और केरि रूप तो ब्रजभाषा के केरों के ही अवधी रूप हैं—

क्रिस्न भगतु 'जो' स्रोता होई।३।१५-१६।[1]
हस्त चित्र 'सो' लिख दिखलावै।८।५-६
मोरि चाह लै 'को' पहुँचावै।७५।९-१०
राखिन कलसु सूर 'कै' काँती।
... ...
भीखम सैन 'राउकर' नाऊं

पश्चिमी अवधी में ही क्रिया के कहन, लिखन, उठनु आदि नांत रूप ब्रजभाषा के सदृश मिलते हैं। आलम ने इनका भी प्रयोग किया है—

बात 'कहन' कहुँ जो अँग सरै।४३।३।
... ...
बहुत 'लिखन' की समो न पायो।६२।१
... ...
तब लगु 'उठनु' न पाइयो।१३५।६

'जाना' क्रिया के रूप गो, गा, भो आदि ब्रजभाषा में ही प्रयुक्त होते हैं। आलम ने भी इनका प्रयोग किया है—

चकि चउंधो मैं 'गो' बिसमाई।
काटो कुंभ मूंड 'गा' बांची।
दूलह 'भो' ससपाल।

---

१. यहाँ प्रथम संख्या ३ पृष्ठ की सूचक है और संख्या १५ तथा १६ उस पृष्ठ की पंक्तियों की संख्या की बोधक है।

आलम का ब्रज और अवधी पर समान अधिकार था। उनका 'आलमकेलि' ब्रजभाषा में ही लिखा गया है। 'माधवानल कामकन्दला' तथा 'श्याम-सनेही' में अवधी का प्रयोग करते हुए ब्रजभाषा की पदावली और विभक्तियों का प्रयोग भी स्वाभाविक प्रतीत होता है। अतः 'श्याम-सनेही' की भाषा को ब्रज प्रभावित अवधी कहा जा सकता है।

आलम पंजाब में भी रहे, अतः उनकी पदावली में पंजाबी के भी कुछ शब्द आ जाना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए 'कुड़माई', 'सिउं', तिमरु जैसे रूप 'श्याम-सनेही' में मिल जाते हैं, जो अवधी के क्षेत्र मे न प्रयुक्त होकर पंजाब में ही प्रयुक्त होते हैं—

आप ते ऊंचे करत वड़ाई। सभ कोइ कन्या की कुड़माइ ॥४८
जो केहरि सिउं पगु रोपहि।

'सिउँ' के स्थान पर ब्रजभाषा में सों और अवधी में 'से' या 'ते' प्रयोग होता है। इन कतिपय प्रभावों को छोड़कर 'श्याम-सनेही' की भाषा पश्चिमी अवधी है।

इस प्रकार आलम एक ऐसे कवि हैं जो तुलसी के समान दो भाषाओं में समर्थ काव्य की रचना कर सके है। यह भाषाधिकार अपने आप में कोई साधारण उपलब्धि नहीं है। उनकी अवधी का स्वरूप सामान्यतः सरल और अकृत्रिम है, परिष्कृत और संभ्रांत या नागरिक रुचि की अपेक्षा वह जगह-जगह अनगढ़ और ग्रामीण रुचि के अधिक समीप है। 'श्याम-सनेही' की भाषा सरल, साधारण और व्यावहारिक है, किन्तु इसमें स्थान-स्थान पर अवश्य कुछ अच्छे काव्यात्मक स्थल भी उपलब्ध हो जाते हैं।[1]

'श्याम-सनेही' 'माधवानल कामकन्दला' से पहले की सृष्टि है। इस समय तक आलम कृष्ण-रंग में ही रंगे प्रतीत होते हैं। उनके मुक्तक कवित्त भी इसी रंग में रंगे हुए दिखाई पड़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि आलम की यह प्रथम प्रबन्ध रचना होते हुए भी 'माधवानल कामकन्दला' से किसी भाँति हीन नहीं है। 'श्याम-सनेही' पौराणिक प्रेमकथा है और 'माधवानल कामकंदला' काल्पनिक अथवा ऐतिहासिक। किन्तु कथा-भेद होने मात्र से 'श्याम-सनेही' में प्रेम की अभिव्यंजना 'माधवानल कामकन्दला' से भिन्न रूप ग्रहण नही कर सकी। 'माधवानल कामकन्दला' में प्रेमकी लौकिक अभिव्यंजना हुई है, जबकि 'श्याम-सनेही' में भक्तिपरक प्रेम की अभिव्यंजना। दाम्पत्य-प्रेम दोनो में समान रूप से अभिव्यंजित होता है। रुक्मिणी, कृष्ण को केवल प्रणयीमात्र न मानकर जन्म-जन्मान्तर का पति मानती है। कामकन्दला में भी प्रेम की एकनिष्ठता और दाम्पत्य-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इससे स्पष्ट है कि प्रेम-कथा लिखते हुए भी आलम का झुकाव प्रेम की एकनिष्ठता की ओर अधिक रहा है। वे उसे दाम्पत्य-रंग में रंग देते हैं। उनके इन प्रेम-कथा-काव्यों पर सूफी रंग नहीं चढ़ पाया है। वे भारतीय साहित्य की प्रेमपरक अभिव्यक्ति को ही महत्त्व देते हैं। १८६ छन्दों की यह छोटी-सी रचना, अपनी कथावस्तु में सरल तो है ही

---

1. डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा, रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३४४

नायक-नायिका दोनों में अनन्य-प्रेम की व्यंजना भी करती है। बहुविध वर्णनों से संवलित होने एवं प्रसादगुण-सम्पन्न भाषा के कारण यह मनोरम अभिव्यक्ति पा सकी है।

(२) सुदामा चरित

आलम की सम्पूर्ण कविता भक्ति और प्रेम से ओत-प्रोत है। इनकी मुक्तक रचनाएँ और 'श्याम-सनेही' भक्त-हृदय के प्रेम की अभिव्यंजना करती हैं, तो 'माधवानल कामकन्दला' लौकिक एव दाम्पत्य-प्रेम की। 'सुदामा चरित' भी जीवात्मा के प्रतीक सुदामा और परब्रह्म के प्रतीक कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ही लिखा गया है। भक्ति और प्रेम के कवि आलम ने 'सुदामा चरित' लिखकर अपनी परम्परा का निर्वाह मात्र किया है। 'सुदामा चरित' की भाषा और शैली पूर्णत. भिन्न है। उर्दू-शब्दावली के प्रयोग के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी ऐसी भाषा को 'रेखता' कहा है।[1] यह उनकी सबसे वाद की रचना प्रतीत होती है। आलम ने धर्म-परिवर्तन कर लिया था, किन्तु हृदय-परिवर्तन नही। यही कारण है कि कृष्ण और उसके चरित के प्रति उनकी जो आस्था आरम्भ मे थी वही 'सुदामा चरित' में भी दिखाई पड़ती है। इसका भी कलेवर बदल गया है, हृदय वही है।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आलम के 'सुदामा चरित' को नरोत्तम दास की रचना 'सुदामाचरित' (स० १६०२) से मिलता-जुलता बतलाया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि "सुदामाचरित का रेखता बंद होना यह बतलाता है कि यह भाषा लोक-भाषा के रूप में छाने लगी थी"।[2] श्री मनोहरलाल गौड़ ने इसकी भाषा में अंटा बांध्या, किसी तरफ, लटका, तिस खातिर, तुझकूं, मुझ कूं, आदि प्रयोग देखकर लिखा है कि इस प्रकार की उर्दू सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्य में प्रयुक्त होती थी।[3] जहाँ तक रेखता के प्रयोग का प्रश्न है इसकी पृष्ठभूमि चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल से ही तैयार होने लगी थी। रेखता का प्रारम्भिक और व्यापक प्रयोग दक्षिण में हुआ है और महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा' में शन्दाने-वाज (१३४३ ई०), शाह मीरां जी (१४९६ ई०), अशरफ (१५०३ ई०), फीरोज (१५६४ ई०), बुरहानुद्दीन (जन्म १५२२ ई०), एकनाथ (१५४८-९९ ई०), शाहअली (मृत्यु १५६६ ई०) तथा वजही (१६०९ ई०) आदि की गद्य-पद्यबद्ध रेखता रचनाओं के उदाहरण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि रेखता का प्रयोग चौंहदवीं शताब्दी से निरन्तर क्रमबद्ध रूप में दक्षिण भारत में होता आ रहा था। उन्होंने १५०० ई० से १८४० ई० तक के लगभग २८ और रेखता-कवियों की रचनाओं के विवरण और उदाहरण दिये हैं।[4] औरंगजेब के शासनकाल में रेखता के सुप्रसिद्ध कवि मुहम्मद अमीन ने संवत १७५४ (१६९७ ई०) में 'यूसुफजुले खाँ की कथा रेखता में प्रस्तुत की थी। सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक प्रेम-कथाओं के लिखने की एक अविच्छिन्न परम्परा दिखाई पड़ती है।

---

१. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३९२
२. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० २७-२८
३. मनोहर लाल गौड़ का लेख, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० ४६१
४. दे०, राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा

साहित्य में प्रयुक्त होने वाली रेखता भी इसका अपवाद नहीं है। आलम ने 'माधवानल कामकन्दला' की रचना रेखता के 'यूसुफ जुलेखाँ' की रचना के आसपास ही की। इसके बाद ही आलम ने 'सुदामाचरित' की रचना रेखता में की होगी, क्योंकि इनकी अन्य रचनाओं—'आलमकेलि', 'श्याम-सनेही' और 'माधवानल कामकान्दला' में भाषा की दृष्टि से संस्कृत की तत्सम पदावली की ओर झुकाव अधिक है, अतः यह उनकी सबसे बाद की रचना है।

वर्ण्य-विषय

सुदामा चरित ६० पद्यों की एक छोटी रचना है और इसमे भी 'श्याम-सनेही' की तरह ही एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा को वर्णन का विषय बनाया गया है। आरम्भ में भगवान् कृष्ण का कीर्तन है, जिसमें कृष्ण के प्रति उनकी अनन्य भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

"ऊंकार है अलष निरंजन कैसा कृष्ण गोवर्द्धन धारी।
नादर सबके कादर सिर पैं सुन्दर तन घनश्याम मुरारी।।
सूरति खूब अजायब मूरति आलम के महहूब बिहारी।
जगमग जग है जमाल जगत में हिलमिल दिल की जय बलिहारी।।
सतनाम अरु बहुत बंदगी जो इसको नीके कर जाने।
ज्यों ज्यों याद करे वह बंदा त्यों त्यों वह नीके कर जाने।।
देषो कर्म कियो बांभन ने जो कछु दिया सो मन में जाने।
ऐसो कौन बिना गिरधारी जो गरीब के दुष को माने।।"

आलम ने कथावस्तु में किसी तरह का परिवर्तन नहीं किया है। वर्णन का क्रम वही है जो नरोत्तमदास के 'सुदामाचरित' में है। इस काव्य में मंगलाचरण के बाद सुदामा की दीनदशा, उनकी स्त्री की खिन्नता, स्त्री द्वारा सुदामा से बार-बार द्वारिकावासी सखा कृष्ण के यहाँ जाने का अनुरोध करना, सुदामा का उक्त अनुरोध को टालते रहना, अन्त में विवश होकर फटेवेश में द्वारिका जाना, कृष्ण द्वारा सुदामा का सादर सत्कार करना एवं उनके दुःख से विह्वल होना, सुदामा की स्त्री के भेजे हुए तण्डुलों को बड़े चाव से खाना, कुछ दिन आतिथ्य स्वीकार कर सुदामा का अपने घर को प्रस्थान करना, कृष्ण का स्पष्ट रूप से सुदामा को कोई आर्थिक सहायता न देना, इस पर सुदामा का मन ही मन झुंझलाना और अपनी स्त्री की मूर्खता पर सिर धुनना, लौटने पर झौंपड़ी के स्थान पर विशालकाय महलों को देखकर चकित होना, अपनी स्त्री के मुख से इस महान् रहस्य से अवगत होना और अन्त में पति-पत्नी दोनों का कृष्ण-भजन करते हुए काल-यापन करना ही क्रमबद्ध रूप में वर्णित है।

कृष्ण और सुदामा की कथा का यह क्रमबद्ध रूप भक्तों और हिन्दू-लोक-जीवन में ज्यों का त्यों प्रचलित है। आलम ने 'माधवानल कामकन्दला' की कथा जोधकवि की इसी नाम की रचना से और 'श्याम-सनेही' की कथा 'भागवत' के दशम स्कन्ध से ली।

अपनी रचनाओं में मूलकथा में उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया। 'सुदामा चरित' की इस मूलकथा में भी उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया है। 'श्याम-सनेही' के उल्लेखानुसार भागवत की कथा उन्होंने सुनी ही थी। अतः यह आवश्यक नहीं है कि उन्होंने मूल पौराणिक कथा का अनुसरण न कर नरोत्तमदास के 'सुदामाचरित' का अनुकरण किया हो। मूल आधार ग्रन्थ के एक होने के कारण ही यह कथा-साम्य है।

शैली-भाषा और छन्दादि

'सुदामा चरित' की वर्णन-शैली सरल एवं वर्णनात्मक ही है। न तो इसमें अलंकृत पदावली का प्रयोग हुआ है; न इसे ऐसा रूप दिया गया है, जिसके कारण यह सामान्य एवं कम शिक्षित व्यक्ति की पहुँच से बाहर हो जाय। द्वारिकापुरी का ऐश्वर्य और कृष्ण की उदारता भी बड़े सहज और स्वाभाविक ढंग से वर्णित है। इस सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति में भी सुदामा की मनोदशा का बड़ा ही हृदय-ग्राही चित्रण हुआ है। चिन्ता-मग्न सुदामा जब घर लौटकर आते हैं और अपनी टूटी-फूटी कुटिया को ढूँढते हैं तथा उसके स्थान पर एक भव्य-भवन को देखकर उनकी जो दशा होती है, इसका वर्णन आलम ने निम्नलिखित रूप में किया है—

> "पैंडा काटि बार देषी वढ़ि, आये जहाँ कदीम बसेरा।
> देषी बड़ी अंबारत ऊँची, जाय न सके सकुचिकरि नेरा।
> जगमग देषी महल कि षूबी, फिरि-फिरि करै तहाँ ही फेरा।
> रे क्या बनी महल अब मुझ कूँ, कीधर गया सुड़ेरा मेरा" ॥४८॥

सुदामा के अन्तर्द्वन्द्व का स्थान-स्थान पर स्वाभाविक चित्रण हुआ है। महल की ऊँची अट्टालिका से सुन्दर वस्त्राभूषणों में सुसज्जित अपनी ही पत्नी द्वारा बुलाये जाने पर सुदामा की जो दशा हुई उसके वर्णन में मोहक और शिष्ट हास्य की झलक भी मिलती है और दौलतमन्दों के प्रति विद्रोह की भावना भी—

> औरत इंतजार चौवारह, देषि धनी कूँ बांह डुलावै।
> ऊंची नजरि देखत रे बांभन, इह मिहरी किहि काज बुलावै ॥५४॥
> मैं मसकीन गरीव बांभन हौ, इह तौं किसी भूप की राणी।
> मेरे दिल मइ यही अचम्भा, जोहन बरा इहां मौ आनी।
> सायति मुझे देषि कै दुर्वल, दौलत वंत जराफतवानी।
> भरम भुलाना भया अयाना, यही बात अपनै मनि मानी ॥५५॥

आलम ने उर्दू-शब्दावली का प्रयोग इसमें अवश्य किया है, किन्तु अप्रचलित अरबी-फारसी की शब्दावली नहीं मिलती। उन्होंने ऐसी शब्दावली ही ग्रहण की है जो 'आम फहम' बन चुकी थीं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शब्दों को देखा जा सकता है—

१. कहां गया वह **साजबाज** सब ॥४९॥
२. कौन देह अब **दाद** दीन की ॥४९॥
३. केतक हूं जरे **खिलबतीखाने** ॥५०॥

इनके अतिरिक्त **जरबाफी, गिलम, परद** (५२), फूर खवास, दरबान, सरबराह (५३), गिरद, निसान, नजरि, औरत (५४), मसकीन, जराफत वानी (५५), रहम (५६), षवाब, सदका (५७), सिजदा, सुकराना, गुलामी (५६), मुसकिल, मंजिल, कामिल (अरबी) (६०), जैसे प्रचलित-अप्रचलित अरबी-फारसी के शब्द ही आलम ने प्रयोग किए हैं।

पूर्वी बोली के कई ठेठ शब्द भी उन्होंने 'सुदामा चरित' में प्रयोग किए हैं, जैसे—टटिया, षुरपा (खुरपा), पटिया, बांभनि (४६) तथा मिहरि (५४) आदि।

आमल ने अपने प्रवन्ध-काव्य 'श्याम-सनेही' और 'माधवानल कामकन्दला' में चौपाई का अधिक प्रयोग किया है। उन्होंने यद्यपि 'सुदामा चरित' में छन्द-परिवर्तन कर दिया है, किन्तु वे चौपाई का मोह नहीं छोड़ सके हैं। 'सुदामा चरित' में जो छन्द प्रयुक्त हुआ है वह १६ मात्राओं का ही छन्द है। पादाकुलक+चौपाई अथवा चौपाई+चौपाई अथवा पादाकुलक+पादाकुलक के प्रयोग द्वारा ३२ मात्राओं का एक चरण बनाकर चार-चार बन्ध का एक-एक छन्द रखा है। यह समान सवैया या मत्त सवैया से मिलता-जुलता छन्द है। तुक ३२ मात्राओं के चरणान्त में ही है। उदाहरण के लिए नीचे लिखी पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

"कहाँ गया टूटा सा छप्पर, कहाँ गई फाटी सी टटिया (४६)
पादाकुलक+चौ०
देषी बड़ी अंबारत ऊँची जाय न सकै सकुचि करि नेरा (४२)
चौ०+चौ०
केतक तौं दरबान द्वार पहि, केतक चौकीदार षरे इह ॥५३॥
पा०+पा०

'सुदामा चरित' में सुदामा की दयनीय दशा और भक्ति-भावना की अभिव्यंजना के बाद स्वयं आलम ने भी भक्ति-योग की कठिनाइयों का संकेत करते हुए यह कहा है कि इस दुनिया में जिसने प्रभु पर अपना तन-मन न्यौछावर कर दिया वही कामिल व्यक्ति है। इससे आलम की इस रचना का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को अभिव्यक्ति देने के लिए ही इस रचना को माध्यम बनाया है—

"जितनैं जोग जुगत मैं कहिये तिन मैं भगत जोग है मुश्किल।
सोई इस मारग कौं पावै, जिसका होई सदा.........दिल।
जोग भोग का हासल इस मौं अैसी ठौर और नहि मंजिल।
जिस तन मन वार्‌या साहब पर, सो दुनियां मों कहिए कामिल ॥६६॥

प्रेमकथा प्रबन्ध-काव्य

(१) कथा हीर राँझन की

पंजाब में बहुत सी प्रेम-कथाएँ प्रचलित है, जिनमें हीर-राँझा की प्रेम-कथा को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। यह कथा पजाब प्रदेश की ही लोक-कथा है या कहीं बाहर से आई है, इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। दामोदर ने सर्वप्रथम इस प्रेम-कथा को काव्य-रूप दिया। उनके कथनानुसार यह मात्र प्रेम-कथा नहीं, अपितु सजीव घटना है, जो देखी गई।[१] डॉ० मोहन सिंह इसे यूनानी कथा मानते है और हीर शब्द को हीरोइन से बना स्वीकार करते हैं।[२] 'झंग गजेटियर' में 'स्वीनर्टन' द्वारा हीर की कथा दिए जाने का उल्लेख है।[३] डॉ० मोहनसिह ने यह भी स्वीकार किया है कि यदि हीर-राँझा की कथा काल्पनिक नहीं है तो वह बहलोल लोधी के राज्यकाल में घटित हुई।[४] गुरु-शब्द-रत्नाकर के कर्त्ता भाई कान्ह सिंह ने इसका समर्थन किया है।[५] बहलोलखाँ का राज्य-काल सं०१५०८ से १५४६ तक है।

दामोदर के समय तक हीर-राँझा की प्रेम-कथा अत्यन्त लोकप्रिय हो चुकी थी। स्वयं उनके समकालीन गरुदास[६] और शाह हुसैन[७] ने इस हीर-राँझा की कथा की ओर संकेत किया है। 'दशम ग्रन्थ' मे भी हीर-राँझा का उल्लेख किया गया है।[८]

सूफियों ने ऐतिहासिक लोककथाओं को सूफी प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए काव्य का विषय बनाया, किन्तु असूफी प्रेम-कथा-काव्यों का कोई महत् उद्देश्य नहीं था। वे केवल प्रेम के उदात्त स्वरूप की प्रतिष्ठा करने के लिए लिखे गए। सम्भवतः इसीलिए सूफी प्रेम-काव्यों के साथ ही साथ इस परम्परा का विकास हुआ। सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक लगभग ९३ प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गए।[९] पंजाब में भी वारिस और

---

१. आख दामोदर अखी डिठा जो सिर सलेट दे आइ

—दामोदर कृतहीर

२. डॉ० मोहन सिह, पजाबी साहित्य दा इतिहास, पृ० १५६

३. पंजाब डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, झंग डिस्ट्रिक्ट १९२९, पृ० ३२

४. डॉ० मोहन सिंह, हिस्ट्री ऑफ पजाबी लिट्रेचर, पृ० ४८

५. भाई कान्ह सिंह, गुरु-शब्द-रत्नाकर, पृ० ८२७

६. रांझा हीर बखाणीए ओह पिरम पराती

—वार २७

७. रांझण रांझण फिरां ढूंढेदी रांझण मेरे नाल

—दर्दी, पजाबी साहित्य दा इतिहास, पृ० १२९

८. रांझा भयो सुरेस तहं भई मैनका हीर

—दशम ग्रन्थ, पृ० ९४४

९. डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० ९६,१४९

—हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य, पृ० १२—१९

मुकबल ने हीर-राँझा की कथा लिखी है। वारिस की कथा दुखान्त एव मुकबल की सुखांत है। अहमद और हमद की 'हीर' भी उल्लेखनीय है।

गुरुदास दशम गुरु के दरबारी कवि थे। जिस समय उन्होंने अपने हीर-राँझा नामक काव्य का सृजन किया उस समय तक दामोदर, अहमद तथा मुकबल द्वारा लिखित कथाएँ लोकप्रिय हो चुकी थीं। गुरुदास ने दामोदर की रचना को ही अपनी कथा का आधार बनाया--'करौ कथा जो पाछे सुनी। जिउ बरनी दामोदर गुनी'। दामोदर सूफी नहीं थे, परन्तु उनकी रचना पर सूफी परम्परा का प्रचुर प्रभाव पड़ा। उनकी हीर का वातावरण भारतीय नहीं है। उनकी हीर 'लैला-मजनू' तथा 'यूसुफ जुले खाँ' की परम्परा में आती है। कथावस्तु की मसनवी शैली, रूप-वर्णन तथा उद्देश्य की दृष्टि से उस पर फारसी प्रभाव स्पष्ट है।[1]

दामोदर की तरह गुरुदास भी असूफी एवं हिन्दू थे। उन्होने स्वयं अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि सच्ची प्रीति का वर्णन करना ही उनका लक्ष्य है—

साच प्रीत कौ उपज्यो प्रेमा। कहूँ कथा हिदै धर नेमा।
सुनो प्रीत मो मन धरि ध्याना। सति प्रीत कउ करों बखाना।[2]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि किसी धार्मिक या साधनापरक सिद्धान्त का प्रतिपादन करना उनका लक्ष्य नहीं था। उन्होंने एक लौकिक प्रेमकथा को सच्ची प्रीति के अनुभूति-प्रवण स्तर पर ही प्रस्तुत किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में गणेश की एक दोहे और चार अर्धालियों में स्तुति की गई हे। इसके बाद एक दोहे और दस अर्धालियों में निर्गुण ब्रह्म और गुरुदेव की स्तुति की गई है---

नमस्कार तिह पुरख कौ जा के रूप न रेख।
माया जांकी अति प्रबल, घट घट बसै अलेख ॥२॥
... ...
नमो नमो गुरुदेव दिआला। ग्यान दीयो जिह निपट उलाजा ॥३॥

तत्पश्चात् एक दोहे और पाँच अर्धालियों में सरस्वती की स्तुति है और उससे अपनी वाणी की शक्ति बनने की प्रार्थना की गई है।

गुरुदास ने देव व गुरु-स्तुति के बाद औरंगजेब की प्रशस्ति प्रस्तुत की है और रचना का 'पातशाह के सन पचासे' (सं० १७२५ वि०) में रचे जाने का उल्लेख किया है तथा अपनी रचना में दामोदर के अनुसरण करने की बात कही है। यह आश्चर्य की ही बात है

---

१. गुरुदास, कथा हीर राँझन की, भूमिका, पृ० ८
२. वही, पृ० ३८

कि जो लोग गुरुदास को दशम गुरु का दरबारी कवि मानते हैं वे इस तथ्य को भुला देते हैं कि उनका दरबारी कवि निम्नलिखित पक्तियाँ नहीं लिख सकता——

न्याइ रीति ताकि अति अकरी। इक ठौर है बाघ अरु बकरी।
समुन्द जाइ खांडयो पखारो। भउ ताको सभ जग में भारो॥
वहुत बरख जीओ जग माही। विना धरम बाछत किछु नाही॥

गुरुदास की यह रचना दशम गुरु के दरबार में आने से पूर्व ही लिखी गई होगी। और, उसके बाद उन्होंने केवल—'साखी हीरा घाट की' की ही रचना की। गुरुदास ने औरंगज़ेब की प्रशस्ति द्वारा दामोदर गुणी की रचना का अनुसरण मात्र करके शाहे-वक्त की प्रशस्ति केवल तीन चार पक्तियों में कर दी है। इसके बाद ही उन्होंने इस प्रेम-कथा का आरम्भ किया है।

कथावस्तु

झंग सियाल के चौधरी चूचक के यहाँ चार पुत्रों के बाद एक लड़की पैदा हुई, जिसका नाम हीर रखा गया। वृद्धावस्था की सन्तान होने के कारण हीर का लालन-पालन बड़े स्नेह के साथ हुआ। वह अत्यन्त सुन्दर और रूपवती थी। वह अधिकाँश समय सखियों के साथ झूला झूलने, नौका-विहार करने आदि में व्यतीत करती थी। उसके पिता ने रंगपुर खेड़ा के मुखिया अलीखाँ के पुत्र शाहबाजखाँ के साथ उसकी मगनी कर दी। पड़ोस के कसबे के नूरखाँ द्वारा सताए गए लुड्डन नामक एक नाविक को हीर ने प्रश्रय दिया और नूरखाँ के आक्रमण करने पर स्वयं हीर ने अपने साहस और युद्ध-कौशल से उसे पराजित किया। लुड्डन को उसने अपना सेवक रख लिया।

हज़ारे के चौधरी खान मुअज्जम के यहाँ धीधो राँझा का जन्म हुआ। वह अत्यन्त रूपवान और सुशील था। ६ वर्ष की आयु मे ही उसकी माता का देहान्त हो गया। फलत: वृद्ध पिता का वह लाडला बन गया। उसके अन्य भाई—ताहर, नाहर और जीवन उससे ईर्ष्या करने लगे। यद्यपि राँझा की मंगनी याकूब बड़ाईच की लड़की के साथ हो गई थी, परन्तु राँझा के पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह अनाथ और निराश्रित हो गया। उसके भाइयों ने विवाह की सामग्री हथिया ली और उसके वध का षड्यन्त्र रचा। राँझा के भाइयों को यह सन्देह था कि उनकी पत्नियाँ उसमें अनुरक्त हैं। राँझा वहाँ से भाग निकला।

राँझा घूमता हुआ एक मस्जिद में पहुँचा, जहाँ एक धीवर कन्या ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की और अपनी माँ को उसके पास भेजा। परन्तु वह माँ स्वयं राँझा के सौन्दर्य को देखकर विचलित हो गई। राँझा वहाँ से भागकर एक गाँव में पहुँचा जहाँ एक गृहिणी ने उसे सदा के लिए रखना चाहा, परन्तु वह यहाँ से भी चुपके से चल दिया और घूमता-घामता चनाब नदी के किनारे पहुँचा।

वहाँ पहुँचने पर उसे पाँच पीर मिले। राँझा की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे एक काला कम्बल, मुरली, आशा और बल तथा प्याला दिया, पाँचवें पीर ने स्वयं हीर

को दिया और स्वप्न में दोनों का मिलन भी करवा दिया। राँझा चलता हुआ हीर के गाँव पहुँचा। हीर के सेवक लुड्डन ने उसकी मुरली की मधुर तान से मुग्ध होकर हीर के पलंग पर उसे सोने की स्वीकृति दे दी। हीर ने अपने पलंग पर सोये हुए उसे देख लिया और क्रोध में भरकर सखियों सहित मारना पीटना शुरू कर दिया। राँझा वहाँ से चुपके से चल पड़ा, परन्तु हीर उसके मुरली-वादन पर मुग्ध हो गई थी। अतः उसने चतुराई से राँझा को अपने पिता के यहाँ ग्वाले 'चाक' के रूप मे रखवा दिया। राँझा ने चूचकखाँ को पिछली सारी बातें बता दीं। वह सारा दिन भैंसे चराता और ८०ग्वालों का काम अकेले संभाल लेता। ईर्ष्या-वश अन्य ग्वालों ने उसकी हत्या करने का प्रयत्न किया, पर पीरों ने उसे बचा लिया।

हीर सारा दिन राँझा के साथ घूमती, खेलती और उसके लिए भोजन के रूप में 'चूरी' ले जाती थी। अतः दोनो के प्रेम की चर्चा चल पड़ी। चूचकखाँ ने कैंदो नामक हीर के मामा को जाँच-पड़ताल के लिए भेजा। वह राँझा से 'चूरी' ले आया और हीर का प्रेम प्रकट हो गया। हीर ने कैंदो का घर जला दिया। चूचकखाँ ने स्वयं वस्तुस्थिति का पता लगाया और सच्चाई जानकर उसने हीर को विष देने का निश्चय किया। परन्तु हीर पर विष का कोई प्रभाव नही हुआ।

हीर ने शाहबाज़खाँ के साथ विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। पर उसकी सखी सस्सी के सहयोग से उसका विवाह शाहबाज़खाँ के साथ हो गया। जब हीर अपने पति शाहबाजखाँ के साथ ससुराल जाने लगी तो राँझा भी उसके साथ चला। इससे क्रुद्ध होकर शाहबाजखाँ ने मार्ग मे ही राँझा को समाप्त करने का प्रयत्न किया; परन्तु वह बच निकला और मुरली बजाता हुआ खेड़े आ गया। हीर की सखियों ने उसे अपने हृदय-मन्दिर में रहने के लिए आमन्त्रित किया, परन्तु अब राँझा को सारी प्रकृति हीरमय ही दिखाई देती थी। उसने योगीसर का आश्रय लिया, जिसने हीर की प्राप्ति के लिए उसे गुरु-मन्त्र दिया।

हीर की दशा बड़ी विपन्न थी। उसने सास-ससुर से अपने दिव्य प्रेम की बात कही। उसकी विधवा ननद सहती ने रामू नामक ब्राह्मण से अपने गुप्त प्रेम की चर्चा करके हीर-राँझा के प्रेम-सम्बन्ध को जान लिया। सहती ने रामू द्वारा राँझा को सन्देश भेजा, जिसमें हीर के विरह का वर्णन था।

रामू से सन्देश पाकर राँझा योगी के वेश में हीर के घर पहुँचा और सहती के प्रयत्न से एक षड्यन्त्र रचा गया। हीर जब सहती के साथ स्नान के लिए नदी-किनारे गई तो एकान्त पाकर सहती ने शोर मचा दिया कि हीर को साँप ने काट लिया है। विष न उतरने पर अलीखाँ स्वयं प्रार्थना कर योगी राँझा को हीर के पास ले गया। दोनों अलग कमरे में ४० दिन तक रहे और एक रात सहती के कहने से वे दोनों दीवार तोड़कर भाग निकले।

शाहबाज़खाँ समझ गया कि वह योगी स्वयं राँझा था। अतः गाँव के योद्धाओं को साथ लेकर उसने उसे बीच मार्ग में जाकर पकड़ लिया। उसी मार्ग से कुछ और योद्धा जा रहे थे, जिन्होंने राँझा की कहानी सुनकर उसे आश्रय दिया।

फलस्वरूप दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ। इतने मे पास से गुजरने वाली जमींदार की बारात के लोगों ने दोनों पक्षों को शान्त कर उन्हे कोट-कबूले में काज़ी के पास न्याय के लिए भेज दिया। काजी ने दोनो पक्षों की बाते सुनीं। वहाँ राँझा चुप रहा पर हीर ने कहा कि हम दोनों 'वली' है और पीरों ने हमारा मिलन कराया है। हमारा प्रेम अनन्त है। पर काज़ी को उसका कथन प्रलाप मात्र लगा और उसने शाहबाजखाँ के साथ हीर को जाने का आदेश दिया।

राँझा ने पीरों का स्मरण किया, जिनकी अलौकिक शक्ति से गाँव मे आग लग गई। लोग यही समझने लगे कि काज़ी ने अन्याय किया है। काजी ने स्वयं राँझा से आग बुझाने की प्रार्थना की। राँझा के संकेत से आग शान्त हो गई। काज़ी ने प्रभावित होकर क्षमा मांग ली और हीर, राँझा को सौंप दी गई। पाँच पीर वहाँ थे ही, उन्होंने कहा कि अब तुम्हारा संसार में रहना उचित नहीं। तुमने आदर्श प्रेम की स्थापना के लिए कष्ट सहे। अब उसकी पूर्ति हो गई। अतः अब अन्तर्धान हो जाना चाहिए। इस तरह हीर और राँझा का अन्तर्मिलन हुआ।

गुरुदास की यह कथा दामोदर की कहानी का रूपांतर है, इस पर वारिस का प्रभाव नहीं है। वारिस की 'हीर' में न तो हीर की बाल्यावस्था का चित्रण है और न नूरे के साथ युद्ध का। वारिस की 'हीर' का राँझा भाइयों के कटु व्यवहार से विवश होकर घर से निकलता है, परन्तु दामोदर और गुरुदास दोनों की 'हीर' में भाभियाँ राँझा की ओर आकृष्ट होती हैं। वारिस की कथा वियोगान्त है। काज़ी ने हीर और राँझा को झंग भेज दिया, जहाँ चूचक ने राँझा को बारात लाने के लिए कहा किन्तु इसी बीच हीर को विष दे दिया। राँझा ने यह समाचार सुनकर आत्महत्या कर ली। इसके अतिरिक्त दोनों कथाओं में नाम आदि के भी कई भेद है।[1]

वर्णन-कौशल

गुरुदास ने अपनी इस रचना को कड़वकों में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक कड़वक के अन्त में दोहा या सोरठा का धत्ता दिया गया है। आरम्भ में सोरठा है, गणेश-स्तुति में चार अर्धालियों के बाद एक दोहा है। परब्रह्म की स्तुति में १० अर्धालियों के बाद दोहा है और सरस्वती-वन्दना में पाँच अर्धालियों के बाद एक दोहा। कथा के आरम्भ से अन्त तक एक-एक कड़वक में कम से कम नौ अर्धालियाँ हैं और अधिक से अधिक छयालीस। इससे स्पष्ट है कि कथा-प्रवाह के अनुसार ही कवि ने अर्धालियों की संख्या रखी है। सूफी-पद्धति का यहाँ अवलम्बन नही किया गया, जहाँ चौपाई की निश्चित् अर्धालियों के बाद दोहा या सोरठा दिया गया है। इस कथा में कुल ११८ कड़वक है।

गुरुदास को मार्मिक स्थलों की पूर्णतः पहचान है और ऐसे स्थलों के वर्णन में उन्होंने पूरी तन्मयता प्रदर्शित की है। इस दृष्टि से १. हीर का नखशिख-वर्णन, २. युद्ध-

१. कथा हीर राँझन की, भूमिका, पृ० १३

वर्णन, ३. हीर-राँझा का प्रथम मिलन, ४. बारात-वर्णन, ५. विरह-वर्णन और ६. हीर-काज़ी-संवाद आदि प्रसंग अधिक मनोरम बन पड़े हैं।

१. **हीर का नखशिख-वर्णन**—गुरुदास द्वारा हीर का नखशिख-वर्णन न केवल परम्परा-पुष्ट है, अपितु वह बहुत कुछ लौकिक है और रीतिकालीन कवियों के शृंगारिक वर्णन के सदृश भी है। सूफी काव्यों की तरह इसमें नायिका के सौन्दर्य में खुदाई-नूर के दर्शन की आकाँक्षा नहीं है। यह सौन्दर्य-वर्णन उसकी वय:सन्धि की अवस्था का है। इससे पूर्व की अवस्थाओं का कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया है—

तीन बरख की जब ही भई। खेलन की बुध तिह निरमई।
खेलै डोलै बीथन मांही। मात पिता अति ही सुख पांही।
बरख सात जब भए बितीता। बाहर निकसी खेलन प्रीता।
तीन बरख जब अउर विहाने। चपलाई अर लज्जा माने।
बरख दुआदस जबहुं पहूँची। धरन लगी ग्रीवा अति ऊँची।
मुसकै अखीआँ फुरके ओठा। ठौर ठौर सखीअनि के जोठा।
तिह संग खेल अति रस कीनी। दई अवस्था अवरै दीनी ॥७॥

स्वयं गुरुदास ने 'नखशिख बरनो ताह सुन्दर को' कहकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वे प्रेम-कथा-काव्य के लिए नायिका का सौन्दर्य-वर्णन आवश्यक समझते हैं। हीर काव्य की नायिका है, अत: उसके सौन्दर्य को अलौकिकता न प्रदान करते हुए भी अनुपम अलंकृत बनाया गया है। वह कंचनवर्णी एवं चन्द्र-ज्योत्स्ना की तरह आभा-सम्पन्न है। उसके नित्य दर्शन की कामना उत्पन्न होती है। वह अपने काले और चरण-स्पर्शी केशां को धोने के लिए जब पानी में डुबाती है और सुखाने के लिए मुँह मोड़ती है तो उनसे झड़ती हुई बूदे ऐसी प्रतीत होती हैं मानो सर्पों के मुख से विष टपक रहा हो।[1] वह केशों को गूंथते हुए उन्हे सर्प समझकर स्वयं भयभीत हो जाती है। उसका ललाट दीप्त है और उस पर इश्क के अंकुर उद्भूत है।[2] इन्द्रधनुष के समान उसकी भौंहे और काजल के बिना ही काले कटाक्षयुक्त दोनों नेत्र हैं। वे लाज से भरे और बिना मद के ही मदमाते हैं। मृग, मीन, मधुप, खंजन उन्हें देखकर लज्जित हो जाते हैं। वे कानों तक फैले हुए हैं। कमल की पंखुरियों के समान उनकी गोराई है।[3]

नखशिख-वर्णन के इन प्रसिद्ध उपमानों में कहीं-कहीं कवि की कल्पनाशीलता के भी दर्शन हो जाते हैं। उन्होने पुतलियों की समता झरोखे में बैठी हुई किसी कुमारी से की है।[4] वक्षस्थल का स्पर्श करती चोटियाँ कुच-कलश से दूध ढूंढते हुए अहिसुत प्रतीत

---

१. तिहगर तै जो बूदै परंई। सरपनि मुख तै जन बिख ढरई ॥८॥
२. मसतक दीप्रा जोति भरपूरा। ता पर लिख्यो इसक अंकूरा ॥८॥
३. द्रष्टव्य—कड़वक ८
४. तीछन बान पलकै अनियारी। पुतरी बैठ झरोखै बारी ॥९॥

हो रहे हैं।[1] रूढ़ उपमानों के साथ उन्होंने कुछ नए उपमानों का भी समावेश किया है। दाँतों की उज्ज्वलता की समता आकाश के तारों की उज्ज्वलता से की गई है—दाति पात मोतीअनि कै निरमल। गगन तरीया ते अति उजल ॥६॥ सभी अंगों का वर्णन करते हुए कुचों के वर्णन में गुरुदास भी विद्यापति की तरह अनेक उपमान एक साथ प्रस्तुत कर देते हैं।[2] एड़ी का वर्णन तो बिहारी की नायिका की एड़ी के वर्णन से पर्याप्त मिलता-जुलता है।[3] बिहारी के दोहों में नाइन को यही भ्रम है कि उसकी लाल एड़ी मे महावर पहले से लगा हुआ था, किन्तु गुरुदास उससे भी आगे बढ़कर उसके भय का वर्णन करते हैं—

जावक लावन को कोऊ नारी। जब तै पकरी हाथ मंझारी।
दिख लाली चितवै मन माहीं। जावक दीओ है कै नांही।
चित संभार जब जावक लावै। रंग-चउगना एड़ी पावै।
ताह देखि तीय निपटे डरे। अगन जानि धरनी गिर परे ॥१०॥

गुरुदास ने जहाँ एक ओर हीर का नखशिख-वर्णन रीतिकालीन श्रृंगारिक परम्परा के अनुरूप किया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने बल और अस्त्रशस्त्र के संचालन में भी उसे दुर्गा के समान चित्रित किया है—

बल ताकौ मैं कहाँ बखानो। नगर माह सिंघ प्रगट्यो जानो।
ससत्र असत्र में अति साची। गुनीओ आगँ सति कर बाची।
हसती चाल चलै मदमाती। दया दान कर अतही दाती।
कारज सम अति चपल दिखावै। ता ते सिंघ न भागन पावै ॥११॥

ललाट पर इश्क के अंकुर और शौर्य तथा चपलता में दुर्गा का यह द्विविध व्यक्तित्व गुरुदास की नायिका हीर को सूफी कवियों की नायिकाओं से सर्वथा भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी क्रीड़ा-प्रियता का भी विस्तृत वर्णन, विशेषतः झूला झूलने का प्रस्तुत किया गया है।[4]

२. **युद्ध-वर्णन**—जब नूरे कुछ योद्धाओं के साथ घाट पर अपनी नाव ले जाने के लिए उपस्थित हुए तो हीर ने स्वयं उनको मार भगाया। यहाँ कवि ने केवल हीर के शौर्य का ही प्रदर्शन किया है, क्योंकि उसके शौर्य के सामने सारे योद्धा घोड़े की बागडोर मोड़ नाक और पगड़ी गँवा कर भाग गए—

---

१. अहिसुत मानो दोउ बीरा। कुच कलस तै ढूंडै छीरा ॥६॥

२. द्रष्टव्य, कथा हीर राँझन की, कड़वक १०

३. पाय महावर देन को, नाइन बैठी आय
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़त पाय ॥१०६॥
—बिहारी बोधिनी, पृ० ४८-४६

४. द्रष्टव्य-कड़वक ११

सिंघ भांत हीर तब दोउरी। धर्‌यो ध्यान मन सीता गौरी।
करि कलाच चोटि असि करी। लोथ पुरख की धरनी परी।
आयो पुरख अवर बलवाना। हरे हीर ताके प्राना ॥२३॥
... ...
सभ जोधन मिल फेरी बागै। गए गवाइ नाक अरु पागैं ॥२४॥

कवि ने हीर और नूरे का युद्ध-वर्णन प्रस्तुत करके उसके दुर्गारूप की सार्थकता सिद्ध कर दी है। हीर की सहेलियाँ भी उसी तरह की वीर हैं जो ढाल-तलवार लिए विद्युत-वेग से नूरे की फौज के भीतर घुस जाती हैं––

सभि बारी तब करि बीचारा। दामनि जिउ चमकें इक बारा।
करि खांडे मुख ढाल धरै। दउर फौज के भीतर परै ॥२३॥

गुरुदास ने युद्ध का एक और दृश्य वहाँ प्रस्तुत किया है, जहाँ हीर-राझाँ भाग कर कुछ योद्धाओं की शरण में पहुँचते है और पीछा करते हुए शाहबाजखाँ के योद्धाओं से उनका संघर्ष होता है। शाहबाजखाँ के साथ बहुत से योद्धा थे, किन्तु शरणप्रदाता योद्धा नाहरों के दल में केवल १४-१५ ही व्यक्ति थे। कवि ने दशम गुरु के अन्य दरबारी कवियों की भाँति ही रण-रंग को फाग या होली खेलना कहा है––

कैसे नाहर दल मे पिले। आयो फाग जन होली खेले।
जांको मारै लै तलवारा। करै टूकि दोऊ एकै बारा।
अरु तिह हाथनि तीर जु छुटै। खेड़ियों के पिंजर सभ फुटै।
लाकहि बरछा जाहि संभारे। बेग जीन ते लेह उतारे।
... ...
नाहर गिरे पाँच भू मांही। दोऊ ओर कोऊ भागे नांही ॥११२॥

ध्यान देने की बात यह है कि गुरुदास के युद्ध-वर्णनों में न तो विस्तार है, न सामान्य मार-काट से अधिक कुछ चमत्कार।

३. हीर-राँझा का प्रथम मिलन––हीर से मिलने का बरदान तो राँझा को पँचपीरों में से पाँचवें पीर ने दिया था।[1] हीर तथा राँझा के प्रथम दर्शन का प्रेम, हीर की उग्रता तथा क्रोध और राँझा की सहनशीलता तथा उदासीनता में उभरा है। इन विरोधी भावों में उनका सहज आकर्षण सुन्दर बन पाया है। राँझा के असाधारण रूप तथा सौन्दर्य को देखकर हीर तो घायल ही हो गई, किन्तु राँझा की निर्पेक्षता तथा चुपचाप चले जाना उसके औत्सुक्य तथा खिंचाव का केन्द्र बना। इस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के बाद कवि पीरों का स्मरण करता है, जो पहले ही हीर को राँझा को सौंप चुके थे। यह बात

१. पीर पांचवें दीनी हीरा। चूचक जाई गुणी गहीरा।
दे हीर हीर पै गयो। जाई तिसै सुपनंतर भयो।
कह्‌यो हीर कउ बचन उचारा। दीम्रो भरता तौ कउ प्यारा ॥३८॥

राँझा से भी छिपी न रही, पर हीर के साथ तो कितनी ही सखियाँ थीं जो तब तक राँझा के प्रति आसक्त हो चुकी थीं। हीर को यह कैसे सह्य होता ? अतः उसने क्रोध में आकर उन्हें अलग कर दिया तथा स्वयं अपने प्रियतम की 'इसक-जंजीर' में बंध गई।[1] इस प्रथम मिलन में कवि ने विविध भावों का उतार-चढाव अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिखाया है। अपने पलंग पर सोये हुए राँझा को देखकर क्रुद्ध हीर अपने झूले से नदी में कूद पड़ी——

परी कूद के नद के बीचा। क्रोध साथ डर कीयो न मीचा ॥४०॥

राँझा की जड़ता भी दर्शनीय है, जो सखियों से मार खाकर भी कुछ नहीं बोलता——

हाथ हमारे थक पक गए। कै कौऊ ढीठ जो बोलि न दए ॥४१॥

राँझा के सौन्दर्य पर सखियों की विह्वलता का चित्रण गुरुदास ने वैसा ही किया है जैसा माधवानल के सौन्दर्य पर मुग्ध नारियों की विह्वलता का वर्णन आलम ने किया है—

एकनि भूखन बेग उतारे। एकनि मुख कुमदन जिउ मुरझे।
एकनि जान्यो चन्दा निकस्यो। ताको मन चकोर जिउ बिगस्यो ॥४१॥

सखियों की आसक्ति, हीर की ईर्ष्या और सखियों द्वारा इसका ज्ञान, तथा हीर के राँझा के प्रति आकर्षण ने सभी सखियों को वहाँ से हटा दिया। यहाँ गुरुदास ने दोनों के मिलन को ऐन्द्रिक एवं मांसल रूप प्रदान कर दिया है——

कदि धीधो कुच परसन करई। दो मुनि को जनु दरसन करई।
कदै अधरन तै अंम्रत चाखै। हरख बचन कदै मुख तै भाखै ॥४५॥

यहाँ कवि ने दोनों का स्नेह-संकेत दे दिया है—

साच प्रीत को बड़े सनेहा। मुझ तुझ मैं जब लग देहा ॥४५॥

४. बारात-वर्णन——कवि का मन वर्णनात्मक स्थलों में विशेष रूप से रमा है। वहाँ पर वह पात्र तथा स्थिति का ध्यान न रखता हुआ भावों में बह गया है।[2] अलीखाँ के पुत्र शाहबाजखाँ की बारात का वर्णन इसी प्रकार का है। उसने बारात की प्रत्येक वस्तु का विवरण सहित चित्रण किया है। यहाँ पर नाम-परिगणन शैली ही अपनाई गई। उदाहरण के लिए बारात के घोड़ों का विवरण देखा जा सकता है——

तुरकी ताजी बांके घोड़े। कहा गिनति कितने तिहि जोड़े।
मुसकी अबलक सुरखे नीले। एक कुमैती अरु सगले पीले।
समुन्द बोजि औरि बहु रंगा। सुरनि साज लागे तिह अंगा ॥७०॥

---

१. द्रष्टव्य—दोहा, ४४
२. कथा हीर राँझन की, भूमिका, पृ० २३

जहाँ बारात-वर्णन बड़े मनोयोग से किया गया है, वहाँ विवाह-वर्णन में कुछ विसंगतियाँ भी दिखाई पड़ती हैं। अलीखाँ और चूचकखाँ दोनों ही मुसलमान थे, परन्तु वे दोनों अपने बेटे-बेटी के विवाह में ब्राह्मण को पुरोहित बनाते हैं और उसे कंगना बांधने के लिए भेजते है। ये दोनों ही तथ्य मुस्लिम विवाह-आचार के प्रतिकूल प्रतीत होते हैं—

अलीखाँ प्रोहत को कह्यो। कहा ढील किउ चुप कर रह्यो।
भले महूरति खाँ ग्रिह जईये। रीत वहु को पुनि कर अईये।
कंकना बांध जबै तूं आवै। बारो तक खाँ के ग्रिह जावै।
ब्रह्मन खांन चूचक ग्रिह गयो। पाछै खाँ पिसकारो कीयो ॥७१॥
... ...
ब्रह्मन रीत करन जो आयो। हीर मात को बोल सुनायो।
बांधो कंकना ताके हाथा। पड़ मंत्रन अप हाथनि साथा ॥७३॥

५. प्रेम-व्यंजना एवं विरह-वर्णन—गुरुदास की रचना 'कथा हीर-राँझन की' प्रेम-कथा है। अतः यह स्वाभाविक है कि उसमें प्रेम की व्यंजना को प्रमुखता दी जाती। हीर-राँझा के मिलन का आशीर्वाद तो पीर ही दे देते हैं और स्वप्नावस्था में उनके मिलने का आयोजन भी करते हैं, किन्तु उनका भौतिक प्रथम मिलन नदी तट पर होता है। राँझा के रूप में मोहिनी शक्ति है, किन्तु केवल इस सौन्दर्य-जन्य आकर्षण के कारण हीर राँझा पर मुग्ध नहीं होती। राँझा अवश्य हीर को देखकर ठगा-सा रह जाता है। राँझा के प्रति सखियों की आसक्ति देखकर हीर को ईर्ष्या होती है और तब वह राँझा को 'अपना' कहने का विचार करती है। अतः हीर का राँझा के प्रति प्रेम केवल सौन्दर्याकर्षण-जन्य नहीं, अपितु नारी सुलभ ईर्ष्या-जन्य भी है। अतः यह प्रेम नितान्त लौकिक धरातल पर अंकुरित हुआ है। हीर को यह चिन्ता भी है कि राँझा उसे छोड़कर न चला जाए। इस प्रथम मिलन में ही गुरुदास ने ऐन्द्रिय सम्पर्क का संकेत कर दिया है।[1]

लौकिक प्रेम-कथाओं के सामने प्रेम की पवित्रता की रक्षा करने की समस्या रहती है। गुरुदास ने ऐन्द्रिय श्रृंगार का वर्णन करते हुए भी उसे संयमित रखा है। इस प्रेम के अंकुर को हीर-राँझा के चिरसाहचर्य से पोषण मिलता है।

यद्यपि हीर-राँझा का मिलन दैव-निर्णीत तथ्य है, परन्तु दोनों के सामने लौकिक कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगती हैं। हीर, मीरा की तरह विष का पान करके भी पंच-पीरों की अदृश्य शक्ति के कारण बच जाती है। राँझा की हत्या का प्रयत्न हीर का भाई करता है, पर वह भी बच जाता है। पीर, हीर का विवाह नहीं रोक पाते और पुनर्मिलन के लिए हीर-राँझा को लौकिक बुद्धि का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। हीर-राँझा के पुनर्मिलन में सहती का सर्वाधिक हाथ है, किन्तु काजी के न्याय के बाद गाँव में अचानक आग लग जाना पीरों की कृपा का ही फल है। यद्यपि सूफी प्रेम-प्रबन्धों में भी अप्राकृतिक

---

१. द्रष्टव्य—कड़वक ४५

शक्तियों और मानवेतर पात्रों के चमत्कारों का दर्शन होता है, तथापि 'हीर-राँझा' में पीरों का प्रभाव और चमत्कार अलौकिक धरातल पर अभिव्यंजित नहीं हुआ है।

अलौकिक तत्त्वों का समावेश गुरुदास के 'हीर-राँझा' में कम है। इस यत्किंचित अलौकिकता का समावेश तत्कालीन प्रचलित लोक-परम्परा का अनुपालन मात्र है। स्वयं 'दशम ग्रन्थ' में हीर और राँझा को मेनका और इन्द्र का अवतार मानकर इस कथा को पौराणिक रूप में ढालने का प्रयत्न किया गया है। मेनका कपिल मुनि के शाप के कारण ही हीर बनी।[1] इस धारणा का प्रभाव गुरुदास पर भी पड़ा है। उसने पीरों द्वारा राँझा को काली कमली और वंशी दिए जाने का उल्लेख किया है। राँझा की नगरी 'दूजी मथुरा' है। कृष्ण के समान उसे भी प्राण खोने का भय है। और, उसकी मुरली में जड़-चेतन को मोह लेने की मोहिनी शक्ति है। सियाल में भैंसे चराता हुआ राँझा गोपाल कृष्ण सदृश ही प्रतीत होता है। गुरुदास का उद्देश्य लौकिक धरातल पर ही हीर-राँझा के प्रेम को सच्चे प्रेम के रूप में प्रस्तुत करना है।

गुरुदास कृत 'हीर-राँझा' में कवि ने पद्मावत सदृश अन्योक्ति मानने का आग्रह नहीं किया है और न ही हिन्दी सूफी कवियों के प्रबन्धों की भाँति नायक-नायिका को 'फना' तक पहुँचाया गया है। 'रहे सदा थिर हीर सुहागों' कहकर पीरों ने जो आशीर्वाद दिया है वह चिरमिलन का प्रतीक है, अद्वैत और 'फना' का प्रतीक नहीं। 'हीर-राँझा' की कथा सरस प्रेम-कथा मात्र है। उन दोनों की समस्या प्रेम-स्वातन्त्र्य की है। मर्यादा और सामाजिक आचार के विरुद्ध दोनों संघर्ष करते हैं। हीर-राँझा मिलकर भी सामाजिक व्यवस्था के कारण ही परस्पर विवाह नहीं कर पाते। हीर अपने पति को अपने शरीर का स्पर्श नहीं करने देती, किन्तु वह राँझा के साथ एकान्त वास करती है। दोनों भागते हैं और उन्हें काज़ी के न्यायालय मे खड़ा होना पड़ता है, क्योंकि उन दोनों ने सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन किया होता है। काजी के सामने हीर अपने शाश्वत प्रेम की बात कहती है।

हीर-राँझा के प्रेम-सम्बन्ध में बाधक कोई शठ व्यक्ति या खलनायक नहीं है। शठता के बीज स्वयं प्रेम-सम्बन्ध में विद्यमान हैं। प्रेम छिपकर किया जा रहा है और उसके प्रकट हो जाने से सारी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। यह सामाजिक व्यवस्था के उल्लंघन का रूप है जो हृदय और भावना सापेक्ष है। इसी कारण सूफी प्रबन्धों की अपेक्षा यह रचना यथार्थ के अधिक निकट है।

हीर ने अपने प्रेम के प्रतिरोधी मामा कैंदो की कुटिया जला दी। वह अपने पति शाहबाजखाँ के प्रति सामाजिक रिश्ता नहीं निभा पाती। शाहबाजखाँ अधिक सदाशय है, क्योंकि वह राँझा और हीर के प्रेम-सम्बन्ध का अनुमान करके भी हीर को सहती के पास छोड़ देता है, जिससे वह नई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल सके। शाहबाजखाँ हीर का प्रेमी नहीं है, न उसे राँझा से ईर्ष्या है। वह हीर का पति है और विधिवत् विवाह होने के कारण ही वह हीर को सामाजिक मर्यादा से पृथक् होते नहीं

---

१. गुरु गोविन्द सिंह, दशम ग्रन्थ, छन्द-संख्या १२-१५, पृ० ९४२-४३

देखना चाहता। वह तो स्वयं अनचाहे अन्याय का शिकार है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि हीर-राँझा के प्रेम में विघ्न उपस्थित करने वाले सभी पात्र अपनी परिस्थितियों, कर्त्तव्यों और दायित्वों को निभा रहे हैं। उनके द्वारा हीर-राँझा के प्रेम में उपस्थित की गई बाधा उनके चित्त की दुर्वृत्ति का परिणाम नहीं है। वास्तविक द्वन्द्व तो सामाजिक विधियों की मर्यादा और स्वातन्त्र्य में है। सामाजिक परिस्थितियाँ ही 'शठ' बनकर उन दोनों के प्रेम में बाधा उपस्थित करती है।

हीर और राँझा के प्रेम की तीव्रता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हीर कहीं अधिक सशक्त, विद्रोही और मुखर प्रणयिनी सिद्ध होती है। राँझा तो एक निर्बल, निरीह एवं परिस्थितियों से विवश अशक्त पात्र प्रतीत होता है। विवाह के समय हीर ही प्रतिरोध करती है, राँझा निष्क्रिय है। हीर, राँझा के बिना ससुराल जाने से इन्कार कर देती है। चूचक के आदेशानुसार राँझा नगाड़ा बजाता हुआ उसके साथ चलता है। मार्ग में मारे जाने के भय से वह किसी प्रकार का प्रतिरोध न कर भाग खड़ा होता है। सहती का प्रेमी रामू ब्राह्मण जब उसे हीर के पास ले जाने के लिए आता है तो वह योगी का वेश बनाकर खेड़े से बाहर ही टिक जाता है। जब वह सर्प-विश उतारने के बहाने सहती के प्रयत्न से हीर के पास पहुँच जाता है तो ४० दिनों तक उसके साथ रहने पर भी वह भविष्य की सुरक्षा के लिए सक्रिय नही दिखाई पड़ता। सहती की प्रेरणा से भागने पर वह पकड़ा जाता है और गाँव वालों के सामने केवल अपनी प्रेम-कथा की अभिव्यक्ति मात्र कर देता है। संघर्ष में उसका कोई सक्रिय योग नहीं है। काज़ी के सामने हीर ही अपने शाश्वत प्रेम की अभिव्यक्ति करती है, राँझा ने एक शब्द भी काज़ी से नहीं कहा। इससे राँझा का चरित्र एक ओजस्वी नायक का चरित्र नहीं प्रतीत होता और न ही वह सूफी साधकों की भाँति नायिका की उपलब्धि के लिए सक्रिय है। इसके मुकाबले में हीर का संघर्ष कहीं अधिक दीप्तिमान और सफलता की ओर उन्मुख है। वास्तविकता तो यह है कि सूफी साधकों का नायक गुरुदास की इस कथा में अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण नायिका में समाविष्ट हो गया है और सूफियों की नायिका इस कथा के नायक राँझा में। यह विपर्यय ही, इस तथ्य को प्रकट कर देता है कि गुरुदास ने इस कथा में जिस प्रेम की अभिव्यंजना की है, वह लौकिक धरातल पर स्थित है, सूफी प्रेम कथाओं की भाँति आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित नही है। भारतीय परम्परा में नायिकाओं की ओर से ही प्रणय के आरम्भ और उसकी तीव्रता की अभिव्यंजना होती रही है, भले हो वारिस शाह आदि सूफी कवियों ने हीर-राँझा की कथा को प्रतीकात्मक माना हो। गुरुदास की यह कथा विशुद्ध भारतीय प्रेम-कथा की परम्परा की अभिव्यंजना करती है।

गुरुदास ने राँझा का विरह-वर्णन विधिवत् नहीं किया है। कुछ पंक्तियों में ही यह संकेत कर दिया गया है कि हीर का विरह उसके हृदय में भी विद्यमान था। जिस तरह श्रीकृष्ण के प्रति गोपियाँ प्रेम-निवेदन करती थी, ठीक वैसा ही प्रेम-निवेदन हीर की सखियाँ मुरली-धारी राँझा के प्रति करती हैं। ऐसे ही अवसर पर राँझा कहता है—

मो मन इह रंग क़ित विध पगै। हीर बिरह मोह निसदिन दगै ॥६०॥

राझा उस स्त्री से भी मिलता है जिससे उसके पिता ने उसका विवाह निश्चित् किया था। राँझा के रुष्ट होकर घर से चले जाने पर राँझा के परिवार के ही एक व्यक्ति के साथ उस कन्या का विवाह सम्बन्ध निश्चित् हो जाता है तो वह राँझा को बुलवाकर उलाहना देती है कि उसने उसकी अवज्ञा क्यों की? इसका उत्तर राँझा इस प्रकार देता है––

बोल्यो राँझा बचन उचारयो। मिटै नहीं कदै होवनि हारयो।
मुझ मसतक था लिख्यो बिउगा। तेरो सग था और संजोगा ॥९४॥

इन पंक्तियों से यह तो सकेत मिलता है कि राँझा को भी हीर के बिछुड़ने का दुख था, किन्तु उसकी विरह-दशा का वर्णन कवि ने कहीं भी नही किया।

हीर के विरह-वर्णन में कवि की तन्मयता भी देखी जा सकती है और वर्णन की विस्तृति भी। यद्यपि इस विरह-वर्णन मे माधन तो लगभग सभी पुराने है, परन्तु प्रकृति का अत्याचार, पशु-पक्षियों का उद्दीपन तथा परिस्थितियों की विवशता आदि भावों के रूढ़ होते हुए भी इसमें स्वाभाविकता और मार्मिकता का कोमल स्पर्श प्राप्त होता है।[1]

रामू ब्राह्मण को संदेश देकर राँझा के पास भेजते हुए भी हीर ने अपनी विरह-वेदना को पर्याप्त अभिव्यक्ति दी है। वह अपने शरीर की क्षीणता का संकेत करते हुए कहती है कि एक बार आकर दर्शन दो और मुझे सम्भालो। मेरे पास पंख नही हैं कि उड़कर आ जाऊँ और अपनी विरह-व्यथा को प्रत्यक्ष बता सकूँ। यह विरह-वर्णन नागमती के विरह-वर्णन की भाँति विस्तृत तो नहीं है, किन्तु वेदना की अभिव्यक्ति बहुत-कुछ उसी भाँति हुई है।[2] रूढ़िगत-वर्णन होते हुए भी सूफी कवियों की भाँति न तो इसमें

---

१. जा दिन तो राँझा बिछरानो। विरह बिउग तिस आ लपटानो।
मन ही में निस बासर जरे। बेदन चित की प्रगट न करै ॥९५
... ...
कबहूं ससु को देवै गारी। का मन मेरे तोहि उचारी।
कद हूं मेघों सो इउ कहे। परे बूँद तुम ते मुझ दहे ॥
जब कहू देखे बोलत मोरा। दुख ते कहे कहा येह सोरा ॥९५
... ...
जबहि पपीहे की धुन सुनै। उभै सुआसु लै सिर धुने।
करै सुआसु जब मुख तै बाहर। निकसे नेहु हिये दिस ठाहर ॥९५

२. नही पंख जो मैं उड़ि जाऊं। बिरथा अपनी प्रगट बताऊ ॥
... ...
निस बासर दोउ रोइ गुजारूं। बिरह आग अब को लउ मारू।
मेघ बून्द जब मो तन परै। अनी पार मन चित को करै।
मोरन की बिरथा किआ कर कहूं। ता बोलनी बरछो जीय सहूं।
पीअ पीअ रटै न पीव दिखावै। जित कित सभ दुख देवन आवै ॥९७॥

अतिशयोक्ति की अति है और न ही हड्डियों, केशों और रोहों के जलकर राख बनने की बात कही गई है। यह सरल और स्वाभाविक वर्णन है।

हीर-काजी-संवाद—हीर, राँझा और शाहबाज़खाँ जब काज़ी के पास जाते हैं तो सारी बातें जानकर काजी हीर को हक पहिचानने की सम्मति देता है। काज़ी का यह उपदेश सामाजिक परम्परा के अनुरूप है—

कह्यो हीर को हक पंछानो। झूठि राह अब रिदै न आनो।
मात पिता तुझ खेड़ियों दीनो। अप राँझा तै हित चित चीनो।
ऐसो काम न कोऊ करै। जान बूझ दोजक महि परै।
जो आप सौ खेड़े संग जावै। पीआ ससुर ग्रिह सोभा पावै।
हक हलाल है खेड़ा तेरो। आँखनि ते करि दूर अंधेरो ॥११४॥

काज़ी ने जिस हक और हलाल की चर्चा की है वह सामाजिक व्यवस्था का अंग है। हीर ने जिस दृढ़ता और शक्ति के साथ काजी को उत्तर दिया है उसमें सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति घोर विद्रोह की ध्वनि अभिव्यक्त हुई है। वह प्रेम और विवाह में रुचि और चयन की स्वतन्त्रता की आवाज़ है। वह इसे ही हक और इससे भिन्न को अन्याय समझती है—

मैं पछान राँझे कउ बरया। पांचो पीरों मों सिर धरया।
जब हम आई जनम जग लीनो। ता सम बिध राँझा मोहि दीनो।
जुदो देह हमारी जानो। जीव दुहनि मैं एकी मानो।
माउ बाप हम कोऊ न जाने। आपस में दोऊ आप पछाने ॥११४॥
... ...
कह्यो हीर दई तै डरो। किउ अन्याइ अनीती करो ॥११४॥

वंदिसाल अरु ताड़न भाखहु। करते कउ भै चित न राखहु।
जिमे न चाहो तिस कौ दैहो। कउनि न्याउ तुमरे एहो ॥११५॥

हीर अपने प्रेम की दृढता की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप में काजी के सामने रखती है, वहाँ वह उसे फटकारने में भी नहीं हिचकिचाती। वह निर्भीक होकर उसको उलाहना देती है और इस प्रकार अपनी दृढ़ता, शक्ति और ओजस्विता का प्रदर्शन करती है। राँझा को धूप में खड़े देखकर उसकी आँखों से आँसू प्रवाहित होने लगते हैं। वह राँझा के प्रति इतनी संवेदनशील है कि उसके लिए स्वयं प्राण देने के लिए भी तत्पर है—

सुनत हीर असुआ भर आई। देख्यो राँझा धूप जराई।
भाख्यो हाकम अब मति रोवै। एक घटी महि जीय कौ खोवै।
कह्यो हीर मैं मरन न डरो। बैठो धूप दुख राँझनि करो।
मुझ कौ अब ही जीय ते मारो। रांझा भीतर धूप न जारो ॥११५॥

रस

हीर-राँझा की सम्पूर्ण कथा सरस है और पात्रों तथा घटनाओं के छोर सर्वत्र मानवीय संवेदना से जुड़े हुए हैं। रति, करुणा और विस्मय के विविध स्थल हृदय को स्पर्श करते हैं। इस प्रेम-कथा का मुख्य रस शृंगार है और उसके सभी अंगों का सुन्दर चित्रण किया गया है। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारी भावों के भी स्थान-स्थान पर दर्शन होते है।

आलम्बन विभाव—शृंगार के आलम्बन का नख-शिख-वर्णन गुरुदास ने बहुत मनोयोग से किया है। नख-शिख-वर्णन का परिचय हम इससे पूर्व ही दे चुके हैं। हीर के नख-शिख-वर्णन में परम्परागत रूढियों का पालन करते हुए भी गुरुदास ने कहीं-कहीं अपनी मनोरम कल्पनाशक्ति का उपयोग किया है।[1] राँझा को आकर्षक नायक के रूप में अवश्य प्रस्तुत किया गया है, परन्तु उसका सौन्दर्य-चित्रण अत्यन्त संक्षिप्त और साकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस आलम्बन की विशेषताओं में उसके मनोरम मुरली-वादन को प्रमुखता दी गई है, जिसे सुनकर हीर की सखियाँ गोपियों की भाँति ही उन्मत्त हो उठती हैं।

उद्दीपन विभाव—गुरुदास ने जिस तन्मयता से हीर का रूप-वर्णन किया है उसी तन्मयता से उसके विविध भावों को उद्दीप्त करने के लिए उद्दीपन विभावों का भी आश्रय लिया है। प्रथम मिलन के समय नदी-तट और शीतल पवन तथा शांत-एकांत वातावरण का वर्णन हुआ है। वियोगावस्था में चन्द्र, सूर्य, वर्षा, वायु, मोर, पपीहा आदि के रूप में प्रकृति के चेतन-अचेतन उपकरणों का उपयोग किया गया है——

रैन समय सस बान लगावै। बासर सव अंग भान जरावै। ६७॥

हीर, इन उद्दीपनों में कभी-कभी मानव-चेतना की कल्पना कर उनसे दया की भिक्षा माँगती भी दिखाई पड़ती है——

जब कहूँ देखे बोलत मोरा। दुख ते कहे कहां यह सोरा।
तुमरो बोलन मोहि न भावा। रांझन विछरे को अति हावा ॥६७॥

अनुभाव——अनुभावों का भी स्थान-स्थान पर चित्रण किया गया है—विशेषतः हीर के अनुभवों का——

छपी दिसट ताहूं दिसट देखै। मुख नीचै अंगुरि धर लेखै ॥४१॥

असुवन आखन जल तन भरे।
नैन बाण धीधो के दही ।
भर न सके डिग गृह की ओरा ॥३२॥

करुण रस——राँझा की माता की मृत्यु पर राँझा और उसके पिता के दुख को

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, पृ० २०२-२०३

प्रस्तुत करते हुए करुण रस की उद्भावना की गई है। राँझा द्वारा सदा के लिए गृह-त्याग करने पर उसकी तीनों भाभियों की करुण दशा का भी मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है—

पूत पिता दोऊ अति रोवैं। मुख छाती नयनन जल धोवैं।२८॥
... ...
देख्यो तब तिह तीनों नारी। रहै न सुन्दर बिनै करि हारी।
असुवन आंखन जल तन भरै। खाइ पछार धरनि गिर परै॥४७॥

वीर रस——वीर रस की उद्भावना नूरखाँ और हीर के युद्ध, तथा नाहरों और खेड़ों के युद्ध के समय की गई है। यद्यपि यह वर्णन, स्थूल अथवा विवरणात्मक ही है, फिर भी इसमें रस के छींटे अवश्य मिल जाते हैं। प्रथम युद्ध में हीर के गर्व और उत्साह की अच्छी झलक मिलती है——

सब नारी तब करी विचारा। दावनि ज्यों चमकें इकबारा॥४१॥
... ...
कहा कही रे खेवट बाता। किआ नूरा किआ ताकी जाता।
मैं किआ ताको समझ न सको। तिह भै पिता भ्रात कौ तको॥१६॥

रौद्र रस——रौद्र रस की उद्भावना प्रायः वीर रस के सहायक के रूप में की जाती है, क्योंकि शत्रु पर क्रोध की अभिव्यक्ति आवश्यक समझी जाती है। जब हीर, राँझा को नाव में अपने पलंग पर सोए हुए देखकर क्रोध में भर उठती है, तब रौद्र की झलक देखी जा सकती है——

परी कूद कै नद कै बीचा। क्रोध साथ डर कीयो न मीचा।
इम छटियां बरखैं ज्यों ओले। यहि कोउ सोयो नैक न बोले॥४०॥

अद्भुत रस——अद्भुत रस के कई स्थल इस प्रेम-कथा में हैं। राँझा का मुरली-वादन और प्रभाव अद्भुत था। पंच-पीरों का भी प्रभाव अद्भुत ही है। वे प्रत्येक समय हीर-राँझा की रक्षा करने के लिए तत्पर रहते हैं। यह प्रभाव काजी का गाँव जलाने के समय अग्नि की व्यापकता के रूप में देखा जा सकता है—

धीधो मुरली अधरन धरई। कहा कहूँ कैसी सुर भरई।६६॥
... ...
मच्छ कच्छ अवरै जीअ जंता। पानी महि आए निह तंता।
सिंह प्रमोदै अरु मृग चलत्रै। भयँ मगनि सुरति खोय जबतै।
जल थल मैं आ इकट्ठे भये। मन सब के मुरली मुस लये।
दीओ आग राह तिह लौकै। धरयों मूंद मुख बहुरो रोकै।११६॥

जिन रसों के उदाहरण ऊपर दिए गए हैं वे स्थान और परिस्थिति के अनुसार प्रस्तुत तो किए गए हैं, परन्तु परिपक्वता सर्वत्र नहीं मिलती। मूलतः शृंगार रस की ही पूर्ण और सांगोपांग अभिव्यंजना हुई है।

अलंकार, छन्द और भाषा

'कथा हीर राँझन की,' 'जंगनामा' और 'माधवानल कामकन्दला' की तरह निरलंकृत या कम अलंकृत नहीं है। इसमे गुरुदास ने अनेक प्रकार के अलंकारों का उपयोग किया है। कतिपय अलंकारों के उदाहरण निम्नलिखित है—

१. उत्प्रेक्षा

तिहगर तै जो बूंदै परंई। सरपनि मुख तै जन विख ढरंई ॥८॥

२. व्यतिरेक

इन्द्र धनख तें नीकै भौहै ॥८॥

३. विनोक्ति

लाज भरे बिन काजर कारी ॥८॥

४. प्रतीप

मीन मधप खंजन हारे। निरखत नैनि दाऊ अनियारे ॥८॥

५. लुप्तोपमा

पुतरी बैठ झरोखै बारी ॥९॥
रक्त कमल दोऊ अधर सुहावैं ॥९॥

६. भ्रान्तिमान

भंवर आइ तहाँ बैठनि तकै। सुन्दर हाथ बिड़ारत थकै ॥९॥

७. हेतुत्प्रेक्षा

रिस करी जर कारी होई गई। ऐसी गति कोइल की भई ॥९॥

८. सन्देह

दो अनार तिह सोभा दीजै। कै अंब्रत फल ताँह कहीजै।
कै दोऊ निबू ये अति रस भरै। कै गिंदवा पुहपौ संग जरै ॥१०॥

९. पूर्णोपमा

कटि सुन्दर केहर सी बनी ॥१०॥

१०. रूपक

मन-कपाट तब ही खुल गयो ॥३८॥
सस मुख देख्यो मारग जाए ॥

वर्णन-प्रधान एवं चरित-काव्यों के लिए बहुत पहले से दोहा और चौपाई का उपयोग होता आ रहा है। प्रेम-कथाओं के लिए सूफी कवियों ने तो इन्हे अपनाया ही है, तुलसी ने भी 'मानस' में इन्हीं छन्दों को प्रमुखता दी है।

सूफी कवियों ने पाँच या सात चौपाइयों के बाद और तुलसी ने आठ चौपाइयो

के बाद दोहा, सोरठा या अन्य छन्दों का प्रयोग किया है। गुरुदास ने इनमें से किसी की भी परम्परा का पालन नही किया। उन्होंने अपभ्र श की कड़वक शैली को अपनाया है। जहाँ एक घटना या प्रसंग का वर्णन समाप्त होता है वहाँ वे घत्ता का उपयोग करते हैं। यही कारण है कि कही चार अर्धालियों के पश्चात् एक घत्ता है और कहीं ४६ अर्धालियों के बाद एक घत्ता का प्रयोग किया गया है। यह घत्ता कवि ने कही दोहा का और कही सोरठा का दिया है। दोहा और सोरठा दोनों का घत्ता एक साथ उन्होंने कही नही दिया। इसीलिए गुरुदास की शैली को हमने कड़वक शैली का नाम दिया है और इसी शब्द का पहले उपयोग भी किया है। सारी कथा अविभाजित रूप से इन्हीं कड़वकों में प्रस्तुत की गई है।

सामान्यत: चौपाइयों में तुक तो सर्वत्र है, किन्तु कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी उपलब्ध हो जाती हैं जिनमें अन्तिम वर्ण दीर्घ नहीं है—

निकले बाहर भागे ग्रिह कउ। तक्यों न पाछे जिअ के डर सिउ ॥३४॥
... ...
बहु बारी में पूछो तो कउ। रिद की बात कहा अब मो कउ ॥७६॥

ऐसी स्थिति 'को' सो और 'सऊ' आदि के लिए कउ, सिउ, सउ आदि के प्रयोग के कारण आई है।

इस ग्रन्थ की भाषा ब्रज है, परन्तु इसमें एक ओर पंजाबी-शब्दो की अधिकता है[1] और दूसरी ओर अवधि-क्रियाओं का स्पर्श है। 'आदि ग्रन्थ' की भाँति शब्द-रूपों में ह्रस्व इकार का प्रयोग मिलता है; यथा—करि, सभि, नैनि, दामनि, चोटि, सुनि आदि। 'काध','लीतर', 'भैन', 'महीआ','कदी','पींघ' आदि प्रादेशिक शब्द पंजाबी-प्रभाव को सिद्ध करते हैं। सामान्यत: ऐसा दिखाई देता है कि कवि के पास सीमित-सा शब्द-भण्डार है। किन्तु फिर भी, भाषा में प्रवाह और चित्रात्मकता है। हीर के सौन्दर्य-चित्रण तथा नूरे के युद्ध-वर्णन में कवि ने सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। भाषा, भाव के अनुरूप रही है, माधुर्य और ओजगुण से पूर्ण।[2]

मुस्लिम कथा होते हुए भी गुरुदास ने अरबी-फारसी शब्दावली का अधिक उपयोग नहीं किया। खानज़ादे, हाकिम, काज़ी, हक, हलाल, पीर, कियामत, रोज आदि कुछ प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त अन्य क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग नही हुए हैं। इनमें से भी अधिकतर शब्द काजी के द्वारा ही प्रयुक्त हुए हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि गुरुदास पात्रानुकूल भाषा के समर्थ शिल्पी थे। जहाँ ऐसे प्रचलित अरबी-फारसी के शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है, वहाँ वे उन्हें पृथक् नहीं समझते। यही कारण है कि 'इसक अंकरु' में इश्क और अंकुर शब्द एक साथ बैठे दृष्टिगत होते हैं।

'कथा हीर-राँझन की' पंजाब की लोक-प्रसिद्ध प्रेम-कथा पर आश्रित है। गुरुदास ने दामोदर की रचना का अनुसरण किया है और कथासूत्र को अविच्छिन्न रूप में अन्त तक निभाया है। इस प्रेम-कथा की नायिका हीर है और नायक राँझा। सामाजिक मर्यादाओं के विरुद्ध होने के कारण दोनों के प्रेम में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है,

१. डॉ० मोहन सिंह, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ पंजाबी लिट्रेचर, पृ ०४८
२. कथा हीर राँझन की, भूमिका, पृ० ३३

जो कथा को गतिशीलता प्रदान करनी है। राँझा से प्रेम-मिलन होने के उपरान्त हीर का अन्यत्र विवाह हो जाता है। हीर सम्पूर्ण परिस्थितियों से संघर्ष करती है और अन्त में राँझा को प्राप्त कर लेती है। राँझा परिस्थितियों का मारा हुआ, विवश और प्राय: निष्क्रिय नायक प्रतीत होता है। हीर की सघर्षशील कर्मठता उसे इतना अधिक उभार देती है कि राँझा का व्यक्तित्व बहुत-कुछ दब जाता है। वह भाग्यवादी है और परिस्थितियों के समक्ष या तो समर्पण कर देता है, या पलायन कर जाता है, किन्तु हीर आरम्भ से अन्त तक संघर्षरत है। अन्याय के प्रतिरोध में केवल काज़ी के निर्णयोपरांत ही राँझा के हृदय की आह अभिव्यंजना पाती है, जिससे नगर में आग लग जाती है और उसकी शक्ति का प्रदर्शन होता है। यह प्रेम-कथा सामाजिक मर्यादाओं के प्रति हृदय और बुद्धि दोनों का ही विद्रोह प्रस्तुत करती है। हीर और सहती त्रस्त नारियाँ है। हीर अपनी रुचि के अनुसार विवाह नहीं कर पाती और सहती विधवा होने के बाद प्रकट रूप से विजातीय रामू ब्राह्मण से मिल नहीं पाती। दोनों की वेदना और बौद्धिक प्रतिभा ने अपने-अपने प्रेमियों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। इसलिए जाति, धर्म, और सामाजिक मर्यादाओं से परे सच्ची प्रीति की अभिव्यंजना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। उसने जिस प्रकार आरम्भ में 'सांच प्रीति' की कथा कहने का निश्चय किया है, उसी प्रकार अन्त में भी वह कहता है कि सच्ची प्रीति करने वालों का नाम संसार मे शेष रहता है और परमात्मा उन्हे वैसी ही पदवी देता है––

धनी प्यारो जानो ताहीं। जा को नाम रह्यो जग माही।
साच प्रीत जैसे ओह कीनी। करते तैसे पदवी दीनी ॥११८॥

इस कथा को नायिका-प्रधान कहा जा सकता है, क्योंकि कवि ने उसी के चरित्र को उभारने का समग्र प्रयास किया है। अन्य पात्रों को सामाजिक मर्यादा की रक्षा के लिए संघर्ष करते हुए प्रस्तुत किया गया है। यह कथा न तो सूफी धरातल पर प्रस्तुत की गयी है और न हिन्दू या मुस्लिम सामाजिक धरातल पर। वस्तुत: किसी आदर्श की अपेक्षा यह कथा लौकिक धरातल पर याथार्थ की पूर्ण अभिव्यंजना करती है।

इसकी भाषा दशम गुरु के दरबारी कवियों की रचनाओं की भाषा के अनुरूप ही है, जिसे तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा कहा जा सकता है। चरित काव्यों के लिए प्रचलित चौपाई, दोहा और सोरठा छन्दों का प्रयोग करते हुए भी कवि, शैली में अपभ्रंश-काव्यों का अनुसरण करता है। सारी कथा अविभाजित रूप से कड़वक शैली में चलती है।

इसका मुख्य रस शृंगार है, जिसमें मिलन और विरह के मनोरम और मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। अन्य रसों का समावेश तो हुआ है, परन्तु वे परिपक्व नहीं दिखाई पड़ते। अलंकारो का प्रयोग अधिकतर विशिष्ट स्थलों पर ही दिखाई पड़ता है। हीर के नखशिख-वर्णन, प्रथम मिलन-वर्णन तथा विरह-वर्णन में इनकी छटा देखने को मिलती है। सामान्य वर्णन-प्रक्रिया में कथावस्तु को आगे बढ़ाते हुए अनुप्रासो के अतिरिक्त अन्य अलंकारों के भी कतिपय प्रयोग मिलते हैं जो स्वाभाविक रूप से आ गए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि दशम गुरु के दरबारी कवियों में से जिन्होंने प्रबन्ध या मुक्तक काव्यों का सृजन किया है उनमें गुरुदास भी एक श्रेष्ठ कवि माने जा सकते हैं।

(२) माधवानल कामकन्दला

यह हम पहले कह चुके हैं कि 'माधवानल कामकन्दला' की दो प्रकार की प्रतियाँ मिलती हैं। एक प्रकार की प्रतियाँ विशुद्ध भारतीय प्रेमाख्यान-परम्परा के अन्तर्गत आती हैं, और दूसरे प्रकार की प्रतियों में आलम ने गुरु-परम्परा और मित्रादि का उल्लेख करके उक्त रचना को सूफी प्रेमाख्यानों का रूप देने का प्रयत्न किया है। इन दूसरे प्रकार की प्रतियों में या तो बाद में कुछ अंश परिवर्तित कर दिए गए हैं या प्रारम्भ में कुछ प्रक्षिप्त अंश सम्मिलित कर दिए गए हैं। सूफी काव्यों में जिस प्रकार सूफी-साधना के आध्यात्मिक संकेत मिलते हैं उस तरह के संकेत 'माधवानल कामकन्दला' में नहीं हैं। अतः इसे विशुद्ध भारतीय प्रेमाख्यान-परम्परा की रचना ही माना जाना चाहिए।

भारत की प्रेमाख्यान-परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'ऋग्वेद' में यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी और अहल्या आदि की प्रेम-कहानियों में इसके बीज प्राप्त होते है। उपनिषद्-काल में 'ऋग्वेद' की अनेक ऋचाओं का विकास प्रेम-कहानियों के रूप में हुआ। संस्कृत के ललित साहित्य में 'कुमार सम्भव', 'मेघदूत', 'कादम्बरी' तथा 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' आदि प्रमुख प्रेमाख्यान काव्य उपलब्ध होते हैं। अपभ्रंशकालीन जैन चरित काव्य एवं बौद्ध साहित्य की जातक एवं अवदान कथाओं के द्वारा नीति एवं धर्म के उपदेश देने की प्रथा भी प्रचलित हुई। हिन्दी मे ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रेमाख्यानों का प्रणयन हुआ।[1]

सूफी प्रेमाख्यानो के समानान्तर असूफी प्रेमाख्यानों की धारा भी हिन्दी में चलती रही। इस धारा को संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश से रिक्थ रूप में पर्याप्त उपलब्धि हुई है। यह बात भी सच है कि इस साहित्य को सूफी-काव्यधारा ने प्रभावित किया है। सूरदास कृत 'नलदमन' तथा दुखहरनदास की 'पुहुपावती' में सूफी रचना-पद्धति का कुछ अंश तक अनुकरण किया गया है, किन्तु सिद्धान्त और साधना में ये कवि भारतीय परम्परा से जुड़े हुए हैं। हिन्दी में असूफी परम्परा का प्रथम काव्य—'ढोला मारू रा दूहा' बताया जाता है, जिसकी रचना १००० ई० के लगभग कही जाती है।[2]

असूफी प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत 'ढोला मारू रा दूहा' के बाद निम्नलिखित रचनाओं को भी परिगणित किया गया है—१. नरपतिनाल्ह कृत 'वीसलदेव रास' (१४०० वि०), २. सदयवत्स सावलिगा—इसका उल्लेख संदेश रासक में मिलता है और इस रचना के आधार पर गुजराती में १४६७ वि० में तथा राजस्थानी में कीर्ति-वर्धन रचित 'सदेवच्छ सावलिंगा चौपाई' (१६९७ ई०) उपलब्ध है। ३. दामो कवि कृत 'लखमसेन पद्मावती कथा' (१५१६ वि०), ४. ईश्वरदास कृत 'सत्यवती कथा' (१५५८ वि०), ५. नारायण दास द्वारा ब्रजभाषा में रचित छिताई वार्ता' (१५८३ वि०), ६. जानकवि कृत 'छीता कथा' (१६९३ वि०), ७. सावन कृत 'मैनासत'

---

१. डॉ० सरला शुक्ल, हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० २०४
२. डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ८९

(१६२४ से कुछ पूर्व), ८. नरपति व्यास रचित 'नल दमयन्ती कथा' (१६३२ वि० के आस-पास), ९. लखनऊ-निवासी सूरदास कृत 'नलदमन' (१७१४ में आरम्भ), १०. चतुर्भुज कायस्थ कृत 'मधुमालती' (१६०० वि० के पूर्व), ११. किसी अज्ञात कवि द्वारा राजस्थानी में रचित 'प्रेम विलास प्रेमलता' (१६१३ वि०), १२. परशुराम कृत 'उषा अनिरुद्ध' (१६३० वि०), १३. जल्ह कवि कृत 'बुद्धि रासौ' (१६२५ वि०), १४. पृथ्वीराज कृत 'वेलिक्रिसन रुक्मिणी री' (१६३७ वि०), १५. पुहकर कवि कृत 'रसरतन' (१६७५ वि० के आस-पास), १६- बाबा धरणी दास रचित 'प्रेम-प्रगास (१७१६ वि० के कुछ बाद), १७. हंस कवि द्वारा राजस्थानी में रचित 'चन्द्र-कुँवर की बात' (१७४० वि०), १८. सन्त दुखहरणदास रचित 'पुहुपावती' (१७२६ वि०), आदि उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त जान कवि द्वारा रचित सूफी-असूफी दोनों प्रकार की इक्कीस रचनाएँ सं० १६७०-१७२१ के मध्य की हैं।[1]

माधवानल कामकन्दला की कथाएँ—आलम के 'माधवानल कामकन्दला' की रचना सं० १७५३ के आसपास हुई। 'माधवानल कामकन्दला' की कथा को डॉ० बलबीर-सिंह ने ऐतिहासिक माना है और इस सम्बन्ध में लिखा है कि "जबलपुर जिले के गजेटियर पृ० ३३९ से ३४१ तक में लिखा है कि बिलहरी के पास मैंसा-कुण्ड के चारों ओर चौबीस मील के घेरे का एक बहुत बड़ा शहर था, जिसका नाम पुष्पावती नगरी था। वहाँ अनेक मन्दिरों के खण्डहर हैं, वहीं कामकन्दला के महल के खण्डहर भी विद्यमान हैं। काम-कन्दला का मन्दिर एक ढलानदार चट्टान पर भग्नावशेष के रूप में पड़ा है। माधवानल बिलहरी का रहने वाला था। १९२४-१९२५ के मध्यप्रदेश के आर्कालोजिकल सर्वे के अनुसार पृ० ३४ पर यह कहा गया है कि बिलहरी चेदी के कलचुरी राजाओं की राजधानी थी, जिनके ११८१ ई० के शिलालेख उपलब्ध होते है।"[2]

'माधवानल कामकन्दला' की कथा को आधार बनाकर संस्कृत में भी कई रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इस समय इस कथा से सम्बद्ध लगभग ४४ हस्तलिखित प्रतियाँ ऐसी उपलब्ध हैं जो माधवानल कथा की लोकप्रियता सूचित करती हैं।[3] इन प्रतियो में विद्या-धर के शिष्य आनन्द की 'माधवानल कामकन्दला कथा' भी उपलब्ध होती है। आनन्द का निश्चित् समय ज्ञात नहीं है, किन्तु इनकी रचना की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १७०७ की प्राप्त होती है।[4] एक अन्य प्रति के अनुसार विद्यापति विरचित 'माधवानल कामकन्दला कथा' भी है।[5]

अकबर के समकालिक और उनके दरबारी जोधकवि ने संस्कृत में 'माधवानल-कामकन्दला चरित' नामक प्रबन्ध -काव्य सन् ९९१ हिजरी में लिखा। आलम ने वस्तु-

---

१. डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ९०-११७
२. सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकन्दला चरित, पृ० २१-२२
३. वही, पृ० ५-७
४ वही, पृ० ७०
५. वही, पृ० ७२

वर्णन के लिए जोधकवि की इसी रचना का अनुसरण किया है।

'माधवानल कामकन्दला' की कथा भी मध्ययुग में अत्यन्त प्रख्यात रही है। गणपति ने इस कथा को आधार बनाकर सं० १५८४ वि० में 'माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध' लिखा।[१] इसके पश्चात् माधव शर्मा ने सं० १६०० वि० में 'माधवानल कामकन्दला रस विलास' ब्रज भाषा में लिखा, जिसकी एक खण्डित प्रति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में सुरक्षित है।[२] इसी कथा को लेकर कुशललाभ ने सं० १६१६ वि० में 'माधवानल कामकन्दला चौपाई' की रचना की।[३] कुशललाभ की रचना किसी अन्य रचना की पूर्ति जान पड़ती है। पुरुषोतम वत्स ने 'माधवानल कामकन्दला चौपाई' लिखी,[४] दामोदर कवि ने भी 'माधवानला कथा' लिखी, जिसकी एक प्रति का प्रतिलिपि-काल सं० १७३७ वि० है।[५] सं० १७४४ में जैसलमेर के शोढ़ी गंगाराम के पुत्र जगन्नाथ ने 'माधो चरित' की रचना की।[६] एक अन्य कवि राजकेश द्वारा 'माधवानल' सं० १७१७ में रचा हुआ कहा गया है।[७]

इन कृतियों के उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'माधवानल कामकन्दला' की कथा संस्कृत में ही काव्य का रूप ग्रहण कर चुकी थी। जोधकवि की रचना ई० सन् १५८३ में हुई, जबकि इससे पूर्व ही १५२७ ई० में गणपति ने 'भाषा' में अपनी रचना प्रस्तुत कर दी थी। 'माधव शर्मा का 'माधवानल कामकन्दला रस विलास' भी ब्रजभाषा में पहले ही लिखा जा चुका था। इससे स्पष्ट है कि जोधकवि की संस्कृत-रचना के साथ ही साथ 'माधवानल कामकन्दला' की रचना 'भाषा' में भी होने लगी थी और आलम की रचना सं० १७५३ के आस-पास कई 'भाषा' रचनाओं के बाद अस्तित्व में आई। प्राय: माधवानल कामकन्दला की कथा लिखने वाले सभी कवियों ने एक ही प्रकार की प्रसिद्ध कथावस्तु का आश्रय ग्रहण किया है, जो संस्कृत-परम्परा से चली आ रही थी। आलम ने भी जोधकवि की रचना को ही आधार बनाकर कथा-सूत्र को आगे बढ़ाया है।

कथावस्तु

पुष्पावती नगरी में माधवानल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह अत्यन्त सुन्दर, सर्व शास्त्रों का ज्ञाता तथा ललित कला के सभी अंगों-उपांगों में पारंगत था। वह गायन-वादन में इतना निपुण था कि उसका वीणा-वादन सुनकर नगर की सभी नारियाँ मुग्ध हो जाती थीं। नगर की प्रजा ने राजा के पास फरियाद की कि माधवानल को राज्य से निष्कासित कर दिया जाए, क्योंकि वह नारियों को अपनी

---

१. डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १०५
२. वही, पृ० १०५
३. वही, पृ० १०५
४. वही, पृ० १०५
५. वही, पृ० १०५
६. वही, पृ० १०६
७. डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २७७

गायन-विद्या से आकृष्ट कर लेता है। प्रजा के इस आग्रह पर माधवानल को राज्य से निष्कासित कर दिया गया।

वह घूमते-फिरते कामावती नगरी में पहुँचा। वहाँ कामसेन नामक राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त रसिक और कलाप्रेमी था। एक दिन उसकी राज्यसभा में नृत्य-संगीत आदि का विशद आयोजन हुआ। माधव भी वहाँ पहुँचा, किन्तु उसे राज्यसभा में प्रवेश की आज्ञा न मिली। माधव ने राज्यसभा के बाहर से ही राजा के पास यह संदेश भेजा कि तेरी सारी सभा मूर्ख है। १२ मृदंगवादकों में एक, जो ७ और ८ के बीच बैठा हुआ है उसके दाहिने हाथ में चार ही उंगलियाँ हैं, जिसके कारण संगीत का सारा रस भंग हो रहा है। यह जानकर राजा और राज्यसभा के आश्चर्य का पारावार न रहा और माधव को बड़े सम्मान के साथ सभा में लाया गया। कामसेन के दरबार में माधव ने अपनी अपूर्व गायन-वादन विद्या का चमत्कार दिखाया। राजा ने प्रसन्न होकर उसे विपुल धन एवं रत्न-आभूषणों की दक्षिणा दी। राजा के दरबार में कामकंदला नामक राजनर्तकी थी, जो जैसी रूप में अद्वितीय थी वैसी ही गायन-वादन एवं नृत्यकला में भी अप्रतिम। अनेक कार्यक्रमों के पश्चात् कंदला का अद्वितीय कौशलयुक्त नृत्य हुआ, जिससे माधव अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने समस्त प्राप्त सम्पदा कंदला को भेंट कर दी तथा राजा को अविवेकी और सभा को मूर्ख बतलाते हुए कन्दला के कौशल की प्रशंसा की। कामसेन क्रुद्ध हो गया और माधव को राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। कन्दला ने राजाज्ञा की उपेक्षा कर, उस परम श्रेष्ठ कलाविद को सहवास का निमंत्रण दिया। कुछ दिन कन्दला के सहवास में व्यतीत करने के पश्चात् माधव वहाँ से चला गया। अब दोनों एक दूसरे के वियोग में तडपने लगे।

अन्त में एक दिन बिरही माधव महाराज विक्रम की नगरी उज्जैन पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि राजा हर समय राजाओं तथा अन्य लोगों से घिरा रहता है, इस लिए उस तक पहुँचना कठिन है। यह देखकर वह दुखी होकर इधर-उधर भटकता रहा। एक दिन वह महादेव जी के मन्दिर में गया, जहाँ नित्य प्रातः काल राजा विक्रमादित्य पूजा करने के लिए आया करता था। उसने रात को मन्दिर के अन्दर की दीवार पर आत्मदशा-व्यंजक एक दोहा लिख दिया—

> कहा करौं कित जाउं हौं, राजा रामु न आहि।
> सिय बियोग संतापबस, राधौ जानत ताहि।।

प्रातः काल विक्रमादित्य ने पूजा के बाद इसे पढ़ा और मन में बहुत दुखी हुआ। उसने माधव को ढूंढ़ निकालने के लिए एक लाख मुद्राओं के पुरस्कार की घोषणा करा दी। ज्ञानवती नामक एक दूती के माध्यम से विरही माधव राजा विक्रम की सभा में लाया गया। राजा ने माधव से पूछा कि आपकी क्या सेवा करूँ। माधव ने कहा कि कामावती के राजा कामसेन से कामकन्दला नर्तकी लेकर मुझे दीजिए। पहले तो राजा ने बहुत समझाया कि नर्तकी का संग उचित नहीं, लेकिन माधवानल ने जोर देकर कहा कि मैं

आलम ने यहाँ उत्प्रेक्षा के माध्यम से वर्णन में सौन्दर्य उत्पन्न किया है।

किंवा नाभिसरोभूतः पद्मनालोविलक्षितः।
दधे विकसिते पुष्पे कामिचेतो बिलुण्ठके ॥[1]
... ...

नाभि निकट स्यों नागिन चली। जनु कुच कमल नलिन इक भली।
नाभि पात सौ उठी सुहाई। कंवलहु तें अलि अवली आई ॥[2]

जोध कवि ने कुचों की समता विकसित कमल के साथ की है। आलम ने 'विकसित' को छोडकर केवल कमल के साथ समता की है। हिन्दी काव्य-परम्परा में कमल-कोरक या अर्ध विकसित कमल ही कुचों के सुन्दर उपमान माने जाते हैं।[3] यहाँ भी आलम ने अपने वर्णन को अलंकृत किया है। जहाँ आलम ने संस्कृत-श्लोकों का ज्यों का त्यों भाषा-रूपान्तर किया है, वहाँ भी उन्होंने वर्णन में सौन्दर्य उत्पन्न किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

लगुडे दण्डवृत्तिहि बद्धो भृंगो न चेतरः।
चपलाक्षिगतं चौर्यं हिंसको दीपकः खलु ॥२८॥[4]
... ...

दंड सोइ जो जोगी लेही। और दंड काहू नहिं देही।
चंचल चोर कटाछ त्रिया के। जो नित चोरें चित्त पिया के ॥
दीपक बधिक बसै जहाँ, जो निसि बसै पतंग।
ऐसो नगर रच्यो बली, कामसैनि-चतुरंग ॥[5]

यहाँ आलम ने 'चपलाक्षिगतं चौर्यं' का विस्तार 'जो नित चोरै चित्त पिया के' कहकर किया है।

आलमने संस्कृत-कथावस्तु का अनुसरण करते हुए जिस प्रकार जोध कवि के द्वारा निर्दिष्ट हिजरी सन् ९९१ को ज्यों का त्यों भाषारूपान्तरित कर दिया है, उसी

---

१. सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकन्दला चरित (लाहौर वाली प्रति)
२. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १८९
३ दे०, दास कवि का—
कंज के संपुट् हैं पैर खरे हिय से,
गड़ जात ज्यों कांत की कोर हैं।
४. जोध कवि, माधवानल कामकन्दला चरित
५. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १८९

प्रकार अन्य ऐसे स्थलों को भी, जिनमें संख्याओं का निर्देश है, ज्यों का त्यों अनूदित किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

दश दिनानि गच्छन् स कामवत्याश्च सन्निधौ ॥२५॥[1]
... ...

दिन दस मारग रह्यौ सुजाना। कामावति नगरी नियराना।[2]
... ...

तुर्य सप्तम मध्यस्थं वादिनं पश्य गच्छ भो।
करे न दक्षिणोङ्गुष्ठः सत्यं सत्यं वदामि ते ॥४३॥[3]

द्वादस माँहि तूरिया अनारी। दहिनैं हाथ अंगुरिया चारी॥
सात चारि के मद्धि है, उठिकैं देखौं ताहि।
चूकैं तार जो पाव मिसि, पातुर दोस न आहि॥[4]

संख्याओं के प्रति यह सतर्कता आलम में इतनी अधिक दिखाई पड़ती है कि भाषा-रूपान्तर में छन्द के आग्रह से जहाँ शब्द-परिवर्तन की स्थिति आई है, वहाँ भी उस संख्या के स्वरूप की उचित रक्षा की गई है—

दिनमेकं व्यतीतं तु भीम-युद्धं बभूव ह ॥२४६॥[5]
... ...

पहर चारि लौं विग्रह भयऊ। दुहु दिसि लोग जूझि सब गयऊ॥[6]

यहाँ संस्कृत में 'दिनमेकं' है, अतः इसके रूपान्तर में भी कवि ने चार प्रहर ही दिया है; जो केवल दिन का मान है, रात्रि सहित दिन का नहीं।

जोध कवि की संस्कृत-रचना के अतिरिक्त 'दशमग्रन्थ' के इक्यानवें चरित्र की पंक्तियों के साथ सादृश्य-निदर्शन हम पहले ही कर चुके हैं।[7]

---

१. जोध कवि, माधवानल कामकन्दला चरित
२. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १८७
३. जोध कवि, माधवानल कामकन्दला चरित
४. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १९८-९९
पाठान्तर—द्वादिश मांहि तूंबरिया दीना। दक्षिण हाथ अंगूठा हीना॥
सात चार के मध्य है उठिके देषहु ताहि।
चूके पाउ न ताल मिल्लि पातुर दोस न आहि॥
—सं० डॉ० बलबीर सिंह, माधवानल कामकन्दला चरित (लाहौर वाली प्रति), पृ० १२
५. जोध कवि, माधवानल कामकन्दला चरित
६. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० २३०
७. दे०, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, पृ० ८६

श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह' में सम्पूर्ण 'माधवानल कामकन्दला' को संकलित कर दिया है। इसमें 'परब्रह्म' तथा अकबर की प्रशस्ति और रचना-काल के बाद सीधे कथा का आरम्भ होता है। वस्तुतः आलम कृत 'माधवानल कामकन्दला' में आरम्भ में नगर-वर्णन तथा माधवानल के रूप-चित्रण आदि से कथा-सूत्र को आगे बढ़ाया गया है। इस आरम्भिक खण्ड की कथा कामकन्दला के वियोग तक की है। उसके बाद संपादक ने आगे माधव-कामकन्दला-वियोग खण्ड, माधव-विरह-वर्णन खण्ड, विक्रम-सहायता-खण्ड, कन्दला-प्रेम-परीक्षा खण्ड, माधव-प्रेम-परीक्षा खण्ड, विक्रम-चितारोहण खण्ड, वैताल खण्ड, राजा-वैद्य खण्ड, दूत-खण्ड, युद्ध-खण्ड और माधव-कन्दला-मिलन खण्ड आदि नामों मे कथा को विभाजित कर दिया है। इसमे ऐसा आभास देने का प्रयत्न किया गया है कि आलम की यह रचना भी सूफी प्रेमाख्यान है, जबकि वस्तु स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। जोध कवि के 'माधवानल कामकन्दला चरित' में कुल २५३ श्लोक हैं और यह अनुष्टुप छन्द में लिखा गया है। यह सम्पूर्ण कथा आरम्भ से अन्त तक बिना किसी विभाजन के धारावाहिक रूप में चलती है। आलम कृत 'माधवानल कामकन्दला' की प्रतियों में भी यह विभाजन नहीं है।

असूफी प्रेमाख्यान—'माधवानल कामकन्दला' असूफी प्रेमकाव्य है। इसमें कोई भी ऐसा स्थल नहीं है, जहाँ सूफी-साधना की ओर आध्यात्मिक संकेत किया गया हो। इसके नायक-नायिका भी न तो राजा और राजकुमारी हैं और न इन दोनों का प्रेम ही किसी हीरामन तोते के माध्यम से होता है। माधव एक ब्राह्मण है और विद्या तथा कला के कारण स्त्रियों के आकर्षण का केन्द्र बनता है। वह स्वयं न साधना के पथ पर पग बढ़ाता है और न कामकन्दला की उपलब्धि के लिए नगर-त्याग करता है। उसे राजा के द्वारा प्रजा की माँग पर राज्य से निकाल दिया जाता है। विवश होकर वह कामावती नगरी में जाता है। वहाँ पहुँचकर वह कामकन्दला के गुणों की चर्चा सुनता है और उस राजमहल में प्रवेश पाने के लिए उत्सुक होता है, जहाँ उसका नृत्य हो रहा होता है। जब उसे प्रवेश नहीं मिलता तो वह द्वारपाल के द्वारा अपनी कला-मर्मज्ञता का सन्देश राजा के पास भिजवाता है और कामकन्दला की कला पर ही मुग्ध होकर राजा द्वारा प्रदत्त पुरस्कारों को उसे भेंट कर देता है। राजा के रुष्ट होने पर वह राजा को फटकार कर चल देता है। कामकन्दला उसे अपने आवास में बुलाती है और पारस्परिक कला-मर्मज्ञता एवं सहानुभूति के कारण दोनों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। कामकन्दला और माधव के विरह-वर्णन में भी ऐसा कोई रूप नहीं दिखाई देता है, जिससे यह आभास मिले कि ये विरह-वर्णन आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत हैं। परिस्थितिवश ही वह विक्रम की उज्जयिनी नगरी में पहुँचता है, जहाँ उसके ब्राह्मणत्व एवं कला का आदर होता है। विक्रम और माधव मे जो बातचीत होती है वह भी आध्यात्मिक कम और लौकिक अधिक प्रतीत होती है। विक्रम की सहायता से ही वह कामकन्दला को प्राप्त करता है। विक्रम का भी, इस रचना में लोक कथाओं के अनुसार उत्तम चरित्र अंकित किया गया है। एक दोहे में आलम ने उनकी प्रशस्ति इस प्रकार प्रस्तुत की है—

अपनौ सुख तजि दुख लहैं, पर दुख खंडन जाइ।
वार निबाहै एक सम, धनि सकबंधी राइ ॥१७६॥[1]

दोनों कला-साधक हैं, परन्तु दोनों में से कोई भी ब्रह्म-प्राप्ति का साधक नहीं है। आलम की इस रचना में किसी प्रकार के खल-नायक का समावेश नहीं किया गया है। कामसेन और माधव का झगडा कामकन्दला को लेकर नहीं होता, केवल कला के महत्त्व-अंकन को लेकर होता है।

सूफी काव्यों में प्रतीक-योजना भी मिलती है, और समासोक्ति तथा अन्योक्ति भी। साधक की विरह-भावना, आध्यात्मिक यात्रा या सूफी-साधना के पथ पर नायक को अग्रसर करती है और उसे विवेक-बुद्धि या खुदा के विशिष्ट नूर (ब्रह्म-ज्योति) की उपलब्धि होती है। 'माधवानल कामकन्दला' में माधव सौन्दर्य का देवता कामदेव है। उसका सौन्दर्य स्त्रियों को इसीलिए आकृष्ट करता है। संगीत में उसकी अद्वितीय गति है। गणपति के 'माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध' में शुकदेव के शाप से 'काम' माधव के रूप में और 'रति' कामकन्दला के रूप में जन्म लेते है, ऐसा वर्णन है। आलम की इस रचना में पूर्वभव का कोई वर्णन नहीं है।

यद्यपि आलम ने सूफी कवियों की भाँति ही अवधी भाषा और दोहा-चौपाई की शैली अपनाई है, परन्तु घत्तों के रूप में दोहे के स्थान पर आलम ने सोरठे का प्रयोग अधिक किया है। इससे भी प्रतीत होता है कि आलम ने सूफी-काव्यों का अनुसरण करने का प्रयत्न नहीं किया है। दशम गुरु के दरबार में इस शैली का प्रचुर प्रचलन था। काम-कन्दला के नृत्य के वर्णन के समय पाँच अर्द्धालियों के बाद एक घत्ता देने की पद्धति का उल्लंघन हुआ है। इससे स्पष्ट है कि भाव की पूर्णता को आलम ने प्रमुख आधार स्वीकार किया है और आवश्यकतानुसार समान शैली अपनाने को महत्त्व नही दिया। आलम की अवधी भाषा सूफी कवियों की अवधी से कहीं अधिक तत्सम पदावली युक्त और परिमार्जित है। माधव और कामकन्दला का प्रणय, विरह और मिलन एक ओर तो परिस्थितियों की देन है और दूसरी ओर सौन्दर्य तथा कलाजन्य आकर्षण की। दोनों के कथनों में भी ऐसा कोई संकेत नही मिलता कि वे एक दूसरे में 'परब्रह्म' के 'नूर' का दर्शन कर रहे हैं। शूद्रक के 'मृच्छ कटिक' नाटक में चारुदत्त और वसंत सेना का लौकिक प्रेम ही प्रस्तुत किया गया है। उनमें भी एक ब्राह्मण और दूसरी वारवनिता है। यही स्थिति यहाँ भी है। माधव ब्राह्मण है और कामकंदला वारवनिता। विक्रमादित्य और वैताल का समावेश इसे लौकिक कथाओं की सीमा में खींच लाता है। यह अवश्य है कि आलम ने माधव और कामकन्दला के द्विपक्षीय प्रेम और विरह का अत्यन्त गहराई के साथ वर्णन किया है। केवल प्रेम का प्रस्तुतीकरण ही किसी रचना को सूफी प्रेमाख्यानों की सीमा में लाने के लिए पर्याप्त नहीं है।

चरित्र-चित्रण

आलम ने 'माधवानल कामकन्दला' में विविध पात्रों के चरित्रों का उद्घाटन किया

---

१. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० २३१

है। ये सभी पात्र अपनी-अपनी चारित्रिक विशेषताओं कें साथ अवतीर्ण हुए हैं। इन समस्त पात्रों में से मुख्य पात्र चार हैं—माधवानल, कामकन्दला, कामसेन और राजा विक्रम। पुहुपावती-नरेश राजा गोविन्दचन्द, राजा विक्रम का दूत श्रीपति तथा बैंताल आदि तीन गौण पात्र हैं।

माधव—माधव इस काव्य का नायक है। वह विप्र और सुख-त्यागी तथा वैरागी है। वह विद्वान् तो है ही, अपने सौन्दर्य में साक्षात् कामदेव भी प्रतीत होता है—

विद्या सोइ वृहस्पति जानो। रूप सोइ मकरध्वज मानो।

उसके सौन्दर्य पर नगर की सभी स्त्रियाँ मुग्ध हो जाती हैं। उसके संगीत-नाद को सुनकर सभी विचलित हो उठती हैं। माधव के वीणा-वादन तथा रूप-सौन्दर्य का प्रभाव श्रीकृष्ण के सम्मोहनकारी प्रभाव के सदृश ही निरूपित किया गया है—

एकनि परत न चीर सँभारा। व्याकुल भई छूटि गये बारा।
एकनि भूषन दए उतारी। एकनि तजी कंचुकी सारी।।
एकै नारि चली उठि संगा। जैसे धुनि सुनि चले कुरंगा।८।

कामसेन की संगीत सभा में जब माधव प्रवेश करता है तो उसका भव्य, तेजस्वी और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व देखकर सारी सभा चौंक उठती है, सब अनायास उसके सम्मान में खड़े हो जाते हैं। लोग आपस में कहने लगते हैं कि यह कौन है—

कै रे इन्द्र कै चन्द्र है, कै कन्दर कै काम।
कै कुबेर कै जच्छ है, कै किन्नर कै राम।।

वहाँ वह कामसेन को अपनी कला-मर्मज्ञता का परिचय देता है और एक ब्राह्मण के रूप में ही दक्षिणा प्राप्त करता है—

टका कोटी द्वै दछिना दीनी। स्वस्ति बोलि माधौनल लीनी।।३०।।

उसने अपनी संगीत-कला की निपुणता का कामसेन को पूरा परिचय दिया और एक-एक राग के साथ ५ रागनियों का सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। आलम ने माधव के चरित्र के माध्यम से अपनी संगीतज्ञता का पूर्ण परिचय दिया है। भैरवी, बिलाविल, बंगाली, आसावरी, बैराटी, पिंगाली, मालोवा, गौड़ी, गांधारी, धनश्री, मारु, हिंडोल, तेलंगी, वासंती, सिंधुरी आदि अनेक राग-रागनियों और रागपुत्रों के नाम स्थान-भेद से दिए गए हैं तथा सातों सुरों का परिचय दिया गया है। कामकन्दला के नृत्य के समय मृदंग के बोल, दोहा और षट्पद गाने तथा कामकन्दला द्वारा उन गीतों के भावों की अभिव्यक्ति आदि का पूरा वर्णन देते हुए माधव ने अपनी कला का प्रदर्शन किया है। राजा के रुष्ट होने पर माधवा का कला-गर्व जाग उठता है और वह कहता है—

मैं गुनिवंत भूमि पर बैसा। चरन धोई करि पियें नरेसा ॥४५॥

माधव कोककला में भी निपुण है (दोहा ५१)। वह कामकन्दला के हित की दृष्टि से ही उस नगर को भी छोड़ कर चल देता है।

उज्जयिनी में पहुँचकर वह शिव-मन्दिर में डेरा डालता है और किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर नहीं देखता। उसके दोहे पर मुग्ध होकर विक्रम उसकी सहायता के लिए तैयार होते हैं और उसे बहुत कुछ देने के लिए भी, किन्तु वह उन से केवल कामकन्दला की उपलब्धि के लिए ही याचना करता है। विक्रम द्वारा ली गई प्रेम-परीक्षा में भी वह खरा उतरता है और कामकन्दला की मृत्यु का समाचार सुनकर स्वयं भी प्राण त्याग देता है—

सुनत बात माधौनल काना। तुम पर दिए कन्दला प्राणा।
सुनत बात द्विज बिस भरि गयऊ। धरनि पछार खाइ मरि गयऊ ॥

विक्रमादित्य द्वारा कामसेन पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त उसे कामकन्दला प्राप्त हो जाती है।

इस सम्पूर्ण कथा में माधव का चरित्र एक विद्वान्, कला-मर्मज्ञ, गुणी और प्रेमी ब्राह्मण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परिस्थितियों पर वह विजय प्राप्त करता है और अपने सौन्दर्य तथा कला-प्रेम के कारण उसे दो राज्यों से पलायन करना पड़ता है। विक्रमादित्य जैसे गुणी राजा ही उसकी विद्या, कला और प्रेम का आदर करते हैं। यह चरित्र एक सूफी साधक का नहीं, अपितु परिस्थितियों से विवश एक प्रेमी पात्र का है। वह निरन्तर राज्याश्रय की खोज करता है और अन्त में एक कला एवं विद्या-प्रेमी राजा का आश्रय प्राप्त करके ही उसकी कामना-पूर्ति होती है। डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय ने लिखा है कि—"हिन्दी के असूफी प्रेमाख्यानों में नायकों के चरित्रों में सूफी कथाओं के नायकों की भाँति एकरूपता न होकर विविधता पाई जाती है।[1] आलम ने 'माधवानल कामकन्दला' में भी माधव का चरित्र केवल साधक के रूप में न रखकर उसे विविधता से सम्पन्न करने का प्रयास किया है। उसकी कला विभिन्न प्रकार के उत्थान-पतन का दर्शन करती है। उसका प्रेम विवेक-सम्पन्न प्रेम है, जो प्रेमिका के हिताहित की भी चिन्ता करता है। उपयुक्त राज्याश्रय की खोज में वह निराश भी होता है और अन्त में 'पर-दुखहारी' विक्रमादित्य को प्राप्त कर लेता है। आलम ने संगीत की महत्ता और संगीतज्ञ के गौरव को ही माधव के चरित्र के माध्यम से उभारा है। अतः आलम का उद्देश्य भी एक कलाकार प्रेमी की अत्यन्त लोकप्रिय हृदयग्राही कथा को अंकित करना रहा है।

माधव एक शक्तिशाली चरित्र है। उसमें आत्मचिंतन है, कला की परख है, विद्रोह की शक्ति है और नर्तकी से प्रेम कर पत्नी-रूप में स्वीकार करने का साहस भी है।

---

1. डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २०६

संगीत-कला की सूक्ष्म परख का परिचय वह उस समय देता है जब कामकन्दला नृत्य कर रही होती है। उसके वक्षस्थल पर एक भ्रमर के आ बैठने से उसकी गति में विक्षेप उत्पन्न हो जाता है, जिसको केवल माधव ही जान पाता है।[1] माधव सूफी प्रेमाख्यानों के नायकों की भाँति साधक न होते हुए भी अपने उच्च प्रेम, त्याग और एकनिष्ठता के कारण गहरा प्रभाव छोड़ता है। वह सात्विक प्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण है।[2]

कामकन्दला—प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य में दूसरा प्रमुख चरित्र कामकन्दला का है। कामकन्दला सूफी प्रेमाख्यानों की नायिकाओं की अपेक्षा अधिक भावप्रज्ञ, कोमल और अनुभूति प्रवण है। उसका प्रेम अधिक प्रखर और त्यागपूर्ण है। वह कामावती की राजनर्तकी है, पर एक ब्राह्मण के प्रेम के लिए अपने सम्पूर्ण वैभव और सुख को ठुकरा देती है। संगीतकला के पारखी माधव को वह अंगीकार करती है और जीवन भर उसकी रहती है। सूफी प्रेमाख्यानों का कोई रचयिता एक नर्तकी को अपनी कथा की नायिका नहीं बना सकता था।

भारतीय साहित्य में वेश्या तक को नायिका बनाने की परम्परा रही है। शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में वसन्तसेना को नायिका बनाया गया है, जो गणिका है और वह ब्राह्मण चारुदत्त को अपना हृदय दान कर देती है। वात्स्यायन के कामसूत्र में उन नायकों के गुण बताए गए हैं जिनको वेश्यायें प्रीति और यश के लिए मिल जाती हैं। कवि, विद्वान्, कलादर्शी, कथा कहने में चतुर, प्रगलभवक्ता, शिल्पज्ञ, उत्साही, निरोग तथा स्त्रियों के वश में न होने वाला आदि गुण उक्त वेश्या-प्रेमी नायकों के सन्दर्भ में गिनाये गए हैं।[3]

प्राकृत के 'वसुदेव हिंडी' में गणिका वसन्ततिलका का धम्मिल के प्रति प्रेम दिखाया गया है। 'कथा सरित सागर' की मदनमाला पाटलीपुत्र के राजा विक्रमादित्य से प्रेम करती है। आनन्दधर (१३०० ई०) के 'माधवानल आख्यानम्' में लगभग यही कथा प्रस्तुत की गई है।[4]

'श्याम-सनेही' की रुक्मिणी के समान ही कन्दला भी आलम की एक विशिष्ट साहित्यिक सृष्टि है। उसका रूप, सौन्दर्य, व्यक्तित्व एवं चरित्र—सभी कुछ अपूर्व एवं अद्वितीय है। उसके रूप का वर्णन कवि ने विशेष विस्तार और रुचि के साथ किया है। कवि ने उसे 'चन्द्र की कला' कहा है। उसका रूप असीम है; सहस्रों जिह्वायें भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं—

तिहिपुर बसे चन्द्र की कला। पातुर सुनि कामकन्दला ॥
ताको रूप बरनि को पारा। बरनत सहस जीभ पुनि हारा ॥

---

१. आलम, माधवानल कामकन्दला, पृ० १६४
२ डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २११
३. वात्स्यायन, कामसूत्र, भाग दो, वैशेशिक अधिकरण, पृ० ८६६
४. डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० २१६-१७

कन्दला के केश, माँग, माँग के मोती, मस्तक पर लटकती हुई मणि, कर्णफूल, तिलक, भ्रूभंग, चितवन, नेत्र, कटाक्ष, नासिका, कपोलों पर के तिल तथा अधर आदि से लेकर कंठमाल, मौक्तिमदाम, कुच, क्षीण उदर, रोमावली तथा नाभि आदि का वर्णन कवि ने अत्यन्त मनोयोग से किया है।

आलम की कन्दला का यह रूप-चित्रण सूफी कवियों की नायिकाओं के रूप-चित्रण से किसी भाँति कम नहीं है। रूप-चित्रण के लिए कवि ने जिन अलंकारों और उपमानों को लिया है, वे रूढ़ ही हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

पल्लव बिंब बँधूक लजाहीं। आस्वास रस भौंर लुभाहीं।
दामिन दंत दिए जनु हीरा। सेत असेत अरुन के धीरा॥
सखि स्यों हास करहिं जब कामिनी। कमल पत्र कैधौं जनु दामिनी॥
सरस्यौं वचन जु बोलि सुनावै। सहज मनहुँ बाँसुरी बजावै॥
लोग कहैं कोकिल कल नीकी। ताकी धुनि सुनि लागति फीकी।
अबला बचन अमोल, प्रान धरन चिंता हरन।
श्रवण सुनत वे बोल, मुनि मनसा नहि थिर रहैं ॥१६॥

इसी प्रकार रूप-सौन्दर्य के अन्तर्गत नख-शिख वर्णन को भी आलम कहीं साहित्यिक मर्यादा मे च्युत नहीं होने देते। भक्ति-उपकरणों के कारण अश्लीलता का अभाव ही उनके नख-शिख-वर्णन को सुरुचि के आवरण से ढके रखता है। उदाहरण के लिए एक स्थल पर कवि ने उपमाओं, काव्य-रूढ़ियों व उत्प्रेक्षाओं आदि के माध्यम से नखशिख को सजीव रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'नाभि के आस-पास रोमावली ऐसी लगती है मानों सोने के खभे पर कस्तूरी की क्षीण रेखा खींच दी गई हो, या नाभिरूपी बांबी से कोई सर्पिणी निकल पडी हो, या कुचों रूपी कमल-युग्म की सुन्दर एक डंठल हो।' इसी क्रम में कवि ने यमुना की गति उलटी होने और उसका उलटे बहकर पर्वत पर गंगा से मिलने की उत्प्रेक्षा करके नवीन उद्भावना प्रस्तुत कर दी है। कुच रूपी पर्वत के ऊपर मोतियों की माला रूपी गंगा की, और रोमावली की श्यामता से यमुना की समता कल्पित करना कवि के सौन्दर्य-बोध की व्यापकता प्रकट करता है।[1]

कामकन्दला का प्रेम एकनिष्ठता और त्याग का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। माधव की कला-मर्मज्ञता और उदारता पर मुग्ध होकर कामकन्दला ही माधव के प्रति

---

१. उदर छीन रोमावलि देखा। कनक खंभ मृगमद की रेखा॥
नाभि निकट स्यों नागिन चली। जनु कुच कमल नलिन इक भली॥
नाभि पात सौं उठि सुहाही। कंवलहु तैं अति अवली आई॥
कै उलटी कालिन्दी बहही। गिरि गंगा परसन कौं चहही॥
—हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १६८

प्रेम-निवेदन करती है, माधव तो उसे चेतावनी मात्र देता है कि स्थायी प्रेम का आश्वासन मिलने पर ही वह उससे प्रेम करने को तैयार हो सकता है—

प्रम कथा कछु मोहि सुनावहु। काम अग्नि की तपनि बुझावहु।
मैं रोगी तुम वैद गुनानी। मोहि सँजीवनि देहु सो आनी।४८।
... ...

सुनहु वारि माधौनल कहई। इहि जग नेहुँ नहीं थिर रहई।
जो थिर रहै तो कीजै नेहू। बिछुरि संताप देह को देहू।४६।

कामकन्दला का यह समर्पण सूफी प्रेमाख्यानों से सर्वथा भिन्न है। जब वह अपनी सखी से कोककला सीखने की चर्चा करती है तो स्वयं इस बात का संकेत करती है कि वह मुग्धा नायिका है और माधव के साथ ही उसका प्रथम समागम है—

अब लौं मुग्धा हुति अलबेली। सिखवहु रस की रीत सहेली।
पुरुष संग रचि सेज न जानहुँ। प्रथम समागम जिय पहिचानहुँ।५१॥

आलम ने माधव और कामकन्दला का जो संयोग-चित्रण किया है वह भारतीय परम्परा के अनुकूल है। 'कुमारसम्भव' के अष्टम सर्ग, 'नैषध' महाकाव्य के अठारहवें सर्ग (अष्टादश सर्ग) तथा 'गीत गोविन्द' में संयोग की आलिंगन, चुम्बन आदि काम-क्रीड़ाओं का वर्णन है। आलम ने संभोग का केवल सांकेतिक वर्णन किया है।[1]

कामकन्दला जिस एकनिष्ठता से माधव को समर्पण करती है उसी एक-निष्ठता से अन्त तक निर्वाह भी करती है। विक्रम द्वारा परीक्षा लिए जाने पर वह कहती है कि मैं हृदय लगाकर केवल माधव को देख सकती हूँ, उसी को देखते-देखते आँखें शिथिल पड़ गई हैं, विप्र मेरा मन और धन दोनों लेकर चला गया है और अन्त में वह मूच्छित हो जाती है—

मन धन जीउ विप्र लै गयऊ। तिहि बिनु सून द्रिस्टि जग भयऊ।
सो प्रीतम दै गयौ ठगौरी। तजि गुन रूप भई हौं बौरी।१२०।

विरह तेज-मूच्छित तन नारी। लै आयउ गर रूधि हकारी।
यह के प्रान स्वर्ग नहिं गयऊ। पंचभूत आतमा मूच्छित भयऊ।१२६।

माधव जिस प्रकार का विवेकशील प्रेमी है, कामकन्दला भी उसी प्रकार विवेक-शील और मर्यादा-सम्पन्न भारतीय नारी के रूप में चित्रित की गई है। माधव के चले

१. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १६८

जाने पर वह विरह-दुख का अनुभव तो करती है, किन्तु माधव को ढूंढने के लिए घर से बाहर नहीं निकलती। एक सती-साध्वी स्त्री की तरह ही वह विरह में तपती है और प्रेम में खरी उतरती है। आलम ने माधव और कामकन्दला में समान उत्कट प्रेम को अभिव्यक्ति दी है। यहाँ संगीत और नृत्य-कला के पारस्परिक सम्बन्ध को माधव और कामकन्दला के प्रणय-सम्बन्ध के रूप में अभिव्यक्ति दी गई है।

अन्य पात्र—अन्य पात्रों में पुष्पावती (पुहुपावती) का राजा गोविन्द चन्द प्रजा की सम्मति पर राज्य करने वाला राजा है। वह माधव को सम्मान सहित देश निकाला देता है। कामावती का राजा कामसेन कला-प्रेमी है, किन्तु वह अविवेकी के रूप में चित्रित किया गया है। जब माधव अपनी और उसकी कला-मर्मज्ञता की तुलना करता है तो वह (कामसेन) क्रुद्ध होकर भी केवल उसे देशनिकाला मात्र देता है, वह वहाँ पर भी अपयश से डरता है—

मारौं खड़्ग टूक द्वै करौ। विप्रघात अपजस सो डरौं।।४३।।

कामसेन का चित्रण भी दुष्ट राजा के रूप में नहीं हुआ है। वह केवल अपयश से भयभीत होता है। न तो वह माधव का वध करता है और न ही विक्रम द्वारा दूत के माध्यम से कामकन्दला माँगे जाने पर उसे देना ही स्वीकार करता है। वह युद्ध के लिए तत्पर होता है और युद्ध में विजय के उपरान्त ही विक्रमादित्य उसके राज्य से कामकन्दला को प्राप्त कर पाते हैं—

कामसैनि राजा तब कहई। रिस करि रूखे बचन न सहई।
... ...
जो तुम कामकन्दला देऊँ। सब दानिन मैं अपजस लेऊँ ॥१५६॥

राजाओं में विक्रमादित्य का चरित्र ठीक वैसा ही चित्रित किया गया है जैसा वह 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' में चित्रित है। उसका चरित्र 'पर-दुख कातर', विद्या और कला के प्रेमी, ब्राह्मणों के आदरकर्ता, विवेकी और शकबन्धी योद्धा राजा के रूप में चित्रित किया गया है। वह माधव की विद्वत्ता की परीक्षा भी लेता है और प्रेम की परीक्षा भी—

कवित्त नाद गुन चातुरी, अर्थ ज्ञान सिंगार।
जो राजा मुख उच्चरहि, सो माधौ करै विचार।।११८।।

माधव और कामकन्दला की प्रेम-परीक्षा लेने पर जब दोनों बेसुध हो जाते हैं तो उसे अपने छल पर स्वयं पश्चाताप होता है और वह चिता पर चढ़ने की तैयारी कर लेता है। वह धर्म की हानि किसी प्रकार भी सह नहीं सकता।[1] आलम ने विक्रम के चरित्र की बड़ी प्रशंसा की है। कामकन्दला विक्रम की प्रशंसा करते हुए कहती है—

---

१. आलम, माधवानल कामकन्दला, पृ० १९-२०

विरला नर पंडित गुनी, बिरला बूझन हार।
दुख खंडन विरला पुरिष, ते उत्तम संसार ॥१४९॥

ऐसे चरित तुमहिं पर आवहिं। यह बुधि लोक वेद कहँ पावहिं॥
पर उपकार करहु बलवीरा। बूडत नाव लगावहु तीरा॥
कीरति कहिय न जाइ तुम्हारी। धर्म कर्म बलि बीर मुरारी॥
तुम समर्थ करिहौ सब काजा। हम संसार नरनि के राजा॥
जो बुधिवंत महाबली, नर सिरजे करतार।
पर उपकार नर दुखहरन, जे अगवत पर भार ॥१५०॥

इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध में कवि ने मुख्यरूप से चार —माधवानल, कामकन्दला, कामसेन तथा विक्रमादित्य, और गौण रूप से अन्य अनेकानेक वैयक्तिक और सामूहिक चरित्रों की योजना की है। सभी महत्त्वपूर्ण पात्रों के व्यक्तित्व को कवि समान रूप से विकसित करने में सफल हुआ है। गौण पात्र भी अपने योगदान के ही अनुपात में उभरे या दवे हुए मिलेंगे। सामूहिक आचरण के भी जो चित्र प्रस्तुत किए गए हैं वे अस्वाभाविक और अनगढ नहीं हैं। इन सभी पात्रों का व्यक्तित्व सरल और सादा है, उसमें अधिक अन्तर्विरोध और जटिलता नही है। फलतः सभी पात्र मानव-सुलभ विशेषताओं और संवेदनाओं से संपृक्त हैं।[1]

विरह-वर्णन

डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय ने गणपति रचित 'माधवानल-कामकन्दला प्रबन्ध' को कामपरक प्रेमाख्यानों में गिना है।[2] किन्तु, आलम के 'माधवानल-कामकन्दला' में संयोग का चित्रण अत्यल्प और सांकेतिक हुआ है। इससे वह गणपति की रचना से इस अंश में भिन्न प्रतीत होता है। आलम का उद्देश्य दो कलामर्मज्ञों के प्रणय का चित्रण ही है, अतः इसे कामपरक प्रेमाख्यानों से भिन्न समझा जाना चाहिए। कामकन्दला और माधव के जिस चरित्र को उभारा गया है वह कलापरक अधिक है। न तो वह सूफी प्रेमाख्यानों की तरह अध्यात्मपरक है और न गणपति के 'माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध' की तरह कामपरक। श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी ने इसे विरह-प्रधान आख्यान कहा है।[3] दोनों ओर प्रेम की पीड़ा समान है और नायक-नायिका दोनों में ही समान रूप से विरह की अभिव्यंजना की गई है। इस प्रकार यहाँ पर समानुराग के आदर्श का निरूपण हुआ है।

नायक और नायिका के थोड़े समय के सहवास के पश्चात् माधव बाँह छुड़ाकर चल देता है। बाँह छूटते ही कन्दला मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ती है। एक सखी

---

१. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३१३
२. डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १४०-४५
३. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १८२

आकर उसे अपनी गोद में उठा लेती है और सेज पर लिटा देती है। यहीं पर, कुछ विस्तार से, पहले कामकन्दला का और, फिर माधव का विरह वर्णित हुआ है। ये प्रसंग निर्बाध रूप से एक के बाद एक आए हैं और प्रबन्ध में मार्मिकता लाने वाले हैं। कामकन्दला के विरह-वर्णन में विविध दशाओं का चित्रण किया गया है—

खिन माधौ माधौ गुहिरावै। खिन भीतर खिन बाहिर आवै॥
बिरह ताप निसि सेज न सोवै। कर मीजै सिरु धुनि धुनि रोवै॥७६॥

... ...

कामवंत बिरहा बसि भई। विद्या बुद्धि सकल नसि गई॥
नृत्य गीत गुन की चतुराई। गति मति आनि बिरह बौराई॥७७॥

कामकन्दला भई वियोगिन। दुर्बल जनू बर्स की रोगिन॥७८॥

... ...

हा हा आइ स्वास के गाढे। छिन-छिन बिरह अनल तन बाढ़ै
हा हा प्रान न संग गये, जब बिछुरे भावंत।
कर मीजै वस्तर धुनै, गहै अँगुरिया दंत॥७८॥

... ...

छिन अचेत छिन चेतहि आवहि। पुनि-पुनि बिरह बिया तन तावहि॥७८॥
लंक टेक माधौ मग जोवै॥७८॥

ऊपर की पंक्तियों में स्मृति, उद्वेग, व्याधि, उन्माद, प्रलाप, मूर्च्छा तथा अभिलाषा आदि विभिन्न विरह-दशाओं का चित्रण हुआ है। यह चित्रण विस्तृत भले ही न हो, किन्तु विरहिणी कामकन्दला की विभिन्न मनोदशाओं को व्यक्त करने में पर्याप्त समर्थ है।

माधव के विरह-वर्णन में भी उसकी विविध मनोदशाओं का चित्रण हुआ है। यहाँ कुछ अतिशयोक्ति का भी आश्रय लिया गया है, जो सूफी प्रेमाख्यानों के विरह-वर्णन के अधिक समीप है—

हिऐं हूक भरि नैन जल, बिरह अनल अति हूम।
अंतर धर संवर बरै, स्वास प्रगट भइ धूम॥८२॥
जिय बिनु सूक पत्र ज्यों डोलै। सूल सहित माधौनल बोलै॥
निस दिन विप्र पीर करि रोवहि। वन पंछी निसि नींद न सोवहि॥८३॥

... ...

अहो वन विरह जोर मरि जाहूँ। कामकन्दला हौं न मिलाऊँ।।
अब खोजहु कोउ जग उपकारी। मिलवहि मोहि कन्दला नारी।।८४।।

... ...

बन बन फिरै नैन जल धोवै ।।८१।।

... ...

मन चिंता करि त्रिया वियोगी ।।८१।।

ऊपर की पंक्तियों में कृशता, प्रलाप, अभिलाषा, उन्माद तथा चिन्ता आदि विरह की विविध दशाओं का चित्रण हुआ है।

माधव के विरह में भी प्रेम की एकनिष्ठता और अनन्यता है, और वही इस विरह को इतना प्रभावपूर्ण बनाए हुए है। भूखे-प्यासे विरही माधव की उज्जयिनी पहुँचने पर जो दशा चित्रित की गई है वह अत्यन्त हृदय-द्रावक है। उससे बोलते नहीं बनता, वह अत्यन्त कृशकाय हो गया है, आँखें नीची किए लम्बी-लम्बी आहें भरता रहता है। बड़ी कठिनाई के बाद जब बोल निकलते हैं तो हिचकियों के कारण वह पूरी बात भी नहीं कह पाता।[1] यहाँ विरह दशा का चित्रण करते हुए सात्विक भावों की भी मार्मिक अभिव्यंजना की गई है।

विरह-व्यथा के वर्णन में यह ग्रन्थ अन्य प्रेममार्गी कवियों के काव्यों के समकक्ष है। यद्यपि इसमें आध्यात्मिक व्यंजनाएँ कम हैं तथापि सूफी सम्प्रदाय की मूलभावना प्रेम की पीर के समकक्ष विरह का वर्णन इसमें भी मनोरम हुआ है।[2]

युद्ध-वर्णन

'माधवानल कामकन्दला' में आलम ने जहाँ एक ओर शृंगार के संयोग-वियोग आदि का अत्यन्त सरस, सुन्दर और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, वहाँ उनकी लेखनी युद्ध-वर्णन में भी उसी पटुता से चली है। युद्ध-वर्णन में शूरों की ललकार और उमंग तथा कायरों के भयभीत होने का (१६३), मारू बाजे बजने का और सैन्य-व्यूह का चित्रण आलम ने किया है। सैन्य-संचालन और उसके बजते हुए बाजों के प्रभाव के शब्द-चित्र अत्यन्त सरस बन पड़े हैं।[3] दोनों सेनाओं के घमासान युद्ध, रावत से रावत और योद्धा से योद्धा की भिड़न्त तथा रुंड-मुंडों के पृथ्वी पर गिरने आदि के चित्र भी सजीव

१. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, कड़वक ८३-८४, पृ० २०६
२. वही, पृ० १८२
३. मेघ सब्द जिमि बजैं निसाना। उठे अकूट अम्बर घहराना।।
भरे झांझ धुनि सुनै अडारू। सूर समूह अरु बाजहिं मारू।।
मारु सब्द सुनहिं जिमि बीरा। पुलकत रोम-रोम अरु धीरा।।२४४।।

हैं।[1] कटे हुए रुंड भी युद्ध की हुंकार करते दिखाई पड़ते हैं।[2] आलम ने कुछ दोहों में वीरों की प्रशंसा निम्नलिखित रूप में की है—

सिंहनि ऐसो पूत जनि, पर रन मंडहि जाइ।
कुंभ पिदारन गज दलन, अब रन मंडै जाइ ॥१६५॥
सिंहनि ऐसो पूत जनि, सिंह बिदारन जोग।
धर सूरा रन भागना, जिन न हंसैयें लोग ॥१७३॥

आलम के उक्त दोनों दोहे उनके पूर्ववर्ती पृथ्वीराज के निम्नलिखित दोहे से समानता रखते हैं। सम्भव है आलम, पृथ्वीराज के अत्यन्त प्रचलित वीर रसात्मक दोहों से परिचित रहे हों—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप।
अकबर सूतो ओझ कै, जाण सिराणे साँप ॥१२२॥[3]

आलम ने जितने भी दोहे दिए हैं वे सभी वीरता का वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

सुनि मारु को राग, भुज फरकें रनवीर के।
युद्ध जाइ मन लाइ, 'मारु' 'मारु' मुख उच्चरैं ॥१६८॥
सूर गरजि काइर डरहिं, सुनि गज सिंह सुदूर।
षड्ग खोल तैं जानियै, कोइ कायर कोइ सूर ॥१६९॥
सेज खड्ग नेजै सहैं, खांय खड्ग की मार।
सूरवीर पैंते गनौ, सहैं लोह की मार ॥१७०॥
कर न करैं विश्राम, घाव जे सन्मुख सहि सकहिं।
जे जूझैं संग्राम, ते अपछर वर ह्वै रहहिं ॥१७१॥

---

१. रावत पर रावत चढ़ि धाए। धनुख पर धनुख चढ़ि आये ॥
पाइक सौ पाइक भए जोरा। लरत बार यौं मुख नहिं मोरा ॥
गज सौ गज कीने चौदन्ता। चिक्करै कुंजर में मत मन्ता ॥
बाजै लोह उठैं टंकारा। ता पर फिरै षड्ग की धारा ॥
फूटैं फूट मुंड कटि जाही। बाजैं सार सार छन जाहीं ॥१७०॥

२. हांकै खड्ग उतरि गए। फिरै राति धरती पर ॥
सूर जूझि धरती जै परहीं। मूढ़ौ मार मार उच्चही ॥७१॥
—सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह

३. सं० मोतीलाल मेनारिया, डिंगल में वीर रस, पृ० ४१

आलम का युद्ध-वर्णन 'जंगनामा' और 'गुरुशोभा' की तरह ही शस्त्र-संचालन, योद्धाओं के घायल होने, रक्त की धार बहने, जोगनियों के खोपड़ी फोड़ने और शृंगालों के मांस भक्षण करने आदि के वर्णन में ही समाप्त हो गया है—

अगिन बान छुटें दुहुं ओरा। चकित बिजुकित हाथी घोड़ा।
धनुषहि धनुष वीर जो नाहा। अटकै पंच बान सौ कहा।
चलै चक्र जो लै हथि नाला। पसरहिं धूम होइ अँधकाला ॥१६९॥
... ...
रावत सों रावत जो भिरई। एकहि मारी एक पगधरई।
हाँके सूर सूर सौं भिरही। घायल भूमि एक गिरि परहीं ॥१७१॥

दशम गुरु के दरबार में लिखे गए 'जंगनामा' और 'गुरुशोभा' के युद्ध-वर्णनों में रासो-परम्परा की ही छाप दिखाई पड़ती है। आलम के युद्ध-वर्णन में भी वही छाप दृष्टिगत होती है। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' में सैनिकों के लिए स्वामी-धर्म की प्रतिष्ठा को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। यह सामंतवादी व्यवस्था की एक प्रमुख देन थी जो कौटिल्य के समय से ही चली आ रही थी। चन्द ने क्षत्रिय-धर्म का उल्लेख निम्नलिखित दोहे में किया है—

बरदाय चंद चितनु करे, धनि छत्री जिन भ्रम्म मति।
मुक्कहिं न स्वामि संकट परे, तैं कहिये रावतपति ॥६१॥५६९॥[1]

आलम के युद्ध-वर्णन की पंक्तियों में 'रावत सौ रावत जो भिरई' तो कहा ही गया है, चन्द के उक्त दोहे का भाव भी उन्होंने निम्नलिखित दोहे में ग्रहण किया है—

पर दल खंडहिं लरि मरैं, खाय जु सन्मुख घाव।
स्वामी संग ते ना तजैं, छत्री कुलहि सुभाव ॥१७४॥

आलम ने इस युद्ध-वर्णन में सामूहिक उत्साह का चित्रण अधिक किया है। प्रमुख वीरों की वीरता का वैयक्तिक चित्रण इसमें नहीं हुआ। सामान्यतः यह वर्णन परम्परागत शैली में होते हुए भी जीवंत है। वीर रस की दृष्टि से उत्साह स्थायी भाव का निदर्शन अच्छी तरह हुआ है जिससे वीररस की सृष्टि निर्बाध रूप से होती गई है।[2]

अलंकार, छन्द और भाषा

'माधवानल कामकन्दला' में सादृश्यमूलक अलंकार ही प्रयुक्त हुए हैं और वे भी स्वाभाविक रूप से आए हुए है। उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप और रूपक का ही प्रयोग अधिक हुआ है। सन्देह, सांगरूपक और रूपकातिशयोक्ति के दर्शन कुछ स्थलों पर ही होते हैं—

१. उपमा

जंघ जुगल कदली के खंभा ॥२३॥

---

१. डॉ० छविनाथ त्रिपाठी का लेख, पृथ्वीराज रासो : एक पौराणिक महाकाव्य और चन्द का व्यक्तित्व, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय रिसर्च जनरल, पृ० ६७

२. डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा, रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३१२

२. उल्लेख

इक् त्रिय मोहि मुर्छित परही । इक त्रिय धरत सुद्धि नहिं रहहि ।१८६।

३. दृष्टांत

डोले एक पवन ज्यों दिया ॥६॥

४. सन्देह

कुंतल चिहुर चुर्वहि ज्यों घाला । अंबुधार कैधों अलिमाला ॥१६

५. प्रतीप

(क) पल्लव बिंब बधूक लजाहीं ॥१६॥
(ख) लोग कहैं कोकिल कल नीकी । ताकी सुधि सुनि लागति फीकी ।१६।

६. उत्प्रेक्षा

अति कठोर कुच तन उठे, सवलैं सहित सुभाइ ।
मनुहु मैंन को भस्म करि, बैठे ईस चढ़ाइ ॥२०॥

७. रूपक

डसै विरह कै व्याला ॥१४२॥

८. सांगरूपक एवं रूपकातिशयोक्ति

इत तैं गंगा सुर चल्यौ, उत तैं जमुना अंभु ।
कुंकुम चंग तुरंग भरि, मिलि परसै इक संभु ॥२२॥

नाम-परिगणन शैली का केवल एक स्थान पर प्रयोग हुआ है, जहाँ माधव द्वारा विविध राग-रागनियों के गाए जाने का उल्लेख किया गया है ।[1]

छंद---आलम ने यह स्वयं संकेत किया है कि उन्होंने चौपाई में इस कथा की रचना की है और बीच-बीच में दोहे और सोरठे का प्रयोग किया है—

कथा चौपहि आलम कीन्हीं । पहिले कथा स्रवन सुनि लीन्हीं ।
कहुँ कहुँ बीच दोहरा परैं । कहूं आनि सोरठा धरैं ॥१८०॥

चौपाइयों के बाद आने वाले दोहे अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर और सुगठित बन पड़े हैं । अनेक स्थानों पर ऐसा लगता है जैसे ऊपर की पाँचों अर्धालियों का सारा तत्त्व निचोड़ कर दोहे में भर दिया गया हो । चौपाइयां मात्रा आदि की दृष्टि से कितने ही स्थलों पर सदोष हैं; जिसका एक कारण शुद्ध पाठ की उपलब्धि का अभाव भी हो सकता है ।

आलम की इस रचना में सामान्यतः पाँच-पाँच अर्धालियों के बाद एक दोहे या सोरठे का प्रयोग किया गया है ।[2] इस प्रकार इसमें कुल १८० कड़वक हैं । केवल छठे

---

१. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० १६२-६४
२. डॉ० सियाराम तिवारी, हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य, पृ० २५४

कड़वक में दो सोरठों का एक साथ प्रयोग हुआ है और अड़तीसवें कड़वक में दस अर्धालियों के बाद घत्ता दिया गया है। इन दस अर्धालियों में कामकन्दला के नृत्य का वर्णन है। छन्द के लक्षण की दृष्टि से दोहे तो शुद्ध हैं, किन्तु सोरठों में मध्य तुक सम्बन्धी नियमों की ओर कम ध्यान दिया गया है—

मनु लागै जिहि धाइ, सो पुनि मन ही मो बसैं ।
जागत सोवत नित, देखहु आंखिन मैं लसै ॥
बिन देखें अकुलाइ, प्रान नहीं धीरज रहहिं ।
निस दिन भीजहिं चीर, नैना ही के नीरहिं ॥६॥

मात्रा सम्बन्धी नियम (११-१३, ११-१३) का पालन सर्वत्र हुआ है।

भाषा—'माधवानल कामकन्दला' की भाषा अवधी है और यह अवधी सूफी कवियों की अवधी की भाँति देशज शब्दों से ओत-प्रोत नहीं है। संस्कृत रचना के अनुकरण पर लिखे होने के कारण और कवि के संस्कृत भाषा से सम्भवतः परिचित होने के कारण भी आलम की अवधी में संस्कृत की तत्सम पदावली का अधिक प्रयोग हुआ है। इसलिए इसे शिष्ट और परिमार्जित अवधी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

हरे पीत मनि लाल बिसाला। रतन जटित सोहती कण्ठमाला ॥
मुकताहल दोउ कुच विच रहहीं। दुहुं पुर मध्य जु सुरसरि बहहीं ॥२०॥

सम्पूर्ण 'माधवानल कामकन्दला' में लगभग इसी तरह की भाषा का प्रयोग हुआ है। लेकिन यह एक रोचक तथ्य है कि कविता लिखते हुए मुक्तक रचनाओं में तो आलम ने ब्रजभाषा को ग्रहण किया है जबकि प्रबन्ध ग्रन्थों में अवधी का प्रयोग किया है। इससे दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वे संस्कृत की शब्दावली से भी परिचित थे। दशम गुरु के दरबार में संस्कृत-रचनाओं के भाषा-रूपान्तर का जो महायज्ञ चल रहा था, उसका प्रचुर प्रभाव भी उनपर तत्सम पदावली के ग्रहण के रूप में पड़ा था।

अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से आलम का शब्द-भण्डार इतना समृद्ध है कि उसमें तत्सम आदि रूपों से लेकर विदेशी शब्द-रूप तक प्राप्त हो जाते हैं, और वे बड़े साभिप्राय रूप से उनके काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के लिए कतिपय शब्द निम्नलिखित हैं—

१. **तत्सम शब्द**—अन्त, इन्द्र, कटक, कंत, अंबु, अनूप, कंचन, कमल, कर, चंचल, चंदन, नाद, दारा, जगत्, ताल, तिलक, तुरंग, त्रास, दंड, द्वारा, धर्म, नृप, नूपुर तथा पवित्र आदि।

२. **अर्द्ध तत्सम शब्द**—अन्तरजामी, उतपत्ति, कटाच्छ, ईस, दरस।

३. **तद्भव शब्द**—अचरज, अरसु, उठि, खंभ, घर।

४. **विदेशी शब्द**—अंदेसा, आलम, तुरक, राह, सुरताना।

५. **समस्त शब्द**—अंबु-धार, आदि-अंत, कनक-बेलि, घट-घट, पुष्प-पत्र, दिन-रैन।

आलम ने अभिव्यक्ति की सबलता के लिए अलंकारों के अतिरिक्त मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रचलित रूपों का भी अत्यन्त सचोट प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ निम्नलिखित रूप में हैं—

मुहावरे

(१) अब लै चलहु बेगि गहि बाहां ।[१]
(२) अंखियन से जिहि अंखियन लागी ।[२]
(३) कर मीजै सिरु धुनि धुनि रोवै ।[३]
(४) गहि लीनी माधवनल बाहां ।[४]
(५) चरन धोई करि पिये नरेसा ।[५]
(६) ताके आंसू भरि भरि आवे ।[६]
(७) तुम पर दिये कंदला प्राण ।[७]
(८) पलक ओट आंखनि अकुलाहिं ।[८]
(९) मदन घाउ पर जन विष लावै ।[९]
(१०) मुख मांगौ सोई तुम पावहु ।[१०]
(११) रकत धार निसि वासर रोयौ ।[११]
(१२) सो प्रीतम दै गयो ठगोरी ।[१२]
(१३) सजल नैन बहैं जल के नारे ।[१३]

आलम द्वारा प्रयुक्त इन मुहावरों में शिष्टता तथा सहजता के दर्शन होतें हैं। स्थिति, अवस्था तथा भाव आदि की अभिव्यक्ति में कलापूर्ण सजीवता विम्बित है। जन-भाषा के आंचलिक मुहावरों को शिष्ट-साहित्य के अनुरूप परिष्कृत करके उनका यथोचित प्रसंगों में प्रयोग करना आलम की अपनी विशिष्टता है।

---

१. सं० गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह, पृ० २०९
२. वही, पृ० २११
३. वही, पृ० २०४
४. वही, पृ० २१३
५. वही, पृ० १९६
६. वही, पृ० २०२
७. वही, पृ० २१८
८. वही, पृ० २००
९. वही, पृ० २०५
१०. वही, पृ० २२२
११. वही, पृ० २१३
१२ वही, पृ० २१५
१३. वही, पृ० २०४

लोकोक्तियाँ

(१) अगम अथाह अलेख अति, विरह समुद्र अगाध।
प्रीति हिरानी बुद्धिजनु, भूले ब्रह्म समाध ।।[1]

(२) इहि जग मांह मरन सब आये। राजा रंक काल सब खाये ।।[2]

(३) इहि जग नेहु नहीं थिर रहई।[3]

(४) कर्म रेख सो कुछ न बसाई। जो विधि लिख्यो सो मेटि न जाइ ।।[4]

(५) खंड खंड तीरथ करौं, कांसी करवत लेहुं।[5]

(६) जो जाके मन मांह बसाई। तजि वदन सालहि गज पाई ।।[6]

(७) तीरथ कोटि जग्य जो करै। तबहुं न ब्रह्म दोष ते तरै।।[7]

(८) पाहन रेख न मेटी जाइ।[8]

(९) बिरह समुद्र अगम अति आही। बूड़ि मरै नहिं पावै थाही ।।[9]

(१०) सप्त समुद्र सरिता जलु वहई। चातक स्वाति बूंद कों चहई ।।[10]

उपरिलिखित लोकोक्तियों को देखकर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कवि ने ऐसी लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जो तद्युगीन लोक-संस्कृति का एक विशिष्ट अंग बन चुकी थीं। इनके माध्यम से अपने कथ्य को सम्प्रेषित करने की कला के दर्शन भी आलम में होते हैं। एक ओर इन लोकोक्तियो द्वारा विवेच्य रचना का चिन्तन-पक्ष प्रबल हुआ है और दूसरी ओर भाषा की ध्वन्यात्मकता विशद रूप में प्रकट हुई है। वस्तुतः आलम के इस महत्त्वपूर्ण योगदान से उनके काव्य में उत्कर्ष, उदात्तता तथा कला की सौष्ठवता की अभिवृद्धि हुई है।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंग

अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति के लिए अथवा कथावस्तु में नया मोड़ देने के लिए आलम ने अपने काव्य में अनेक प्रौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों का उपयोग किया है। उदाहरण के लिए कतिपय पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंग निम्नलिखित हैं—

पौराणिक प्रसगं—हरिश्चन्द्र, राम-लक्ष्मण, हनुमान, पांडव, पंच-शर-हस्त, नल-दमयन्ती, महाराज धनवंतरि, संजीवनी तथा मुरारी आदि।

---

१. वही, पृ० २०५
२. वही, पृ० २२०
३. वही, पृ० १९७
४. वही, पृ० २००
५. वही, पृ० २०२
६. वही, पृ० २१२
७. वही, पृ० १९५
८. वही, पृ० २०८
९. वही, पृ० २०५
१०. वही, पृ० २१२

ऐतिहासिक प्रसंग—विक्रम, भोज, रत्नसेन, पद्मावती, भरत, भर्तृहरि और पिंगला आदि।

'माधवानल कामकंदला' में आलम ने पुराण या इतिहास सम्बन्धी अनेक प्रसंगों को समाविष्ट कर अपनी दृष्टांतमूलक दृष्टि का परिचय दिया है। इन प्रसंगों के कारण एक ओर कथानक सहजता के गुण से संज्ञित है और दूसरी ओर शिल्प-सामर्थ्य में भी इनका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

'माधवानल कामकन्दला' एक प्रेम कथा है। अतः श्रृंगार के ही संयोग और वियोग पक्ष इसमें मुख्य प्रतिपाद्य हैं। स्वयं आलम ने इस कथा के श्रवण-फल का निर्देश करते हुए इसी ओर संकेत किया है—

> प्रीतिवंत ह्वै सुनै सों कोई। बाढ़ै प्रीति हिंए सुख होई।
> कामी पुरिष रसिक जो सुनहीं। ते या कथा रैनि दिन सुनही।१८०॥

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि का उद्देश्य रसिक पुरुषों का मनोरंजन करना भी था। युद्ध-वर्णन, श्रृंगार के संयोग-वियोग—इन दोनों पक्षों की अपेक्षा गौण हो गया है। स्वयं नायक माधव इस युद्ध में भाग नहीं लेता। अतः नायक की वीरता के प्रदर्शन का प्रश्न ही नहीं उठता। जिन विक्रम और कामसेन के बीच युद्ध होता है उनके स्वयं वीरता-प्रदर्शन का भी कोई अवसर आलम ने उपस्थित नहीं किया है। सैनिकों के युद्ध-वर्णन में ही इसकी समाप्ति हो गई है। युद्ध मे कामसेन की पराजय और कामकन्दला का विक्रम को सौपा जाना, केवल घटनाओं के वर्णन-मात्र हैं, उन्हें रस-परिपाक की अवस्था तक नहीं पहुँचाया गया है, भले ही आलम ने वीरत्व की अभिव्यंजना करने वाले कुछ दोहे या सोरठे बीच-बीच में दे दिये हैं; परन्तु इसे श्रृंगार रस प्रधान काव्य कहना ही अधिक उपयुक्त है।

आकार की दृष्टि से यह छोटा काव्य है, अतः कथावस्तु तीव्रगति से आगे बढ़ती है। सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति इसमें विरह-वर्णन के समय बारह-मासा का उपयोग नहीं किया गया। कामकन्दला का सन्देश माधव को अवश्य दिया गया है, पर वह एक पत्नी का विरह निवेदन मात्र है, उसमें किसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत नहीं मिलता।

कामकन्दला के आत्मसमर्पण के पश्चात् कथा एक प्रकार से पूर्ण हो जाती है; परन्तु प्रेम की शुद्धता की परख कराने के लिए ही कवि ने कथानक को आगे बढ़ाया है। प्रथम मिलन क्षणिक है, जबकि दूसरी बार का मिलन दाम्पत्य-प्रेम के स्थायित्व का सूचक है।

आलम ने माधव को तो अविवाहित ही रखा है, किन्तु कामकन्दला को सप्रसंगा दिखाया है। यह परम्परा कई सूफी प्रेमाख्यानों से सर्वथा भिन्न है। प्रणय का आरम्भ प्रत्यक्ष-दर्शन तथा गुण-दर्शन से होता है, जो सामान्यतः असूफी प्रेमकथाओं में ही उपलब्ध होता है। 'ढोला मारू, बीसलदेव रास', लखमसेन पद्मावती कथा, छिताई वार्ता तथा मधुमालती में यही पद्धत्ति अपनाई गई है। गुण-दर्शन में माधव नृत्यकला के प्रति और कामकन्दला संगीत कला के प्रति आकृष्ट होते हैं। आलम के जीवन-वृत्त में हम बता चुके

हैं कि लच्छीराम जैसे संगीतज्ञ से उनका सम्बन्ध था और माधवानल कामकन्दला की कुछ प्रतियों में इसका संकेत भी है। स्वयं आलम एक उत्तम सगीतज्ञ थे और ऐसा लगता है कि माधवानल कामकन्दला में माधव के संगीत-ज्ञान के द्वारा उन्होने न केवल अपने संगीत-ज्ञान का परिचय दिया है; अपितु उसकी महत्ता भी प्रतिष्ठापित की है।

सूफी प्रेमाख्यानों में नायकों के सामने जितनी विस्तृत कठिनाइयों का वर्णन होता है वैसा इसमें नहीं है। इसकी नायिका कामकन्दला भी सूफी काव्यों की नायिकाओं की भाँति कठोर नहीं है। न वह पद्मावती की भाँति यही कहती है कि अभी तुमने ऐसी साधना नहीं की है कि मुझे प्राप्त कर सको। सूफी कवियों का लक्ष्य नायिकाओं को प्रेम-साधना का आलम्बन बनाना प्रतीत होता है। वहाँ नायक, नायिका की उपलब्धि के लिए अथक प्रयत्न करता है, यहाँ कामकन्दला स्वयं माधव से निशा-निवास का आग्रह करती है। माधव स्वयं उसे प्रेम-निर्वाह की कठिनाइयों का संकेत करता है। यह पद्धति तो एक सूफी साधक की पद्धति के सर्वथा विपरीत है। एक बार प्रेम हो जाने के बाद माधव और कामकन्दला दोनों ही उसे अन्त.तक निभाते हैं। इस दृष्टि से आलम ने नायक-नायिका दोनों के व्यक्तित्व को अत्यन्त उदात्त और एकनिष्ठ रूप में प्रस्तुत किया है। जहाँ तक प्रेम की पीर का प्रश्न है, कामकन्दला और माधव दोनों में ही शील और मर्यादा की रक्षा की गयी है। प्रेम-परीक्षा की जो पद्धति आलम ने अपनाई है वह भी सूफी काव्यों से भिन्न है। यहाँ पर सूफी काव्यों की पद्धति के अनुसार किसी कुटनी या दूती को प्रेम-परीक्षा के लिए माध्यम नहीं बनाया गया है, वरन् यहाँ प्रेम-परीक्षा के माध्यम के रूप में विक्रमादित्य को ग्रहण किया गया है जो माधव का सहायक एवं 'परदुखकातर' है।

'माधवानल कामकन्दला' को काम-प्रभावित दाम्पत्यपरक काव्य कहा जा सकता है। माधव कामदेव का प्रतीक है; अतः उसमें कामनीति और काम-कला का अपूर्व सम्मिश्रण प्रस्तुत किया गया हैं। कामकन्दला के रूप-चित्रण में किसी प्रकार की अतिलौकिकता नहीं है; जैसी कि सूफी कवियों की नायिकाओं में दिखाई पड़ती है। ये दोनों ही कला-मर्मज्ञ मानवीय चरित्र हैं और मानव-हृदय की विविध एवं बहुरंगी अनुभूतियों से सम्पन्न हैं। कला की इस साधना ने उन दोनों को शक्ति भी दी है और उसके प्रति अति गौरव और गर्व की अनुभूति से अभिभूत होने की सहज मानवीय दुर्बलता भी। सूफी नायक-नायिका विधि के विधान से अधिक प्रशासित होते हैं, जबकि माधव और कामकन्दला परिस्थितियों से प्रभावित हैं। सूफी कवियों के नायकों में नायिकाओं की अपेक्षा अधिक प्रेम, अधिक विरह, अधिक सहिष्णुता तथा अधिक द्रवणशीलता है, किन्तु आलम ने इन गुणों का समावेश नायक और नायिका दोनों पक्षों में समान रूप से किया है।

(३) कनक मंजरी

दशम गुरु के दरबारी कवि काशीराम की यह रचना धनधीर शाह की पत्नी कनक मंजरी और उसके पति की अनुपस्थिति में एक राजकुमार के साथ उसके प्रेम की कथा है। काशीराम ने इसकी रचना राजकुमार लक्ष्मीचन्द के लिए की। इस रचना में

रचना की तिथि तो नहीं दी गई है, किन्तु डा० ग्रियर्सन ने औरंगज़ेब के सूबेदार निज़ामत खान के दरबारी कविका शीराम का उल्लेख किया है और उनका जन्म संवत्१७१५ माना है ।[1] इनके द्वारा रचित 'परशुराम-संवाद' के पद दशम गुरु की प्रेरणा से(१६५८) लिखे गये थे । अतः औरंगज़ेब के सूबेदारों के अन्य अनेक कवियों की भाँति ये भी दशम गुरु के दरबार में गए थे । 'कनक मंजरी' की कथा भी 'दशम ग्रंथ' के चरितोपाख्यान से प्रेरित है ।

'कनक मंजरी' की कथा 'शुक सप्तति' की कथा-शैली से मिलती-जुलती है । रतनपुर में एक व्यापारी घनधीर शाह की कनक मंजरी नामक सुन्दर स्त्री थी । उसके घर मे एक तोता और एक सारिका मनोरजन के लिए विद्यमान थे । कुछ समय उपरान्त धनधीर शाह समुद्र-यात्रा के लिए गया और उसकी पत्नी अकेली रह गई । एक दिन स्नान करते समय एक काक उसका हार लेकर उड़ गया, जिसे एक राजकुमार ने देखा औरवह उस हार की स्वामिनी पर आसक्त हो गया । राजकुमार की एक दूती भिक्षा माँगने के वहाने उसे ढूँढ़ती हुई आई और कनक मंजरी से उसके पति के प्रवास का परिचय पा गई । उसने उससे भिक्षा नहीं ली और स्वयं पान तथा मिठाई बाँटने लगी । उसने कनक मंजरी को यह भी वताया कि चिन्ता-हर की पूजा करने से उसका प्रिय उसे मिलेगा । कनक मंजरी जब पूजा के लिए जाने के लिए तत्पर हुई तो सारिका ने उसे रोका, किन्तु उसे फटकार मिली ।

दूसरे दिन राजकुमार ने एक दूती को तपस्विनी के वेश में पूजा के बहाने कनक मंजरी को लाने के लिए भेजा । सारिका ने पुनः उसे रोकने का प्रयत्न किया तो उसे बहुत मार पड़ी । पूजा के लिए तैयार होने पर तोते ने कनक मंजरी को रोका और कहा कि तुम रजस्वला हो, इसलिए चार दिन ठहरो । पाँचवें दिन उसने कनक-मंजरी को समझाया और घर में ही पूजा करा दी । तोते ने स्वयं अपनी एक कथा सुनाई कि किस प्रकार व्याध और विद्वान् के संग रहने पर कुसंगति और सुसंगति का प्रभाव पड़ता है । उसने शीघ्रता के परिणाम को भी बुरा बतलाया ।

जब राजकुमार की दूती अनूप पुनः कनक मंजरी को लेने आई तो दोनों में वाद-विवाद हुआ । कनक मंजरी का पक्ष था कि चिन्ता-हर घट में ही विद्यमान है, परन्तु वह अनूप से वाद-विवाद में हार गई । अनूप राजकुमार की सम्मति से एक नाव बनवाकर ले आई, जिस पर चढ़ने के लिए कनक मंजरी के तत्पर होते ही सारिका ने एक दृष्टांत प्रस्तुत कर के उसे रोक दिया ।

राजकुमार ने अनेक बार असफल होकर एक नई चाल चली । उसने अपनी सेना सहित सिंहलपुर जाने की डोंडी नगर में पिटवा दी और उधर दूती अनूप ने कनक मंजरी को अपने पति के पास राजकुमार के साथ जाने के लिए तैयार कर लिया । चलने के लिए प्रस्तुत होते ही सारिका ने छींक कर उसे रोक दिया और कहा कि तुम्हारी यात्रा अशुभ होगी ।

---

१. खोज रिपोर्ट, स०१६०३, संख्या ७

धनधीर के प्रवास से लौट आने का समाचार प्राप्त करते ही राजकुमार ने कनक मंजरी को कलंकित करने की धमकी दी और कहा कि वह साक्षी के रूप में हार को प्रस्तुत करेगा। जब इस स्थिति का ज्ञान तोते को हुआ तो वह राजकुमार के पास से हार को उड़ा लाया। दूती अनूप के नाक और कान काट दिए गए और कनक मंजरी तथा धनधीर पुनः मिले और सुख से रहने लगे।

काशीराम ने 'कनक मंजरी' की कथा-शैली के लिए 'शुक सप्तति' का ही अनुसरण किया है। वस्तु-संगठन और वर्णन की प्रक्रिया भी लगभग समान है। 'शुक-सप्तति' में दुर्वृत्त मदन भी व्यापारी है और एक व्याध द्वारा समझाए जाने पर माता-पिता के प्रति विनयशील बनकर विदेश-प्रवास के लिए जाता है। उसके जाने के बाद उसकी पत्नी पर-पुरुष से रमण के लिए तत्पर होती है, सारिका उसे मना करती है और मार खाती है, किन्तु तोता अत्यन्त चतुराई मे विविध कथाओं के द्वारा उसकी पत्नी प्रभावती को पर-पुरुष के पास जाने से रोक देता है। अन्त में शुक के कहने से मदन प्रभावती को स्वीकार कर लेता है और उस महोत्सव मे एक दिव्य माला आकाश से आ गिरती है। उस माला के दर्शन होने पर शुक-सारिका और ब्राह्मण शाप मुक्त होकर स्वर्ग को चले जाते हैं और मदन भी अपनी प्रियतमा प्रभावती के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताता है।[1]

'शुक सप्तति' और 'कनक मंजरी' की कथा में पात्र कुछ नाम परिवर्तन के साथ एक ही प्रकार के है, यथा—मदन के स्थान पर धनधीर और प्रभावती के स्थान पर कनक-मंजरी। शुक और सारिका दोनों में हैं। 'शुक सप्तति' में प्रभावती स्वयं पर-पुरुष से रमण के लिए उत्सुक होती है, जबकि कनक मजरी को राजकुमार की दूतियाँ राजकुमार के पास ले जाने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न करती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि काशीराम ने 'शुक सप्तति' के सदृश ही लक्ष्य रखते हुए भी इसे साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट बना दिया है। कनक-मंजरी स्वयं दुश्शीला नहीं है, वह दूती की प्रेरणा से चिन्ताहर की पूजा भी इसलिए करने को तत्पर होती है कि उसे उसका प्रवासी प्रियतम मिल जाएग। दूती के प्रयत्न की निष्फलता तोते द्वारा दिए गए बोध-ज्ञान से ही होती है, क्योंकि कनक मंजरी तोते की बातों का महत्त्व स्वीकार कर लेती है। दूती की असफलता पर राजकुमार द्वारा कनक मंजरी को कलंकित करने की चेष्टा से भी यह सिद्ध होता है कि कथावस्तु में 'शुक सप्तति' का आधार और लक्ष्य ग्रहण करते हुए भी काशीराम ने उसमें परिवर्तन कर दिया है। काशीराम ने एक ही कथा को विस्तृत आकार दे दिया है और केवल चार-पाँच दृष्टांतों द्वारा ही अपना काम चला लिया है। चरितोपाख्यान में भी ऐसी कई कथाएँ संकलित हैं।[2]

'कनक मंजरी' का आरम्भ गणेश और गोविन्द गुरु की चरण-वन्दना से किया गया है—

---

१. द्रष्टव्य, शुक सप्तति, प्रथम कथा का आरम्भ पृ ०८ और कथा का अन्त पृ० २८२

२. द्रष्टव्य, दशम ग्रन्थ में चरितोपाख्यान प्रसंग

गणपति गोविन्द गुरु चरन सेई सुखति उपजाई।
भजन भरोसे शक्ति के कविता रचित बनाई ॥१॥[1]

इसमें गोविन्द शब्द श्लिष्ट है जो परमात्मा और दशम गुरु दोनो का ही संकेत करता है। इसी दोहे के बाद कवि ने एक छप्पय में पृथ्वीराज और उनके मृगया-विनोद का संकेत किया है––

विदित वीर पृथ्वीराज राज दिल्ली थिर थप्पौ।
गो बाह्मन अधकाई वंदी वर चंद समप्पौ।
आठ अधक सत एक संग सामंत सजत नर।
सुभट जीत रनधीर बिमल कीरत सुकरि अम्बर।
सबहु चक आन चौहान कुल, तेज भान तुआ-गयो।
मृगया विनोद चहुँ कोट जस, वसु वितरन सुख भु गयो ॥२॥[2]

काशीराम ने जिस लक्ष्मीचन्द के लिए इस रचना को प्रस्तुत किया है, सम्भव है उसका सम्वन्ध चौहान वंश से हो। क्योंकि आरम्भ में इस छप्पय के बाद भी एक कवित्त दिया हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि राजकुमार लक्ष्मीचन्द दिल्ली-पति के कोई सामंत थे और चौहान वंशी भी थे––

दै दै उमराई दिल्लीपत दिल जोइ करे। सहाई आस उर में बढ़ति है।[3]
... ...

जाहि जाहि पदवी को चढ़ो चौहान अब
ताहि ताहि पदवी सु आपहु बढ़ावतु है ॥३॥[4]

काशीराम ने इस कथा को उत्तम चरित कहा है। बार-बार प्रयत्न करने पर भी कनक मंजरी को विचलित करने में राजकुमार को जो असफलता मिलती है, उस आधार पर इस कथा को उत्तम चरित कहने मे कोई अतिशयोक्ति नहीं है––

उत्तम चरित कथा सुनी कुंवर सु लक्ष्मी चन्द।
कविता कासी राम की कीनी रिद्धि अमन्द ॥[5]

'परशुराम-संवाद' के ओजस्वी कवित्तों को देखकर काशीराम की काव्य-प्रतिभा का परिचय स्वतः ही मिल जाता है। 'कनक मंजरी' की रचना मुख्यतः दोहा-चौपाई की शैली में ही हुई है। इसकी भी अर्धालियों की संख्या निश्चित् नहीं है, और कथा-प्रसंग के

१. खोज रिपोर्ट, सं० १९०३, सख्या ७
२. वही,
३. वही,
४. वही,
५. वही,

अनुसार उनमें भिन्नता दिखाई पड़ती है। कवि ने 'कनक मंजरी' के आरम्भ में छप्पय और कवित्त देकर इस शैली पर भी अपना अधिकार व्यक्त किया है।

काशीराम एक अध्ययनशील, विद्वान् और कवि हैं। उन्होंने इस काव्य में अपने पूर्ववर्ती सगुण तथा निर्गुण भक्त कवियों का भी उल्लेख किया है—

"पीपा गए न द्वारका, बदरी गए न कबीर।
भजन-भावना से मिले, तुलसी से रघुबीर" ॥[1]

दशम गुरु से प्रभावित काशीराम की विचारधारा में सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार की भक्ति-भावना के तत्त्वों का मधुर सामंजस्य घटित होना सर्वथा समीचीन ही है। इसी लिए जब कनक मंजरी चिन्ताहर-मन्दिर मे पूजा के लिए जाने को तत्पर होती है तो वे तोते के मुख से कहलाते हैं—

चिन्ताहर मठ में नहि बसे।
भजन भावना के संग लसे ॥[2]

'कनकमंजरी' की भाषा सरल और प्रसाद गुण-सम्पन्न तो है ही, उसमे ब्रजभाषा के बीच-बीच में खड़ी बोली की क्रियाओ के रूप भी उपलब्ध होते है। जानिये, पढ़ती है, बढ़ती है, गए, मिले आदि रूप तो मिलते ही है, दोहा-चौपाई की शैली के कारण अवधी-प्रभाव के भी दर्शन होते हैं। थप्पौ, समप्पौ जैसी पदावली केवल आरम्भ के ही छप्पय में दिखाई देती है।

यद्यपि इस कथा में कुछ अवान्तर कथाओं के भी सकेत मिलते है, जैसे—व्याध और ब्राह्मण की संगति का प्रभाव, शीघ्रता के दुष्परिणाम, सारिका द्वारा प्रस्तुत किया गया अपरिचित के साथ यात्रा का परिणाम आदि। परन्तु, कथावस्तु में कोई वक्रता नहीं है, और न ही सूफी या हिन्दू असूफी प्रेमाख्यानो की भाँति किसी संघर्ष और कठिनाई का चित्रण किया गया है। यह वस्तुतः मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की कथा है, जिसमें उपदेश द्वारा भ्रम-निवारण तथा सत्पथ की खोज की प्रेरणा दी गयी है। यही कवि का लक्ष्य है। एक राजकुमार के लिए लिखी गई यह कथा एक राजकुमार की ही कुचेष्टाओं का वर्णन प्रस्तुत करती है। अतः इसे विशुद्ध प्रेमकथा के साथ-साथ नीति और उपदेश-कथा कहना भी उपयुक्त है, क्योंकि एक राजकुमार के लिए आचरण की पवित्रता उतनी ही महत्त्व रखती है, जितनी एक कुलीन एवं सदाचारिणी गृहिणी के लिए। 'कनक मंजरी' की कथा कवि के इसी लक्ष्य की पूर्ति करती है।

काशीराम ने इस रचना में सादृश्यमूलक अलंकारों का बहुलता से प्रयोग किया है और उनमें भी दृष्टांत अधिक हैं, किन्तु कहीं-कहीं अनुप्रास की सुन्दर छटा भी देखने को मिल जाती है—

२. खोज रिपोर्ट, सं० १६०३, संख्या ७
१. वही,

छुद्र छयन छोनी छमी छिति छवि जिन्हें सुहाई ।।५।।[1]

काल्पनिक लघु प्रबन्ध

'साखी हीरा घाट की'[2]

'साखी हीरा घाट की' गुरुदास की दूसरी लघु प्रबन्ध रचना है। यह चौपाई मे प्रस्तुत की गई है और इसमे चार-चार चरणों के कुल २३ छन्द हैं। ग्रन्थ-समाप्ति के उपरान्त एक सवैया तथा एक दोहरा (दोहा) छन्द भी है। सारी कथा केवल चौपाई छन्द में कही गई है और बीच मे कहीं भी दोहे या सोरठे का प्रयोग नहीं किया गया।

इस रचना में दशम गुरु गोविन्द सिंह के सम्बन्ध में प्रचलित एक घटना का वर्णन है। इससे इस तथ्य की सिद्धि होती है कि यह रचना कवि के दशम गुरु के दरबार में आने के पर्याप्त समय बाद प्रस्तुत की गई। इसमें दशम गुरु के लिए कवि ने श्री गुरुदेव या गुरुदेवा, सतिगुरु करतारा (३), प्रभु, कृपानिधान (६), साहिब, जगन्नाथ (८) बरबीर, दयासिन्धु (९) आदि-शब्दों का प्रयोग किया है और दशम गुरु के कथ्य को 'श्री मुख, से उच्चरित कहा है। इससे कवि की दशम गुरु के प्रति अगाध भक्ति-भावना व्यक्त होती है।

इसकी कथावस्तु एक घटना पर आश्रित है—दक्षिण देश में गोदावरी के किनारे अविचल नगर में दशम गुरु विराज रहे थे। एक दिन वे तीर-तूणीर लेकर गोदावरी के तटवर्ती क्षेत्र में शिकार खेलने गए। उनके साथ कई खालसा सैनिक भी थे। वहाँ एक सुन्दर और धनी शिष्य ने दशम गुरु की सेवा में एक हीरा भेंट किया। दशम गुरु ने उसे हाथ में लेकर देखा और सरिता के जल में फैंक दिया। इससे शिष्य बड़ा विस्मित और चिन्तातुर हो उठा। दशम गुरु ने उससे पूछा कि तुम इतने चिन्तित क्यों हो गए हो, तो उसने हाथ जोड़कर कहा कि आपने इस बहुमूल्य रत्न को नदी के जल में डाल दिया है; न मेरे काम आया, न आपके, और न आपकी कलगी में ही यह जड़ा गया। इस पर दशम गुरु ने उसे कहा कि तुम नदी में से उस हीरे को निकाल लाओ। गुरु जी से तीन बार आदेश पाकर उसने सरिता में डुबकी लगाई, और जब उसने आँख खोली तो वहाँ सूर्य और चन्द्रमा की तरह जगमगाते अनेक हीरे उसे दिखाई पड़े। वह चक्कर में पड़ गया कि किसे छोड़े और किसे ले जाए। अन्त में उसने अंजलि भर कर रत्न लाकर दशम गुरु के चरण-कमलों पर डाल दिये और उन्हे धन्य-धन्य कहने लगा। उसने बतलाया कि नदी के जल में आपके विशाल खजाने को देखकर मुझे विस्मय

---

१. खोज रिपोर्ट, सं० १९०३, संख्या ७

२. 'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का अपभ्रंश रूप है और साक्षी का अर्थ है—गवाही अर्थात् जो कुछ स्वयं देखा है या अनुभव किया है उसे सचाई एवं ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही साक्षी देना कहलाता है। परन्तु कालक्रमानुसार यह शब्द घटनात्मक वर्णन के लिए रूढ़ हो गया है और यहाँ हीरा घाट की काल्पनिक कथा के लिए, जो कि एक घटना विशेष को इंगित करती है, प्रयुक्त हुआ है।

अवश्य हुआ, लेकिन मेरी चिन्ता समाप्त हो गई। जितना मुट्ठी में समाया उतना मैं ले आया। इस प्रकार दशम गुरु ने उसके भ्रम को दूर कर दिया। वह अपने देश चला गया।

कवि के शब्दों में उसी दिन से इस घाट का नाम "हीरा घाट" पड़ गया। स्वयं दशम गुरु ने कहा है कि जो यहाँ स्नान करेगा वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाएगा––

ता दिन ते जानत सभ कोई। हीरा घाट नाम इह होई ।।[1]

स्री मुष आप कहिउ भगवाना, जो इहि ठा करि है इसनाना।
जनम मरन के बीच न अैहै। चरन कमल में सदा समैहै ।।२२।।[2]

कथा के अन्त में यह भी कहा गया है कि जो इस कथा को सुनता, कहता या लिखकर सिर पर धारण करता है उसकी सर्वदा रक्षा होती है––

जौ यह कथा सुने मुषभाषै। कै सु लिपाइ सीस में राषै ।।
सब काल रच्छा तिह होई, स्रीमुष आप कह्यो तव सोई ।।२३।।[3]

इस फल-निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि इस छोटी-सी रचना का उद्देश्य धार्मिक है और इसे पौराणिक शैली में एक निश्चित् धारणा के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है।

रचना का उद्देश्य केवल दशम गुरु का महत्त्व प्रदर्शित करना है। इसमें एक अद्भुत एवं अलौकिक घटना के माध्यम से भक्ति-भावना को जागृत किया गया है। यहाँ एक विसंगति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है––जब हीरा निकालने के लिए वह सरिता में डुबकी लगाता है तब पानी के भीतर वह आँखें खोलकर किस प्रकार देखता है––

सरता विषै डुबकी यहि मारा ।।१५।।[4]
तहां जाई जब नैन पसारे। लषे जवाहर कोट प्रकारे।
हीरे परे अनेक विराजैं। सूरज सोम जासु लष लाजैं ।।१६।।[5]

इस अन्तिम पंक्ति को छोड़कर केवल चरण-कमल में रूपक अलंकार के दर्शन होते हैं, अन्यथा भाषा अनलकृत, सरल एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है। गुरुदास ने सम्भवतः ऐसी भाषा का इसलिए प्रयोग किया है कि सभी अशिक्षित एव अर्ध शिक्षित सिक्ख धार्मिक जनता इसे पढ़-सुन सके। दशम गुरु के दरबारी कवियों की भाषा के सदृश ही जासू के लिए जास (५) सिषु, गुर (७) किउ, तास (१०) यहि बाति (११) सुनति (१३) कमलि (१८) आदि शब्दों में 'इ' और 'उ' की मात्राओं का प्रयोग मिलता है। कहीं-

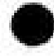
---

१. द्रष्टव्य: साखी हीरा घाट की, छन्द-संख्या २१
२. वही, छन्द-संख्या २३
३. वही, छन्द-संख्या २३
४. वही, छन्द-संख्या १५
५. वही, छन्द-संख्या १६

कहीं 'इ' की मात्रा का लोप भी दिखई पड़ता है जैसे' नेत नेत करि "नेत गणीजै" (२) में 'नेति' शब्द के लिए 'नेत' का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा भी संस्कृत की तत्सम पदावली, उच्चारण सम्बन्धी पंजाबी-प्रभाव आदि के कारण मिश्रित व्रजभाषा हो गई है।

हस्तलिखित प्रति में इसे 'गुरु-चरित्र' कहा गया है। ग्रन्थ-समाप्ति के बाद दिया गया सवैया दशम गुरु के दरबार की प्रशस्ति मात्र है—

दुंदभ नाद म्रिदंग अनूप नित बजै प्रभु कै दरबारा।
पौथी ग्रिथ पुरातन को सुभ होवत है दिन रैन उचारा।
बीर अमीर सुधीर बधे तिह राजत है अगनैते अपारा
भट्ट कलावंत औं गुर नीधनु पावत है मुष सोभनि सारा।।[१]



१. साखी हीरा घाट की, अन्तिम छन्द

षष्ट अध्याय

मुक्तक-काव्य

पूर्वापर प्रसंग से मुक्त एक ही छन्द मे जब भाव की पूर्णता सम्पन्न होकर चमत्कार उत्पन्न करे तब उसे मुक्तक कहते है ।[1] बन्ध के आधार पर पद्यकाव्य के—प्रबन्ध और मुक्तक दो भेद किए गए हैं। प्रबन्ध-काव्य के भीतर इतिवृत्तात्मकता होती है और काव्य का एक-एक सर्ग तथा उसका एक-एक छन्द कथावस्तु पर आश्रित होता है। प्रसंग-निरपेक्ष होने पर प्रबन्ध-काव्य के छन्दों में वह चमत्कार नहीं उत्पन्न हो पाता, जो एक मुक्तक छन्द में होता है। मुक्तक-काव्य का प्रत्येक छन्द स्वयं में पूर्ण रहता है। प्रबन्ध-काव्य में कवि को विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है, पर मुक्तक में उसका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित होता है। एक ही पद्य में समस्त भावों का समावेश करना, रसों का पूर्ण परिपाक दिखलाना, प्रबन्ध-काव्य की समस्त रस-सामग्री को एक ही छन्द में निबद्ध करना, गागर में सागर भरना है। प्रबन्ध-काव्य वनस्थली है तो मुक्तक-काव्य एक पुष्प-गुच्छ, वह वर्ण्य-वस्तु या व्यापारों का एक सशक्त भाषा मे प्रकाशन है।[2]

रीतिकाल से पूर्व मुक्तकों की चार परम्पराएँ दृष्टिगत होती है—प्राकृत की यथार्थवादी, अपभ्रंश की दोहा, संस्कृत एवं हिन्दी की कृष्णगीति और रीतिकाल से पूर्व के दरबारी कवियों की कवित्त-छप्पय-परम्परा।

संस्कृत के आदर्शवादी कवियों ने प्रबन्ध-काव्यों को प्रश्रय दिया, किन्तु प्राकृत के साहित्यकारों की यथार्थवादी दृष्टि ने मुक्तक शैली को अपनाया। हाल की 'गाथा-सप्तशति' आध्यात्मिकता और धार्मिकता से मुक्त श्रृंगारी भावों की यथार्थ अभिव्यक्ति करती है। इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए वज्जालग (प्राकृत), 'अमरुक शतक', 'श्रृंगार शतक', 'आर्य सप्तशति' (संस्कृत) आदि कृतियाँ प्रकाश में आईं।

अपभ्रंश में भी मुक्तक शैली को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई। प्राकृत के गाथा छन्द के स्थान पर अपभ्रंश में दोहा अपनाया गया और इन मुक्तक दोहों में श्रृंगारिकता वीरता, धार्मिकता एवं नीतिपरकता की प्रचुर अभिव्यंजना हुई।

संस्कृत में जयदेव ने कृष्णगीति काव्य की उस परम्परा की प्रतिष्ठा की, जिसका

---

१. मुक्तक श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्

—अग्निपुराण, ३३७।३६

२. आचार्य शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २७५

विकास आगे चलकर हिन्दी की मैथिली एवं ब्रज गीति-परम्परा के रूप में हुआ। इन गीति-मुक्तकों में हरि-स्मरण और विलास-कला, दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। सूरदास की 'साहित्य लहरी' और नन्द दास की 'रस मंजरी' के नायिका-भेदों पर इस कृष्ण-गीति-काव्य-परम्परा का प्रचुर प्रभाव है।

दरबारी कवियों ने रीतिकाल से बहुत पूर्व ही कवित्त और छप्पय-परम्परा का भी श्रीगणेश कर दिया था। चारण और भाट इसमें अग्रणी थे। वीर और शृंगार दोनों के ही प्रचुर उदाहरण इस परम्परा में उपलब्ध हो जाते हैं। अकबरी दरबार के नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और गंगा आदि कवि मूलतः वीर रस के कवि थे, किन्तु उन्होंने राधा-कृष्ण की लीलाओं, नायिका के नख-शिख और उसकी चेष्टाओं तथा सौन्दर्य और प्रेम की विभिन्न अनुभूतियों का निरूपण भी सफलतापूर्वक इसी शैली मे किया। रीतिकाल के परवर्ती शृंगारी कवियों पर ही इसका प्रभाव नहीं पड़ा, वीर मुक्तक-काव्य लिखने वाले भी इससे प्रभावित हुए।

रीतिकाल ने इन सभी परम्पराओं से मुक्तक काव्यों के सृजन के लिए प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु प्रत्येक कवि की अपनी-अपनी रुचि प्रमुख रही और उसने जिस शैली को अपनी रुचि के अनुकूल पाया, उसे अपना लिया। कृपाराम की 'हित तरंगिणी' में दोहा-शैली अपनाई गई, उसमें गीति और कवित्त-छप्पय शैली नही मिलती। कृष्ण-भक्त कवियों के मुक्तकों में गीति की पद-पद्धति मिलती है। केशवदास ने अवश्य अपनी 'कविप्रिया' एवं 'रसिकप्रिया' में सम्पूर्ण काव्यशास्त्रीय एवं कामशास्त्रीय तत्त्वों का समन्वय कर दिया है। केशव की कृतियों में नख-शिख, भक्ति, नीति, वैराग्य, शृंगार आदि के साथ-साथ कवित्त-छप्पय एवं दोहों का प्रयोग भी मिलता है। केशव के इस शैली-समंजन के विविध प्रयोगों का रीतिकाल पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। मध्य युग में अत्यधिक प्रचार के कारण कोका पंडित के 'रति रहस्य', ज्योतिरीश्वर के 'पंचसाय' तथा कल्याणमल के 'अनंगरंग' आदि कामशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रीतिकालीन मुक्तक रचनाओं पर प्रचुर प्रभाव पड़ा।

दशम गुरु का समय रीतिकाल के अन्तर्गत ही आता है। उनके दरबारी कवियों ने जहाँ एक ओर पौराणिक-कथा-काव्यों तथा 'हितोपदेश','चाणक्यनीति' आदि के भाषा-रूपान्तर द्वारा नीतिपरक कृतियों का सृजन किया, वहाँ उन्होंने दरबारी वातावरण के उपयुक्त मुक्तक रचनाओं का भी सृजन किया। ये रचनाएं दोहा, कवित्त तथा सवैया आदि रीतिकालीन प्रचलित शैली का ही अनुसरण करती हैं। जहाँ उन पर रीतिकालीन शैलीगत प्रभाव स्पष्ट है, वहाँ वर्ण्य-विषय पर भी दरबारी एवं रीतिकालीन प्रभाव दिखाई पड़ता है।

प्रमुख-मुक्तककार

'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में दशम गुरु के कई दरबारी कवियों के मुक्तक संकलित हैं। इनमें प्रमुख मुक्तककारों के रूप में हंसराम और मंगल के ही नाम सामने आते हैं। 'सूर्य-ग्रन्थ' के मुक्तककारों के अतिरिक्त आलम, काशीराम तथा हीर के नाम भी उल्लेखनीय

हैं, क्योंकि इन्हीं कवियों की अधिक मुक्तक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। आलम की 'आलम केलि' में आलम और शेख छाप के कवित्त संकलित हैं और उनके बहुत से कवित्त इधर-उधर भी मिल जाते हैं। काशीराम के 'परशुराम-संवाद' में संकलित कवित्त प्रसंग-सापेक्ष होते हुए भी मुक्तक ही हैं, क्योंकि वे मूल रचना के बीच-बीच में जोड़े गए हैं। काशीराम के अन्य कवित्त भी उपलब्ध हैं, जो शृंगारपरक हैं। हीर कवि के भी मुक्तक प्रचुर संख्या मे उपलब्ध हैं। अन्य कवियों की रचनाएँ एक-एक कवित्त के रूप में उपलब्ध होती हैं जिनमें से कुछ का कवि परिचय के साथ उल्लेख हो चुका है।

वर्ण्य-विषय के आधार पर वर्गीकरण

दशम गुरु के इन दरबारी मुक्तककारों की सम्पूर्ण रचनाओं को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. दशम गुरु के प्रशस्तिपरक मुक्तक, २. वीर रसात्मक मुक्तक, ३. शृंगारिक मुक्तक, ४. अन्य मुक्तक।

१. दशम गुरु के प्रशस्तिपरक मुक्तक

दशम गुरु गोविन्द सिंह के जितने प्रशस्तिपरक मुक्तक उपलब्ध होते हैं वे या तो उनका शौर्य-वर्णन करते हैं अथवा मृगया-वर्णन। हीर ने उनके विविध अस्त्र-शस्त्रों की भी प्रशस्ति प्रस्तुत की है। कुछ कवियों ने उनके युद्ध-कौशल का भी वर्णन किया है और कुछ ने उनके दान और यश-वर्णन के साथ उनके अवतारी स्वरूप का भी चित्रण किया है। उदाहरण के लिए इन विषयों से सम्बद्ध कुछ मुक्तक यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) शौर्य-वर्णन—

नाहर समान झुकि झरि परे गुबिद सिंघ,
खग गहि खंड कीनी खलन की खोपरी।
हने घने घोर घमसान को घमण्ड कीनो,
घाइन घुमति, घाइलन की धरा धरी।
रुधिर के कुंड ते निकस काली ठाढ़ी,
उपमा बढ़ी है 'हीर' अभिमति ते खरी।
दल दसमाथ रघुनाथ को मनाइ मन,
मानो सीय सौंह दै हुतासन ते निस्सरी॥[1]

... ...

श्री गुर गोविन्द खग्ग गह्यो अरि फौजनि के इम सैल बिभैलहि।
सांग संभारि दई गज सीस, असीस दई हरि घूमति गैलहि।
घायन ते भभकै निज श्रौन फुहारनि लौ उपमा छबि फैलहि।
दो भुज हेल मनो हनुमान हिलावति जानि संजीवनि सैलहि॥[2]

---

१. भाईवीर सिंह, कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ, पृ० ४६५-४८८,
२. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१७

इसी प्रकार विभिन्न कवियों ने बड़े मनोयोग से गुरु जी को सेना-संचालन करते, कृपाण ग्रहण करते तथा रणभूमि में शत्रुओं से जूझते एवं अपने वल-वैभव के प्रभाव से रणक्षेत्र से दूर शत्रुओं एवं शत्रु-पत्नियों को प्रकम्पित करते हुए अकित किया है। इन छन्दों में गुरु गोविन्द सिंह का जो रूप हमारे सामने आता है वह एक यशस्वी, पराक्रमी एवं उद्‌भट योद्धा का रूप है। प्रस्तुत छन्दों में दशम गुरु के बल-वैभव का वर्णन रूढ़ शैली में ही हुआ है। उसमें सामान्यता है, वैशिष्ट्य नहीं।

(ख) **मृगया-वर्णन**––'गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ' में मृगया-वर्णन से सम्बन्धित केवल चार छन्द उपलब्ध हैं। शौर्य-वर्णन के समान ही इन कवियों ने दशम गुरु के मृगया-प्रेम का चित्रण भी बड़ी तन्मयता से किया है।

दशम गुरु अपने सैनिकों के साथ प्रायः मृगया के लिए जाया करते थे। इससे एक ओर तो सैनिकों में जोश बना रहता था और दूसरी ओर उन्हें शस्त्र-संचालन का अभ्यास भी होता रहता था––

बेश बेसरा है गुरु गोविन्द की सरकार,
जाँकी दहशति गिरे कुहन के घर है।
जाँकी दहशति बर बाजन बर न धरै,
जाँकी दहशति छुटे बहरी के बर हैं।
जाँकी दहशति चारा चुगति न चक्रवाक,
जाँकी दहशति शारदूल सुर तर हैं।
सगरे जहान के बिहग जिन भंग कीने,
कोप सुनि आवति कुलंग पाइ तर है।[1]

(ग) **अस्त्र-शस्त्र-वर्णन**––हीर कवि ने दशम गुरु के अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन प्रस्तुत किया है। इन अस्त्रों के प्रयोग में दशम गुरु अत्यन्त निपुण थे। निम्नलिखित कवित्त में दशम गुरु की कृपाण और गाँसी का वर्णन प्रस्तुत किया गया है—

पारथ के बान कै क्रिपान सिंघ गोविन्द को,
सिघ न बचत बन, मारे झार-झार कै।[2]
... ...
गांसी के लगत पीलवान गिर्‍यो पील हूँ ते,
मानो गिर्‍यो बादर पहार फांद मार के।[3]

(घ) **दान-वर्णन**––दशम गुरु जैसे धर्म-वीर एवं युद्धवीर थे उसी प्रकार दानवीर भी थे। वे प्रायः अपने आश्रित कवियों को वस्त्र-आभूषण, नग, कंचन, अश्व और गज

१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१२
२. भाईवीर सिंह, कलगीधर चमत्कार-ग्रन्थ, पृ० ७६५
३. वही,

आदि दान में दिया करते थे। कई बार अपने हस्ताक्षरों से युक्त 'हुक्मनामा'[1] भी दे देते थे, जिसके आधार पर वे सिक्खों से भेंट प्राप्त कर सकते थे। यहाँ अश्व-दान वर्णन के बहाने अश्वों का ही वर्णन किया गया है तथा यह संकेत भी प्रस्तुत किया गया है कि वे सुसज्जित तथा युद्ध में प्रयुक्त होने योग्य अश्वों का दान करते थे—

अरब अराकवै द्वै नाब द्वै रकाब वारे,
बारे बड़े डील पील सैनक हैं कूत के।
चपला से चपल, चलाक चहूँ पाइ पूरे,
पौन गौन, पल कौ सके न दिन दूत के।
मन के हरन, मनमीन के दरन,
जिनै चाहन की चाह, पातशाहन के पूति के।
बखशे तिहारे गुर गोविन्द जी ऐसे हैं,
बिरथ हैं, न जाइ पाइ गये पुरहूत के।।[2]

दशम गुरु का दान भौतिक ही नहीं आध्यात्मिक भी था। वे वस्त्राभूषण और अश्व-गज के ही दाता नहीं थे, मुक्ति के भी दाता थे। कवि हंसराम के शब्दों में—

चार हूं बरन ताके हरनि कलेश,
गुरु गोविन्द के चरन मुक्ति पाइयति है।[3]

दशम गुरु केवल आश्रयदाता के रूप में अपने कवियों के श्रद्धा-भाजन ही नहीं थे, अपितु वे परब्रह्म स्वरूप ऐसे गुरु के रूप में भी थे जो वन्दनीय था। मंगल कवि ने दान का वर्णन करते हुए दशम गुरु की इसी रूप में प्रशस्ति प्रस्तुत की है—

जाँचे ध्रू पायो है अमर पुर सुरलोक,
नामा जू के जाचे दियो देहुरा फिराय जी।
बिपदा मैं लंका दीनी जाचे ते बिभीखन को,
मंगल सुकवि जाचौ मंगल सुनाय जी।
द्रौपती नगन होति जाच्यो सभा माहि ठाढो,
अंबर लौ अंबर मही पै रहे छाय जी।
ऐसो दान दैबो कौन कोऊ सतिगुरु बिना,
और को न जाचिये बिना गोविन्दराय जी।[4]

(ङ) यश-वर्णन—इन मुक्तककारों द्वारा दशम गुरु का यश वर्णन दो प्रकार से किया गया है। एक वर्ग में ऐसे छन्द आते हैं जिनमें दशम गुरु के अनेक गुणों का एक

---

१. हुक्मनामा गुरु जी के हस्ताक्षरों से प्रमाणित एक लिखित आज्ञा थी। जो कोई सिक्ख इसे देखता था अपनी शक्ति के अनुसार हुक्मनामाधारी को भेंट अर्पित करता था। इस प्रकार हुक्मनामा एक स्थायी जागीर के रूप में रहता था।

२. द्रष्टव्य, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ मे संकलित गुरु दरबारी कवियों के नाम-छापरहित फुटकर छन्द, पृ० ५७१५

३. वही,

४. वही, पृ० ५७२६

साथ वर्णन हुआ है और दूसरे वर्ग में वे छन्द हैं जो उनके यश की व्याप्ति मात्र का वर्णन करते हैं। प्रथम वर्ग के उदाहरण के लिए आलम का निम्नलिखित कवित्त देखा जा सकता है—

सोभा हूँ के सागर नवल नेह नागर है,
बलि भीम सम, शील कहाँ लौ गिनाइये।
भूम के बिभूखन, जु दूखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के, मुख देखे ते अघाइये।
हिम्मत निधान, आन दान को बखाने ?
जाने आलम तमाम जाम आठों गुन गाइये।
प्रबल प्रतापी पातिशाहु गुरु गोविन्द जी,
भोज की सी मौज तेरे रोज रोज पाइये ।।[1]

यश-व्याप्ति का वर्णन निम्नलिखित कवित्त में देखा जा सकता है—

जहाँ दिनकर को प्रताप दिनमान नाही,
जहाँ न दिलेश को प्रताप छाइयति है।
जहाँ न कलानिधि की कला की किरन एक,
जहाँ मृगराजन के थर धाइयति है।
जहाँ सुरपति की न गति, रतिपति की न मति,
जहाँ धौलपति हूँ मै पाइति है।
जहाँ श्रुति सिमृति सुनी न श्रौन सुपने हूँ,
तहाँ गुरु गोविन्द कौ जस गाइयति है।[2]

(च) **अवतार रूप में प्रशस्ति-वर्णन**—दशम गुरु के दरबारी मुक्तककारों ने ही नहीं कुछ प्रबन्धकारों ने भी उनकी प्रशस्ति अवतार रूप में प्रस्तुत की है। इन मुक्तक-कारों की प्रशस्ति में उन्हें परशुराम, रघुनाथ तथा कृष्ण आदि का अवतार माना गया है—

सति जुग प्रबल प्रगट परसराम ह्वै कै।
छेक छाड़े छत्री कर काहूँ अत्र न धर्यो।
त्रेतै रघुनाथ ह्वै कै रावन सनाथ कीनो।
गोधन खुवायो मास लंकपति जो लर्यो ।।
द्वापर कन्हाई बनि बांसरी बजाइ सुनि।
सुर मुनि नर काहूँ धीर न तबै धर्यो।
कलजुग तारिबे को साधन के पारिबे को।
सुन्दर सुरूप गुरु गोविन्द ह्वै अवतर्यो ।।[3]

---

१. गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१६
२. वही, पृ० ५७११
३. वही, पृ० ५७३०

कवि हंसराम भी दशम गुरु को 'करतार', 'सच्चा पातशाह' और अवतार मानते हुए कहते हैं–

चारों चक्क सेवैं गुरु गोविन्द तिहारे पाइ,
मेरे जाने आज तू ही दूजो करतार है।
प्रबल प्रचंड खंड-खंड महिमंडल महि,
साचो पतिशाहु जाको साचो सिर भार है।
कामना के दानवान जाकी हंसराम कहै,
परम धरम देखैं विविध बिचार है।
परम उदार, पर पीर को हरनहार,
कौन जाने कउनै भांति लीनौ अवतार है ॥[1]

२. वीर रसात्मक

हीर कवि के अधिकांश मुक्तक दशम गुरु के शौर्य और युद्ध-कौशल के वर्णन के अतिरिक्त वीर रस की भी उद्‌भावना करते है। उन्होंने नगारों की चोट, सेना की तैयारी, सेना की चढ़ाई, रण-भूमि, गुरु के अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध में उनके प्रयोग, दशम गुरु की तीर अंदाजी, उनकी प्रवलता और वीरता का वर्णन किया है। हीर के कवित्त भूषण के कवित्तों की भाँति ही ओजस्वी एवं अतिशयोक्तिपूर्ण हैं––

स्री गुर गोविन्द सिंघ बली,
कर खग्ग गहे अरि के पर धायो,
रंभक सुंड अनेक गिरे रण।
धूम धर धीग नचायो।
अैसो दयो धर कुंभ के छोर,
सुबीरी लखे जस 'हीर' जु गायो।
सुंड विना गजराज चल्यो भजि,
सुँड मनो घर ही धरि आयो।[2]

हीर कवि ने वीर रस के सहायक अन्य रसों का भी समावेश किया है। बीभत्स रस से सम्बद्ध कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं––

गीध चोचैं लोथन कराल, उड़ैं खोपरी लै,
लाल जोगनी जमात विष साथ भरी है।[3]

दशम गुरु से सम्बद्ध वीर रसात्मक मुक्तकों से सर्वथा पृथक् काशीराम के मुक्तक हैं जो 'परशुराम-संवाद' में दिए गए हैं। 'हनुमन्नाटक भाषा' का लक्ष्मण और परशुराम संवाद अत्यन्त ओजस्वी है और काशीराम ने तदनुकूल मुक्तकों का सृजन कर बीच-बीच में उनका समावेश किया है। दशम गुरु की वीरता के वर्णन से सर्वथा भिन्न इन मुक्तकों

१. कवि हंसराम, महाभारत भाषा, कर्ण पर्व
२. भाईवीर सिंह, कलगीधर चमत्कार-ग्रन्थ, पृ० ४६५-४८८
३. वही,

में उत्साह स्थायी भाव को विविध संचारियों के साथ परिपक्वावस्था तक पहुँचाया गया है।[1]

अनुभावों का जितना मनोरम एवं चित्रमय रूप काशीराम ने 'परशुराम-संवाद' में प्रस्तुत किया है वैसा दशम गुरु से सम्बद्ध अन्य कवियों के कवित्तों में नहीं मिलता। वहाँ युद्ध में दशम गुरु की प्रचण्डता का ही वर्णन हुआ है, किन्तु काशीराम ने तो निम्नलिखित कवित्त में परशुराम का पूर्ण बिम्ब ही अंकित कर दिया है—

तरुन ते तातो भयो रातो भयो नखशिख,
विष से वचन बोले छक्यो छोहे छयो है।
भौंहें चढ़ी-चढ़ी आँखें रिसतै परत ढकी,
कहे काशीराम द्विज ऐसो भेष भयो है।
कांपत अधर लरबे की हरवर बांह,
संभर के कहर कुठार कर लयो है।
देखत ही हाथ रघुनाथ के धनुष बाण,
शावक मुनीश्वर को पावक व्है गयो है॥

वीर रसात्मक मुक्तकों के वर्णन में केवल कवित्तों का ही उपयोग नहीं हुआ, अपितु रीतिकाल में प्रचलित सवैया और वीरगाथाकाल से चली आती हुई छप्पय के प्रयोग की परम्परा का भी अनुगमन किया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द देखे जा सकते हैं—

---

१. महारणधीर महावीर लघुवीर हंस,
बोले ऐसे नेक प्रभु आयसु जु दीजिये।
कहो बांध डारों कहो देस ते निकारों,
कहो वारिधि उतारों कहो जूरा काढ़ लीजिये।
कहे कवि काशीराम केतक परशु राम,
नाम सुन ताको क्षितिपाल वहै के छीजिये।
मारे महापाप छीन लैहो तू न चाप,
आप देखियो तमासो पै न सांसो कछु कीजिये॥
—हनुमन्नाटक भाषा, छन्द-संख्या ८०

... ...

देखन जो पाऊं तो पठाऊं यमलोक हाथ,
दूजो न लगाऊं वार करों एक कर को।
मीज मारों उर ते उखार भुजदंडे हाड,
तोड डारों वर अविलोक रघुवर को।
काशीराम द्विज के रिसात महरात राम,
अति थहरात गात लागत है धरको।
सीता को संताप मेट प्रगट प्रताप कीनो,
को है वह आप चाप तोरो जिन हर को॥
—हनुमन्नाटक भाषा, छन्द संख्या ८४

सवैया

साज सिंगार चढ़े गुरु गोविद पब्बन श्रृंग पिसान भए नित,
लंक अतंक पुकार परी, पुरि शक विभीखुन रंक भयो तित,
टूटी फनी फन, छूटिगे दिग्गज, धीरज धौल की जाइ रही कित।
कच्छप कोल बिहाल भए सभि, चाल परे चतुरंग चमूं चित्त।[1]

छप्पय छन्द का उपयोग मुक्तककारों में से केवल हीर और हंसराम ने किया है। निम्नलिखित दोनों छप्पय दशम गुरु गोविन्द सिंह के सैन्य सहित प्रस्थान से सम्बन्ध रखते हैं। दोनों कवियों ने एक ही वर्ण्य-विषय को अपनी-अपनी पदावली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है––

छप्पय

उडत गरद, डर भान मान, सुरपत न गहन मन।
नीर छीर भए इक्क, करक टुट्टत उपबन बन।
मथन कहत फिर सिंध बिंध दहलत चलत उर।
सिमिट सकुच रह्यो नाग कमठ को चमक बिकट भर।
भन 'हीर' चढ़त हिंदवान हद दिगपाल कंप धरनी हलत।
गोबिन्द सिंघ दल चढ़त जब अतल बितल भूतल तलत।।[2]
... ...
डुल्लति अपर नरेश पत्ति हत्थहि जिम हल्लैं।
सूखति साइर सलल, संक ध्रुअ धाम न चल्ले।
खलक खैल खलभलति भैल भगहि तिलोक महिं।
पलक पेल गढि लेति हेत हुंकति सु जंग महि।
कहि 'हंसराम' सति सिमर के सकुच रहित दिगपाल तबि।
धसमसति धरन दल भार ते सो विरचराई गोविंद जबि।[3]

३. श्रृंगारपरक मुक्तक

श्रृंगारपरक मुक्तकों में आलम और शेख के मुक्तक उपलब्ध हैं और दशम गुरु के अन्य दरबारी कवियों में काशीराम के ९ मुक्तक कवित्त मिलते हैं। लाला भगवान दीन ने आलम के 'आलम केलि' के नाम से जिन मुक्तकों का संकलन किया है उनके अतिरिक्त भी उनके बहुत से मुक्तक उपलब्ध होते हैं। ला० भगवानदीन ने 'आलम केलि' के सम्पादन के समय उनके मुक्तकों को निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित किया है––

१. बाल लीला, २. वयः सन्धि, ३. नवोढ़ा, ४. प्रौढ़ा-वर्णन, ५. अभिसार, ६.मानिनी, ७. संकेत-स्थल, ८. नायिका की दूती, ९. विरह-वर्णन, १०. सखी की उक्ति,

---

१. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२३
२. भाई वीरसिंह, कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ पृ० ४५८
३. भाई संतोख सिंह, गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१८

आलम की प्रणय-सम्बन्धी कथा की प्यारी ही प्रतीत होती है।[1]

आलम ने जहाँ शरीर की आभा और अंग-प्रत्यंगों का चित्रण किया है, वहाँ उन्होंने नायिका की चेष्टाओं और पृथक-पृथक अंगों का भी स्वतन्त्र रूप से चित्रण किया है। नायिका की हँसी मे दसन की चमक, सुधासागर के नक्षत्र, वारिज के मध्य मोतियों की लड़ी अथवा चन्द्रमा में हीरो की खान प्रतीत होती है। चन्द्रमा में हीरो की खान, आलम की कल्पनाशीलता का चमत्कार प्रस्तुत करती है–

तेरे हँसे दसन की ऐसी छवि राजति है,
हीरन की खानि मानौ ससि माहि करी है॥[2]

आलम द्वारा अनुभाव सहित नेत्रों का चित्रण भी अनूठा बन पडा है।[3]

काशीराम के उपलब्ध कवित्तों मे नख-शिख-वर्णन तो उपलब्ध नही होता, किन्तु नायिका की एड़ी और महावर का वर्णन उन्होंने भी बिहारी[4] की भाँति किया है–

मंद हूँ चलत वंधूकैसे वरण,
प्यारी कै चरण चारु नौन हू तै नरमे।
सहिज लिलाइ वरणी न जाइ काशीराम,
चुई सी परत अब ताकी मत भरमै।

---

१. प्यारी तन भूमि ता मै रूप जल सागर है,
जोबन गंभीर भौंर सोभा कों धरत हैं।
दीपत तरग नैन वारिज से डोलै तहाँ,
उरग सी बेनी जिय देखत डरत है॥
'आलम' कहत मुख कहर डाहर राजै,
ता मैं मन मेरो यह दौरि कै परत है।
बेसर को मोती मानो कर है सिकन्दर को,
बार-बार झूमि झूमि मनै सो करत है॥
स० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सं।

२. वही,

३. प्रेम रसमगे जगमगे जागे जामिनी के,
यौवन की जोति जगि जोर उमगत है।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत है,
झूमत है झुकि झुकि झँपि उघरत है।
कहै कवि 'आलम' निकाई इन नैनक की,
पांखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।
चाहत हैं उड़िवे कों देखत मयक मुख,
जानत है रैनि ताते ताही में रहत है॥२४३॥
—स० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी में संकलित

४. काहर सी ऐंडीन की लाली निरखि सुभाय।
पाय महावर देन को, आप भई बेपाय॥४४॥
—बिहारी रत्नाकर।

ऐडी ठकुरायन की नायन जोग हित करि,
ईंगुर को रंग चढ़ आयो दरवर मैं।
हयो है कि दैनो है विचारे-सोचे बार-बार,
बावरी साहू पर ही महावरी लै कर मैं ॥३॥[1]

आलम ने युगलमूर्ति राधा और कृष्ण का भी एक साथ मनोरम चित्रण किया है।[2]

नायिका-भेद—देव ने नायिका-भेद का आठ प्रकार से विभाजन किया है—जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वय, क्रम, प्रकृति और सत्व। उन्होने इन भेदों के अनेक उपभेद भी प्रस्तुत किए हैं[3]—

आठ भेद नायिका के बरनत है कवि सन्त।
भेद-भेद प्रति होत है अन्तर भेद अनन्त ॥
जाति, कर्म, गुन, देस अरु, काल वय: क्रम जानु।
प्रकृति, सत्व नायिका कै आठौ भेद बरखानु ॥

रीतिकालीन मुक्तककारों ने मुख्यरूप से इनमें से काल-भेद और वय: क्रम-भेद सम्बन्धी नायिकाओं का ही अधिक वर्णन किया है। काल और वय: क्रम-भेद के अनुसार नायिकाओं के निम्नलिखित भेद होते हैं–

काल-भेद के अनुसार–स्वाधीन पतिका, कलहान्तरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खण्डिता, उत्कंठिता, वासक सज्जा तथा प्रोषितपतिका।

देव के मतानुसार काल-भेद के आधार पर ये दो भेद और भी किए जाते हैं– प्रवत्स्यत्पतिका तथा आगतपतिका।

वय: क्रम-भेद—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।

आलम ने नायिकाओं की अवस्थाओं का भी वर्णन किया है। उन्होंने वय: सन्धि और नवौढ़ा का वर्णन विशेष रूप से किया है। ये दोनों भेद मुग्धा नायिका के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु इनके वर्णनों में आलम ने मुग्धा नायिका का सुन्दर चित्रण वय: सन्धि के अन्तर्गत ही किया है। नवौढ़ा-वर्णन में तरुणाई और अप्सरा जैसे सौन्दर्य को ही उन्होंने प्रमुखता दी है। अनुभावों का सुन्दर चित्रण वय: सन्धि में ही हुआ है—

---

१. काशीराम, कवित्त कवि काशीराम, बन्ध-संख्या-६१३, ना० प्र० स०, काशी

२. चारु तमाल प्रसून लता किधौं स्याम घटा संग बिज्जुल गोरी।
मधुपावलि कंज की मालु मनौ पारस कचन खंभ की जोरी ॥
मूरतिवंत समुद्र समीप दिपै बड़वागि सिखा कछु थोरी।
जो चलि आलम नीके लखौं तौ पै नन्दलाला वृषभान किसोरी ॥३६४॥
—आलमकेलि

३. देव, रस-विलास, ५।२।३

कंज की सी कोर नैना ओरनि अरुन भई,
कीधौ चंची सींव चपलाई ठहराति है।
भौहन चढ़ति डीठि नीचे को ढरनि लागी,
डीढि परे पीठि दै सकुचि मुसकाति है।
सजनी की सीख कछू सुनी अनसुनी करे,
साजन की बाते सुनी लाज न समाति है।
रूप की उमंग तरुनाई को उठाव नयो,
छाती उठि आई लरिकाई उठी जात है ॥१०॥[1]

... ...

नवोढ़ा—मोतिन को हार हिये हौंस ते पहीरैं नही,
पोत ही के छरा अपछरा सी लगत है ॥१८॥[2]

आलम की भाँति, काशीराम ने भी राधा और कृष्ण को वर्णन का आलम्बन बनाया है। प्रथम दर्शन की मुग्धता में बेसुधपन का सुन्दर चित्रण उन्होंने सन्देहयुक्त अप्रस्तुत विधान के माध्यम से इस प्रकार किया है—

हाथ पांव टारति न अंचरा संभारति न,
आंखिन उघारति न यौं अचेत परी है।
ए हो बनवारी जू तिहारि चितवनि मांझ,
विष है कि सुरा है कि जंत्र है कि ररी है ॥४४॥[3]

काशीराम ने मुग्धता का द्विपक्षीय चित्रण भी एक साथ किया है। नागरी तो टकटकी लगाकर देखती ही है, नटनागर भी वंशी बजाना भूल जाते हैं।[4]

काशीराम ने अभिसार के लिए तत्पर नायिका की स्थिति का वर्णन किया है

---

१. आलम, आलमकेलि

२. वही,

३. द्रष्टव्य, सं० भगवती प्रसाद सिंह, दिग्विजय भूषण, छन्द-संख्या ४४, पृ० २००

४. देखा देखी भई छूट सकुच तब तैं गई,
मिटी कुल कान कैसो घूंघट को करबो।
लागी टकटकी मिटी और धग धगी गति,
मनि मनमथ की औसो नेह कोउ धरबो।
चित्रका से दोऊ जन ठाढ़े रहे काशीराम,
नाहिन परवाह भावों लाप लोक लखो।
बांसुरी बजैवो नटनागर को भूल गयो,
भूल गयो नागरि को गागर को भरबो।
—कवित्त कवि काशीराम, बन्ध-संख्या ६१३, ना० प्र० स०, काशी

जबकि आलम ने सावन की सुहावनी साँझ मे नायिका की यात्रा का वर्णन किया है। आलम ने नायिकाओं के विविध भेदों को भी अपने कवित्तों में प्रस्तुत किया है, किन्तु काशीराम के थोड़े ही कवित्त उपलब्ध होने से यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने नायिका-भेद से सम्बन्धित कितने कवित्त प्रस्तुत किए है। मुग्धा का उदाहरण पहले दिया जा चुका है।

प्रेम-व्यंजना और संयोग तथा वियोग के चित्र--आलम प्रेमी कवि हैं। उन्होंने ,माधवानल कामकन्दला' में दो कलाकारो के प्रेम का चित्रण किया है और 'श्याम-सनेही' में जन्म-जन्मान्तर व्यापी दाम्पत्य-प्रेम का। उनके मुक्तक प्रेम की विविध दशाओं तथा अनेकधा आकर्षक अनुभावों का चित्रण प्रस्तुत करते है। ये मुक्तक समय-समय पर लिखे गए होगे, परन्तु उनका विषय मुख्य रूप से प्रेम-वर्णन ही है। हरि और राधिका के संयोग-वियोग के चित्र कवि उसी तन्मयता से प्रस्तुत किए हैं, जिस तन्मयता से उन्होंने सामान्य सयोग-वियोग के चित्र उतारे हैं। आलम रीति मुक्तकवि हैं, उनकी दृष्टि में भी राधा-कृष्ण का आलम्बन-ग्रहण बहानामात्र[1] ही है। उनके प्रेम-वर्णन मे पूरी उन्मुक्तता उपलब्ध होती है।

सयोग श्रृंगार के जो चित्र आलम ने प्रस्तुत किए हैं वे यद्यपि रीतिकालीन परम्परा के अनुरूप ही है, परन्तु उन पर कामुकता, अश्लीलता एव नग्नता के वर्णन का भी आरोप लगाया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आलम के संयोग-वर्णन मे उत्तान श्रृंगार के चित्र मिलते हैं, परन्तु इससे 'रति रहस्य' का रीतिकाल पर प्रभाव ही अभिव्यक्त होता है। संयोग श्रृंगार के ऐसे वर्णनो के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं —

उर झीनी सी आंगी फुलेल भरी कसकी सब ठौर कसे कसरी।[2]
... ...
वरणौं कहां लौं ओप मदन की धौंप कँधौ।
इन्द्र करि कोप तररानी एक ओक की।।[3]

कुचों का और अंगिया के कसकने का वर्णन तो आलम ने कई स्थानों पर किया है--

कंचुकी लाल कछु मसकी कुछ सींव की और चलो सखि देखौं।
पात रतोपल के तरके प्रगटी मानो पुंज पराग की रेखैं।।[4]

---

१. आगे के कवि रीझि हैं तो कविताई,
न तु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है
—भिखारीदास

२. सं० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी में संकलित

३. वही,

४. आलमकेलि, छन्द-सख्या ७६, ७७

रति-क्रीड़ाओं का वर्णन 'आलमकेलि' मे 'शेख' छाप के कवित्तों में ही अधिक हुआ है। सामान्यतः प्रौढ़ा नायिका-वर्णन में ही रति-क्रीड़ाओ का वर्णन किया जाता है। 'शेख' छाप का निम्नलिखिन कवित्त कला की दृष्टि से प्रौढ़ा की नवोढ़ा जैसी चेष्टा का ही वर्णन है, न कि अश्लील रति-वर्णन—

नेह के निहोरे नाह नेकु आगे कीन्ही बाँह,
छाँह के छुवत नाही नाही सी करति है।
पीतम के पानि पेलि आपनी भुजा सकेलि,
धरकि सरकि हियो गाढ़ो कै धरति है।
'सेख' कहै आधे बैन बोलै कर नीचे नैन,
हा हा करि पीतम के मन कों हरति है।
केलि के अरंभ निज खेलहि बढ़ाइबे कों,
प्रौढ़ा जो प्रवीन सो नवोढ़ा ह्वै ढरति है।[1]

सौंदर्य, प्रेम का मूल प्रेरक है और यौवन प्रेम का आश्रय। रति को उद्दीप्त करने के लिए जहाँ यौवन और सौंदर्य का चित्रण आवश्यक है, वहाँ रति-प्रेरक चेष्टाओं और हाव-भावों का निरूपण भी उतना ही आवश्यक है। रीतिकाल मे चमत्कार-प्रदर्शन की प्रेरणा के कारण इन बाह्य स्थितियो का भरपूर चित्रण किया गया, किन्तु प्रेम की अन्तर्मुखी अभिव्यंजना विरह-वर्णनों मे ही हुई है।

रीतिकाल पर कामशास्त्रीय ग्रन्थों का जो प्रभाव पड़ा है वह संयोग-शृंगार के वर्णनों तक ही सीमित रहा है। विरह की मानसिक अभिव्यंजना मे उनका प्रभाव सीमित दिखाई पड़ता है। विरह के अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण कामशास्त्रीय प्रभाव की देन नही, अपितु वे चमत्कार-प्रदर्शन की देन है। रीतिमुक्त कवियों के विरह-वर्णन मे अन्तर्मुखी अभिव्यंजना अधिक है। यह अभिव्यंजना एक साधना के रूप मे प्रकट हुई है। अतः प्रेम की अभिव्यंजना की सच्ची कसौटी वे उत्प्रेरक, मोहक और मादक चित्र नहीं, अपितु विरह की विविध दशाओं के चित्रण है। आलम की प्रेम-व्यंजना के सच्चे चित्र उनके विरह-वर्णन में ही अभिव्यक्ति पा सके हैं।

आलम की मुक्तक रचनाओं के अतर्गत प्राप्त विरह-वर्णन में यद्यपि व्यक्ति-निष्ठता नही, फिर भी वे विरह की अनुभूतियों का चित्रण पर्याप्त सजीवता एवं मार्मिकता से करने में सफल हुए हैं। आलम ने विरह-वर्णन को विस्तृत रूप दिया है। उन्होंने यशोदा, गोपी, राधा और कृष्ण का विरह-वर्णन प्रस्तुत किया है। यशोदा के विरह-वर्णन में मातृत्व की मार्मिक अभिव्यंजना अनुप्रासमयी भाषा मे हुई है—

---

१. सं० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी मे सकलित

दान की दहेड़ी भिस कान्हर की बेर जानि,
देवकी के द्वार ह्वै कै केहूं विधि दीजिये।
तजि सबै नात मात तात की न बात कहै,
धौवा धाइयै कहाय केहूं विधि जीजिये।
जरि जरि रहे मेरी छाती बरि बरि उठै,
आलम छिनहि छिन छौना बिनु दीजिये।
गहरु न लाउ जिनि मोंहि अकलाउ आउ,
चलहु महर मथुरा ही घर कीजिये ।।२२५।।[1]

राधिका के विरह-वर्णन में शरीर की क्षीणता, अश्रुवर्षा और उच्छवासों आदि का वर्णन कवि ने एक साथ प्रस्तुत किया है। माधव के वियोग में राधिका अब आधी भी नही रह गई, वह अधोमुखी होकर निराश जीवन व्यतीत कर रही है। उसका अस्थि-पंजर दिखने लगा है, मन उदास है, शरीर काँपता रहता है और आँखों की पुतलियाँ स्थिर हो गई हैं। विरह के संताप से शरीर में थोड़ा-सा भी रक्त नही रह गया है। वह चिन्ता में घुली जा रही है, उच्छवासों से मरी जा रही है और उसके शरीर में माशांश मास भी नहीं रह गया है—

माधौ बिनु राधिका अधिक आधियो न रही,
हारी डारी रहै आपु खरी खीन खेह में।
पिंजर की झलक झलकै झीने आंग बीच,
झुकै मन झूमै तन झखै झुरै गेह में।
रती न रक्त रह्यो, आलम तपति ताते,
भीवोई रहत उर मैननि के मेह में।
सोचनि मसूसनि उसांसनि सो मरी जाति,
मासक ते मासाऊ न मांस रह्यो देह में ।।२३७।।[2]

आलम का यह विरह-वर्णन फारसी शैली से प्रभावित है।[3]

कुछ छंदों में आलम ने अभिलाष-हेतुक वियोग का भी वर्णन किया है, जिनमें कृष्ण का प्रथम रूप-दर्शन अथवा उनके द्वारा बजाई गई मुरली की ध्वनि गोपिकाओं के दिल में मिलन की व्याकुलता जागृत कर देती है।[4] वास्तविक वियोग की स्थिति में प्रेमिका अथवा गोपिका की दशा का जो चित्रण किया गया है, वह भी अनूठा है। प्रेमिका की

१. आलमकेलि
२. वही,
३. डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा, रीति-स्वच्छन्द काव्य-धारा, पृ० २३०
४. आलमकेलि, छन्द-सख्या, १११, १४५, ११८

आँखे उमड़ी पड़ती है, नींद हराम हो जाती है, एक पल के लिए भी पलकें नहीं लगती, पुतलियाँ आँखों का सारा पानी समेटकर उसके भार से झुक जाती है—'पानिप डीठि सकेलि सवै जुरि कें, पुतरी भर भार नई है'—दुख में डूबी हुई विरहिणी चाहती है कि मृत्यु आ जाए और दुखों से उसका पिंड छूट जाए। विरह की आग में जलती हुई वह किसी ज्योतिषी को आया हुआ देखकर उसे अपने घर ले जाती है और अपने प्रियतम का कुशल-क्षेम पूछती है तथा यह भी जानना चाहती है कि उसके दुखों का अंत कब होगा। यह बड़ी ही स्वाभाविक और मार्मिक मन.स्थिति है। कभी विरहिणी को प्रियतम के आने की अवधि टल जाने पर प्रतीक्षा-जन्य बेचैनी होती है और कभी उसके शरीर में विरह की क्यारियाँ खूब हरी-भरी हो उठती हैं। यह आलम की नवीन उद्‌भावना है[1]—

उमसि उसांसनि सौं पांसुरी ह्वै न्यारी आई,
वीच वची अंसुवनि आँखि भर लीनी है।
विरह के बीज वये सलिल सौं सींचि दये,
आछी भूमि मानो काम काछी क्यारी कीनी है।[2]

प्रतीक्षा तथा इसी प्रकार की वियोग-दशा के सूचक और भी अनेक चित्र आलम के काव्य में उपलब्ध हैं।

आलम की कल्पनाशीलता से सवलित एक ऐसा पद भी उपलब्ध होता है, जिसमें अंग-ताप का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। अपने यौवन के उभार को पहुँची हुई विरहिणी बालम के प्रवासी होने के कारण अपने शरीर में ही ज्वाला और स्फुलिंग के दर्शन करती है और अपनी सहेली को पड़ोस में जाने से मना करती है। वह उसे अपने शरीर से ही दीपक जलाने का आमंत्रण देती है—

बालम बिदेस ऐसी बैस मैन आगि लागै,
जागि जागि उठै हियौ बिरह बयारि लै।
अब कत पर घर माँगन है जाति आगि,
आँगन में चाँदु चिनगारी चारि झारि लै।
साँझ भई मौन संझवाती क्यों न देति है री,
छाती सों छुवाय दिया बाती आनी बारि लै॥[3]

आलम के विरह-वर्णन में जहाँ विविध दशाओं का चित्रण हुआ है, वहाँ संचारियों का भी स्वाभाविक प्रयोग किया गया है। स्मृति संचारी के निम्नलिखित प्रयोग में विरहिणी की मूक संवेदना भी है और सिर धुनने का संकेत भी—

---

१. डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा, रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २२६
२. आलम, आलम की कविता, बन्ध-संख्या ११२५, ना० प्र० स०, काशी
३ वहीं,

जा थल कीने विहार अनेकन, ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना तें करी वहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यों करैं।।
'आलम' जौन से कुंजन मे करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यों करैं।।[1]

विरह के उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण—आलम और काशीराम दोनो ने ही विरह के उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया है। संयोगावस्था में प्रकृति की जो वस्तुएँ उल्लासमयी प्रतीत होती हैं वे ही वियोगावस्था में उत्तप्त करने वाली लगती है। काशीराम तो पावस से सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु को विरहिणी का अहेरी समझते हैं—

केकी जब कूकें तव सूकै प्रान 'काशी राम',
हरी हरीझ मे देष सोच सरसत हैं।
भाकसी भयो है भौन सहौं दुष कौन,
कौन देस तत्त लौं न जब पौन परसत है।
वियतनरे सतुह्य छाये परदेस रह्यो,
विपत हमारी यूँ विधाता दरसत है।
वेग सुध लेहु ना तौ छूट जै है देह अब,
कोप्यो है अहेर अवर मेह बरसत है ।।४।।[2]

काशीराम ने प्रकृति के संवेदनशील रूप का भी चित्रण किया है। बरसात क्या हो रही है प्रिय के वियोग मे रात ही आँसू बहा रही है।[3]

आलम ने विद्यापति,[4] जायसी[5] और सूर[6] की भाँति ही नायिका के चिंतन को

---

१. सं० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी मे संकलित

२. काशीराम, कवित्त कवि काशीराम, बन्ध-संख्या ६१३, ना० प्र० स०, काशी

३ आई रितु पावस सुहाई पुरवाई पौन,
कासीराम तैसीय तिउ लागी लपकन।
झिल्ना झहनात हहनात मोर सोर सुनि,
विरह अगिन जरि छाती लागी तपकन।
झूमि आयो बादर विहंग बोलि उठे,
चहुं ओर कुजन अध्यारी लागी अपकन।
हेरि हार हरित निहार देखौ आठो जाम,
पिया के वियोग मानो रैनी लागी टपकन।।
—कवित्त कवि काशीराम, ग्रन्थ-सख्या ६१३, ना० प्र० स०, काशी

४. जाहि देस पिक मधुकर नहि गुंजर,
कुसुमित नहि कानने।
छओ रितु मास भेद न जानए,
सहजहि अबल मदने।
—विद्यापति, पदावली, पृ० २६२

५. नहिं पावस आहि देसरा, नहिं हेवंत वसंत।
न कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत।।
—जायसी-ग्रन्थावली, पृ० १५८

६. किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि। चातक मोर कोकिल उहिं बन, बिधिकनि कह्यो बिसैसनि
—सूरसागर, पृ० १३८२

अभिव्यक्ति दी है। यथा, जिस देश में उसका प्रियतम निवास करता है वहाँ प्रकृति के ये उद्दीपन निवास नहीं करते, अन्यथा प्रिय अवश्य लौट आता—

कैधौं मोर सोर तजि अनत गये री भाजि,
कैधों उत दादुर न बोलत है ए दई।
कैधौं पिक चातक महीप काहू मारी डारे,
कैधौ बक पाँति उत अंत गति ह्वै गई॥
'आलम' कहत आली अजहूँ न आये पिय,
कैधौ उत रीत बिपरीत बिधि ने छई।
मदन महीप की दोहाई फिरिबे तें रही,
कैधौं मेघ झुके कैधौं बीजुरी सती भई।[1]

आलम का यह विरह-वर्णन परम्परागत अधिक है, किन्तु काशीराम अपनी वृषभानु-लली को लोक-जीवन के अधिक समीप लाकर भी रीतिकालीन प्रभाव से मुक्त नहीं कर सके हैं—

जीवने की कहा चली कहै वृषभान लली
लालन की गली हो तौ लाष बारि जाउंगी।
कोऊ करौ मैलौ मन मेरौ तो यही है पन
लालहि बिलोकौं जब तब पान षाउंगी।
कासीराम ईठी हौं तो पठऊँगी चीठी
कोउ करैं न बसीठी तांहि नैक न डराउंगी॥
कुबजा कुरैल कहा करैंगी झुरैलौ हौं तो
भौर हूँ चुरैल ह्वै गुपालै लपटाउंगी॥[2]

आलम ने भंवरगीत के प्रसंग को भी अपने मुक्तकों में आबद्ध किया है। इसमें भी विरह की अच्छी अभिव्यंजना हुई है। उनके रेखता के कवित्तों में भी पूर्वरागजन्य विरह का ही वर्णन हुआ है—

सूरत चिराग रोशनाई आशनाई बीच,
बारबार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल से दिलासा दीजै, हाल के न ख्याल हूजै,
वेखुद फकीर वह आशिक दिवाना है॥२७०॥[3]

---

१. स० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी में संकलित।
२. काशीराम, कवित्त कवि काशीराम, बन्ध-संख्या ६१३, ना० प्र० स०, काशी
३. आलम, आलमकेलि

विशुद्ध या आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण—विशुद्ध प्रकृति-चित्रण के रूप में 'शेख' छाप के भी कुछ कवित्त मिलते हैं। पवन को पाती लेकर जाते हुए परेवा के रूप मे चित्रित किया गया है—

सघन अखंड पूरि पंकज पराग पत्र,
अक्षर मधुप सद घटा रहनातु है।
बिरमि चलत फूलि बेलिव के बास रस,
मुख के संदेशे लेत सबनि सुहात है॥
'सेष' कहै सीरे सरवरन के तीर नीर,
पीवत न परसे ते हिय सियरातु है।
आवन वसंत मनभावन मनोज तन,
पवन परेवा जनु पाती लीन्हे जातु है॥[1]

अलंकार-रूप में तो प्रकृति की वस्तुओ का पर्याप्त प्रयोग किया गया है, किन्तु उपदेश-ग्रहण के रूप में प्रकृति के उपकरणों का सर्वाधिक प्रयोग आलम ने मानिनी के मान-वर्णन के अवसर पर प्रस्तुत किया है—

चकई बिछुरी मिली तू न मिली मोहन सो,
'सेष' कहै एतो मान कीनों क्यों अठानरी।
अथ मै न छत्र ससि अथई न रिस तेरी,
तूं न भई मुदित उदित भयो मान री॥[2]

अलंकार के रूप में प्रकृति की वस्तुओं का प्रयोग काशीराम ने भी किया है। अभिसारिका के वर्णन में निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

कमल से आनन कुरंग नैनी पिक बैन,
कान्ह पास कानन को चली री उमहिरी॥[3]

४. अन्य मुक्तक

अन्य मुक्तकों के अन्तर्गत विभिन्न विषयों से सम्बन्धित केवल आलम के ही मुक्तक उपलब्ध हैं। आलम ने 'आलम केलि' के आरम्भ में कुछ पदों में बाल-लीला का वर्णन किया है। इन पदों में सूरदास वर्णित वात्सलय का सौष्ठव तो नहीं है, किन्तु कृष्ण के

---

१. सं० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी में संकलित
२. वही,
३. सं० भगवती प्रसाद सिंह, दिग्विजय भूषण, पृ० ११६

बाल-जीवन का स्वाभाविक तथा सुन्दर चित्रण है, बालक कृष्ण की चंचलता तथा माता यशोदा की मातृवत्सलता सुन्दर शब्दों मे चित्रित हुई है। वंशी की मोहकता, यमुनाकुंज तथा दीनता आदि से भी सम्बन्धित आलम के कुछ छन्द उपलब्ध होते हैं।

आलम ने भगवान राम के प्रति भी आदर-भावना व्यक्त की है। उन्होंने राम के जीवन से सम्बद्ध कई प्रसंगों पर छन्द लिखे हैं। उदाहरण के लिए धनुभंग एवं परशुराम का कोप, वनवास, केवट की नाव पर राम का चढ़ना, अंगद का रावण को समझाना, लका में आग लगना, रामविरही भरत की दशा आदि के वर्णन देखे जा सकते हैं।[1]

राम के जीवन सम्बन्धी इन प्रसंगों में करुणा की व्यंजना बहुत ही सटीक और सफल हुई है।

इसके अतिरिक्त शांत रस से सम्बन्धित कवित्त भी मिलते हैं। गंगा-वर्णन में कवि ने गंगा की महत्ता प्रदर्शित की है और शिव तथा अन्य देवी देवताओं की वन्दना भी पूर्ण भक्ति-भाव से की है। 'शेख' छाप का देवी सम्बन्धी निम्नलिखित कवित्त भक्ति-भावना की दृष्टि से देखा जा सकता है —

भौन के दरस पुण्य भौन मेरे नेरे आयौ,
छत्र छांह परसनि छत्रनि सौं छयो हौं।
मंगला के मंगल ते मंगल अनेक भये,
हिंगलाज राखी लाज याहि का जनयो हौं।
शेषमति सेख ही सुसेष की-सी दीनी तुम,
रावरे सिखाय सिख ढिग आनि लयो हौं।
दुर्गा देवी तेरैई दया ते दुर्ग बाँधि आयो,
पारवती तुम्हें सुमिरत पार भयो हौं॥[2]

इस अलंकारमयी वन्दना में यद्यपि अनुभूतियों की गहनता नहीं है, परन्तु कला का आकर्षण अवश्य है।[3]

अलंकार

अलंकार-प्रयोग की दृष्टि से सादृश्यमूलक अलंकारों की ही बहुलता इन मुक्तकों में दिखाई पड़ती है। इनमें भी उत्प्रेक्षाओं की संख्या अधिक है, जिनमें अनूठापन झलकता है। उपमा, रूपक और सांगरूपक का प्रयोग उत्प्रेक्षाओं के बाद सबसे अधिक हुआ है। रूप-चित्रण में सार और अतिशयोक्ति तथा सदेह आदि का उपयोग हुआ है। दशम गुरु के प्रशस्तिपरक कवित्तो में जहाँ उनके दान, योद्धा-स्वरूप और रण-कौशल

---

१. आलमकेलि : छन्द ३५५, २६१, २६२, २५६, २६०, २६४, ३५७, ३५८, २६३, २६६, २६७, २६८

२. आलमकेलि

३ डॉ० सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, पृ० २६५

का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, अतिशयोक्ति के अधिक दर्शन होते हैं। उत्प्रेक्षाओं सहित अन्य अलंकारों के प्रयोग में आलम की समता कोई अन्य दरबारी कवि नहीं कर सका है। यहाँ कुछ अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

रूपक

अक्षर मधुप सद घंटा रहनातु है ॥[1]

उत्प्रेक्षा

कालिमा कज्जल की छवि बुंद परै अधरा परयो पुति पांवहि।
मानहु मत्त मधूपन के सुत कज कौ छोड़ि बंधूक को छावहि ॥[2]

... ...

आंगन मे पग भरै सखी कन्ध बाहु धरै,
कंचन के खंभ मानो चम्प लता चढ़ी है।[3]

सन्देह

आलम कहत कलधौत के कलस कैधौं,
आनन्द कै कंद कै मनोजरस होना के।
सेत कंचुकी में कुच ढांपे नंद नंद प्यारी,
फटिक के संपुट मै द्वै सरोज सोना के ॥[4]

... ...

प्रतीप

हीरन की कांति छवि देखि कै लजानी है ॥[5]

उपमानुप्राणित सांगरूपक

प्यारी तनभूमि ता मै रूप जल सागर है,
जोबन गंभीर सोभा को धरत है।
दीपत तरंग नैन वारिज से डोलै तहां,
उरग सी बेनी जिय देखत डरत है ॥[6]

उपमा

हीरा से दसन मुख बीरा नासा कीर चारू ॥[7]

तद्गुण

षोटो हेम कुंदन सो होत कवि काशीराम,
वाके कर पर ते रुपैया होत मुहरैं ॥[8]

---

१. सं० सरनदास भनोत, श्याम-सनेही, परिशिष्ट सी में संकलित
२. वही,
३. वही,
४. वही,
५. वही,
६. वही,
७. आलमकेलि, छन्द-संख्या २२
८. काशीराम, कवित्त कवि काशीराम, बन्ध-संख्या ६१३, ना० प्र० स०, काशी

अतिशयोक्ति

कहि हंसराम सति सिमर के सकुच रहति दिगपाल हवि।
धसमसति धरन दल भार ते सो विरचराइं गोविद जवि ॥

छन्द

दशम गुरु के सभी दरबारी कवियों ने अपनी मुक्तक कृतियों के लिए कवित्त को सर्वाधिक प्रश्रय दिया है। छप्पय के केवल गिनती के छन्द उपलब्ध होते हैं, जबकि कवित्त के बाद सवैया ही लोकप्रिय दिखाई पड़ता है। आलम ने एक दोहे का भी उपयोग किया है। इसलिए छन्द-प्रयोग की दृष्टि से दशम गुरु के सभी दरबारी कवि उस समय प्रचलित रीतिकालीन लोकप्रिय छन्दों के प्रयोग मे निपुण दिखाई पड़ते हैं।

भाषा

प्रबन्धकारों की अपेक्षा मुक्तककारों की भाषा विषय के अनुकूल कहीं प्रांजल एवं मधुर, कहीं सयुक्त व्यंजनों से युक्त परुष, और कहीं अनुप्रासमयी कोमलकांत पदावली से सम्पन्न है। छप्पयों मे ही संयुक्ताक्षरों के प्रयोग की बहुलता मिलती है अन्यथा सर्वत्र परिमार्जित और सुव्यवस्थित व्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कही कौन, दीन, जौन आदि अवधी या पूर्वी हिन्दी के प्रयोग भी मिलते हैं। आलम के रेखता कवित्तों में अरबी-फारसी की पदावली भी उपलब्ध हो जाती है, किन्तु ऐसे कवित्त गिनती के हैं।

भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से दशम गुरु के सभी दरबारी कवियों में आलम और काशीराम के मुक्तक अनुप्रास की छटा से सम्पन्न, अलंकृत एवं सरस हैं। शब्द-वैचित्रय की झाँकी भी इन्हीं दोनों के मुक्तकों मे दिखाई पड़ती है। अनुप्रासमयी भाषा के लिए निम्मलिखित पक्तियाँ देखी जा सकती है—

प्रेम रस मगे जगमगे जागे जामिनी के,
यौवन जोति जगि जोर उमग है।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत है,
झूमत है झूकि-झूकि झंपि उघरत है ॥
... ...

झीनी सी झंकूली बीच झीनो आंगु झलकतु,
झूमरि झुमरि झुकि ज्यों-ज्यों झूलै पलना ॥
... ...

सजनी की सीख कछू सुनी अनसुनी करै,
साजन की बातें सुनि लाजन समाति है ।।१०।।
सैन समै सित सेज समीप सु सोभत स्यामल गौर को संगम ।

—आलम

... ...

सावन कै बन घन सघन तमाल तरु,
तरनि तनूजा ताहि हेरि हिये हसियो ।

— काशीराम ।

अनुरणात्मक शब्दावली के प्रयोग में आलम अधिक निपुण हैं तो प्रसाद गुण-सम्पन्न सरल शब्दावली में ओजस्विता भरने में काशीराम—

(क) किंकिनी कंकन क्वान मिलै वर दादुर झींगुर की झनकारहि ।

—आलम

... ...

(ख) बांधत जो खांडे ते मै छांडे न जियत खांडे? खंडपति खाडे पांडे ऐसे गांडे खात है ।।

—काशीराम ।

आलम और काशीराम पर दशम गुरु के दरबार की भाषा सम्बन्धी प्रवृत्तियों का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता । तबि (तब) सुरतर (सुरतरु) पातसाहन के पूति, ध्रू (ध्रुव) आदि शब्दों में अनावश्यक 'इ' का प्रयोग अथवा उसका लोपआलम औरकाशीराम की भाषा मे नहीं मिलता । इन मुक्तककारो के मुक्तको मे छन्द के आग्रह से शब्द-विकृति के कहीं भी दर्शन नहीं होते । इससे भाषा पर उनका प्रगाढ़ अधिकार व्यक्त होता है । आलम के केवल एक सवैया की एक पंक्ति मे 'पुट' के लिए 'प्पुट' का और 'कुच' पर के लिए 'कुचप्पर' का प्रयोग किया गया है अन्यथा आलम और काशीराम की भाषा में कहीं भी इस प्रकार के शब्द-रूपों का प्रयोग नहीं हुआ—

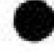
अधर प्पुट पान पियूष के पुंज कुचप्पर देत पिया रस संगम ।

—आलम

आलम के मुक्तकों के वर्ण्य-विषय का क्षेत्र अधिक व्यापक है । उनमें भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से वैविध्य के भी दर्शन होते हैं और वैदग्ध्यपूर्ण चित्रण के भी । काशीराम ने श्रृंगार और वीर रस से सम्पन्न दोनों ही प्रकार के मुक्तकों का सृजन किया है । हंसराम सहित अन्य सभी मुक्तककारो के मुक्तकों का वर्ण्य-विषय, दशम गुरु, उनके युद्ध या दानवीर स्वरूप का चित्रण एवं विविध प्रकार की प्रशस्तियाँ है । आलम और 'शेख' छाप के कवित्तों में रति और विपरीत रति तक के वर्णन उपलब्ध हो जाते हैं । इससे स्पष्ट है कि आलम और काशीराम ने दशम् गुरु के दरबार के प्रभाव से मुक्त होकर रीतिकालीन काव्य-परम्परा का अनुगमन करते हुए श्रृंगारिक मुक्तकों का भी सृजन किया है । जिन कवियों ने दशम गुरु के प्रशस्तिपरक विषयों को अपनाया है, उनमें उनके प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति-भावना झलकती हे । आलम के कवित्तों में राधा और

कृष्ण के प्रति उसी प्रकार की भक्ति-भावना नहीं मिलती । शिव और देवी से सम्बन्धित जो मंगल कवित्त आलम के उपलब्ध होते हैं उनमें भक्ति की गहराई कहीं अधिक है। आलम और काशीराम के वर्णनों में नायिका का रूप वैसा ही है जैसा रीतिकालीन कवियों में। यहाँ यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि राधा और सामान्य नायिका में क्या अन्तर है ।

मुक्तक रचनाएँ सीमित होते हुए भी अपने काव्य-सौष्ठव के कारण प्रबन्ध-काव्यो की अपेक्षा कम महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि इनके वर्ण्य-विषयों से यह स्पष्ट सकेत मिल जाता है कि दशम गुरु के दरबार में काव्य-सृजन के लिए वह उन्मुक्त वातावरण उपलब्ध था, जिसमें रहते हुए कवि अपने भावों की यथारुचि अभिव्यक्ति कर सकता था ।



सप्तम अध्याय

भाषा—रूपांतरित रचनाएँ

दशम गुरु गोविन्द सिंह ने जिस साहित्यिक महायज्ञ का समारम्भ किया था, उसमें प्रबन्ध और मुक्तक, मौलिक और भाषा-रूपांतरित, सभी प्रकार की रचनाओं का सृजन हो रहा था। ये रचनाएँ दशम गुरु की प्रशस्तिपरक रचनाएँ मात्र नही है, अपितु अपनी विविधता और बहुलता में इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि उस महायज्ञ के स्वच्छन्द और उन्मुक्त तथा प्रेरक वातावरण को अभिव्यक्त करती हैं। वस्तुतः देखा जाए तो प्रबन्ध-काव्यों के आरम्भ और अन्त तथा कतिपय मुक्तक कृतियों को छोड़कर प्रशस्तिपरक रचनाएँ कम ही हैं।

दशम गुरु सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जननायक भी थे और एक उत्तम कवि एवं योद्धा भी। वे केवल युद्ध-भूमि में ही नहीं, जनता की मनसभूमि में भी क्रान्ति एवं विजय की प्रस्थापना करना चाहते थे। यही कारणहै कि एक ओर जहाँ उन्होंने अन्याय के प्रतिरोध में शस्त्र धारण करना उचित समझा, वही उन्होंने सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए प्राचीन-साहित्य को सर्वजन सुलभ बनाने का भी प्रयत्न किया। यह उनका एक महान् रचनात्मक कार्य था।

इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए उन्होंने ऐसी ही प्राचीन कृतियों को जनोपयोगी बनाने के लिए भाषा-रूपांतरित किया या करवाया, जिनके द्वारा प्रसुप्त हिन्दू जाति में चेतना, संघर्ष-क्षमता और कर्मशीलता का अभ्युदय सम्भव था। उन्होंने स्वयं 'चंडी-चरित्र' के रूप में आदि शक्ति के महत् कार्यों को जनभाषा में प्रस्तुत किया तथा अपने दरबारी कवियों द्वारा कर्म और संघर्ष के अपूर्व प्रेरक ग्रंथ 'महाभारत' को भाषा-रूपांतरित करवाया। स्वयं महाभारतकार के शब्दों में यह अर्थ, धर्म और काम तीनों के लिए सिद्धि-परक ग्रन्थ है।[1] राजनीति और अध्यात्मशास्त्र के सिद्धान्तों का सारांश इस ग्रन्थ-रत्न में इतनी सुन्दरता से समाविष्ट किया गया है कि जो यहाँ नही है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। स्वयं भगवान् व्यास कर्मवादी आचार्य हैं, कर्म ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है, कर्म से पराङ्मुख मानव, मानव की पदवी से सदा वंचित रहता है।[2] काम, भय, लोभ और

---

१. अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।
काम शास्त्रमिदं प्रोक्त व्यासेनामित बुद्धिना ॥८३॥
—महाभारत, आदि पर्व, अध्याय २

२. डॉ० बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १०१

जीवन के लिए भी धर्म का त्याग न करने का सन्देश महाभारत मे ही उपलब्ध होता है। गीता कर्मवाद का अमर संदेश प्रस्तुत करती है जो कि महाभारत का ही एक अंग है। निश्चित् रूप से दशम गुरु के दरबार में महाभारत का पाठ होता था और कविगण अपने-अपने भाग के उस अंश को भाषा-रूपांतरित कर सामान्य जनता के लिए सुलभ बनाने में लीन थे। महाभारत दशम गुरु की अपनी धारणाओं और विचारो के अनुकूल पड़ता था, अत: उसके भाषा-रूपांतर पर उन्होंने सर्वाधिक ध्यान दिया।

महाभारत के १८ पर्व हैं और दशम गुरु ने इन सभी पर्वों का भाषा-रूपांतर करवाया होगा, किन्तु इस समय ये भाषा-रूपांतरित सभी पर्व उपलब्ध नहीं होते। केवल अमृतराय कृत 'सभा पर्व', हंसराम कृत 'द्रोण पर्व', कुवरेश कृत 'कर्ण पर्व', मगल कृत 'शल्य पर्व' तथा टहकन कृत 'अश्यमेध पर्व' ही उपलब्ध है। बाद मे महाभारत के शेष अंशों एवं 'द्रोण पर्व' के कुछ सदोप अंशों की पूर्ति पटियाला के दरबार में करवाई गई।[1] दशम गुरु के काल के उपलब्ध पर्वो में 'द्रोण पर्व' के त्रुटिपूर्ण अशों की पूर्ति पटियाला-दरबार के निहाल कवि ने की। शेष पर्व अपने मूल रूप में मिल जाते हैं तथा नागरी-लिपि में ये पर्व काशी-नरेश-पुस्तकालय, रामनगर, बन्ध-संख्या ४५/५४ में उपलब्ध हैं।

रीतिकाल मे भाषा-रूपांतर की प्रक्रिया तीव्र गति से प्रवाहित हुई और संस्कृत के अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का भाषा-रूपातर प्रस्तुत किया गया। रीतिकाल मे 'चन्द्रालोक' जैसे अलंकार-ग्रन्थ तो भाषा-रूपांतरित हुए ही, भरत के 'नाट्यशास्त्र,' धनंजय के 'दश-रूपक,' भोज के 'श्रृंगार प्रकाश' और 'सरस्वती कण्ठाभरण' तथा विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' और भानुदत्त के 'रस मजरी' व 'रम तरंगिणी' आदि जैसे सुप्रसिद्ध लक्षण-ग्रन्थो का भी यत्किंचित् रूपांतर किया गया। केशव ने इनके इलावा रुद्रट के 'काव्यालंकार' और रुद्र भट्ट के 'श्रृंगार तिलक' को प्रमुख रूप से अपनी 'रसिक प्रिया' का आधार बनाया है।[2] संस्कृत के जो लक्षण ग्रन्थ मुख्य रूप से रीतिकालीन आचार्यो के उपजीव्य रहे, वे हैं—रुद्रट का 'काव्यालंकार' विश्वनाथ का 'साहित्य-दर्पण' और भानुदत्त की 'रसमंजरी' तथा 'रस-तरंगिणी'। 'रति-रहस्य' जैसे कामशास्त्रीय ग्रन्थ भी रीतिकालीन आचार्यों के प्रेरणा-स्रोत बने हैं।[3]

इन आचार्यों और कवियों के अतिरिक्त कुछ कवियों का ध्यान महाभारत के भाषा-रूपांतर की ओर दशम गुरु से पहले ही जा चुका था। नेवाज कवि (सं० १७३७) ने 'शाकुन्तल' नाटक का आख्यान दोहा, चौपाई और सवैया में प्रस्तुत किया। शाकुन्तलो-पाख्यान् स्वयं महाभारत का अंश है। इसके बाद सबल सिह चौहान (सं० १७१८-८१) ने 'महाभारत' और कालिदास के 'ऋतु-संहार' का भाषानुवाद प्रस्तुत किया। पं० कुलपति

---

१. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०१
२. डॉ० सुधीन्द्र कुमार, रीतिकालीन श्रृंगार-भावना के स्रोत, मूल शोध-प्रबन्ध, पृ० १०६
३. वही, पृ० १११

मिश्र ने 'महाभारत' के 'द्रोण पर्व' का भाषा-रूपांतर सं० १७३७ में प्रस्तुत किया। इसके बाद महाभारत के भाषा-रूपांतर की प्रक्रिया तीव्रगति से आगे बढ़ी तथा एक ओर दशम गुरु के दरबार में इसके भाषा-रूपांतर का क्रम चला और दूसरी ओर इस दरबार से असम्बन्धित कवियों ने भी इस ओर लेखनी उठाई। ऐसे कवियों में छत्रसिंह कायस्थ का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होने महाभारत की कथा 'भाषा' में प्रस्तुत की, जिसका रचना-काल सं० १७५७ है।[1] इससे स्पष्ट है कि भाषा-रूपांतर में महाभारत का स्थान सर्वोपरि रहा है, यद्यपि कुछ ज्ञानात्मक साहित्य का भी भाषा-रूपांतर इसी काल में हुआ, जिसमें वैद्यक और अध्यात्म-सम्बन्धी ग्रन्थ भी थे।

दशम गुरु के दरबार में 'महाभारत' के अतिरिक्त कवि लक्खण कृत 'हितोपदेश-भाषा' और सेनापति कृत 'चाणक्य-नीति भाषा' का भी भाषा-रूपांतर हुआ है। ये दोनों कृतियाँ उपलब्ध हैं। इन्हें नीति-ग्रन्थों के भाषा-रूपांतर के अन्तर्गत विवेचन का विषय बनाया गया है।

अध्यात्म सम्बन्धी ग्रन्थों में सुखदेव कृत 'अध्यात्म प्रकाश' वेदांत सूत्र पर आश्रित ग्रन्थ है। 'ज्ञान प्रकाश', 'गुरु-महिमा' तथा 'अनुभव उल्लास' भी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों की ही चर्चा करते हैं। इन कृतियों का विशेष परिचय अध्यात्मपरक कृतियों के अन्तर्गत दिया गया है।

(क) महाभारत के भाषा-रूपांतरित पर्व

१. **सभा पर्व**—सभा पर्व का भाषा-रूपांतर अमृतराय ने किया है। आरम्भ के एक छप्पय में सरस्वती और एक छप्पय में दुर्गा की स्तुति के रूप में मंगलाचरण प्रस्तुत किया गया है। तीसरे छप्पय में सनातन पुरुष गुरु गोविन्द सिंह की वन्दना है। इसके बाद दस छन्दों में गुरु गोविन्द सिंह की प्रशस्ति वर्णित है। ये तेरह छन्द महाभारत के सभा पर्व से सम्बन्ध नहीं रखते। यही कारण है कि कवि ने इन तेरह छन्दों में तीन छप्पय, पाँच कवित्त, एक कुंडलिया और एक दोहे का अपनी रुचि के अनुसार उपयोग किया है।

मूल रचना के भाषा-रूपांतर में भी कवि ने अपनी रुचि के अनुसार ही दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया, छप्पय, प्लवंगम, हरिगीतिका, सुन्दरी, मानक, त्रिभंगी, कुण्डलिया, चामर, इन्दु, भुजंगप्रयात्, तोटक, तोमर, पधड़िया, नाराच और संकर आदि छंदों का यथास्थान उपयोग किया है। अमृतराय ने पूरे सभा पर्व का भाषा-रूपांतर ८१ अध्यायों में किया है। यद्यपि सम्पूर्ण कथा महाभारत के वर्णन का अनुसरण करती है, किन्तु न तो अध्यायों की संख्या समान है, न ही श्लोक का पूर्णतः अनुवाद मात्र किया गया है। अनुवाद की प्रक्रिया के निदर्शन के लिए एक अध्याय का विश्लेषण उपयुक्त होगा। महाभारत के सभापर्व के ग्यारहवें अध्याय में ब्रह्म सभा का वर्णन है—

---

१. कवियों की उक्त उद्धृत रचनाओं और उनके रचना-काल का आधार आचार्य शुक्ल कृत हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २५८-३२६

पितामहसभां तात कथयिष्यामि तच्छृंणु।
न शक्यते या निर्देष्टुम एवं रूपेति भारत ॥१॥

कवि अमृतराय ने उपर्युक्त श्लोक को निम्नलिखित रूप में भाषा-रूपांतरित किया है--

दोहरा

नहि समरथ त्रैलोक में जे नर देखे जाइ।
अती क्लिष्ट तपभाग जुग सोइ विलोकै आइ ॥१॥

महाभारत—

पुरा देव युगे तात विवस्वान् भगवान दिवः।
आगच्छन्मानुषं लोकं दिदृक्षुविर्गतक्लमः ॥२॥

अमृतराय ने इन भावों को निम्नलिखित सवैया में प्रस्तुत किया है—

एक दिन रवि नाक तै आवत, मानवलोक निहारनि को।
षेदु नहीं तिहको कबहूं संकल्प विकल्प प्रहारनि को।
तिह आवत ही कमलासन की सुभ देषी सभा जिय धारन को।
कब कौन कहै जु यहै उपमानहि सेस सहस्स उचारन को ॥२॥

महाभारत—

चरन् मानुषरूपेण सभां दृष्टवा स्वयंभुवः।
सभाम कथयन्मह्यं ब्राह्मीं तत्त्वेन पाण्डव ॥३॥
अप्रमेयां सभां दिव्यां मानसीं भरतर्षभ।
अनिर्देश्यां प्रभावेण सर्वभूत मनोरमाम् ॥४॥

अमृतराय ने उक्त श्लोकों का निम्नलिखित दो दोहों में भाषा-रूपांतर प्रस्तुत किया है—

दोहरा

सो दिनेस मो सो कही, तांहि सभा की क्रांत।
ये भारत नंदन सुनो, जौ हौं कहूं ब्रितांत ॥३॥
सोभा दै उपमा करे, सो नहि होत प्रमान।
तीन लोक के लोक जे ताको मोहन जान ॥४॥

महाभारत—

श्रुत्वा गुणानहं तस्याः सभायाः पाण्डुनन्दन।
दर्शनेप्सुस्तथा राजन्नादित्यमिदमब्रुवम ॥५॥
भगवन् द्रष्टमिच्छामि पितामह सभांमहम्।
केन वा तपसा शक्या सा द्रष्टं केन कर्मणा ॥६॥

औषधैर्वा तथा युक्तैरुत्तमा पापनाशिनी।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् द्रष्टुमिच्छामितां सभाम् ॥७॥

अमृतराय ने इन भावों को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

चौपाई

ए पांडव नंदन सुत हो बर।
जब रवि वचन सुने कानन धर।
तब मैं मन मैं यहै विचारु।
कौन भांति वहि सभा निहारुं।
किओ प्रश्न तब ही दिनकर सौं।
किह विधि सभा लोकपत परसौं।
जपु तपु करम कौन सौ कहियै।
कौन ओषदी अचवन चहियै ॥५॥

दोहरा

और कहौ विध सो करूं, मन वच करम लगाइ।
जिह विध सभा निहारहौं, सो मुंहि कहौ सुनाइ ॥६॥

महाभारत—

स मह्यं वचनं श्रुत्वा सहस्रांशुर्दिवाकरः।
प्रोवाच भरतश्रेष्ठ व्रतं वर्षसहस्रिकम् ॥८॥
ब्रह्मव्रतमुपास्स्व त्वं प्रयतेनान्तरात्मना।
ततोऽहं हिमवत्पृष्ठे तपश्चर्यामुपागतः ॥९॥
ततः स भगवान् सूर्यो मामुपादाय वीर्यवान्।
आगच्छत् तां सभां तात विपापां विगतक्लमाम् ॥१०॥

अमतराय ने इन श्लोकों का भापा-रूपांतर इस प्रकार किया है —

दोहरा

जब मोरे बचननि सुनै, सहस्रांग भगवान।
नारद ऐसी कीजिअै, तौ लषिअै वहि बान ॥७॥

कवित्त

ब्रह्म ब्रित कीजीए सहस्र वरष तपसा को,
होइ कै पवित्र अन्त आत्मा विचार के।
याही विध मानो हौ हिमाचल की प्रिष्ट बैठ,
कीनी है तपसा अति महावरत धार के।
अैसे जब पूरन प्रमान तप जान्यो तव,
पाछै मोहि लगऔ सु भली भांत धार के।

कीनो हो प्रवेस जब सभा को निहार वेष,
रह्यौ हौं चमकृत वाकी सुन्दरता निहार के ॥८॥

महाभारत—

न शक्या सा विनिर्देष्टुम् एवं रूपेति भारत।
क्षणेन हि बिभर्त्यन्यद् अनिर्देश्य वपुस्तथा ॥११॥
न जाने परिमाणं वा संस्थानं चापि भारत।
न च रूपं मया तादृक् दृष्ट पूर्वं कदाचन ॥१२॥
सुसुखा सा सभा राजन् न शीता न च घर्मदा।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्त्युत ॥१३॥

'महाभारत भाषा' में उपर्युक्त श्लोकों का भाषा-रूपांतर इस प्रकार किया गया है—

कवित्त

कैसी है कमलासन की सोभा सो प्रमान कहो,
पाप की हरनहारी षेद की प्रहारी है ।
बड़ो तपु कीनो बिन नरु न समरथ कोऊ,
जाइ के विलोके बांके अैसे वेष भारी है ।
नाना भाँत थान ताके सकत न वषान कोऊ,
देषी मैं न सुनी अैसी सभा चित्रसारी है।
उत्तम सुष दैवै को कलष डार दैवे को,
सीत घाम भूष प्यास तहा न निहारी है ॥६॥

उक्त मूल श्लोकों और भाषा-रूपांतरित छन्दों के साम्य-वैषम्य पर दृष्टिपात करने से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

(क) अमृतराय का यह भाषा-रूपांतरित सभा पर्व मूल श्लोकों के वर्णन-क्रम का अनुसरण करता है।

(ख) दूसरे सवैया छन्द में कवि ने भावों का विस्तार किया है। 'विगत कल्मः' का भाषा-रूपांतर संकल्प-विकल्प के प्रहार का खेद न होना किया गया है। साथ ही तृतीय श्लोक में सूर्य के मनुष्यरूप में सभा देखने का भाषा-रूपांतर न कर उसे छोड़ दिया गया है।

(ग) तीसरे और चौथे दोहे में तृतीय श्लोक के उत्तरार्द्ध तथा चतुर्थ श्लोक के सम्पूर्ण भाव को अभिव्यक्ति मिली है। इससे स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि में यह आवश्यक नहीं रहा है कि एक श्लोक का भाषा-रूपांतर एक ही छन्द में किया जाए।

(घ) कवित्त जैसे बड़े छन्द में कई-कई श्लोकों के भाव एक साथ निवद्ध कर दिए गए हैं। उदाहरण के लिए आठवें कवित्त में आठवें से दसवें श्लोक तक का भाव एक साथ रख दिया गया है।

उक्त तथ्यों से स्पष्ट हैं कि अमृतराय ने विविध छन्दों का प्रयोग अपनी रुचि और तत्कालीन वर्णन-प्रणाली का अनुसरण करते हुए किया है। सवैया के अन्तिम चरण में 'सेस सहस्स उचारन' को उनकी अपनी कल्पनाशक्ति की देन है। अनावश्यक का त्याग और आवश्यक का ग्रहण तथा वस्तु की अविच्छिन्नता को ही अमृतराय ने ध्यान में रखा है।

अमृतराय ने भाषा-रूपांतर की यह शैली आरम्भ से अन्त तक एक समान रखी है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोकों का एक छप्पय और एक दोहे में रूपांतर किया गया है, जो दृष्टव्य है—

महाभारत—

एषा पाञ्चालराजस्य सुता सा श्रीरनुत्तमा।
पाञ्चाली पाण्डवानेतान् दैवसृष्टोपसर्पति ॥२८॥
तस्याः पार्थाः परिक्लेशं न क्षंस्यन्ते ह्यमर्षणाः।
वृष्णयो वा महेष्वासाः पांचाला वा महारथाः ॥२९॥
तेन सत्याभिसन्धेन वासुदेवेन रक्षिताः।
आगमिष्यति बीभत्सुः पाञ्चालैश्वाभिरक्षितः ॥७२॥३०

महाभारत भाषा—

छप्पय

पुत्री नृप पांचाल लच्छ परतच्छ देषिए।
पंडुनि पाई नारि दैव इच्छा सुलेषिए।
बचन कलेस बिचारि द्रोपदी के पति मन मैं।
क्यों छमि है यह महाबाहु कुहित कै रन मैं।
बिस्मित महारथ महाबल रन पंचालन टरहिगे।
जाकी सहाइ हरि बीरभतसु तिन नृप संग अनुसरहिंगे॥

महाभारत—

तेषां मध्ये महेष्वासों भीमसेनो महाबलः।
आगमिष्यति धुन्वानोगदां दण्डमिवान्तकः ॥७२।३१
ततो गाण्डीवनिर्घोणं श्रुत्वा पार्थस्य धीमतः ॥७२।३२

महाभारत भाषा—

भीम भ्रमावत गदाकर, अंतिक ज्यों रन पाइ।
गांडीवहिं निरघोष सुनि, को रन में ठहराइ॥

महाभारत के कई संस्करण उपलब्ध होते हैं जिनमें न केवल श्लोकों की संख्या एक-एक पर्व में भिन्न-भिन्न है, अपितु उनके अध्यायों की संख्या भी भिन्न-भिन्न है। महाभारत के दो मुख्य संस्करण—उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय हैं। गीता प्रेस गोरखपुर से उत्तर भारतीय पाठ के साथ कुछ दक्षिणात्य पाठ मिलाकर एक मिश्रित रूप प्रकाशित किया गया है। निश्चित् रूप से कुछ दक्षिणात्य पाठ के श्लोक इसमें छोड़ दिये गये हैं। गीता प्रेस से प्रकाशित महाभारत के सभा पर्व में 'उवाच' ३८४ सहित कुल

श्लोकों की संख्या ४४४०½ है। दक्षिण भारतीय पाठ का संपादन श्री पी० पी० एस० शास्त्री ने किया है।[1] इस संस्करण के सभा पर्व में ४५११ श्लोक और कुल ७२ अध्याय हैं। ऊपर तुलना के लिए जिन संस्कृत श्लोकों को उद्धृत किया गया है वे इसी दक्षिण भारतीय संस्करण के हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अमृतराय ने भाषा-रूपांतर के लिए जिस संस्करण का उपयोग किया है वह कोई और संस्करण रहा होगा, क्योंकि उनका सभा-पर्व ७२ के स्थान पर ८१ अध्यायों में समाप्त हुआ है। यद्यपि वर्णन का श्लोकानुसारी क्रम दक्षिण भारतीय संस्करण से पूर्णतः मिलता है।

द्रोण पर्व—कुवरेश का यह द्रोण पर्व दशम गुरु गोविन्द सिंह द्वारा कराए गए दस पर्वों के भाषा-रूपांतर में से एक है। इसका कुछ अंश नष्ट हो गया था जिस की पूर्ति बाद में पटियाला-दरबार के कवि निहाल द्वारा की गयी। यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि किन-किन स्थलों पर निहाल कवि ने अपनी पंक्तियाँ जोड़ी हैं। निहाल कवि के कथन से ऐसा लगता है कि कहीं-कही कुछ अंश ही नष्ट हुआ था और एक दिन में ही उन्होंने सभी नष्ट अंशों को पूर्ण कर लिया था।[2] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मूल रचना में इन कतिपय नष्ट पंक्तियों के योगदान से अधिक भिन्नता नहीं आई होगी।

आरम्भ में कुवरेश ने एक छप्पय में गणेश-स्तुति और एक कवित्त में नारायण और आदि शक्ति की वन्दना की है। इसके बाद उन्होंने गुरु-परम्परा और दशम गुरु का अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख किया है।

कुवरेश का यह द्रोण पर्व भी श्लोकानुसारी भाषारूपांतर है। उदाहरण के लिए कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं—

महाभारत—

ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥७०।११॥
अंङ्गवङ्ग कलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान्।
रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्तिकावतान् ॥१२॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यान् देशान् देशान् सहस्रशः।
निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥१३॥
कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥१४॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः ॥१५॥

'महाभारत भाषा' में कुवरेश ने उपर्युक्त श्लोकों का भाषा-रूपांतर इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

---

१. श्रीमन्महर्षि वेद व्यास, महाभारत

२. द्रष्टव्य, महाभारत भाषा, द्रोण पर्व, अन्तिम अध्याय. छन्द-संख्या २७

छुद्रक मालव दरद बिदेहा।
कासमीर बंग अंग सगेहा।
पुंड्रक लिंग त्रिगरत कहाने।
तामलिपत रात्रिउ दिहसाने।
बीत होत्र मन मारति केते।
देह सहस्र सिवी सुष जेते।
तीछन बानन सन बहु हने।
जामदगन सत्रुन सह घने।

मधुभार

सब देस देस।
तिनके नरेस
निज ध्यान राम।
सरसाथ बाम।

सोरठा

अस्रक भरे तड़ाग, महापद्म छत्री हने।
बंधु जीव सम राग, इंद्र गोपसम जिहि चलत ।।

यद्यपि कुवरेश ने भी अमृतराय की भांति भाषा-रूपांतर का यह कार्य सम्पन्न किया है, किन्तु उनका वर्णन पूरी तरह उत्तरोत्तर श्लोकों का अनुसरण नहीं करता। इसका मुख्य कारण यह है कि द्रोण पर्व के कई-कई अध्याओं में दो योद्धाओं का द्वन्द्व वर्णित है। कुवरेश ने इन सभी युद्ध-वर्णनों को प्रायः संक्षिप्त कर दिया है। उदाहरण के लिए सात्यकि का पराक्रम-वर्णन द्रोण पर्व के कई अध्यायों में दिया हुआ है। कुवरेश ने सात्यकि और दुर्योधन के कई अध्यायों में विभक्त युद्ध-वर्णनों को एक स्थान पर एकत्र कर दिया है। ऐसा सामान्यतः युद्ध-वर्णनों में ही हुआ है, क्योंकि महाभारत में भी एक ही प्रकार के युद्ध का वर्णन कई-कई स्थलों पर उपलब्ध हो जाता है। यहाँ हम केवल सात्यकि और दुर्योधन के युद्ध-वर्णन की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं—

महाभारत—

माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ।।११६।१४

महाभारत भाषा—

बान एक छुरका सम मार।
धनक सातुकी कियो प्रहार ।।

महाभारत

दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम् ।।१२०।४०

---

१. द्रष्टव्य, महाभारत, द्रोण पर्व, ११६ और उसके बाद के अध्याय।

महाभारत भाषा—

वेग तिहत्तर बान चलाइ,
लगे सातकी के तन आई ।।

इन दोनों श्लोकों में चार अध्यायों का अन्तर है, परन्तु दोनो के वर्णनो का सम्बन्ध सात्यकि और दुर्योधन के युद्ध से है । अतः कवि ने एक क्रम में इनको कुछ ही पंक्तियों के अन्तर से प्रस्तुत कर दिया है। इससे महाभारत का युद्ध-वर्णन-विस्तार बहुत कुछ संक्षिप्त हो गया है ।

इस संक्षिप्तता के कारण अध्यायों के क्रम में भी अन्तर पड़ गया है। उदाहरण के लिए द्रोण पर्व के २५ वें अध्याय के निम्नलिखित दो श्लोकों का भाव द्रोण-पर्व के ११ वें अध्याय में ही आ गया है—

महाभारत—

एवं द्वन्द्वशतान्यासन् रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च संकुले ।।२५।६३।।
नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याभावभावे तु प्रसक्तानां यथाभवत् ।।२५।६४।।

महाभारत भाषा—

पांडवगन तुव सुतनि को, तुमुल जुद्ध तिह ठौर ।
भयो मनोरमै लरै, देवासुर सिर मौर ।।३६०।।
सब बीरनि मिल के तहां, कीनो जुद्ध अपार ।
जातें तिनकी देह मं, चली रुधिर की धार ।।३६१।।
भीम करन क्रिप द्रोनसुत, सहित हू पर जुत पूत ।
इन सो सोभति है समर, अैसो भयो न भूत ।।३६२।।

गीता प्रेस के महाभारत संस्करण में द्रोण पर्व २०२ अध्यायों में समाप्त हुआ है जबकि कुवरेश के द्रोण पर्व में कुल १८८ अध्याय हैं। शेष अध्याय संक्षिप्तिकरण में कम हो गए हैं।

कुवरेश ने भी अमृतराय की भाँति दोहा, सवैया, चौपाई, कवित्त, छप्पय, सोरठा अडिल, मधुभार, भुजंगप्रयात, तोटक, कुंडलिया, तोमर, सकर, भुजंगी, रसावल, त्रिभंगी, चामर, घनाक्षरी, रूपमाल, दोधक, शार्दूलविक्रीड़ित आदि छन्दों का यथारुचि उपयोग किया है। कुवरेश ने कहीं तो महाभारत के श्लोकों का अनुसरण करते हुए भाषा-रूपांतर प्रस्तुत किया है, और कहीं पर एक ही प्रकार के पात्रों से सम्बद्ध वर्णनों को संक्षिप्त कर उन्हे एक स्थल पर एकत्रित कर दिया है।

कर्ण पर्व—हंसराम ने अपने इस 'कर्ण पर्व' के आरम्भ में एक कवित्त में गणेश की और एक दोहे में शिवशक्ति की वन्दना की है। उन्होंने गुरु गोविन्द सिंह के सम्बन्ध में एक दोहे में स्वयं प्रश्न किया है और दूसरे दोहे में उसका उत्तर दिया है—

कौन बड़ो या जगत मैं, को दाता को सूर।
काके रन अरु दान मैं, मुष पर बरसत नूर ।।३।।
रचिअ ब्रह्म करि आपने, दीनों भुव को भार।
सो तो गुर गोविन्द है, नानक को अवतार ।।४।।

इसके बाद एक छप्पय में उन्होंने गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्द सिंह तक गुरु-परम्परा का वर्णन प्रस्तुत किया है।

हंसराम कृत कर्ण पर्व अधिक सुव्यवस्थित और अमृतराय के सभा पर्व की भाँति ही श्लोकों का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत किया गया है। इसमें 'धृतराष्ट्र उवाच' और 'संजय उवाच' को भी ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा गया है। इससे भाषा-रूपांतर का क्रम अधिक व्यवस्थित हो गया है, किन्तु जहाँ तक एक श्लोक का एक छन्द में भाषा-रूपांतर करने का प्रश्न है वहाँ इसमें भी स्वच्छन्दता बरती गई है। कवित्तों में कई-कई श्लोकों के भाव एक साथ प्रस्तुत कर दिये गये हैं। इनकी शैली के निदर्शन के लिए निम्नलिखित मूल एवं भाषा-रूपांतरित अंश उद्धृत किए जा रहे हैं—

महाभारत—

धृतराष्ट्र उवाच—
सैनापत्यं तु सम्प्राप्य कर्णो वैकर्तनस्तदा।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ।।११।१।।
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा।
अकरोत् किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व संजय ।।११।२।।

महाभारत भाषा—

धृतराष्ट्र उवाच—
सैनापत हुय सूनु सुत, कहा कहे मुख बोल।
प्रात समै सब जुध को जोधा चले अडोल ।।११।।१।।
तौन जुध कै सोभया, सो संजय कहु बात।
जाते मेरे चित्त के, मिटै सबै उतपात ।।२।।

महाभारत—

पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ।।११।२३।।
हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमू.।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ।।११।२४।।
एको ह्यत्र महेष्वासः सूत पुत्रो विराजते ।।११।२५।।

महाभारत भाषा—

कवित्त

अैसी भाँति सैन साज चलीओ हो करन तब,
देषिऊं सुत अैसी पारथ सो कही है।

देषो अरजुन यहि सैन दुरजोधन की कैसी,
रची करन है जैसी जहां चही है।
महारथी सहित रहित महावीरन सों,
मेरे मते आवत सुचित्रेन तुल्य सही है।
यामै अेकु करुनु धनुखुधारी भारी भट,
और सेना सकल असारु सेख वही है ।।११।१५।।

हंसराम ने महाभारत के अनुष्टुप श्लोकों का जहाँ दोहों में भाषारूपांतर किया है वहाँ तो एक छन्द का भाव एक ही दोहे में रखा है, किन्तु जहाँ कवित्त आदि बृहदाकार छन्दों का प्रयोग किया है, वहाँ एकाधिक श्लोकों के भावों का स्वत: समावेश हो गया है। हंसराम के इस कर्ण पर्व के भाषा-रूपांतर में दोहों और कवित्तों की संख्या सर्वाधिक है। गीता प्रेस के महाभारत के कर्ण पर्व मे कुल ९६ अध्याय हैं, लेकिन हसराम के 'महाभारत-भाषा' मे ९३ अध्याय है।

शल्य पर्व—मंगल कवि ने अन्य कवियों की भाँति गणेश और शिव शक्ति की वन्दना आरम्भ में नहीं की। उन्होंने आरम्भिक दोहे में भगवती ज्वाला और गुरु गोविन्द का ही सहायता के लिए आह्वान किया है। तीन दोहों के उपरान्त उन्होंने एक कवित्त में पुन: विविध नामों से ज्वाला देवी का स्मरण किया है। उन्होंने इसी क्रम में तीसरे दोहे और पाँचवें छन्द कवित्त में शिव और गणेश की वन्दना की है। इससे स्पष्ट है कि मंगल कवि ने अपनी आराध्या ज्वाला देवी को वन्दना के समय प्रमुख स्थान दिया है।

शल्य पर्व का भाषा-रूपांतर भी हंसराम की भाँति ही प्रत्येक श्लोक का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए महाभारत के शल्य पर्व के १३वें अध्याय का रूपांतर मंगल कवि ने महाभारत भाषा के १०वें अध्याय में यथाक्रम निम्न-लिखित रूप में दिया है—

महाभारत—

संजय उवाच—

पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष।
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।।१३।१
परिवार्य: रथै शल्यं पीडयामासुराहवे।
तमेकं बहुभिर्दृष्टवा पीड्यमानं महारथै: ।।१३।२
साधुवादो महांजज्ञे सिद्धाश्चासन् प्रहर्षिता:।
आश्चर्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि संगता: ।।१३।३।।

महाभारत भाषा—

संजय उवाच—

कवित्त

मद्रराज भी उत कियो है धरम राज जब,
भीम अरु सातक सहाय ही को आय हैं।

माद्री के सुत न चेरो समर मैं सत्व आन,
सर ब्रखा को कर पीडत कराय है।
एक सल्य पर आन परे हैं बहुत सूर,
इस्थित अकास बिच सिंह मुसकाय है।
धन्य-धन्य यह बड़ो शब्द करत भय मान्यो,
रिषभ अचरज कौतुक दिखाए है ॥१०।१॥

मंगल कवि ने कहीं-कहीं श्लोकों के साधारण भावों को भी अलकृत करने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों का भाषा-रूपांतर दर्शनीय है—

महाभारत—

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते ॥१३।१८
मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥१३॥१९

महाभारत भाषा —

जैसे बाज कुरंग को, छुटे लगत है आइ।
बानन रोक्यो सल्ल को, तैसे सातक धाइ ॥१०।१५

जहाँ महाभारत के मूल श्लोकों में अलंकृतता है वहाँ उन्हें ज्यों का त्यों रूपांतरित कर दिया गया है—

महाभारत—

हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परंतपः ॥१४।१९॥
रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।
यथा हि भगवानग्निर्जगद् दग्ध्वा चराचरम् ॥१४।२०
विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो धनंजयः ॥१४।२१॥

महाभारत भाषा—

पार विरुथन सहत रथ, विने धूम जिउं आग।
तैसे पारथ सोम है, रन मारग रह्यो लाग।
जैसे सब संसार को, आगह देत जराइ।
इस्थित ह्वै भगवान संग, रहे बहुत मुष पाई ॥११।८

भाषा-रूपांतर में मंगल कवि ने भी अधिकतर दोहों का उपयोग किया है, किन्तु, बीच-बीच में कुछ कवित्त भी हैं। इनकी वर्णन-शैली हंसराम से अधिक मिलती-जुलती है।

मंगल कवि के शल्य पर्व में कुल २६ अध्याय हैं। इन्होंने अपने वर्णन को शल्यवध के उपरांत वहीं समाप्त कर दिया है, जहाँ अपनी सम्पूर्ण सेना के मारे जाने पर दुर्योधन पलायन का निश्चय कर सरोवर में छिप जाता है और विदुर तथा युयुत्सु खिन्न भाव से राजभवन वापिस लौट जाते हैं—

महाभारत—

निरानन्दं गतश्रीकं हृतारामिवाशयम् ।
शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद् दुःखतरोऽभवत् ।।२६।१०३
विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनान्तरात्मा ।
विवेश नगरे राजन् निःशश्वास शनैः शनैः ।।२६।१०४
युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत् तदा ।
वन्द्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत् सुदुःखितः ।
चिन्तयानः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम् ।।२६।१०५

महाभारत भाषा—

छप्पय

उपर जाइ जिम सूल वृच्छ को बड़ो वाइ कर ।
धरम रूप नर विडर दुःख व्याकुल आतम बर ।
मंद लेत मुष सास गयो अपने घर मैं जब ।
रह्यो रात वह तहां लोक माने आनन्द सब ।
दुष पावत है भगत अति, सोक जुगत इहि विधि धरन ।
छै भयो देष कुल भरथ सब, अति चिंता मन मै करन ।।

गीता प्रेस से प्रकाशित महाभारत के शल्य पर्व मे २६ अध्याय हैं जबकि मंगल कवि के इस भाषा-रूपांतर में २६ अध्याय हैं; यद्यपि वर्ण्य-विषय २६वें अध्याय तक का ही है। मंगल कवि की वर्णन-शैली दोहा-प्रधान है और इसमें भी कई-कई श्लोकों के भाव एक साथ ग्रथित दिखाई पड़ते हैं।

अश्वमेध पर्व—टहकन ने अश्वमेध पर्व का भाषा-रूपांतर दो भागों में किया है। प्रथम भाग में अश्वमेध यज्ञ की कथा वर्णित है और वह महाभारत के अश्वमेध पर्व के अनुकूल है। दूसरे भाग में आख्यानों और दान-महिमा का वर्णन है। यह अंश महाभारत के वैष्णव धर्म उप-पर्व से सम्बद्ध है। गीता प्रेस से प्रकाशित महाभारत के अश्वमेध पर्व में कुल ९२ अध्याय है और वैष्णव धर्म पर्व में २१। टहकन के दोनों भागों में कुल ७३ अध्याय है।

अन्य कवियो की भाँति टहकन ने भी दोहा, चौपाई, कवित्त और सोरठा में इस अश्वमेध पर्व को प्रस्तुत किया है। आरम्भ की बारह अर्धालियों और एक दोहे में गणेश-वन्दना की गई है। उसके बाद भवानी और शारदा की स्तुति की गई है। तदनन्तर बारह अर्धालियों और एक दोहे में नन्दलाल श्रीकृष्ण की वन्दना है। यही वन्दना पुनः आठवें दोहे में भी की गई है। इससे कवि की श्रीकृष्ण के प्रति अगाध भक्ति-भावना प्रकट होती है। अश्वमेध पर्व के द्वितीय भाग की समाप्ति के उपसंहार वाक्य में कवि ने इस उत्तरार्द्ध को 'धर्मयज्ञ व्याख्याने कृष्ण चरित्रे' कहा है।

टहकन ने भी वर्णन को संक्षिप्त किया है लेकिन मूल संस्कृत अंश को सुनकर लिखने के कारण यह श्लोकानुसारी नहीं बन पाया है।

उत्तरार्द्ध में कुछ दान-कथाएँ तो उपलब्ध हो जाती हैं, किन्तु टहकन का वर्णन-

क्रम अपने ढंग का अनूठा है। महाभारत में वैष्णव धर्म पर्व श्रीकृष्ण के द्वारा उपदष्ट है। वे युधिष्ठिर को लक्षित करते हुए विविध प्रकार के दान, ब्राह्मण की महिमा और चारों वर्णों के कर्म और फल आदि का निरूपण करते हैं। अनुशासन पर्व में तो दानादि से स्वर्गलोक में जाने वाले राजाओं और पाँच प्रकार के दान आदि का वर्णन है[1], किन्तु वैष्णव धर्म पर्व में केवल महात्म्य वर्णित है, कथाएँ नहीं प्रस्तुत की गईं। महाभारत भाषा के अश्वमेध पर्व के दूसरे भाग में दी गई कथा में महाराजा द्वारा एक ब्राह्मण को कन्या-विवाह के लिए एकादस भार कनक दान करने की कथा उद्धृत की गई है। यह दान-कथा न तो महाभरत के उत्तर भारतीय संस्करण में उपलब्ध है न दक्षिण भारतीय संस्करण में। कन्यादान का महात्म्य तो कई स्थलों पर वर्णित है[2], किन्तु इस प्रकार की कथा कहीं भी उपलब्ध नहीं होती।

टहकन ने अश्वमेध पर्व के अन्त में ग्रन्थ के श्रवणपाठ का विस्तृत फल-वर्णन प्रस्तुत किया है। यह फल-वर्णन ठीक वैसा ही है जैसा सम्पूर्ण महाभारत के श्रवण का फल—

शृंणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥१२॥

अश्वमेध पर्व का भी फल-वर्णन महाभारत के ९२वें अध्याय में वर्णित है—

इदं पवित्रमाख्यानं पुण्यं वेदेन सम्मितम्।
यः पठेन्मामकं धर्ममहन्यहनि पाण्डव॥
धर्मोऽपि वर्धते तस्य बुद्धिश्चापि प्रसीदति।
पापक्षयमुपेत्यैवं कल्याणं च विवर्धते॥
एतत् पुण्यं पवित्रं च पापनाशनमुत्तमम्।
श्रोतव्यं श्रद्धया युक्तैः श्रोत्रियैश्च विशेषतः।
श्रावयेद् यस्त्विद भक्त्या प्रयतोऽथ श्रणोति वा।
स गच्छेन्मम सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥[3]

महाभारत भाषा—

चौपाई

लोगन कउ पढ़ि अरथु सुनावै।
सो नरु मुकति परम पदु पावै।

---

१. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय १३७-१८
महाभारत, दक्षिण भारतीय संस्करण, पृ० ४७६, ५२०

२. वही, पृ० ६५१६, प्र० खण्ड
—श्रवण विधि

३. वही, पृ० ६३८०-८१, ० प्रखण्ड
—वैष्णव धर्म पर्व

जो नरु पूरनु सुनै हेतु धरि।
कोटि जनम के पाप जाति टरि।
गरभ जूनि बहुरो नहिं आवै।
जो नरु अस्वमेध गुन गावै।
देह अरोग सदा कलियाना।
इहि क्रिति स्रवन सुनै निति आना।
पढ़ै सुनै हितु सों नरु जोई।
ताका सुजसु बढ़ै तिहुं लोई।
प्रापति होति अनन्य भगति हरि।
अवरन पुन याके नहिं सम सरि।।७३।५४

टहकन ने भाषा-रूपांतर में निजी कल्पनाशक्ति का प्रचुर उपयोग किया है। जहाँ उन्होंने वर्णनों का संक्षेप किया है, वहाँ साथ ही दान आदि के महात्म्य-वर्णन में तथा श्रीकृष्ण के महत्त्व-वर्णन में विस्तार भी किया है। अन्त में उन्होंने श्रीकृष्ण के महत्त्व का जो वर्णन किया है, वह महाभारत से कम मिलता है। इसे श्रीकृष्ण के प्रति इनकी भक्ति-भावना का प्रतीक ही समझा जा सकता है।

निष्कर्ष

महाभारत के उक्त पाँचों पर्वों में अमृतराय, हंसराम और मंगल का भाषा-रूपांतर मूल की मर्यादा से संपृक्त है। कुवरेश के द्रोण पर्व के खण्डित होने के कारण उसके अधिकांश स्थल मूल से कुछ पृथक् प्रतीत होते हैं। टहकन ने दान और श्रीकृष्ण के यश-वर्णन में मूल की मर्यादा की अपेक्षा अपने दृष्टिकोण और भावनाओं को प्रमुखता दी है।

प्रत्येक कवि ने भाषा-रूपांतर के लिए अपनी-अपनी रुचि के अनुसार छन्दों का चयन किया है। दोहा और चौपाई भाषा-रूपांतर के मुख्य छन्द रहे हैं, किन्तु यथास्थान अपनी रुचि के अनुसार ही कवियों ने सोरठा, कवित्त, छप्पय, मधुभार और अडिल आदि का प्रयोग किया है। दोहों में तो एक मूल अनुष्टुप छन्द का भाव ही समाविष्ट किया गया है, किन्तु कवित्त, छप्पय आदि बड़े-बड़े छन्दों में कई-कई मूल श्लोकों के भाव एकत्रित कर दिए गए हैं। एक ही श्लोक में निहित मौलिक भाव-क्रम को भी छन्द की आवश्यकता के अनुसार पूर्व-पर कर दिया गया है।

सामान्यत: महाभारत में जिन सादृश्यमूलक कतिपय अलंकारों का प्रयोग हुआ है वे भाषा-रूपांतर में भी ज्यों के त्यों आ गए हैं, किन्तु कहीं-कहीं कवियों ने स्वयं भी भावों को अलंकृत करने का प्रयत्न किया है।

सभी पर्वों की भाषा ब्रज है, जिसमें अनावश्यक 'इ', 'उ' का प्रयोग और पंजाबी उच्चारण के अनुसार शब्द विकृतियाँ मिलती हैं। 'नर' का 'नरु' 'रवि' का 'रव' आदि रूप तो सामान्यत: दिखाई पड़ते हैं। अन्य छन्दों की अपेक्षा कवित्त, छप्पय और मधुभार आदि

में भाषा की त्वरा, विषय की अनुकूलता के अनुसार ओज, माधुर्य आदि गुणों का समावेश अधिक दिखाई पड़ता है। हंसराम और मंगल के कवित्त अधिक सुगठित एवं ललित हैं। प्रौढ़ता की दृष्टि से अमृतराय का भाषा-रूपांतर अन्य कवियों की अपेक्षा उत्कृष्ट एवं मूल के अधिक समीप है।

(ख) नीतिपरक रचनाएँ

नीति, अपने मूल अर्थ में मनुष्य जीवन को आगे ले जाने वाली रीति या पद्धति है। आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा भौतिक एवं मानसिक सभी दिशाओं में मनुष्य आगे बढना चाहता है। अतः जो ज्ञान मानव को अग्रसर करने में सहायक हो वह सभी नीति के अन्तर्गत आता है। नीति का उत्तम ज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः वह मानव-जीवन के किसी भी क्षेत्र का स्पर्श कर सकती है। इसीलिए गुरु-दरबार के साहित्य में देश, काल, पात्र, विषय तथा व्यक्ति और समाज के अनुसार नीतिपरक सूक्तियाँ मिलती हैं।

नीति में जीवन के अनुभूत तत्त्वों की अभिव्यक्ति होती है, जो काव्य के भी विषय होते हैं। अतः नीति से सम्बद्ध कविता साहित्यिक कोटि में स्थान पाने योग्य चाहे न हो, पर कहीं-कहीं चमत्कृत अवश्य होती है। आचार्य शुक्ल ने तुलसीदास के नीतिपरक दोहों को सूक्ति की श्रेणी में स्थान दिया है।[1]

नीति एक विषय है और उसकी अभिव्यक्ति कितनी कवित्वपूर्ण हो सकती है यह कवि की अभिव्यक्ति-क्षमता पर निर्भर करता है। सामान्यतः नीतिपरक उक्तियाँ सूक्ति और पद्य दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। नीतिपरक ये उक्तियाँ केवल स्वतन्त्र रूप से रचना के विषय हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नीति की फुटकर या मुक्तक कविताओं के अतिरिक्त नीतिपरक सूक्तियाँ प्रबन्ध-काव्यों में भी यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं।

वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत के काव्यों एवं पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश की रचनाओं में नीतिपरक सूक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं।[2] नीति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संस्कृत का महाभारत है और इसमें धौम्य, विदुर तथा भीष्म आदि की नीतियाँ स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है। राजनीति की दृष्टि से शांति पर्व महत्त्वपूर्ण है तो भीष्म पर्व, धर्म और आचार की दृष्टि से। अनुशासन पर्व में स्मृतियों की भाँति विधि-निषेध का वर्णन है। जिस समय दशम गुरु के दरबार में महाभारत के भाषा-रूपांतर का यज्ञ चल रहा था उस समय नीतिपरक अन्य रचनाओं की ओर भी ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। इस दिशा में हमें 'चाणक्यनीति भाषा' और 'हितोपदेश भाषा' नामक दो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं।

---

१. आचार्य शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७१

२. द्रष्टव्य, डॉ० भोलानाथ तिवारी, हिन्दी-नीति काव्य, पृ० ३१

संस्कृत में नीतिपरक ग्रन्थों की संख्या प्रचुर है।[1] मध्यकाल में 'चाणक्यनीति' तथा 'हितोपदेश' को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। यही कारण है कि सेनापति ने 'चाणक्य नीति' का और लक्खण ने 'हितोपदेश' का भाषा-रूपांतर प्रस्तुत कर दशम गुरु के साहित्यिक यज्ञ में महाभारत के भाषा-रूपांतरकारों की तरह ही योग दिया।

'चाणक्य नीति' की छोटी-बड़ी प्रतियाँ 'चाणक्यनीति', 'चाणक्य राजनीति', 'चाणक्यनीति दर्पण', 'बृहद् चाणक्य' तथा 'लघु चाणक्य' आदि प्रायः सत्रह रूपों में मिलती हैं।[2] चाणक्य सम्बन्धी इन नीतिग्रन्थों में 'चाणक्यसूत्र' तो सूत्रशैली में है तथा शेष सामान्य ग्रन्थों की भाँति श्लोक में हैं। सेनापति का 'चाणक्यनीति भाषा' श्लोकबद्ध 'चाणक्यनीति' का भाषा-रूपांतर है। इस पर भाई गुलाब सिंह ज्ञानी रचित बाल-बोधिनी नामक टीका भी उपलब्ध है।

यह 'चाणक्यनीति भाषा' १६ अध्यायों मे विभक्त है और इसके कुल छन्दों की संख्या २१७ है। आरम्भ में टीकाकार ने भी चार छन्दों में दशम गुरु और अन्य गुरुओं की स्तुति की है। इन छन्दों की भाषा पंजाबी है। मूल ग्रन्थ के आरम्भ में जिस प्रकार विष्णु की स्तुति की गई है उसी प्रकार की स्तुति भाषा-रूपांतर में भी उपलब्ध होती है—

शिरसानत्यसर्वज्ञं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नाना शास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम् ॥१॥[3]

दोहा

प्रणवत हौं श्री बिशनु कौ, जो त्रिलोकि के राइ।
चाणाका भाषा करौं, जउ तुम होहि सहाई ॥१॥

एक छप्पय में राजनीति ग्रन्थ के पढ़ने का लाभ वर्णित है।[4] कहीं-कहीं टीका-कार द्वारा वर्ण्य-विषय के अनुकूल शीर्षक भी लगा दिए गए हैं, जैसे प्रथम अध्याय में 'बुरयां दा तयाग' चौथे अध्याय मे 'राजा दे पुरोहितां दे लखण' 'वकील दे लखण' आदि। सारा ग्रन्थ दोहरा (दोहा) छन्द में प्रस्तुत किया गया है। कुल प्रयुक्त छन्दों में केवल दो छप्पय छन्द हैं और एक छन्द का नाम 'छन्द' ही रखा गया है।

दोहों में भाषा-रूपांतर करने के कारण प्रायः एक श्लोक का भाव एक दोहे में समाविष्ट हो गया है। उदाहरण के लिए मूल और भाषा-रूपांतरित कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं :

मूल चाणक्यनीति—

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमेध्यात् कांचनं ग्राह्यं स्त्री रत्नं दुष्कुलादपि ॥३।५॥

१. दे०, डॉ० भोलानाथ तिवारी, हिन्दी-नीतिकाव्य, पृ० ३७-३९ पर सस्कृत ग्रन्थों की सूची
२. दास गुप्ता, ए हिस्ट्री ग्राफ संस्कृत लिट्रेचर, भाग १
३. चाणक्य राजनीतिशास्त्रम्, पृ० २
४. द्रष्टव्य, सेनापति, चाणक्यनीतिभाषा (चाणक्यनीति-दर्पन), छन्द-संख्या ३

चाणक्यनीति भाषा—

दोहरा

कंचन होंई जु कीच मैं, बिख मैं अम्रित होइ ।
बिदया नारी नीच पैं, चारों लीजै सोई ।।२।६।।

मूल चाणक्यनीति—

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चैव चतुर्गुणा ।
षडगुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्ठगुणः स्मृतः ।।२।२६।।

चाणक्यनीति भाषा—

दोहरा

पुरखन दे दुगणी छुधा, सहिंसा छै गुणी नारि ।
बुद्धि चौगुणी नारि में, काम चारि अर चारि ।।२।७।।

मूल चाणक्यनीति—

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
सर्वे न गुणिनः सन्ति चन्दनं न वने वने ।।८।३९।।

चाणक्यनीति भाषा—

दोहरा

शैल शैल माणिक नहीं, गज गज मुकता नांहि ।
बन बन मैं चन्दन नहीं, साधु न पुर पुर मांहि ।।३।६।।

लक्खण कवि का 'हितोपदेश भाषा' मूल ग्रन्थ का पूर्णतः अनुसरण करता है। 'हितोपदेश' में गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है, किन्तु लक्खण ने गद्यांशों का भी पद्यबद्ध भाषा-रूपांतर किया है।

आरम्भ में लक्खण ने दो छन्दों में गुरु तेगबहादुर की स्तुति की है। इसके बाद एक सोरठे में गुरु गोविन्द की स्तुति है। इसके बाद एक-एक छन्द में उन्होंने क्रमशः श्रीकृष्ण, शारदा, शिव तथा गणेश की वन्दना की है। तदन्तर कवि लक्खण ने अपने ग्राम, गली, पिता का नाम, अपना और अपने भाई भोजराज का उल्लेख करते हुए ग्रन्थ-रचना के कारणों का निर्देश किया है। 'हितोपदेश' की प्रस्तावना में केवल शिव की स्तुति की गई है, उसके बाद सरस्वती की प्रशंसा एव ग्रन्थ के परिच्छेदों का उल्लेख किया गया है। इसके बाद ग्रन्थ का आरम्भ हुआ है।

मूल 'हितोपदेश' में केवल शिव की स्तुति है, किन्तु लक्खण ने दो दोहों में महादेव और गणेश दोनों की वन्दना की है, यद्यपि वर्णन के भाव को उन्होंने हितोपदेश से ही लिया है—

मूल हितोपदेश—

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादात्तस्य धूर्जटेः ।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ।।१।।

हितोपदेश भाषा—

दोहरा

ससि की कला बिराजती, महादेव कै सीस।
जोर जुगल कर यों कहौ, सिद्ध करौ गन ईस ॥६॥
कैसी कला बिराजती, बुध जन करत विचार।
मनो गंगजल फेन की, रेषा अगम अपार ॥७॥

'हितोपदेश' के अनुसार ही मित्रलाभ, सुहृदभेद आदि इसके भी परिच्छेद हैं और उसी क्रम में इसका भाषा-रूपांतर किया गया है—

मूल हितोपदेश—

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सधिरेव च।
पंचतन्त्रात्तथान्यस्माद्ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ॥९॥

हितोपदेश भाषा—

मित्रलाभ अरु मित्र भेद पुनि, क्रोध सुलह ये चार।
पंचतंत्र इक ग्रन्थ है तिहते कहत सवार ॥२२॥

लक्खण के भाषा-रूपांतर के शैली-निदर्शन के लिए मूल और उसके भाषा-रूपांतरित कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं—

मूल हितोपदेश—

अस्ति भागीरथी तीरे पाटलिपुत्रनामधेयं नगरम्। तत्र सर्वस्वामिगुणोपेतःसुदर्शनो नाम नरपतिरासीत्। स भूपतिरेकदा केनापि पठ्यमानं श्लोकद्वयं शुश्राव—

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥१०॥
यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ॥११॥[1]

हितोपदेश भाषा—

दोहरा

गंगा के तट नगर इक, पाटल पुत्तर नाम्।
तिहपुर राजा चतुर अति, नाम सुदरसन जान ॥२३॥
ऐसा भूपत बहुगुनी, सब गुन उस ही मांहि।
काल्ह पढ़े सलोक दोइ, सुन चिंतत मन माहि ॥२४॥
सास्त्र नेत्र है सकल के, पढ्यो नहीं सो अंध नरु।
दुरी बात कहि देत बहु, संदेहन को दूर करु ॥२५॥

---

१. हितोपदेश----प्रस्ताविका, पृ० २

जोबन धन संपत्ति अरु, प्रभु अविवेकी जानि।
येक येक ते नर्थ है, जहं चारों तहं हानि ॥२६॥

मूल हितोपदेश—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते ॥८४॥
अतोऽहं ब्रवीमि—"भक्ष्य-भक्षकयोः प्रीतिः" इत्यादि ॥

काकः पुनराह

'भक्षितेनापि भवता नाहारो मम पुष्कलः ।
त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवानघ ॥८४॥'[1]

हितोपदेश भाषा—

ते तीन महीना बरष भय तीन पाष दिन तीन।
सो फलु इहां ही लहै पापु धरम अति कीन ॥२९३॥

सोरठा

कथा हिरन्यक येह, 'लघुपतनक सो कहत है।
सत्य बात सुनि लेह, भछ भछक स्यो प्रीत क्या ॥२९४॥

दोहरा

लघु पतन तव यौ कही, सुन मूषक बीचार।
तेरो इतनो मास नहि, जु पूरन होइ अहार ॥२९५॥
यह तो मैं निहचै करी सुन मूषक दै चित्त।
तेरे जीवत हो जियों मुवें मरों अब मित्त ॥२९६॥
जैसा मित्र चित्रग्रीव है तैसा मोको जान।
मन वच क्रम हौं कहत हौ और न मन मैं आन ॥२९७॥

लक्खण ने 'हितोपदेश' के इस भाषा-रूपांतर में वर्णन-क्रम का पूर्णतः अनुसरण किया है। यहाँ तक कि संस्कृत के एक श्लोक के एक-एक चरण के भाव को उन्होंने एक-एक दोहे मे व्यक्त किया है, जैसा कि ऊपर के अन्तिम उद्धरण से स्पष्ट प्रतीत होता है। उन्होंने न तो गद्य में वर्णित किसी भाव को छोड़ा है और न पद्य में। लक्खण की यह प्रवृत्ति महाभारत के उन अन्य भाषा-रूपांतरकारों से सर्वथा भिन्न है, जो मूल कथा को तो सुरक्षित रखते हैं, किन्तु कतिपय आवश्यक और मार्मिक अंशों को छोड़ देते हैं।

लक्खण ने पहले वर्णित भाव को पहले और बाद में वर्णित भाव को बाद में रखने का प्रयास किया है। यह उनकी विशिष्ट प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि उन्हें एक-एक चरण या मूल के एक-एक शब्द-समूह को लेकर पूरा छन्द लिखना पड़ा है।

---

१. नारायण पण्डित, हितोपदेश, मित्रलाभ—१, पृ० २१-२२

उदाहरण के लिए लक्खण के ऊपर उद्धृत द्वितीय दोहे को मूल से मिलाकर देखा जा सकता है। सेनापति ने इस तरह का बन्धन स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने पूरे श्लोक के भाव को अपना वर्ण्य मानकर उसके अंशों को आगे-पीछे भी प्रस्तुत किया है। लक्खण का यह भाषा-रूपांतर अनुवाद जैसा लगता है, यद्यपि है भाषा-रूपांतर ही; क्योंकि इस रुपांतरित अंश में गद्य-पद्य दोनों का ही भाषा-रूपांतर पद्यबद्ध हुआ है और शब्दशः अनुवाद नहीं हुआ है। लक्खण ने यथारुचि कही दोहा और कहीं सोरठा का प्रश्रय लिया है।

सेनापति की ब्रजभाषा पजाबी वातावरण और उच्चारण से अधिक प्रभावित है। 'जिउं', 'अर', 'सहिंसा', 'अनिसचे' आदि शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा पर यह प्रभाव लक्षित होता है। लक्खण की भाषा उनकी भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है और वातावरण तथा उच्चारण के कारण शब्द-विकृतियाँ कहीं-कही ही उपलब्ध होती हैं। सेनापति अपने 'चाणक्यनीति भाषा' में किसी ऐसे मूल ग्रन्थ का अनुसरण करते हैं जो इस समय उपलब्ध नहीं है, किन्तु उनके द्वारा भाषा-रूपांतरित नीति के लगभग सभी दोहे 'चाणक्यराजनीति शास्त्र' मे श्लोकों के रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। 'हितोपदेश' का वर्तमान संस्करण ठीक वैसा ही है जैसा लक्खण ने प्रयुक्त किया होगा, क्योंकि इसके वर्णन-क्रम में किसी प्रकार का उलट-फेर नही है। 'चाणक्य राजनीति-शास्त्र' के आठ अध्यायों में वर्णित २५३ श्लोक सेनापति के 'चाणक्य नीति भाषा' में उलट-फेर के साथ २१७ छन्दों में पूरे हो गए हैं। इनमें से लगभग ३४ श्लोक 'चाणक्य-नीति भाषा' मे उपलब्ध नहीं होते, किन्तु दो अवशिष्ट श्लोकों का भाव एक तीसरे श्लोक के साथ एक छप्पय में आ गया है।

नीतिपरक ये दोनों ही कृतियाँ समान उद्देश्य को लेकर लिखी गई है और सामान्य जनता तक नीति-नियमों को जनभाषा में पहुँचाने के प्रयत्न की तत्कालीन प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।



अष्टम अध्याय

अध्यात्मपरक एवं मिश्रित रचनाएँ

(क) अध्यात्मपरक रचनाएँ

दशम गुरु गोबिन्द सिह् के दरबार में जिस प्रकार साहित्यिक चर्चा होती थी, उसी प्रकार आध्यात्मिक विषयों की भी चर्चा होती थी। यह गुरु-परम्परा निर्गुणोपासक थी और इसका दृष्टिकोण अद्वैत वेदान्त के अधिक समीप था। यही कारण है कि गुरु-दरबार के कुछ कवियों ने इन आध्यात्मिक विषयों को भी छन्दोबद्ध करने का प्रयत्न किया।

वेदांत के गूढ़ तत्त्वों को जनभाषा में उद्धृत करने का प्रयत्न निम्नलिखित कृतियों में हुआ है—

१. अध्यात्म प्रकाश : कवि सुखदेव कृत
२. ज्ञान प्रकाश : कवि सुखदेव कृत
३. गुरु महिमा (खण्डित प्रति) : कवि सुखदेव कृत
४. अनुभव उल्लास : कवि गोपाल कृत

सुखदेव की उक्त तीनों कृतियाँ गुरु-शिष्य के प्रश्नोत्तर रूप में वेदांत विषय का प्रतिपादन करती हैं। 'अध्यात्म-प्रकाश' की रचना में चकोर, दोहा, छप्पय, कुंडलिया, कवित्त, सवैया तथा चौबोला आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इस ग्रन्थ का मुख्य आधार बादरायण व्यास का 'ब्रह्मसूत्र' है और उस पर शंकराचार्य द्वारा किए गए भाष्य का भी आश्रय लिया गया है—

दोहा

व्यास मथन करि वेद सब सूत्र जु काढ़े सार।
श्री गुरु शंकर देव जी, कीन्हो बहु विस्तार ॥२॥
तिन्ह ग्रन्थन को समुझियत, धरयो जु पर उपकारु।
भाषा करि सुखदेव जी, रच्यो ग्रन्थ अतिचारु ॥३॥

इसमें अधिकारी और जिज्ञासु शिष्य, ज्ञान, वैराग्य, भोग, सुदृढ़ भक्ति आदि की आरम्भ के नौ छन्दों में प्रशंसा की गई है। इसके बाद मूल वेदांत के विषयों का विवेचन आरम्भ हुआ है, जिनमें ज्ञान, वैराग्य, विवेक, साम-दाम आदि चार साधन, मुमुक्षु, तत्वमसि की व्याख्या, माया, त्रिगुण, कारण, सूक्ष्म और स्थूल देह, ब्रह्म की आयु, माया

की शक्ति, विक्षेप और आवरण, पच्चीस तत्त्वों का विवेचन, पदार्थ और गुण, पंचकोष, पंचप्राण, एकादश इन्द्रियाँ, संचित प्रारब्ध और क्रियमानकर्म, जीव-सृष्टि, कर्मभोग, षटविकार, चैतन्य विवेचन, आत्मा का स्वरूप, मन, बुद्धि, इन्द्रिय-निरोध, बिम्बप्रतिबिम्ब भाव, जड़ शरीर से आत्मा की पृथक्ता, सच्चिदानन्द-स्वरूप, ईश्वर और जीव का साम्य-वैषम्य, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था, कारण और कार्य, ब्रह्म का स्वरूप, मुक्त पुरुष का स्वरूप तथा अन्त में पातंजल, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, आगमतन्त्र, पुराण एवं पंचरात्र मत का उल्लेख तथा वेदांत की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।

तात्त्विक विवेचन के कारण छन्दोबद्ध होते हुए भी इस रचना में साहित्यिकता नाममात्र को भी नहीं आ पाई है। शैली के निदर्शनार्थ निम्नलिखित उद्धरण देखा जा सकता है :

शिष्य उवाच—

चौबोला

संचित कर्म्मन ते पहिले ही थूल देह तुम भाषी।
कर्मन के लक्षण सुनवे को मेरी मति अभिलाषी ॥८५॥

श्री गुरुरुवाच—

दोहा

संचित अरु प्रारब्ध ये, क्रीयमान त्रयकर्म ।
सुन हों तोसौ कहत हों, तिनके अद्भुत मर्म्म ॥८६॥

'ज्ञान प्रकाश' का प्रतिपाद्य विषय भी मुमुक्षु शिष्य द्वारा की गई जिज्ञासा के उत्तर में गुरु द्वारा पंचकोष, ज्ञान की महत्ता, त्रिविध शरीर, जीव, ब्रह्म, उसका निर्विकल्पत्व, तत्वमसि, अज्ञान एवं उसका नाश, ज्ञानी की निरभिमानता तथा विवेक आदि का वर्णन है; केवल छन्द और उसका स्वरूप भिन्न है। वर्ण्य-विषय और शैली की दृष्टि से यह रचना 'अध्यातम प्रकाश' की पूर्णतः प्रतिच्छाया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

द्वितीय प्रश्न पुनि कहत हौ नीके कहिये मोहि।
पंचकोश वपुतीनि को उत्पत्ति कैसे होइ ॥२॥

गुरुवचन—

सिष उत्तर सुनि गुरु कह्यो निश्चय करु उरमाहिं।
छूटै एक विचार ते दूजो साधन नाहिं ॥३॥
येकै ते तृद्धा भयो दृष्टा सत्ता पाइ।
पंच कोश करि रचित है कहौ तोहि समुझाई ॥४॥

'गुरु-महिमा' की खण्डित प्रति में कुल १६ छन्द हैं। इसमें भी शिष्य की जिज्ञासा-भावना और गुरु की ज्ञान-दान की क्षमता के कारण उसकी महत्ता के वर्णन

के उपरान्त उक्त विषयों का ही आरम्भ किया गया है, किन्तु रचना की अपूर्णता के कारण केवल यह अनुमान किया जा सकता है कि आगे भी उन्हीं आध्यात्मिक विषयों का प्रतिपादन किया गया होगा, जिनका 'अध्यात्म प्रकाश' में उल्लेख हो चुका है और 'ज्ञान प्रकाश' में जिनकी पुनरावृत्ति हुई है।

उक्त तीन अध्यात्मपरक रचनाओं की अपेक्षा गोपाल कवि कृत 'अनुभव-उल्लास' अधिक साहित्यिक एवं ललित है। गोपाल ने नन्ददास की 'रास पंचाध्यायी' की भाँति ही मंजुल एवं रुचिर रोला छन्द का प्रयोग किया है। इसमें १९ रोला और १ दोहा छन्द हैं। आरम्भ में सच्चिदानन्द, गुरु गोविन्द, गणेश और शारदा को एक ही स्वरूप मानकर कवि ने नमस्कार किया है—

नमो सचिदानंद अपन पौ परम अनूपा,
गुरु गोविन्द गणेश सारदा सकल सरूपा।
डाल फूल अरु पात सबें पोखत जर पोखे,
तोखत सोखत सारो बिस आत्मा के तोखे ॥१॥

इस छोटी-सी रचना में हरि की अव्यक्त व्यापकता, गुरु से ज्ञान की उपलब्धि, चित्त-दर्पण की स्वच्छता की आवश्यकता, साक्षी आत्मा, इन्द्रियातीत आत्मा का स्वरूप, देह और आत्मा का सम्बन्ध, उसकी निर्लिप्तता एवं अमरता, जीव के साथ आत्मा का भेदाभेदत्व, देहाभिमान की मुक्ति से आत्म-दर्शन, सहज समाधि, परमहंस अवस्था तथा इस अवस्था और आत्मा के अनुभव से प्राप्त उल्लास का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि इस रचना का उद्देश्य भी वेदांत के विषय का प्रतिपादन ही है, किन्तु यह सुखदेव की कृतियों के समान न तो केवल तत्त्वाभिव्यंजक ही बनी है और न इसमें विषय की गहराई में उतर कर उनके समान केवल बौद्धिक विषयों का ही निरूपण हुआ है। इस में वेदांत के मूलभूत सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण कर सरल, सरस एवं मंजुल पदावली में उनकी अभिव्यक्ति की गई है। यत्र-तत्र दृष्टांत आदि अलंकारों के प्रयोग से गूढ़ विषय भी सरल, सहज एवं ग्राह्य बन गया है। निम्नलिखित कतिपय पंक्तियाँ गोपाल की वर्णन-शैली की स्पष्ट निर्दशिका हैं—

रहै ह्रिदे हरि व्याप दारु मैं पावक जैसे,
बिना दार के मथे अगन पै प्रगटे कैसे? ॥२॥
धरी बसतु घर माँह बिना दीपक क्यों चहिए,
तिउं प्रभु आपन मांहि बिना गुर ग्यान न लहिए ॥३॥
जैसे चुंबक संग लगिउ लोहे निरतत है,
तिउं आतम संतिआ पाइ इन्द्रिन बरतत है।
आतम दीप प्रकास मात्र इन्द्रिन गुन गहई,
यथा फटिक मैं रंग मनिन सानिध ते लहई ॥६॥

काया पुर मन महिल तित आतम राज बिराजै,
सब को मुजरा लेत हो तजि क़ाज अकाजै ।।७।।
एक कहई बूद एक बुदबुदा कहायो ।
दोउ भयो गति नीर दुहुँन तब भेद हिरायो ।।१०।।
जल में जैसे कमल रहत नाना नित जग मो,
जग को परसत नाहि जदपि दीसत है जग मो ।
गूँगे को गुड़ ग्यान यहि चाषै सो जानै,
लहै स्वाद मन मांहि वाकू जनि सकै वषानै ।।१७।।

वाक्यार्थोपमा, दृष्टांत तथा सांगरूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग द्वारा केवल विषय के स्पष्टीकरण में ही कवि को सहायता नहीं मिली है, अपितु वेदांत जैसे गूढ़ विषय को साहित्य के सांचे मे ढालने में भी सफलता मिली है । सुखदेव विविध प्रकार के छन्दों का उपयोग करके भी जो सरसता अपनी कृतियों में नहीं ला पाए, वह केवल एक ही छन्द (रोला) के उपयोग द्वारा गोपाल ने अपनी रचना में प्रस्तुत कर दी है । रोला छन्द, कवित्त, दोहा आदि की अपेक्षा अधिक संगीतात्मक, मसृण एवं कोमल छन्द है । अतः गोपाल की रचना 'अनुभव उल्लास' दार्शनिक रत्नों को साहित्य की मंजूषा में देखने के लिए उत्सुक पाठकों की तृप्ति का साधन सिद्ध हुई है । संक्षेप में, कवि का 'अनुभव उल्लास' सन्त एवं सहृदय दोनों ही के लिए दर्शन एवं काव्य का मंजुल समन्वय है ।

भाषा की दृष्टि से 'अनुभव उल्लास' में गुरु-दरबार की भाषा की विशेषताओं के दर्शन तो होते हैं, किन्तु सुखदेव की कृतियाँ इस प्रभाव से बहुत कुछ मुक्त दिखाई पड़ती है । वे सस्कृत की तत्सम पदावली से अधिक सम्पन्न है । सम्भवतः उनके विवेच्य-विषय के कारण ही ऐसा सम्भव हो सका है ।

(ख) मिश्रित काव्य

(अ) कोश-काव्य—कवि टहकन ने संस्कृत के अत्यन्त प्रख्यात 'अमरकोष' का भाषा-रूपांतर 'रतन दाम' के नाम से प्रस्तुत किया है । यह भाषा-रूपांतर अपने ढंग का अनूठा है । कवि ने इसे 'रतन दाम' नाम दिया है, किन्तु अपनी रचना को 'अमरकोष' की भाँति ही काण्डों और वर्गों में विभाजित करके उनतीस प्रभावों में वर्गीकृत किया है । यद्यपि आरम्भ में 'अमरकोषकार ने दयासिन्धु (जिन) की स्तुति की है, किन्तु टहकन ने गणेश-वन्दना से अपनी इस रचना का आरम्भ किया है—

द्विरद बदन मुष सदन, रदनवर एक गवरि तन ।
विघन हरन सुभकरन, दलन दुष दरिद अघ हरन ।।

ग्रन्थ के अन्त में भी श्रीकृष्ण का नखशिख-वर्णन प्रस्तुत किया गया है । इससे स्पष्ट है कि कवि ने अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही रचना का आरम्भ और अन्त किया है ।

यह भाषा-रूपांतर 'अमरकोष' के वर्गों और श्लोकों का यथाक्रम रूपांतर नहीं है। इसमें कवि ने 'अमरकोष' के उन्हीं अंशों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है, जो काव्य के लिए अनिवार्यतः ज्ञातव्य विषय हैं। यही कारण है कि इसमें नायिका-भेद का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। 'अमरकोष' में केवल इनका नाम-परिगणन कर दिया गया है। नायिका-भेद के लक्षण-ग्रन्थों की भाँति टहकन ने अपने इस वर्ण्य-अंश को कवित्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। अतः 'रतन दाम' 'अमरकोष' का अनुसरण करते हुए भी अपनी वर्णन-प्रक्रिया में पूर्णतः स्वतन्त्र है। यहाँ दोनों प्रकार की शैलियों के निदर्शनार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

(क) अमरकोष की श्लोकानुसृत शैली

लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया ॥२७॥[1]
इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा ॥२८॥

दोहा

मा लषमी पदमालया कमला पदमा श्रीय।
रमा इंदिरा लोक माँ, अंबुधिजा हरि प्रीय ॥३१॥[2]

मूल 'अमरकोष' में रसों की नाम-गणना नाट्यवर्ग में की गई है, जो निम्नलिखित रूप में है—

श्रृंगारवीरकरुणाद्भुतहौस्यभयानकाः।
बीभत्सरौद्रो च रसाः श्रृंगारः शुचिरुज्ज्वलः ॥१७॥
उत्साहवर्धनो वीरः कारुण्यं करुणा घृणा।
कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽप्यथो हसः।
हासो हास्यं च बीभत्सं विकृतं त्रिष्विदं द्वयम् ॥२१८॥
विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमप्यथ भैरवम्।
दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् ॥२१९॥
भयंकरं प्रतिभयं रौद्रं तूग्रममी त्रिषु ॥२२०॥[3]

टहकन के 'रतन दाम' में यह वर्णन इस प्रकार है—

श्रृंगार रस के नाम—

दोहा

सुचि उज्जल रसराज पुनि, पेषति है कवि लोइ।
निसंदेह जीअ जानिये, कहति गुनी सभ कोइ ॥२८६॥

---

१. अमरसिंह, अमर कोष, प्रथम काण्ड, स्वर्ग वर्ग
२. टहकन, रतन दाम
३. अमरसिंह, अमरकोष, नाट्यवर्ग

बीभत्स रस के नाम—

दोहा

बीभतस विक्रति कहति, निंदा मैं पुनि सोइ।
अमर ग्रन्थ बरनिय जथा, प्रगति बषानिउ लोइ ॥२८७॥

करुण रस के नाम—

दोहा

कारुण्यं करुणा ध्रिणा करुण रस यह जानि।
अनुकंपा अनुक्रोस पुनि दया क्रिपा यह मानि ॥२८८॥

अद्भुत रस के नाम—

दोहा

आचरजं अद्भुत पुनह, चित्रं विसमय जानि।
अद्भुत रस के नामु यहु कहत गुनी जिअ मानि ॥२८९॥

हास रस के नाम—

दोहा

हासु हास हस रसि कहति, कविजन कहति बषानि।
यहै हास रस नाम है, जानत जिहि कौ ज्ञानि ॥२९०॥

रौद्र रस के नाम—

दोहा

उग्र भयंकर प्रतिभयं, नाम रौद्र रस जानि।
निस चैमन वच क्रमनि यह, कहि हौ प्रगटि बषानि ॥२९१॥

भयानक रस के नाम—

दोहा

घोरं भीषम भैरवं, भीषण दारण जान।
भीमं पुनह भयानकं, भै रस नाम बषान ॥२९२॥

वीर रस के नाम—

दोहा

उतसाहे बरधन कहति, अरु रस बीर सुजानि।
कहे अमर के ग्रन्थ मति, अधिक जीय रुचि मानि ॥२९३॥

टहकन ने 'अमरकोष' के क्रम—श्रृंगार, वीर, करुण, हास्य, वीभत्स, अद्भुत, भयानक और रौद्र—को परिवर्तित कर क्रमशः श्रृंगार, वीभत्स, करुण, अद्भुत, हास, रौद्र, भयानक और वीर के अनुसार प्रस्तुत किया है। यद्यपि टहकन ने 'अमर ग्रन्थ-

बरनिय जथा' (२८७) कहकर अपने वर्णन को अमरकोशानुसृत घोषित किया है, परन्तु श्रृंगार रस के नाम परिगणन में उन्होंने रीतिकाल में अत्यधिक प्रचलित श्रृंगार के रसराज नाम को समाविष्ट कर लिया है, जो 'अमरकोष' में नहीं है। इस रस के नाम-वर्णन में उन्होंने रीतिकालीन परम्परा के अनुसार ही 'कहति गुनी सभ कोई' (२८६), 'प्रगटि बषानिउ लेइ' (२८७) आदि उक्तियों का प्रयोग किया है।[1] इससे स्पष्ट है कि 'रतन दाम' में केवल पर्यायवाची शब्दों के लिये ही 'अमरकोष' का अनुसरण किया गया है, वर्णन-शैली में पर्याप्त स्वतन्त्रता बरती गई है।

(ख) स्वतन्त्र वर्णन-शैली—

टहकन ने 'अमरकोष' की परम्परा से भिन्न रीतिकालीन परम्परा का अनुसरण करते हुए स्वतन्त्र रूप से नायिका-भेद और अन्त में श्रीकृष्ण का नखशिख-वर्णन प्रस्तुत किया है। नायिका-भेद में उन्होंने स्वकीया, परकीया और सामान्या का विस्तृत वर्णन, उनके भेदों सहित प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए टहकन द्वारा प्रस्तुत कुछ नायिकाओं के लक्षण इस प्रकार हैं—

मुगधा के लक्षरण—

दोहा

बाल बैस मैं व्याहिए, डरपति रति ब्योहार।
नव भूषन की चाह चित, मुगधा चारि प्रकार ॥५४॥

धीरा-अधीरा—

चउपई

वक्रउकति धीरा पहिचानहु।
बानी विषम अधीरा जानहु ॥
पिय सो देउ राह न जो तिया।
धीरा जानि ताहि पुनि जीआ ॥५५४॥

परकीआ के लक्षरण—

दोहा

करै नेह पर पुरुष सौं, प्रेमु बढ़ावै प्रीति ;
रति अभिलाष सदा हिये, परकीआ यह रीति ॥५५६॥

सामान्या के लक्षरण—

दोहा

प्रीति सकल पुरषनि करै, धनु लेवै की आस।
सामानिआ की रीति यह कवि कुल कहति प्रकाश ॥५५७॥

---

१. उदाहरण के लिए रसिक प्रिया में द्रष्टव्य, 'बरनत हैं सभ कोई'। ३।६
'कोविद कहत बखानि' ।३।५१ तथा ३।१४, ३।१८, ३।२४,३।४६,३।६७
रसराज के छन्द ५,६,१४,१७ आदि
रस सारांश के छन्द ८,१५,६१ आदि

बासक सज्जा के लक्षण—

चउपई

पिय आवनि की आस हिए धरि।
करि सिंगारु ठाढ़ी द्वार छरि।
पी आये नाँह मदन सतावै।
वासक सज्जा नाम कहावै ।।५६४।।

अथ षंडिता लक्षण--

चउपई

रैन और तिउ के पिउ बसै।
उर नष पीक कपोलनि लसै।
निरष नैन हिय रोसु बढ़ावै।
या लच्छन षंडिता कहावै ।।५६५।।

कवि टह्कन ने यह नायिका-भेद भानुदत्त की 'रसमंजरी' के अनुसार प्रस्तुत किया है। प्रायः सभी रीतिकालीन आचार्यों ने नायिका-भेद निरूपण के लिए 'रसमंजरी' और 'रति रहस्य' को ही आधार बनाया है। केवल भिखारी दास ने 'साहित्य दर्पण' से प्रभाव ग्रहण किया है।[1] 'रतन दाम, से उपरि उद्धृत जो लक्षण दिए गए हैं वे 'अमरकोष' की अपेक्षा रीतिकालीन आचार्यों के लक्षण-ग्रन्थों के अधिक समीप है। कुछ उद्धरणों द्वारा इस तथ्य के संकेत नीचे दिये जा रहे है—

लाज मदन सम जासु के, मधिआ कहिए जाहि।
चारि प्रकारि सुकवि कहति, बरनति है अब ताहि ।।५५०।।[2]
जाके तन में होत है लाज मनोज समान।
ताको मध्या कहत है कवि मतिराम 'सुजान'।[3]
मध्यहि लाज मनोज बराबरी प्रीतम-प्रीत-प्रतीत सो प्रोढ़ै।[4]

ऊपर उद्धृत टह्कन के ५५६ वें दोहे की "नेह करै पर पुरुष सों परकीया सो जान" तथा ५५७ वें दोहे की "धन दे जाके संग में रमै पुरुष सभ कोइ" की 'रसराज' के क्रमशः छन्द-संख्या ५८ व ६४ से तुलना की जा सकती है। वस्तुतः टह्कन द्वारा प्रस्तुत 'रतन दाम' का नायिका-भेद लक्षण-ग्रन्थ का भाग प्रतीत होता है, किसी कोश-ग्रन्थ का नहीं। इसके लक्षण, और इसकी शब्दावली भी रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों से मिलती-जुलती है।

---

१. डॉ० सुधीन्द्र कुमार, रीतिकालीन शृंगार-भावना के स्रोत, मूल शोध-प्रबन्ध, पृ० १३३-३४
२. टह्कन, रतन दाम
३. रसराज, छन्द-संख्या ३०
४. रस सारांश, छन्द-संख्या २५

'रतन दाम' के १४२१ संख्यक छन्द से लेकर १४२६ तक नन्दलाल का नखशिख और श्रृंगार वर्णित है। इसकी भाषा कोमल-कान्त एवं मधुर पदावली से सम्पन्न है। इसमें जहाँ माधुर्यगुण-सम्पन्न पदावली का प्रयोग हुआ है, वहाँ कई प्रकार के छन्दों का भी अनुकूल प्रयोग हुआ है, जिससे इस रूप-चित्रण में माधुर्य के साथ-साथ स्वाभाविक त्वरा भी आ गई है। इसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप द्रष्टव्य हैं—

नव अलि-जालं रुनत रसालं, लजत मरालं गत चालं।
जगु जानु सुधंगं निदरत रंभं, अंग अंग छवि वरुणालं।
काछनी सुरंगं अद्भुत रंगं लजत अनंगं दुषु हरणं।
जय श्री नंदलालं त्रिभुवन पालं दीन दयालं तुय सरणं ॥१४२२॥

अनछंद

छुद्र घंटि कटि तट सुभ साजं।
रुण झुणंति रुणकति कलि बाजं ॥१४२३॥

छुप्पय

जगमगाति छवि ललित अंग अंगनि त्रिभंग।
पग नूपुरि कटि छुद्र घंट काछनी सुरंगं।
उर मंडत बन माल अधर मुरली छवि छाजं।
कल कपोल गति लोल स्रवन कुंडल रवि लाजं।
सिर मोर क्रीट पट पीत दुत, रूप चतुरभुज धरे तन।
जन टहकन हिए बसौ सदा, नंदलाल आनंदघन ॥१४२६॥

ललित और संस्कृत की तत्सम पदावली के इस प्रयोग से टहकन का भाषा पर विशेष अधिकार लक्षित होता है। अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग और मधुरावृत्ति के अनुकूल दन्त्यवर्णों एवं सानुनासिकता के समावेश से यह प्रतीत होता है कि टहकन वृत्तियों के अनुकूल सामान्य चित्रण को भी अत्यन्त रमणीय बना सकते हैं। 'रोमावल मधुपावल राजं'[1] 'चंचल दृग खंजन लाजति[2],' 'बदन इन्दु' तथा 'कंबुकण्ठ सोभनि कंठमालं' जैसी अलंकृत पदावली के समावेश से लुप्तोपमा, प्रतीप, रूपक तथा अनुप्रास आदि अंलकारों के प्रयोग में वे अत्यन्त निपुण दिखाई देते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि 'रतन दाम' के इस नख-शिख-वर्णन में शब्दावली पर जैसा अधिकार टहकन ने प्रदर्शित किया है वैसा 'अश्वमेध-पर्व' के भाषा-रूपांतर में नहीं हो पाया है। 'रतन दाम' उनकी प्रौढ़ रचना है और 'अश्वमेध पर्व' सम्भवत: प्रारम्भिक रचना।

---

१. द्रष्टव्य, टहकन, रतन दाम छन्द संख्या १४२३
२ वही, छन्द-संख्या १४२४

'रतन दाम', कोश, लक्षण और काव्य का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है। अतः 'अमरकोष' का आश्रय लेते हुए भी कवि ने अपनी रुचि के अनुकूल विषयों को छांटकर जिन त्रिविध वर्ण्य-रत्नों की माला प्रस्तुत की है, उस से इसका 'रतन दाम' नाम उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

(आ) **चित्र-काव्य**—अमृतराय का 'चित्र-विलास' चित्र-काव्य है। आचार्य मम्मट ने काव्य-भेद प्रदर्शित करते हुए वाच्यार्थ से जहाँ व्यंग्यार्थ की अतिशयता प्रतीत होती है, उसे उत्तम काव्य माना है। गुणीभूत व्यंग्य प्रधान काव्य को मध्यम एवं व्यंग्य रहित काव्य को अवर या अधम-काव्य कहा है। इसे ही उन्होंने चित्र-काव्य कहते हुए शब्द-चित्र और वाच्य-चित्र के रूप में दो भेदों का उल्लेख किया है।[1] शब्द-चित्र में वर्णों, अक्षरों एवं शब्दों का वैचित्र्य प्रदर्शित होता है और वाच्य-चित्र में वाच्यार्थ का वैचित्र्य। इस द्वितीय प्रकार के वैचित्र्य में प्रश्नोत्तर, कूट और प्रहेलिका आदि का समावेश होता है। चित्रबन्ध-काव्य भी चित्र-काव्य के अन्तर्गत ही गिना जाता है। इसमें खड्गबन्ध, मूसल-बन्ध आदि के रूप में अक्षर-प्रयोगों का वैचित्र्य ही अभिव्यक्त होता है। अमृतराय का यह 'चित्र बिलास' चित्र-काव्य का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत करता है।

अमृतराय ने अपने 'चित्र-विलास' के आरम्भ में एक छप्पय छन्द में गणेश की वन्दना, चार भुजंगप्रयात् छन्दों तथा दो दोहों में वाणी की वन्दना की है। इसके बाद एक दोहे में कवि ने ग्रन्थ-रचना के लिए मित्रों के आग्रह का उल्लेख किया है। इसी आग्रह का एक कुण्डलिया में पुनः उल्लेख किया गया है। इसमें अमृतराय ने संकेत किया है कि ऐसी ग्रन्थ-रचना की जाए जिसे सुनकर पण्डित रीझें।[2] इसके बाद दो दोहों में कवि ने ग्रन्थ का नाम 'चित्र-बिलास' और रचना-काल सं० १७३६ तथा तिथि आदि का उल्लेख किया है। बारहवें सोरठा छन्द में औरंगज़ेब का उल्लेख है। इसके बाद एक दोहे में लाहौर नगर का वर्णन है। चौदहवें, पन्द्रहवें तथा सोलहवें कवित्त में भी लाहौर नगर का अत्यन्त सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सत्रहवें कवित्त में ऐरावती नदी का अत्यन्त मनोरम वर्णन प्राप्त होता है—

रंगा जू के संग की तरंगनी तरंग अंग,
करै पाप भंग वागै नैक जु अन्हाइए।
मच्छ कच्छ तंतकाल भौंरिन मै भ्रमै ब्याल,
मंगल कराल होत कहां लौ सुनाइए।
तीर तरु ललित वलित बेलि फूल फल,
चक्रवाक सारस मराल माल भाइए।
पापी जात तरि अरु तरु तहीं जात तरि,
ऐसी ऐरावती लोक लोकनि में गाइए ॥१७॥

१ आचार्य मम्मट, काव्य-प्रकाश, १।४-५

२. चित्र-बिलास, छन्द-संख्या ६

इसके बाद कवि ने 'चित्र-बिलास' का आरम्भ किया है और अभरन तथा वरन के रूप में दो खण्डों में इसके विभाजन का संकेत निम्नलिखित दोहे में दिया है:—

दोहा

चित्र प्रकार अनंत गति, कहि आए कविराइ।
कवि अम्रित द्वै बिधि रचे, अभरन बरन बनाइ ॥१८॥

अभरन के अन्तर्गत उन्होंने संज्ञा, वर्ण-विधान, स्वर, अक्षर-विछोह[1], अक्षर-मिलन, रसनागहन, मात्रा-विधि, अन्तरालाप, बहिरालाप, गुप्तोत्तर तथा प्रश्नोत्तर के एकानेक वर्णन प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रकार उत्तर व्यस्त, समस्त, शासनोत्तर आदि का वर्णन किया गया है। अपने वर्ण्य-विषय का संकेत करते हुए उन्होने निम्नलिखित दोहे दिये हैं —

संग्या बरन विधान पुन, इक स्वर अछर बिछोह।
अछर मिलन रसना गहृन, मात्रा विधि मत मोह ॥२०॥
अंतरिलाप बखानिये, वहिरलाप का जानि।
गुपतोत्तर प्रसनोत्तरहि, एकानेक बखानि ॥२१॥
उत्तर व्यस्त समस्त पुनि, सासन उत्तर लेख।
उत्तर व्यस्त गतागतनि, भिन्न पदार्थ देख ॥२२॥
सरल गतागत कूट पुनि, सबद चित्र सम जान।
सिंधुर सिंधु कमान तरु, रवि ससि कंज बखान ॥२३॥
इनै आदि दै और है, बहु बिधि वरनहु मित्र।
सुभ संख्या अम्रित सुमति, भाषा भूषन चित्र ॥२४॥

'चित्र-विलास' में वर्ण्य-विषय के निम्नलिखित क्रमबद्ध रूप प्राप्त होते हैं—

१. **एकाक्षर कोश**—कवि के शब्दों में यह अक्षर-वर्णन के अन्तर्गत आता है। तीन दोहों में उन्होंने अ से अः तक सभी स्वरों के अर्थ प्रस्तुत किए हैं, जैसे—

हरि अकार आकार विधि, मनमथ जानि इकार।
ई लछमी उ महेस ऊ, रच्छण नाम विचार ॥२६॥

इसके बाद उनतीसवें से लेकर पचासवें दोहे तक 'क' से लेकर 'क्ष' तक के व्यंजनों के अर्थ एवं उनके अनेक पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। इन व्यंजनों में ङ, ञ, तथा ण के अर्थ एवं पर्याय नहीं दिए गए। एकाक्षर कोशों में इनका उल्लेख नहीं मिलता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहा देखा जा सकता है—

---

१. अक्षर-वियोग

आतम अनल प्रकास विधि, क छिति उरण कु जान।
कं जल महि सुख स्वरग है, खं नभ नखत सु जान॥२९।

अमृतराय ने इस अंश को स्वयं एकाक्षर-कोश तथा अक्षर-संज्ञा नाम दिया है—

एकाक्षर बिधि कोश की अम्रित कही बखान॥५०॥
इति अक्षर संज्ञा समाप्तं।

२. **विधान-वर्णन**—अमृतराय द्वारा प्रस्तुत इस विधान-वर्णन के दो पक्ष हैं—प्रस्तुत और अप्रस्तुत अथवा उपमेय और उपमान। जब वर्णन एक प्रस्तुत का किया गया है और उपमान भी एक-एक ही दिया गया है तब इनके अनुसार वह एक विधान वर्णन है। जब प्रस्तुत या अप्रस्तुत दो हों तो वह द्विविधान-वर्णन है। इसी प्रकार तीन हों तो त्रिविधान और चार हों तो चतुर्विधान। इस प्रकार उन्होंने एक से लेकर चौदह तक का विधान-वर्णन किया है। एक प्रस्तुत के लिए एक अप्रस्तुत या एक उपमान का अर्थ यह नहीं है कि पूरे छन्द में एक ही अप्रस्तुत या उपमान का प्रयोग किया गया है। एक-एक कर उनकी माला भी प्रस्तुत की जा सकती है। इसी प्रकार द्विविधान में दो-दो की माला भी प्रस्तुत की जा सकती है। कवि अमृतराय ने अपने इस 'विधान' का लक्षण निम्नलिखित दोहे में प्रस्तुत किया है—

एकै आदि बिधान दस, षट पद बरन बनाइ।
एकादस लग चतुरदस, अम्रित कवित्त सुनाइ॥५१॥

उदाहरण के लिए यहाँ पर अमृतराय द्वारा प्रस्तुत दो प्रकार के विधानों को दिया जा रहा है:

एक विधान—

प्रेम को प्रकास कैसो आनंद के कंद जैसो,
आनन्द को कन्दु कैसो जैसो स्री सदनु है।
स्री जू को सदनु कैसो अमल कमल जैसो,
कैसो है कमल जैसो उदित मदनु है।
उदित मदनु कैसो मोहन सरूप जैसो,
मोहन सरूप कैसो तमको कदनु है।
तमको कदनु कैसो सोभै सुधाधर जैसो,
सुधाधर कैसो जैसो 'प्यारी' को बदनु है॥५२॥

त्रिविधान—

अति रस रसे प्रिय प्रीतम बिलोक अलि,
छल बलि न्यारे न्यारे करे सुख मगनी।

चक्रवाक जल तीर सुखद सरीर चीर,
निसा करवत जुदे कीने पीर न गनी ।
मीन जल करै केलि अम्रित अधिक मेलि,
वंशी बिछोरत उडारे दुख दगनी ।
चन्दमा चकोर दुहूं ओर फोर डारे भोर,
मन अरु आतमा को ऐसे माया ठगनी ॥५५॥

प्रथम विधान-वर्णन में रशनोपमा और प्रतीप का सुन्दर प्रयोग किया गया है तथा त्रिविधान-वर्णन में सन्देह अलंकार के माध्यम से दृग के श्वेत-श्याम रतनारेपन का सुन्दर वर्णन हुआ है। प्रथम उदाहरण में 'प्यारी' का बदन और द्वितीय उदाहरण में दृग के तीनों वर्ण ही प्रस्तुत हैं। इसी प्रकार एक ही प्रस्तुत के लिए कवि ने रूढ़ उपमानों को एकत्रित कर चतुर्दश विधान तक वर्णन किया है।

३. **एक स्वर-वर्णन**—जहाँ सम्पूर्ण छन्द में ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया जाए जिसमें सभी अक्षरों के स्वर समान हों, उसे एक स्वर-वर्णन कहा जाता है। उदाहरण के लिए एक पंक्ति देखिए—

सजल सघन तन वरन हरन ; मद मदन बदन घन ॥६८॥

४. **अक्षर-वियोग**—कुछ विशिष्ट अक्षरों के बीच में अन्य अक्षरों के आ जाने से उत्पन्न दूरी को अक्षर-वियोग कहा गया है। जैसे—

कैधो अनंग के तीछन तीर कि खंजन रंजन चित्त हरै लख ॥६९॥

यहाँ दोनों 'ती' का व्यवधान छ, न से और दोनों ज, न का व्यवधान 'र' से हो गया है। यही अक्षर-वियोग है।

५. **अक्षर-मिलन**—जिस छन्द में एक ही वर्ग के सभी व्यंजनों का उपयोग हो, वहाँ अक्षर-मिलन होता है। जैसे—

प्रेमी बपु प्रेमैं फबै, बामी बपु मैं बाम।
पापी बपु पापै बमै, भ्रमै बिंब पूमाम ॥७०॥

अक्षर-मिलन को ही इन्होंने 'रसनागहन प्रोषितपतिका नायिका' शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है, जिसमें कवर्गीय अक्षरों का मिलन प्रदर्शित किया गया है। यथा—

केकी केक कोक काक कुहू कुहू कुहू कहै,
को है अघअघी कोऊ कहो कहा कहि है।
कूकां कूक कीक काइ गेह गेहि हाइ हाइ,
एई खग हियहूं को अहि अहि अहि है।
अंग अंग आगि गहै ऊक ऊक हूक अहै,
है है है है घोष घोष घाइ हिय घहि है।

एक एक आइ आइ खाइ खाइ कै अघाइ,
कंग आइ कगि आइ ह्वा हा हू हू गहि है ।।७१।।

६. **मात्रा-भेद**—अक्षर-मिलन का ही एक दूसरा रूप प्रस्तुत करते हुए कवि ने एक ही छन्द के दो-दो चरणों में एक-एक अक्षर से युक्त पदावली का प्रायः प्रयोग किया है। इन व्यंजनों का प्रयोग वर्णमाला के भीतर प्रयुक्त होने वाली मात्राओं के क्रम के अनुसार हुआ है और ऐसी ही पदावली का प्रयोग किया गया है जिसमें उत्तरोत्तर ये मात्रायुक्त व्यंजन आ सकें। अमृतराय ने निम्नलिखित व्यंजनों का प्रयोग एक-एक छन्द में किया है—

क२[1] ख२, ग२, घ२, च२, छ२, ज२, झ२, ट२, ठ२,
ड२, ढ२, त२, थ२, द२, ध२, न२, प२, फ२, ब२, भ२, म२,
य२, र२, ल२, स२, तथा केवल हकार युक्त।

इसे अमृतराय ने मात्रा-भेद कहा है, क्योंकि जिन व्यंजनों का प्रयोग छन्द के दो चरणों में हुआ है, उनमें क्रमशः सभी मात्राओं का प्रयोग भी हुआ है। यहाँ एक उदाहरण द्वारा इनकी वर्णन-शैली का निदर्शन किया जा रहा है—

करि काज धाए हरी किसना की विपत हरी,
कुर कूर तेहीं घरी भय भीत भारे है।
केसी कैटभ संघार्‌यो कोल ह्वै हिरन मारयो,
कौरवन गोत गार्‌यो कंस कःन मारे हैं।
खल हन्यो खांभ फारि खिन न लगाइ बारि,
खीझ खुनसाई खूद दानव पछारे हैं।
खेते खैंच खोज खौके खंडि डारे दसो सीस।
अम्रित के ईस जू सो खः अरि हारे हैं ।।७३।।

यहाँ इस कवित्त के प्रथम दो चरणों में ऐसी पदावली का प्रयोग हुआ है जिससे 'क' में सभी मात्राओं का प्रयोग व्यक्त हो गया है। जैसे—क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ और कं तथा कः। यही स्थिति 'ख' की भी है।

७. **प्रश्नोत्तर**—केशव ने अपनी 'कवि-प्रिया' के पन्द्रहवें प्रभाव में विशिष्ट अलंकारों का वर्णन किया है। वहीं उन्होंने प्रश्नोत्तर के भी अनेक भेदों का निरूपण किया है, जैसे एकानेकोत्तर, व्यस्त-समस्तोत्तर, व्यस्त-गतागतोत्तर, बहिर्लापिका, अन्तर्लापिका तथा गुप्तोत्तर आदि। अमृतराय ने 'चित्र-बिलास' में इनके लक्षणों का वर्णन नहीं किया है। इन्होंने अपनी इस रचना में इनके केवल उदाहरण मात्र प्रस्तुत किए हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत प्रश्नोत्तर निम्नलिखित हैं—

---

१. यहाँ 'क' का अर्थ क व्यंजन युक्त पदावली तथा २ का अर्थ प्रथम दो चरणों में बहुलता से प्रयुक्त। इसी प्रकार अन्य व्यंजनों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

(क) **अन्तर्लाप**—जहाँ प्रश्न के वर्णन वाले छन्द में ही उत्तर दिया हुआ हो, वहाँ अन्तर्लाप होता है। जैसे—

को सब जग में अमल जल, को सुंदर सब काम।
को सुबास-स्त्री कर कमल, को सब संजुत नाम ।।८८।।

यहाँ इसका उत्तर 'कमल' छन्द में ही वर्णित है।

(ख) **बहिर्लाप**—बहिर्लाप में प्रश्न का उत्तर पद्य के बहिर्भाग में होता है। अमृतराय ने तीन छप्पयों में उत्तर के आदि अक्षर, मध्य अक्षर तथा अन्त्य अक्षरों का संकेत देकर तीन बहिर्लापों का वर्णन किया है।[1]

(ग) **गुप्तोत्तर**—इसमे उत्तर गुप्त होता है और वह अर्थ के आधार पर अथवा पद्य में वर्णित किसी भी शब्द के आधार पर निकलता है। उदाहरण के लिए 'चित्र-बिलास' के छन्द-संख्या तिरानवें को देखा जा सकता है।

यद्यपि कविप्रियाकार ने इन सबका समावेश प्रश्नोत्तर में किया है, किन्तु अमृतराय ने इन अन्तर्लाप तथा बहिर्लापों के वर्णन के उपरान्त प्रश्नोत्तर वर्णन रखा है। ऐसा लगता है कि कवि ने इन वर्णनों को प्रहेलिका में समाविष्ट कर बाद में प्रश्नोत्तर का वर्णन दिया है। इसका लक्षण देते हुए उन्होंने कहा है—

जोई मुख कर पूछिये, सोई उत्तर होई।
प्रश्नोत्तर बरनत सबै, अम्रित कवि सिर लोइ ।।९४।।

उदाहरण— धरम राज बोलै कहा, काल करै को कर्म।
जनम दुखी को जगत में, प्रभु को जानै मर्म ।।९५।।

(घ) **एकानेक उत्तर**—जहाँ अनेक प्रश्नों का एक उत्तर हो और वह उत्तर छन्द के अन्त में समाविष्ट हो वहाँ एकानेक उत्तर होता है। उदाहरण के लिए छन्द-संख्या छियानवे देखा जा सकता है।

(ङ) **व्यस्त-समस्त उत्तर**—जहाँ छन्द-निहित उत्तर, बीच के कुछ वर्णों को छोड़कर, दो या दो से अधिक शब्दों के योग से बनता है, वहाँ व्यस्त-समस्त उत्तर होता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द देखा जा सकता है—

बंसी दुति मोहति कवन, को प्राक्रमि जल थल भवनि।
अम्रित प्रकास पूरण सदा, स्त्री भूषण गोपिय रवनि ।।९९।।

यहाँ 'गोपरवनि' उत्तर है, जिसमें से य को छोड़कर दो शब्दों का योग किया गया है।

---

१. चित्र-बिलास, छन्द-संख्या ९०-९२

(च) **सासनोत्तर**—सासनोत्तर में चार प्रकार के प्रश्नों का एक उत्तर होता है। अमृतराय ने इसके तीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।[1]

(छ) **व्यस्त गतागतोत्तर**—इसका लक्षण अमृतराय ने स्वयं प्रस्तुत किया है-

जुग-जुग वरन बखान करि, इक-इक अच्छर त्यागि।
उत्तर व्यस्त गतागतनि, पुनि समस्त इक लागि।।१०४।।

दो-दो अक्षरों को लेकर और एक-एक अक्षर को छोड़कर व्यस्त गतागत उत्तर बनता है और फिर एक-एक अक्षर लगाकर समस्त गतागतोत्तर भी बन जाता है। उदाहरण के लिए १०५ और १०६ संख्यक छप्पय देखे जा सकते हैं।

(ज) **व्यस्त गतागत भिन्न पदार्थोत्तर**—अमृतराय ने इसका लक्षण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है—

भिन्न-भिन्न बिब बरन को, सूधो उलटो अर्थ।
व्यस्त गतागत भिन्न ए, उत्तर बहुरि समर्थ।।१०७।।

यहाँ गतागत का अर्थ छन्द के प्रथम शब्द से अन्तिम शब्द की ओर और अन्तिम शब्द से प्रथम शब्द की ओर अग्रसर होना है। उपर्युक्त अर्थ को ग्रहण करने पर सम्पूर्ण छन्द के भिन्न-भिन्न दो अर्थ निकलते हैं। उदाहरण के लिए १०८ और १०९ संख्यक छन्द देखे जा सकते हैं।

(झ) **सरल गतागत-वर्णन**—इसमें अन्तिम अक्षर से एक-एक अक्षर क्रमशः रख देने पर सीधी और उल्टी रखी हुई छन्द की पंक्तियाँ एक समान बन जाती है। भिन्न गतागत में दो भिन्न प्रकार की पंक्तियाँ बनती हैं, अतः उनका अर्थ भी भिन्न-भिन्न होता है। किन्तु सरल गतागत में उल्टे-सीधे दोनों क्रम में समान पंक्तियाँ ही आती हैं, अतः अर्थ भी समान होता है। अमृतराय ने सरल गतागत के दो उदाहरण प्रस्तुत किए है।[2] उदाहरण के लिए उसकी एक पंक्ति देखी जा सकती है—

बैंस सबै नव लाहै बहै ससि है बहलावन बैंस सबै।।१११।।

इसका उल्टा पाठ भी अन्तिम अक्षर 'बै' से पूर्व की ओर पढ़ने पर यही बनेगा।

अमृतराय ने कूट-वर्णन भी किया है। कूट-वर्णन में मुख्य वर्ण्य-विषय को घुमा फिरा कर छलपूर्ण वर्णन किया जाता है। अतः उसके अर्थ का सहसा बोध नहीं होता। अमृतराय ने विविध शीर्षकों के अन्तर्गत इन कूट पदों का वर्णन किया है, अतःउनके वर्ण्य-विषय का संकेत इन शीर्षकों के माध्यम से ही हो जाता है। अमृतराय ने स्वामी कार्तिकेय वाहन, लाहौर कोट, बैलगाड़ी, रबाब, समुद्र, कमान, तरुवर, रवि, चन्द्र, कंज,

---

१. चित्र-बिलास, छन्द-संख्या १०१-१०३
२. वही, छन्द-संख्या ११०-१११

मिश्रित (कई वस्तुओं का एक साथ) तथा संध्या का वर्णन प्रस्तुत किया है। ये वर्णन सूर्य, चन्द्र तथा संध्या आदि के होने के कारण प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं। यहाँ हम तरुवर-वर्णन का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें सांगरूपक का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया गया है—

ग्यान बीज अंकुर सुधरम हिय प्रेम मूल भनि ।
नेमि भूमिका चीर पत्र गुन सत्त सत्त गनि।
दया छांहि दुख नाहिं सुमति साखा सुरसानी ।
हरि अभिलाषा फूल सरस समता रस पानी ।
अति सुद्ध करम बहु फल। फलल, सुख सरूप अम्रित अमर।
खग बसत बिचार बिचार मन, साधु साधु भजि कल्पतर ॥१२१॥

अमृतराय ने सध्या का वर्णन अत्यन्त मनोयोग से किया है और उत्प्रेक्षा एवं रूपक आदि अलंकारों से उसे सुसज्जित कर अपने वर्णन को मनोरम बना दिया है। उदाहरण के लिए एक छप्पय देखा जा सकता है—

रजनी मुख दिन नाथ बारणी दिसा तुंग किय।
कुंकुम मंडित बदन अंक चंपक सुबास दिय ।
इदीबर द्रिग दीह मधुप अंजन रंजन करि।
अस्ताचल दै पान उडुप जुवराज पथ्य धरि।
दरसनि कोक न कुमुद मुख, कोक कंत बिसमुख रई।
अम्रित बिचार सुधार विधि, प्राननि कहु अरु गल दई॥१२४॥

(८) **संख्या वर्णन**—ज्योतिष की गणना-पद्धति के अनुसार अमृतराय ने एक से लेकर बारह तक की संख्याओं के लिए प्रयुक्त होने वाले पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए १३०-१३१ संख्यक छप्पय देखे जा सकते हैं। इसके बाद एक, दस, शत, सहस आदि दसोत्तर संख्याओं की गणना की गई है। कवि ने जलधि, पूर्वार्द्ध, परार्द्ध तथा बिसवा (बीस) का भी उल्लेख किया है।

(९) **अवतार-वर्णन**—अन्त में अमृतराय ने मीन, कूरम, बराह (नरसिंह), वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, सिद्ध, निष्कलक, पृथु, व्यास, शेष, हयग्रीव, ऋषभ, हर, मन्वन्तर, ध्रुव, दत्तात्रेय, धनवन्तरि, कपिल, सनकादिक तथा बद्रीनाथ आदि चौबीस अवतारों का वर्णन किया है।

अमृतराय का यह 'चित्र-बिलास' रीतिकाल में प्रचलित लक्षण-उदाहरण युक्त लक्षण-ग्रन्थ का स्वरूप प्रस्तुत करता है, किन्तु आरम्भ में दिए हुए एकाक्षर-कोश तथा अन्त में दिए हुए संख्या एवं अवतार-वर्णन आदि से यह केवल चित्र-काव्य की सीमा तक

आबद्ध न रह कर, कोश और लक्षण-ग्रन्थ का रूप बन जाता है । टहकन का 'रतन दाम' जिस प्रकार मिश्रित रचना का स्वरूप प्रस्तुत करता है, ठीक वैसा ही 'चित्र-बिलास' भी है ।

अमृतराय ने, जहाँ उनकी इच्छा हुई है, वहीं लक्षणों का निर्देश कर दिया है । अतः अन्तर्लाप, बहिर्लाप आदि कुछ प्रश्नोत्तरों के लक्षण इस हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध नहीं हैं । लक्षण न होते हुए भी इनके उदाहरण विद्यमान हैं । लिपि-दोष के कारण व्यस्त-समस्त गतागतों के उदाहरण भी कई स्थलों पर अशुद्ध प्रतीत होते हैं । सामान्य संशोधन करके ही सरल गतागत का शुद्ध उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किया गया है ।

अमृतराय ने उदाहरण स्वनिर्मित दिए हैं और इनके कई उदाहरण उत्तम कवित्व-गुण से संवलित हैं । अतः वे केवल चित्र-काव्य का रूप ही नहीं प्रस्तुत करते, जो सर्वथा अवर-काव्य माना गया है, अपितु भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी सरस बन पड़े हैं। अलंकारों के सन्निवेश से इसमें वर्ण और शब्द चमत्कारों की अपेक्षा वाच्यार्थ चमत्कार अधिक व्यक्त हुआ है । चित्र-काव्य भी काव्य है, भले ही उसे तृतीय स्थान प्राप्त हो । यदि उसमें काव्यत्व न होता तो उसे काव्य में स्थान ही न दिया गया होता ।

कूट, प्रहेलिका, प्रश्नोत्तर आदि के रूप में चित्र-काव्य के लिखने की परम्परा रीतिकाल में अधिक प्रचलित रही है और रीतिकाल के प्रथम आचार्य केशव ने 'कविप्रिया' में उनके लक्षण और उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं । अमृतराय की यह रचना भी उन्हीं चित्र-काव्यों का उदाहरण प्रस्तुत करती है, जिनका वर्णन केशव पहले ही कर चुके हैं । अमृतराय ने प्रश्नोत्तर के भेदों के जो शीर्षक अथवा नाम लिखे हैं वे शुद्ध एवं परम्परागत हैं । लिपिकारों ने शीर्षक लगाते समय इन नामों को विकृत कर दिया है । यह पंजाबी उच्चारण का भी प्रभाव हो सकता है ।

अमृतराय के 'चित्र-बिलास' काव्य में वर्णों, अक्षरों और पदों का चमत्कार तो सर्वत्र ही दिखाई पड़ता है, किन्तु अलंकृत प्रकृति-चित्रण उनकी काव्य-प्रतिभा को विशेष रूप से उद्घाटित करता है ।[1]

---

१. इस रचना के विस्तृत अध्ययन के लिए, लेखक का 'चित्र-बिलास' नामक ग्रन्थ देखें ।

नवम अध्याय

गुरु गोविन्द सिंह के हिन्दी दरबारी कवियों की देन

दशम गुरु गोविन्द सिंह का सम्पूर्ण जीवन-काल (सं० १७२३ से १७६५) हिन्दी-साहित्य के इतिहास में परिगणित रीतिकाल के अन्तर्गत आता है । गुरु गोविन्द सिंह ने नौ वर्ष के अल्पवयस्क होते हुए भी उस महान् उत्तरदायित्व को अपने कन्धों पर संभाला, जिसकी परम्परा का प्रारम्भ गुरु नानक देव ने किया था । निर्गुण भक्ति की जो धारा 'आदि-नानक' ने प्रवाहित की थी, वह विभिन्न तथा विपरीत ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं बाधाओं को पार कर गुरु गोविन्द सिंह के समय सर्वथा एक भिन्न वेग से आगे की ओर बढ़ी । निश्चय ही आदि गुरु के दर्शन में एक ब्रह्म की उपासना तो निहित थी ही, साथ ही जाति-पाँति, छुआछूत और भेद-भाव से परे मानव मात्र को साधक-रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा भी की गई । मानवता की इसी प्रबलतम भावना के कारण आदि गुरु का जहाँ एक ओर कट्टर पंथियों द्वारा विरोध हुआ, वहाँ दूसरी ओर इनके अतिरिक्त सम्पूर्ण हिन्दू-मुस्लिम जनता द्वारा उनका स्वागत भी हुआ । वे सन्त थे, फकीर थे और मानव-हित के सर्वश्रेष्ठ साधक भी थे ।

राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलती रहीं और दिल्ली के सिंहासन पर कभी उदार और कभी कट्टर मुसलमान आसीन होते रहे । अतः गुरु-परम्परा के प्रति उदार शासकों का सहयोग रहा तो कट्टर शासकों का विरोध । विरोधी परिस्थितियों के कारण ही गुरु अर्जुनदेव और गुरु तेगबहादुर को आत्मोत्सर्ग करना पड़ा । विरोध की चरम परिणति नवम गुरु के बलिदान में ही हुई । फलतः दशम गुरु ने अपनी निर्गुण भक्ति को सबल भक्ति में परिणत कर दिया । एक ओर शक्ति की उपासना चलती थी और दूसरी ओर शिव की । शक्ति और शिव के प्रतीक उनकी असि और निर्गुण ब्रह्म ही थे ।

किसी जाति, देश या राष्ट्र का उत्थान परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न होकर नहीं हो सकता । इस तथ्य को दशम गुरु ने पहचाना और उन्होंने अपनी परम्परागत थाती को जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर, लोगों में आत्म-गौरव उत्पन्न करने का प्रयत्न भी किया । साहित्य ही सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति का प्रमुख स्रोत बन सकता था । दशम गुरु ने इसीलिए एक ऐसे महान् साहित्यिक-यज्ञ का समारम्भ किया जिसके माध्यम से प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की यश-सुरभि जन-जन के मानस में उल्लास और गौरव की भावना भर सके । इस यज्ञ के पुरोहित वे स्वयं बने और १६ वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपनी प्रथम रचना प्रस्तुत की ।

पांवटा-आनन्दपुर में ही उनकी निजी साहित्य-सर्जना प्रारम्भ हुई। उस समय दशम गुरु के दरबार का सम्पूर्ण वातावरण निर्गुण भक्ति, सशस्त्र राजनीति और साहित्य के त्रिविध 'समन्वित रूपों' से ओत-प्रोत था। एक ही साधक प्रातःकाल आसन पर बैठकर गुरु-परम्परा से चले आते हुए भक्ति के भजन गाया करता था, वही मध्याह्न में युद्ध-क्षेत्र के भयंकर स्थलों में रुद्र की तरह घूमा करता था, और वही सायंकाल विश्रांति के समय साहित्य और संस्कृति की चर्चा द्वारा काव्यशास्त्र-विनोद से उत्तम पुरुषों की भाँति समय व्यतीत करता था। साधना का यह त्रिविध रूप दशम गुरु केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होने खालसा की स्थापना की, अपने समीपवर्ती व्यक्तियों की काव्य-प्रतिभा को काव्य-सृजन के लिए प्रेरित किया और बाहर से आने वाले प्रत्येक विद्वान् और कवि को सम्मान सहित आश्रय दिया तथा उसके लिए वृत्ति निर्धारित की। सैनिक युद्ध-यज्ञ में भाग लेते थे और कवि साहित्यिक-यज्ञ में। दोनो दशम गुरु के व्यक्तित्व और साधना के अभिन्न अग थे।

दशम गुरु के साहित्यिक जीवन की कालावधि मुख्यतः सं० १७४० से सं० १७५५ तक है। इन १५-१६ वर्षों की अवधि में एक ओर जहाँ प्राचीन एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के भाषा-रूपांतर का क्रम चला, वहाँ दूसरी ओर मौलिक, मुक्तक एवं प्रबंध रचनाओं का भी सृजन हुआ। दर्शन और ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ भी लिखे गए और उनके साहित्य-भण्डार में विशाल सख्या मे रचनाएँ एकत्र हो गईं। विद्या या ज्ञान को धारण करने वाले इस ग्रन्थ-समूह को 'विद्याधर' नाम से अभिहित किया गया। तोल में वह नौ मन से कुछ अधिक था, परन्तु युद्ध की लपटों में उसका अधिकांश भाग स्वाहा हो गया, जो कुछ शेष रहा उसे काफी समय के बाद संभालने और एकत्रित करने का प्रयास हुआ। जो खो गया या नष्ट हो गया उसकी स्मृतिमात्र ही शेष रह गई। भाई संतोख सिंह जैसे व्यक्तियों ने वृद्ध-जनो की स्मृति से प्राप्त काव्य-सामग्री तथा इधर-उधर बिखरे पन्नों को एकत्र करने का महान् कार्य सम्पन्न किया।

ग्रन्थों के संरक्षण की दिशा मे किए गए अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप लगभग सौ वर्ष के पश्चात् जो सामग्री प्रकाश में आई, वह न तो पूर्ण थी और न वास्तविक अर्थों में उन काव्यसाधकों की सम्पूर्ण रचनाओं का परिचय ही प्रस्तुत कर सकती थी, जिनकी कृतियों ने विशाल 'विद्याधर' नामक ग्रंथ का रूप ग्रहण किया था। ५२ कवियों की अनुश्रुति मात्र शेष रह गई, कुछ के नाम ही मिलते हैं, कुछ की एकाध मुक्तक रचनाएँ, किसी की रचना मिलती है तो उसका परिचय नहीं और परिचय मिलता है तो रचनाएँ नहीं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में केवल उन्हीं कवियों को अध्ययन का विषय बनाया गया है जो अपनी रचनाओं के कारण आज भी जीवित हैं, उन कवियों को नहीं जो रचनाओं के नष्ट हो जाने के कारण नामशेष रह गए हैं।

दशम गुरु के हिन्दो दरबारी कवि

गुरु गोविन्द सिंह के दरबार में जो कवि आए या पहले से विद्यमान उनके दरबार के व्यक्तियों में जो कवि-प्रतिभा से सम्पन्न थे, इन दोनों ही प्रकार के कवियों की रचनाएँ,

सीमित आकार में ही सही, आज भी उपलब्ध हैं। इन कवियों में कुछ तो दशम गुरु की सेवा में निरन्तर रहने वाले व्यक्ति थे और उनकी त्रिविधात्मक जीवन-साधना के अनुवर्ती थे। वे भक्त भी थे, सेवक और सैनिक भी तथा कवि भी। उदाहरण के लिए धन्ना सिंह जैसे मुक्तककार और सेनापति जैसे प्रबन्धकार के नाम लिए जा सकते हैं। केवल आश्रय और वृत्ति के लिए गुरु-दरबार में पहुँचने वाले कवियों का सबल भक्ति के वातावरण से बहुत-कुछ मुक्त होना स्वाभाविक था। दशम गुरु उच्चकोटि के जन-नायक भी थे, अतः ऐसे कवियों और विद्वानों को आश्रय देकर उन्होंने उन्हें साधना के एक ही पक्ष में योगदान के लिए नियुक्त कर दिया। जिन्हें केवल साहित्यिक-यज्ञ के लिए नियुक्त किया गया था, उनमें कुवरेश और काशीराम को गिना जा सकता है। कुवरेश को 'द्रोण पर्व' के भाषा-रूपांतर का काम सौंपा गया जबकि काशीराम को 'हनुमन्नाटक' के 'परशुराम-संवाद' के नष्ट अंश की पूर्ति का। कुछ ऐसे सन्त एवं विरक्त कवि भी दरबार में आए जो सम्भवतः सत्संग लाभ के थोड़े ही दिनों बाद चले गए। ऐसे कवियों में सुखदेव का नाम लिया जा सकता है।

रचनाओं के रूप में देन

दशम गुरु का दरबार केवल हिन्दी कवियों से ही सम्पन्न नहीं था। फारसी तथा पंजाबी के नन्दलाल भी गुरु के ही दरबारी कवि थे। स्वयं दशम गुरु फारसी के उच्चकोटि के कवि एवं विद्वान् थे। हिन्दी-कवियों की रचनाओं के भी दो वर्ग स्वाभाविक रूप से बन जाते हैं। एक वर्ग में वे रचनाएँ आती है जो गुरु-दरबार में रहकर प्रस्तुत की गयीं और दूसरे वर्ग में वे रचनाएँ आती हैं जो इन्हीं दरबारी कवियों ने दरबार में आने से पहले या दरबार से जाने के बाद लिखीं। उदाहरण के लिए प्रथम वर्ग में—'जंगनामा', 'गुरुशोभा', 'साखी हीराघाट की' जैसी रचनाएँ हैं और द्वितीय वर्ग में 'श्याम-सनेही', 'आलमकेलि' तथा 'कथा हीर राँझन की' आदि।

दशम गुरु की हिन्दी रचनाएँ तो हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं ही; दरबारी हिन्दी कवियों की निम्नलिखित रचनाओं ने भी हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग दिया है—

(क) **प्रबन्ध-काव्य**—'जंगनामा', 'गुरु शोभा', 'श्याम-सनेही,' 'सुदामाचरित', 'कथा हीर राँझन की', माधवानल कामकन्दला', 'कनक मंजरी' तथा 'साखी हीरा-घाट की'।

(ख) **भाषा-रूपांतरित रचनाएँ**—'सभा पर्व', 'कर्ण पर्व', 'द्रोण पर्व', 'शल्य पर्व' तथा 'अश्वमेध पर्व'।

(ग) **नीतिपरक रचनाएँ**—'चाणक्यनीति भाषा' और 'हितोपदेश भाषा'।

(घ) **अध्यात्मपरक रचनाएँ**—'अध्यात्म प्रकाश', 'ज्ञान प्रकाश', 'गुरु महिमा' तथा 'अनुभव उल्लास'।

(ङ) कोश-काव्य एवं लक्षण-ग्रन्थ के मिश्रित रूप प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ हैं—'चित्र-बिलास' और 'रतन दाम'।

(च) ज्ञानात्मक साहित्य की कुछ कृतियाँ भी उपलब्ध होती हैं, जिनका महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से भले ही न हो, ज्ञानात्मक साहित्य के सृजन की दृष्टि से तो है ही। ऐसी रचनाओं में 'सामुद्रिक शास्त्र' (ज्योतिष), 'सुख सैन ग्रन्थ' (वैद्यक) तथा 'ग्रन्थ-संजीवन' (वैद्यक) आदि हैं।

(छ) मुक्तक रचनाएँ कई कवियों की उपलब्ध होती हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सुन्दर कवि (३ कवित्त), (२) शारदा (२ कवित्त), (३) सुदामा (१ कवित्त), (४) सैणा (१ दोहा, १ कवित्त, १ चौपाई), (५) आसा सिंह (४ दोहे, ३ चौपाई, १ चौपई), (६) धन्ना सिंह (२ सवैये), (७) ननुआ (२ पद), (८) चन्दन (१ सवैया), (९) चन्द (१ कवित्त, १ छप्पय), (१०) हंस राम (५ कवित्त, १ छप्पय), (१०) मंगल (५ कवित्त), (११) काशी राम (१६ कवित्त, परशुराम-संवाद के त्रुटित अंश की पूर्ति और ९ अन्य मुक्तक; कुल २५ कवित्त), (१२) हीर (२३ कवित्त), (१३) सुकवि (१ कवित्त), (१४) भूपति (१ कवित्त), (१५) अन्य मुक्तक पद (१०), (१६) आलम (लगभग ५०० कवित्त)।

उक्त सूची से स्पष्ट है कि दशम गुरु के हिन्दी दरबारी कवियों ने प्रबन्धात्मक रचनाएँ भी दीं; जिनमें 'जंगनामा' जैसी रचना भी है, जो हिन्दी-साहित्य के लिए सर्वथा एक नूतन काव्य-विधा मानी जा सकती है। 'सुदामा चरित' तो पूर्णतः रेखता की रचना हैं। ये प्रबन्धात्मक रचनाएँ ऐतिहासिक, प्रेमपरक और काल्पनिक तीनों ही प्रकार की हैं।

मुक्तक कवित्तों की संख्या भी लगभग ६०० है। 'आलमकेलि' के अतिरिक्त भी उक्त १६ कवियों द्वारा प्रस्तुत ९८ मुक्तक कवित्त आज भी उपलब्द हैं। इस अनुमान के लिए पुष्ट आधार विद्यमान है कि इस तरह की मुक्तक रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हुई होंगी, जो आज उपलब्ध नहीं हैं।

भाषा-रूपांतरित रचनाओं में 'महाभारत' के कम से कम दस पर्वों का भाषा रूपांतर गुरु-दरबार में हुआ, होगा, जिनमें से चार अपने मूल रूप में उपलब्ध हैं। द्रोणपर्व के खंडित अंशों की पूर्ति निहाल कवि के द्वारा की गई। कुल मिलाकर ये पाँच पर्व उस शैली और भाषा-रूपांतर की प्रक्रिया की जानकारी के लिए बहुमूल्य सिद्ध होते हैं, जिनकी परम्परा महाभारत के अनेक प्रकार के रूपांतरों द्वारा रीतिकाल में दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि कवियों को दशम गुरु द्वारा निर्दिष्ट भाषा-रूपांतर के कार्य के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से किसी भी प्रकार के काव्य-सृजन की पूरी छूट थी। यही कारण है कि मुक्तक रचनाओं में भक्ति, शृंगार और वीर की त्रिवेणी प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है। इसके अन्यतम उदाहरण काशीराम हैं, जिन्होंने दरबार से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होते हुए भी कई शृंगारपरक मुक्तक प्रस्तुत किए

हैं। रीतिकालीन प्रभाव की अभिव्यक्ति 'चित्र-विलास' और 'रतन दाम' के द्वारा भी होती है। 'चित्र-विलास' में तो कवि ने लक्षण देकर स्व-निर्मित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, किन्तु 'रतन दाम' में श्रीकृष्ण का अत्यन्त आकर्षक एवं मनोरम नखशिख-वर्णन किया गया है, जो भाषा और छन्द-प्रयोग के सौष्ठव की दृष्टि से एक बहुमूल्य देन है।

दार्शनिक और ज्ञानपरक साहित्य के सृजन से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत-साहित्य की प्रत्येक प्रकार की बहुमूल्य निधियों को जनभाषा में सुलभ बनाने का एक महान् प्रयत्न किया जा रहा था। नीतिपरक साहित्य को रूपांतरित करने के मूल में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य-सृजन की प्रेरणा प्रदान करने की चेष्टा दिखाई पड़ती है।

उक्त रचनाओं का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

दशम गुरु का व्यक्तित्व महान् था। उन्होने हिन्दू-धर्म और संस्कृति के महान् आदर्शों की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करने का अथक प्रयत्न किया। वे 'गीता' के निस्पृह कर्मयोग के महान् पोषक थे। पिता गुरु तेगबहादुर तथा अत्यन्त प्रिय पुत्रों को धर्म के नाम पर वलिदान कर देने वाले व्यक्तित्व इतिहास में शायद ही मिलें। तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल जिस एक ग्रन्थ के माध्यम से हिन्दू जाति के सांस्कृतिक गौरव की पुनः प्रतिष्ठा हो सकती थी, उस 'महाभारत' को ही उन्होंने सर्वाधिक महत्त्व दिया। उनके हिन्दी कवियों द्वारा इस सांस्कृतिक पुनरोत्थान की नींव डालने का कार्य सम्पन्न किया गया। दर्शन और राजनीति इस सांस्कृतिक मूर्ति की दो भुजाएँ थीं। सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दी कवियों ने इस मूर्ति के निर्माण का कार्य सम्पन्न किया था।

भारतीय इतिहास में गुरु गोविन्द सिंह का स्थान एक क्रान्तिकारी गुरु, सांस्कृतिक नेता, जननायक तथा एक राज्य के प्रतिष्ठापक के रूप में अक्षुण्ण है। ऐसे ऐतिहासिक पुरुष के जीवन की यथार्थ घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय इन हिन्दी कवियों को ही है, जिन्होंने 'जंगनामा' और गुरु शोभा' में तत्कालीन युद्ध और राजनीति से सम्बद्ध एक ऐतिहासिक पुरुष के यथार्थ जीवन को सुरक्षित रखने का कार्य सम्पन्न किया है। इन काव्यों में न तो ऐतिहासिकता का अभाव है और न आश्रयदाता की वैसी अतिशयोक्तिपूर्ण चाटुकारिता ही मिलती है, जैसी रीतिकालीन अन्य ऐतिहासिक रचनाओं में दिखाई पड़ती है। इन कवियों का यथार्थ चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म है। यथार्थ चित्रण के अन्तर्गत खालसा सैनिकों द्वारा शत्रु-पक्ष के गांवों को लूट लेने तथा सैनिक-आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से किये गए छोटे-मोटे संघर्षों तक को भी समाविष्ट कर लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। यह किसी ऐतिहासिक काव्य की बहुमूल्य निधि है।

इतिहास और संस्कृति के अतिरिक्त इन हिन्दी कवियों ने लोकमानस का भी ध्यान रखा है। 'माधवानल कामकन्दला' और 'कथा हीर रांझन की' ऐसी कृतियाँ हैं

जिनकी प्रेम-कथाओं ने तत्कालीन लोकमानस को पर्याप्त प्रभावित किया था। इनका सृजन जनमानस की रुचि को ध्यान में रख कर ही किया गया है।

दशम गुरु का एक उद्देश्य जन-मानस का संस्कार करना भी था। धर्म, राजनीति और कला को वे इस संस्कार की अचूक औषधि मानते थे। अध्यात्मपरक, नीतिपरक, प्रेम-कथापरक और ऐतिहासिक कृतियों द्वारा इन दरबारी हिन्दी कवियों ने जन-मानस के सस्कार का प्रचुर प्रयत्न किया। इन दरबारी कवियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही दिखाई पड़ते हैं। दोनों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिए कार्य किया। यह उदार भावना और व्यापक दृष्टिकोण गुरु-दरवार की प्रमुख विशेषता थी और इन कवियों पर इसका स्वाभाविक प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि अत्याचार की निन्दा तो इस दरवारी साहित्य मे मिलती है, परन्तु किसी जाति, धर्म या समाज की निन्दा उपलब्ध नही होती। खालसा का जो सामाजिक विरोध हुआ था, वह रूढ़ि-पंथियों के द्वारा किया गया विरोध था और अन्ततः जो समझौता हुआ, वह समन्वयवादी दृष्टि का ही परिणाम था। उत्तम रचनाओं के संकलन और उत्कृष्ट कोटि की अनेक खण्डित कृतियों के लुप्त अंश की पूर्ति का जो प्रयत्न दशम गुरु ने किया उससे उनके उदार दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इसका प्रभाव भी कवियों पर पड़ा और उन्होंने उत्तम रचनाओं के सृजन और सम्मान की ओर ध्यान दिया। यह ठीक है कि दशम गुरु सम्बन्धी प्रशस्तिपरक रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं, उन्हे अवतार रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न भी दिखाई पड़ता है, परन्तु निर्गुण, सगुण दोनों ही प्रकार की भक्ति-पद्धति में गुरु को जो महत्त्व एवं स्थान प्राप्त है वह 'गोविन्द' से भी बड़ा है। गुरु गोविन्द तो 'गुरु' और 'गोविन्द' दोनो ही थे। अतः ग्रन्थारम्भ मे की गई प्रशस्ति अथवा मुक्तकों के रूप में उपलब्ध इनकी प्रशस्तिपरक रचनाएँ न तो अतिशयोक्तिपूर्ण लगती हैं और न किसी राजा या सामन्त की प्रशस्ति। उनके मूल में आदर और श्रद्धा-समन्वित भक्ति और अनुसरण की सहज, स्वाभाविक संवेदना ही प्रतीत होती है।

वीर गाथा काल और रीतिकाल के संयोजन का प्रयत्न

रीतिकाल में 'हमीर रासो' जैसी कुछ रचनाएँ अवश्य उपलब्ध हो जाती हैं, जो वीरगाथा काल की साहित्यिक परम्परा को अभिव्यक्ति देती हैं। दूसरी ओर भूषण के कवित्त और सवैये, लाल के 'छत्र प्रकाश' के चौपाई और दोहे तथा सूदन के 'सुजान चरित' की वर्णन-शैली आदि रीतिकालीन वातावरण से बाहर नहीं निकल पातीं। गुरु-दरवार में रचित और उस दरबार से प्रभावित हिन्दी की जो रचनाएँ दिखाई पड़ती हैं उनमें दोहा, छप्पय तथा वर्ण-वृत्तों के प्रयोग की बहुलता के कारण एक ओर तो वीरगाथा कालीन शैली के दर्शन होते हैं, और दूसरी ओर कवित्त, सवैया, कुंडलिया आदि के प्रयोग द्वारा रीतिकालीन शैली के। एक ही कृति में इन दोनों प्रकार की शैलियों का संयोजन दशम गुरु के दरबारी-हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। इसकी वीरतापरक रचनाओं में 'चन्द' और 'भूषण' दोनों के एक साथ दर्शन होते हैं। 'गुरु शोभा' के अन्तिम भक्तिपरक

अंशों में भक्तिकाल की भक्ति-भावना अभिव्यंजित होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल में गुरु-दरबार के ये हिन्दी-कवि ही ऐसे रहे हैं, जिन्होंने वीरगाथा काल और भक्तिकाल की परम्पराओं को निभाते हुए भी रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों और शैली का समान रूप से निर्वाह किया है। यह उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण की एक महत्त्वपूर्ण देन है। वीर रस की रचनाओं के साथ प्रेमपरक और शृंगारपरक रचनाएँ तथा एक ही रचना में इन तीनों की प्रवृत्तियों का समन्वय गुरु-दरबार के साहित्य की विशेषता रही है।

भाषा और शैली सम्बन्धी देन

आदि गुरु के समय से ही ब्रजभाषा, गुरुओं और उनके दरबारों की भक्ति और उपासना की भाषा रही है। 'आदि ग्रन्थ' की रचनाएँ हिन्दी में ही हैं, यद्यपि पंजाबी-प्रभाव की उनमें कमी नहीं है। 'दशम ग्रन्थ' में पंजाबी-प्रभावित ब्रजभाषा का वह रूप उपलब्ध नहीं होता, जो 'आदि ग्रन्थ' में प्राप्त है। यद्यपि दशम गुरु ने पंजाबी भाषा में 'चण्डी दी वार' की रचना करके पंजाबी भाषा के प्रति भी अपने अनुराग का परिचय दिया है, तथापि 'दशम ग्रन्थ' में समाविष्ट हिन्दी-रचनाओं की भाषा अनाविल ब्रजभाषा ही है, जिसमें पंजाबी का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जब पंजाबी में रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं तो वे पृथक् रूप में ही प्रस्तुत की गयी हैं, किन्तु जब ब्रजभाषा की रचनाएँ प्रस्तुत की गईं तो प्रयत्न यही किया गया है कि उनमें पंजाबी की शब्दावली का प्रयोग न हो। यदि बीच-बीच में कतिपय पंजाबी-शब्द आ भी गए हैं तो वे केवल इसीलिए कि उन्हें आम ब्रजभाषा की शब्दावली के साथ इस क्षेत्र के ब्रजकवि सहज भाव से प्रयुक्त करते आ रहे थे। गुरु-दरबार की साहित्यिक कृतियाँ इस स्थानीय प्रभाव से मुक्त नही हैं। पंजाबी के कुछ अत्यधिक प्रचलित शब्द उनमें मिल जाते हैं। ब्रजभाषा पर अगाध आधिपत्य रखने वाले आलम भी 'कुड़माई' से नहीं बच सके हैं, यद्यपि 'श्याम-सनेही' पूर्णतः पौराणिक रचना है।

'कथा हीर राँझन की' में जनसाधारण में प्रचलित अरबी, फारसी की शब्दावली भी ब्रजभाषा का अंग बनकर आई है, ठीक वैसे ही जैसे पंजाबी की पदावली। जब ब्रज-क्षेत्र से बाहर के कवि ब्रजभाषा में काव्य-रचना प्रस्तुत करते थे तो उनकी ब्रजभाषा में स्थानीय बोलियों के शब्द समाविष्ट हो ही जाते थे। यदि वे किसी दरवार से सम्बद्ध होते थे तो प्रशासन की भाषा के कारण फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहजभाव से कर लेते थे। इसे ध्यान में रखते हुए गुरु-दरबार में प्रयुक्त ब्रजभाषा भी अब्रजभाषी क्षेत्र की सामान्य ब्रजभाषा ही है।

इन कवियों की ब्रजभाषा में अनेक स्थानों पर 'इ' और 'उ' की मात्रा का अनावश्यक रूप में प्रयोग सुलभ है। गुरुमुखी लिपि में लिखे जाने के कारण तथा पंजाबी भाषी लोगों द्वारा संयुक्त वर्णों के उच्चारण में पंजाबी-उच्चारण का प्रभाव पड़ने के कारण कुछ शब्द विकृत रूप ग्रहण करते दिखाई पड़ते हैं। 'क्यों' और 'ज्यों' को 'किउं' और 'जिउं'

लिखना एक सामान्य बात है और इनका इस प्रकार के संयुक्त व्यंजनों के प्रयोग को पूर्ण बनाकर लिखने के कारण कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि पजाबी का प्रभाव अधिक है, यद्यपि यह लिपिपरक दोष है, भाषापरक दोष नही।

इन दरबारी हिन्दी कवियों की भाषा सम्बन्धी देन का मूल्यांकन करते समय एक तथ्य विशेष रूप से उभर कर सामने आता है, और वह है—अनलंकृत सरल भाषा का प्रयोग।' कथा हीर राँझन की' के नखशिख-वर्णन को छोड़कर कहीं भी भाषा को जानबूझ कर अलंकृत बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया। सरल पदावली में वर्ण्य-विषय की स्पष्टता को ही मुख्य लक्ष्य रखा गया है। भाषा-रूपातरित रचताओ की ब्रजभाषा सर्वाधिक सरल है और उसमें स्वाभाविक रूप से आ गए सादृश्यमूलक उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि को छोड़कर अन्य अलंकार विरल हैं। मुक्तक रचनाओं में भाषा अलकारपरक हो गई है, विशेषत: उन मुक्तक रचनाओं में, जो रीतिकाल से अधिक प्रभावित है, शृंगारपरक हैं या नायिका-भेद प्रस्तुत करती है। अनुप्रासमयी ब्रजभाषा की छटा 'चित्र-विलास' और 'रतन दाम' के कृष्ण के नखशिख-वर्णन में दिखाई पड़ती है।

समग्र रूप में इन हिन्दी-कवियों की भाषा को जनब्रजभाषा का नाम दिया जा सकता है; जो प्रचलित अरबी, फारसी और पंजाबी शब्दों का न तो बहिष्कार करती है, न चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से आविल होकर अलंकारों का बोझ वहन करती है। वह सीधे-सादे ढंग से अपने सरल रूप में वर्ण्य-विषय को सामान्य पाठकों तक पहुँचा सकने में सर्वाधिक समर्थ है। उसमें सहज ग्राह्य ब्रजभाषा का जनतान्त्रिक रूप सुरक्षित है।

दशम गुरु के दरबारी हिन्दी कवियों ने छन्द-प्रयोग की दृष्टि से पूर्व प्रचलित और तत्कालीन सभी प्रकार की काव्य-शैलियों को अपनाया है। इन शैलियों के दर्शन प्रबन्धात्मक और मुक्तक—दोनों ही प्रकार की रचनाओं में होते हैं। मुख्यत: निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग हुआ है—

(क) **दोहा-चौपाई शैली**— इसे 'कड़वक शैली' भी कह सकते हैं। इसमें घत्ता के रूप में सोरठा छन्द का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। यहाँ चौपाइयों की अर्धालियों की संख्या निश्चित् नहीं है, अत: यह सूफियों या राम-भक्त कवियों की अपेक्षा अपभ्रंश की कड़वक शैली के अधिक समीप है।

(ख) **कवित्त और सवैया शैली**—मुक्तक रचनाएँ तो इसी शैली मे प्रस्तुत की गई हैं, जबकि इन दोनों छन्दों का प्रयोग बीच-बीच में प्रबन्ध-काव्यों में भी हुआ है। यद्यपि इस शैली का प्रचुर प्रयोग अकबर के दरबारी कवियों से ही प्रारम्भ हो चुका था, तथापि रीतिकाल में इसका सर्वाधिक उपयोग किया गया।

(ग) **छप्पय एवं वर्ण-वृत्तों की शैली**—इन शैलियों का प्रयोग चन्द के 'पृथ्वीराज-रासो' में हुआ है। दशम गुरु के दरबारी कवियों में से कुछ प्रबन्धकारों ने इस शैली का उपयोग किया है। 'जंगनामा' और 'गुरुशोभा' में इस शैली के प्रचुर उदाहरण विद्यमान हैं।

'चित्र-विलास' एवं भाषा-रूपांतरित रचनाओं के आरम्भ या अन्त में तथा कुछ मुक्तकों में भी छप्पय छन्द मिलते हैं। प्रसंग-निरपेक्ष होने से ये मुक्तक छन्द छप्पय हैं, और छप्पयों का मुक्तक रूप में प्रयोग इन दरबारी कवियों की विशिष्ट प्रवृत्ति का सूचक है।

(घ) **दोहा-शैली**--दोहा-चौपाई शैली में दोहों का उपयोग घत्ता के रूप में हुआ है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से दोहा-शैली के दर्शन भाषा-रूपांतरित रचनाओं में से 'हितोपदेश' एवं 'चाणक्य नीति' में होते हैं।

(ङ) **पंजाबी-छन्द शैली**--'जंगनामा' और 'गुरु शोभा' में पौड़ी छन्द का भी उपयोग हुआ है, जो पंजाबी साहित्य की अपनी विशिष्ट देन है। उक्त दोनों रचनाओं के रचयिताओं—अणीराय तथा सेनापति ने ब्रजभाषा के माध्यम से हिन्दी साहित्य को पंजाबी-छन्द-शैली से समृद्ध करने का प्रयत्न किया है। पौड़ी छन्द के कई रूप उपलब्ध होते हैं, जिनके चरणों में मात्रागत वैविध्य दृष्टिगोचर होता है।

(च) **समस्या-पूर्ति शैली**—'गुरु शोभा' में कुछ ऐसे अडिल छन्दों का भी प्रयोग हुआ है जिनमें प्रत्येक छन्द मे चार चरण की अपेक्षा पाँच चरणों का समावेश हुआ है और पाँचवां चरण लगभग समान और विशिष्ट समान भाव का बोधक है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये पाँचवें चरण समस्या के अंश हैं और अडिल छन्दो के द्वारा इस समस्या की पूर्ति की गई है। सामान्यत: समस्या-अंश भी छन्द का अन्तिम चरण या अंश बनकर आता है, परन्तु यह शैली नए ढंग की समस्यापूर्ति का संकेत करती है।

इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह के हिन्दी दरबारी कवियों ने प्रबन्ध, मुक्तक और भाषा-रूपांतरित रचनाओं के माध्यम से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग दिया है। उनका दृष्टिकोण ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को सुरक्षित रखना तो था ही, साथ ही वीरगाथा काल से लेकर रीतिकाल तक प्रचलित सभी प्रकार की काव्य-शैलियों का उपयोग कर उन्होंने यह चरितार्थ किया है कि काव्य-शैली कभी पुरानी नहीं पड़ती और वह प्रत्येक युग की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने में समर्थ होती है। 'चित्र-बिलास' में प्रश्नोत्तर शैली और 'अध्यातम प्रकाश' आदि अध्यात्मपरक रचनाओं में संवाद-शैली का प्रयोग इसका संकेत है कि वे तत्कालीन काव्य-प्रवृत्तियों से और उनकी शैलियों से पूर्णत: परिचित थे और उनका सफल प्रयोग कर सकते थे। धर्म, दर्शन, राजनीति और साहित्य को ही उन्होंने अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनाया है, अपितु उन्होंने एक ही कृति में उन सबका समन्वय भी किया है। रीतिकालीन प्रभाव के कारण कुछ काव्य-शास्त्रीय और श्रृंगारपरक रचनाएँ भले ही उपलब्ध होती हैं, किन्तु बहुलता ऐसी रचनाओं की है जो जनसाधारण की पहुँच के भीतर हैं और जिनसे लोकजीवन अपनी स्थायी सांस्कृतिक विरासत को प्राप्त कर गौरवशाली बन सकता है तथा काव्य का रसास्वादन करते हुए मानसोल्लास भी उपलब्ध कर सकता है।

उपसंहार

दशम गुरु गोबिन्द सिंह एक युग-चेतना के प्रतीक थे। विपरीत परिस्थितियों में एक ओर उन्होंने धार्मिक सुरक्षा का अथक प्रयत्न किया तो दूसरी ओर सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भी सतत सचेष्ट रहे। इस शोध-प्रबन्ध की परिसमाप्ति के साथ कतिपय महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। दशम गुरु के दरबारी कवियो की संख्या ५२ और उससे भी अधिक बतलाई गई है। शोध और विश्लेपण के उपरांत परिगणित कवियों में ११ कवि ऐसे हैं जिनके कुछ मुक्तक कवित्त यत्र-तत्र बिखरे हुए मिल जाते हैं, किन्तु १४ कवि ऐसे भी उपलब्ध हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं को ग्रन्थ-रूप दिया है अथवा जिनकी मुक्तक रचनाएँ प्रचुर संख्या में प्राप्त है। सम्भव है अन्य कवियों की रचनाएँ किसी व्यक्ति अथवा पुस्तकालय के कक्ष में पड़ी हुई प्रकाश में आने की प्रतीक्षा कर रही हों, परन्तु हमारे सतत प्रयत्न के उपरांत भी इन २५ कवियों से अधिक की रचनाएँ, उपलब्ध नहीं हो सकीं। दशम गुरु के दरबारी कवियों की संख्या चाहे जितनी भी रही हो, हमें २५ कवियों से अधिक की रचनाएँ देखने को नहीं मिल सकीं। अपने अनुसन्धान के आधार पर यह कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं है कि जिन २५ कवियों की रचनाओं का हमने परिचय दिया है वे ही कालजयी बनकर अब उपलब्ध रह गई है।

दशम गुरु का दरबार अन्य सामन्ती दरबारों से सर्वथा भिन्न रहा है। जहाँ एक ओर कवियों को उनकी स्वतन्त्र अभिरुचि के अनुसार साहित्य-सृजन की पूर्ण प्रेरणा प्राप्त हुई है, वहाँ वे सभी कवि सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए एक महान् समायोजन के अंग बन कर भी कार्य करते रहे है। तत्कालीन अन्य सामन्ती दरबारों में भी साहित्य-सृजन का क्रम चलता रहा है, परन्तु इतने आयोजित रूप में साहित्य-सृजन का कार्य कहीं भी नहीं हुआ। प्राचीन ग्रन्थों को भाषा-रूपांतरित करना इस समायोजन का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था।

यद्यपि दशम गुरु का दरबारी साहित्य रीतिकालीन काव्य-परम्परा के संस्पर्श से सर्वथा मुक्त नहीं है, तथापि इस सस्पर्श को वीर और धार्मिक काव्य-परम्परा की सुदृढ़ नींव पर आकार देने का प्रयत्न किया गया है। 'जंगनामा' और 'गुरु शोभा' वीर-काव्य-परम्परा की छाप लेकर सामने आने वाली रचनाएँ हैं तो 'कथा हीर राँझन की', 'माधवानल कामकन्दला' और 'कनक मंजरी' प्रमुखतः हिन्दू प्रेमाख्यान-परम्परा को अभिव्यक्ति देने वाली कृतियाँ हैं। सूफी-काव्य-परम्परा के समानान्तर इन प्रेमाख्यान काव्यों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। 'साखी हीरा घाट की' वह लघु रचना

है जिसमें दशम गुरु के दिव्य जीवन को श्रद्धा-भक्ति से प्रेरित होकर अभिव्यक्ति दी गई है।

मुक्तककारो मे काशीराम द्वारा 'हनुमन्नाटक' के त्रुटित अंशों की पूर्ति भी महान् साहित्यिक समायोजन का एक अभिन्न अग ही प्रतीत होती है। दशम गुरु तथा उनके दरबारी कवियों द्वारा उत्तम कृतियों के सर्जन एवं संकलन का कार्य तो महत्त्वपूर्ण था ही, साथ ही अनेक कृतियों के खण्डित अंशों की पूर्ति की दिशा में किया गया प्रयत्न उनकी साहित्यिक अभिरुचि और सजग सांस्कृतिक दृष्टि का भी परिचायक था।

मुक्तक रचनाएँ न केवल दशम गुरु की प्रशस्ति तथा वीर रस की अभिव्यंजना के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं, प्रत्युत् उनमें भक्ति और शृंगारपरक रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। मुक्तक रचनाओं की बहुविधता और उनके वर्ण्य-विषयों का पारस्परिक अन्तर यह स्पष्ट करता है कि कवियों के काव्य-सृजन की उमग तत्कालीन काव्य-चेतना से विच्छिन्न तथा तटस्थ नहीं थी। उनकी ये मुक्तक रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती है कि उनमें काव्य-सृजन की ऐसी प्रतिभा विद्यमान थी जो रीतिकाल के बड़े-से-बड़े कवि की तुलना मे खरी उतर सके। यदि इस प्रकार की प्रचुर रचनाएँ रही भी हों, तो आज उपलब्ध नही है। जो उपलब्ध है, उनसे कवि-प्रवृत्ति का परिचय मात्र ही मिलता है।

दशम गुरु जन-नेता, आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक और भारतीय जनता के उद्धारक थे। उनके व्यक्तित्व की छाप प्राय: सभी कवियों पर पड़ी है और कुछ कवियों ने उनके प्रति अपनी श्रद्धा की अभिव्यंजना प्रशस्तिपरक रचनाओं में की है। किन्तु ऐसा संकेत कहीं भी नहीं मिलता कि स्वयं दशम गुरु ने इन हिन्दी-कवियों को अपने प्रशस्तिगान के लिए किंचित् भी प्रेरित किया हो। जिस कवि को उन्होंने प्रश्रय दिया, उसे साहित्यिक-यज्ञ का एक पात्र बना कर कार्य में लगा दिया। यह ऐसा दृष्टिकोण है जिससे दशम गुरु के दरबार से ऐसे विशिष्ट साहित्य का स्रोत उमड़ पड़ा जो तत्कालीन रीतिकाल की काव्य-प्रवृत्तियों से पृथक् अपने सांस्कृतिक सिंचन के कारण लोकमानस में विशिष्ट स्थान पा सका।

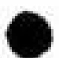
दशम गुरु के जीवन में जिस प्रकार साहित्य, राजनीति और अध्यात्म सम्बन्धी साधनाओं का त्रिवेणी-संगम घटित हुआ है, उसी प्रकार उनके हिन्दी दरबारी कवियों की काव्य-साधना में भी त्रिविध तरगों को अभिव्यक्ति मिली है। 'महाभारत', 'चाणक्य-नीति' और हितोपदेश' के भाषा-रूपांतर को प्रकट करने में साहित्य और राजनीति के समन्वय का विशेष योगदान है, तो 'अध्यात्म प्रकाश', 'ज्ञान प्रकाश', 'गुरु-महिमा' तथा 'अनुभव-उउल्ला' जैसी अध्यात्मपरक कृतियाँ धर्म, उपासना और दर्शन की परम्परा का समन्वित रूप प्रस्तुत करती हैं।

रीतिकालीन जिस काव्य-शैली के संस्पर्श की चर्चा हमने की है, उसके दर्शन 'रतन दाम' और 'चित्र-विलास' में होते हैं। रीतिकाल में प्रचलित कोश-काव्यों और

काव्य-सृजन की प्रचलित रूढ़ियों तथा शैलियों के दर्शन इन रचनाओं में हो जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि ऐसी रचनाओं के सृजन का निषेध गुरु-दरबार में नहीं था।

दशम गुरु का जीवन विविध ऐतिहासिक घटनाओं से परिपूर्ण था। कुछ प्रबन्ध-रचनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान् हैं, कुछ पौराणिक रचनाएँ पौराणिक-प्रबन्धों की परम्परा में अनुस्यूत हैं तो कुछ प्रबन्ध रचनाएँ लोक-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। इस प्रकार इतिहास, पुराण और लोक-जीवन का मजुल समन्वय इन कृतियों में दिखाई पड़ता है।

दशम गुरु का दरबार, गुरु-दरबारों की आध्यात्मिक परम्परा का प्रतिनिधि था। वह तत्कालीन परिस्थितियों और वातावरण के साथ संघर्षरत था और जनजीवन में एक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना उद्दीप्त करने का कार्य कर रहा था। दशम गुरु के दरबारी साहित्य की मूल प्रेरणा सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना का उन्मेष थी। गुरु गोविन्द सिह का सुरुचिसम्पन्न, सुदृढ़, सास्कृतिक एवं ओजस्वी व्यक्तित्व इस समूचे साहित्य की प्रेरणा-शक्ति के रूप में अवस्थित था। वीरगाथाकालीन, भक्तियुगीन तथा रीतिकालीन काव्य-परम्पराओं को समवेत रूप मे सुरक्षित रखने और समृद्ध बनाने की दिशा में दशम गुरु तथा उनके दरबारी कवियों का योगदान निश्चय ही ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।



सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(क) हस्तलिखित ग्रन्थ

अमृतराय : चित्र-बिलास : सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, २८२/५१२१

" : सभा पर्व (महाभारत) : काशी-नरेश-पुस्तकालय, रामनगर, ४५/५४

आलम : आलम की कविता : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी, ११२५

" : माधवानल कामकन्दला : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय काशी, ३१३/२२

" : श्याम-सनेही : डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक, शाहनज़फ रोड, लखनऊ के निजी : पुस्तकालय में उपलब्ध

" : सुदामा चरित : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी, १६५२/६५२

काशीराम : कवित्त कवि काशीराम : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी, ६१३

" : परशुराम-संवाद : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी, २२६६/१३८६

" : पांडव गीता : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी,

कुवरेश : द्रोण पर्व (महाभारत) : काशी-नरेश-पुस्तकालय, रामनगर, ४५/५४

गिरधारी लाल : पिंगलसार : पंजाब भाषा-विभाग, पटियाला, १२६

गुरुदास : कथा हीर राँझन की : सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, ६०/१५६३

" : साखी हीरा घाट की : सेंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी, पटियाला, ३२१

गोपाल : अनुभव उल्लास : श्री गोविन्द सिह लाम्बा, ४१२-सफाबादी गेट, पटियाला, के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध

टहकन : अश्वमेध पर्व (महाभारत) : सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, ११२/२३२१

" : रतन दाम : सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, ६३८४

तनसुख लाहौरी : हितोपदेश : श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी (चण्डीगढ़) के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध

देवीदास : राजनीति ग्रन्थ : श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी (चण्डीगढ़) के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध

प्रहलाद : ५० उपनिषदों का भाषानुवाद : श्री करनैलसिह ग्रन्थी (अमृतसर) के पास उपलब्ध,

मंगल : शल्य पर्व (महाभारत) : काशी-नरेश-पुस्तकालय, रामनगर, ४५/५४

लक्खण : हितोपदेश भाषा : पंजाब भाषा-विभाग, पटियाला, ४०४
लच्छीराम : बुध प्रकाश दर्पण : पंजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लाहौर, ८२६
सुखदेव : अध्यात्म प्रकाश : नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी, २०९३/२४६
,, : गुरु-महिमा : ,, ,, ,, ,, ५७१/२०
,, : ज्ञान प्रकाश : ,, ,, ,, ,, ५७४/४१३
,, : फाजिल अली प्रकाश : श्री करनैलसिंह ग्रन्थी (अमृतसर) के पास उपलब्ध
,, : सामुद्रिक शास्त्र : मोती बाग लाइब्रेरी, पटियाला, १७३
सेनापति : गुरु शोभा : सिक्ख रेफ़ेंस पुस्तकालय, अमृतसर, १९९/३९१५
,, : चाणक्य नीति भाषा : पंजाब भाषा-विभाग, पटियाला, ३०२
,, : सुखसैन ग्रन्थ : श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी (चण्डीगढ़) के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध
हंसराम : कर्ण पर्व (महाभारत) : काशी-नरेश-पुस्तकालय, रामनगर, ४५/५४

(ख) हिन्दी-संस्कृत के प्रकाशित ग्रन्थ

अगरचन्द नाहटा : राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग-२, १९४७
सं० एम० आर० केले : हितोपदेश : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७
डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ : हिन्दी प्रेमाख्यान : साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६२
टिप्पणीकार प० काशीनाथ शास्त्री : अमरकोष : बाबू बैजनाथ प्रसाद, बुकसैलर, बनारस
अनु० किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास: हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-२, १९६१
कृपाल सिंह नारंग : भारत का मुगल इतिहास : अत्तरचन्द कपूर एण्ड संस, दिल्ली, १९५९
,, : पंजाब का इतिहास : ,, १९६४
डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा : रीति-स्वच्छन्द काव्य-धारा : कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, १९६७
केशव : कविप्रिया : सेठ केसरीदास, लखनऊ, १९२४
,, : विज्ञान गीता : वैंक्टेश्वर प्रैस, बम्बई
डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, १९६५
स० गणेशप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९६२
गुरुदास : कथा हीर राँझन की : पंजाब भाषा-विभाग, पटियाला
चन्द बरदाई : पृथ्वीराज रासो : साहित्य निकेतन, कानपुर, १९६५
चन्द्रकांत बाली : पंजाब-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य का इतिहास : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, १९६२
जगन्नाथ प्रसाद भानु : छन्द-प्रभाकर : जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रैस, बिलासपुर, २०१७ वि०

स० जगन्नाथ दास रत्नाकर : विहारी रत्नाकर : ग्रन्थकार प्रकाशन, शिवाला, बनारस, १९५१
सं० डॉ० जयभगवान गोयल : गुरु शोभा : पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, १९६७
सं० ,, ,, : जंगनामा : ,, ,, ,, १९६७
टहकन : अश्वमेध पर्व भाषा (लिथो संस्करण) : नाभा-दरबार द्वारा प्रकाशित, १९८३ वि०
सं० तिलेश्वर नाथ : रस विलास : साहित्य-संसार, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता, प्रथम संस्करण,
ठाकुर देसराज : सिक्ख इतिहास : सरस्वती-सदन, मंसूरी, १९५६
द्वारिकाप्रसाद शर्मा : संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ : रामनारायण लाल, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, १९५७
धर्मवीर : पंजाब का इतिहास : इण्डियन प्रैस, इलाहाबाद, २००८ वि०
धर्मवीर भारती : सिद्ध-साहित्य : किताब महल, इलाहाबाद, १९५५
सं० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी-साहित्य : द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, १९४९
डॉ० नगेन्द्र : रीति काव्य की भूमिका : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, १९५३
सं० नन्ददुलारे वाजपेयी : सूर सागर : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि०
परशुराम चतुर्वेदी : सूफी काव्य-संग्रह : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १८८०
डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय : अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ
डॉ० बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास : शारदा मन्दिर, बनारस, १९५३
सं० डॉ० भगवती प्रसाद सिंह : दिग्विजय भूषण : अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, २०१६ वि०
सं० ला० भगवानदीन : आलमकेलि : उमाशंकर मैहता, रामघाट, काशी, १९८३ वि०
,, : विहारी-बोधिनी साहित्य सेवा सदन, चौखंबा, बनारस,
डॉ० भोलानाथ तिवारी : हिन्दी नीति काव्य : विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
डॉ० मनमोहन सहगल : सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण : भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़, १९६५
डॉ० महीप सिंह : गुरु गोविन्दसिंह एक युग-व्यक्तित्व : उमेश प्रकाशन, दिल्ली-६, १९६६
डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह : भगवन्तराय खीची और उनके मंडल के कवि : रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली-६, १९६७
मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धु विनोद (भाग-१,२,३) : हिन्दी-ग्रन्थ प्रचारक मंडल, खण्डवा, १९७०
सं० मोतीलाल मेनारिया : डिंगल में वीर रस : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००३ वि०

व्याख्याता पं० रमाकान्त त्रिपाठी : शुक सप्तति : चौखम्बा संस्कृत सीरीज़,
वाराणसी, १९६६ •
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
१९९९ वि०
" : गोस्वामी तुलसीदास : नागरी प्रचारिणीसभा, काशी, २०१९ वि०
" : जायसी-ग्रन्थावली : " " "
स० रामजी मिश्र : रस राज : चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१, प्रथम संस्करण
टीकाकार रामनरेश त्रिपाठी : वेदान्त सार : चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१,
प्रथम संस्करण
सं० रामवृक्ष बेनीपुरी : विद्यापति की पदावली : पटना पुस्तक भंडार, प्रथम संस्करण
राहुल सांकृत्यायन : दक्खिनी दिन्दी . बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, २०१५ वि०
अनु० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : हिन्दुई साहित्य : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५३
वात्स्यायन : कामसूत्र : गैनवा, उत्तरा गैनवा, २०१७
प्र० सं० वासुदेव शरण अग्रवाल : पोद्दार-अभिनन्दन ग्रन्थ : अखिल भारतीय ब्रज साहित्य-
मंडल २०१०
डॉ० विजयपाल सिंह : केशव और उनका साहित्य : राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, १९६१
टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसिकप्रिया : कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत : वाणी-वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल,
वाराणसी, २०१७
वेणी प्रसाद : गुरु गोविन्द सिह : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
(श्रीमन्महर्षि) वेद व्यास : अश्वमेध पर्व (महाभारत) : गीता प्रैस, गोरखपुर
" : अनुशासन पर्व (महाभारत) "
" : आदि पर्व (महाभारत) "
" : कर्ण पर्व (महाभारत) "
" : द्रोण पर्व (महाभारत) "
" : शल्य पर्व (महाभारत) "
डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय : मध्य युगीन प्रेमाख्यान : मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद,
शमशेर सिंह अशोक : पैप्सु का प्राचीन हिन्दी साहित्य : पैप्सु प्रदेश हिन्दी साहित्य
सम्मेलन, पटियाला, १९५६
डॉ० शिव कुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां : अशोक प्रकाशन, दिल्ली-६,
१९६८
(ठाकुर) शिवसिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज : तेज कुमार बुक डिपो. लखनऊ, १९६६
शंकराचार्य : ब्रह्म सूत्र (भाग ३) : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६४
सरला शुक्ल : हिन्दी सूफी कवि और काव्य : लखनऊ विश्वविद्यालय, २०१३
डॉ० सावित्री सिन्हा : मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

डॉ० सियाराम तिवारी : हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड-काव्य : हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६, १९६४
सुखदेव : अध्यात्म प्रकाश : वैंक्टेश्वर प्रैस, बम्बई, १९५७
सं० सुनीति कुमार पाठक : चाणक्य राजनीति : विश्व भारती, शाति निकेतन, १९५९
आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ-सम्प्रदाय : नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, १९६६
डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव : भारतीय प्रेमाख्यान काव्य : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१, १९६१
डॉ० हरिभजन सिह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य : भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, १९६३
हरिशंकर शर्मा : काव्य-प्रकाश : चौखम्बा संस्कृत पुस्तक माला, वाराणसी, १९५१
हृदयराम भल्ला : हनुमन्नाटक भाषा : वैंक्टेश्वर प्रैस, बम्बई, १८८७
: अग्नि पुरान : ५ क्लाइवरोड, कलकत्ता १९५७
: हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रैवार्षिक विवरण : नागरी प्रचारिणी - सभा, काशी, २०१२
: हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (प्रथम खण्ड) :
: हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग-१ :

(ग) पंजाबी के ग्रन्थ

आदि ग्रन्थ : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५१
आलम : माधवानल कामकदला (भासौर एडीशन) : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५०
(भाई) काह्न सिह : गुरु-शब्द-रत्नाकर : पंजाब भाषा-विभाग, पटियाला, १९६०
डॉ० गोपाल सिंह दर्दी : पंजाबी साहित्य दा इतिहास : जसवन्त पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९५२
गुरु गोविन्द सिंह : दशम ग्रन्थ (दो भाग) : जवाहर सिंह, कृपाल सिंह, अमृतसर, २०१३
(सम्पा०) निहाल सिंह : हीर (दामोदर कृत) : पंजाबी पब्लिकेशन, अमृतसर
ज्ञानी प्रताप सिह : गुरु-मत लैक्चर : भाई जवाहर सिंह, कृपाल सिंह, अमृतसर, १९५९
डॉ बलबीर सिंह : सबल-साहित्य : खालसा समाचार, अमृतसर, प्रथम संस्करण
डॉ० मोहन सिंह : पंजाबी साहित्य दा इतिहास : कस्तूरी लाल एन्ड संस, अमृतसर, प्रथम संस्करण

सं० डॉ० मोहन सिंह : हीर (वारिस कृत) : ओरिएंटल प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, लाहौर

मौला बख्श कुश्ता : पंजाब दे हीरे : लाहौर बुक शाप, लुधियाना, प्रथम संस्करण

भाई वीर सिंह : कलगीधर चमत्कार ग्रन्थ : खालसा समाचार, अमृतसर, १९६५

शमशेर सिंह अशोक : प्रचीन जंगनामे : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५०

सतवीर सिंह : साडा इतिहास : न्यू बुक कम्पनी, जालन्धर, १९५७

सुक्खा सिंह : गुरु-विलास : रामचन्द मानक राह्या, लाहौरीगेट, पटियाला, १९६८

बाबा सुमेर सिंह : गुरु-पद-प्रेम-प्रकाश (लिथो संस्करण), : सिक्ख-रेफ्रेंस पुस्तकालय, अमृतसर, १९६८

डॉ० सुरेन्द्र सिंह कोहली : पंजाबी साहित्य दा इतिहास : लाहौर बुक शाप, लुधियाना, १९५३

भाई संतोख सिंह : गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रन्थ : खालसा समाचार, अमृतसर, १९६५

(घ) अंग्रेजी के ग्रन्थ

Dr. Balbir Singh : Madhvanal Kam-Kandla Carit : Uttar Chand—Kapur & Sons,, Delhi

Cunningham : History of the Sikhs : S. Chand & Co., Delhi

Dr. Dharam pal Ashta : Poetry of the Dasam Granth : 6 Jorbagh Road, New Delhi, 1958-59

G.S. Chhabra : Advanced Study in History of the Panjab : Sharanjit, Adda Tanda, Jullundur City, 1960

(Sir) Gokal Chand Narang : Trans formation of Sikhism : New Book Society of India, New Delhi, 1964

Harbans Singh : Guru Gobind Singh : The Guru Gobind Singh Foundation, Chandigarh, 1966

Dr. Indu Bhushan Banerji : Evolution of khalsa : A.R. Mukherji College, Square, Calcutta, 1947

Latif : History of the Panjab : Eurasia Publishing House, Delhi, 1964

Macauliffe : The Sikh Religion (Volumes 5, 6, 7), Oxford, 1909

Dr. Mohan Singh : A short History of Panjabi Literature : Kasturi Lal & Sons, Amritsar, 1st Ed.

S.N. Dass Gupta : A History of Sanskrit Literature (Vol. 2) : University of Calcutta, 1962

Teja Singh & Ganda Singh : A Short History of Sikhs, Orient Longman, Bombay, 1950
W.H. Moreland & A.C. Chatterji : A Short History of India, Lorgmans, Lodon 1958
Panjab District Gazetters, Jhang District, 1929
Tenth Master (Tribute on tercentenary) : The Guru Gobind Singh Foundation, Chandigarh, 1967

(ङ) टंकित शोध-प्रबन्ध

डॉ० छविनाथ त्रिपाठी : मध्यकालीन हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त : कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय पुस्तकालय, कुरुक्षेत्र
डॉ० सरनदास भनोत : श्याम-सनेही : पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय, चण्डीगढ़
डॉ० सुधीन्द्र कुमार : रीतिकालीन श्रृंगार-भावना के मूल स्रोत : कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय पुस्तकालय, कुरुक्षेत्र

(च) पत्र-पत्रिकाएँ

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय रिसर्च जनरल (भाग-१) :
ढाका रिव्यु, १६२५
परिशोध (गुरु गोविन्द सिंह विशेषांक) : पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, १९६६
सम्मेलन पत्रिका, भाग ५२, ३-४, : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
सरस्वती पत्रिका, जनवरी १९६७ तथा फरवरी १९६८, इण्डियन प्रैस, प्रयाग,
हिन्दी अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक), वर्ष १३, अंक १-२, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग